U.P. Series

हिन्दी

पाठ्यपुस्तक का सम्पूर्ण हल

प्रथम प्रश्न-पत्र

गद्य गरिमा

भूमिका

अभ्यास प्रश्न

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न–

1. गद्य एवं पद्य में मुख्य अन्तर क्या हैं?

उ०– गद्य मुख्यत: छन्दमुक्त वाक्यों में की गई रचना होती है, जबकि पद्य लयबद्ध या छन्दोबद्ध रचना होती है। यति, गति, लय, पद्य लेखक के सहायक तत्व होते हैं, जबकि गद्य लेखक के लिए विराम-चिह्न सहायक तत्व सिद्ध होते हैं।

2. हिन्दी की आठ बोलियों के नाम बताइए।

उ०– हिन्दी की आठ बोलियाँ हैं— ब्रजभाषा, खड़ी बोली, बुन्देली, हरियाणवी, कन्नौजी, बघेली, अवधी एवं छत्तीसगढ़ी।

3. पूर्ववर्ती गद्य के हिन्दी साहित्य को कितने वर्गों में बाँटा जा सकता है?

उ०– पूववर्ती गद्य के हिन्दी साहित्य को मुख्यत: चार वर्गों में बाँटा जा सकता है— (1) राजस्थानी गद्य, (2) मैथिली गद्य, (3) ब्रजभाषा का गद्य और (4) खड़ीबोली का प्रारम्भिक गद्य।

4. हिन्दी की कितनी उपभाषाएँ हैं?

उ०– हिन्दी की उपभाषाएँ ब्रजभाषा, खड़ीबोली, बुन्देली, हरियाणवी, कन्नौजी, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी, मैथिली, राजस्थानी एवं पहाड़ी हैं।

5. मेरठ और दिल्ली के आस-पास बोली जाने वाली खड़ी बोली का साहित्यिक रूप क्या कहलाता है?

उ०– मेरठ और दिल्ली के आस-पास बोली जाने वाली खड़ी बोली के साहित्यिक रूप को 'हिन्दी' कहते हैं।

6. राजस्थानी गद्य की प्रमुख रचनाओं के नाम बताइए।

उ०– राजस्थानी गद्य की प्रमुख रचनाएँ आराधना, अतिचार एवं बाल-शिक्षा आदि हैं।

7. मैथिली गद्य का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ कौन-सा है?

उ०– मैथिली गद्य का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ ज्योतिरीश्वरकृत 'वर्ण-रत्नाकर' है।

8. ब्रजभाषा के गद्य साहित्य को कितने वर्गों में बाँटा जा सकता है?

उ०– ब्रजभाषा के गद्य साहित्य को मुख्यत: तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है— (1) मौलिक ग्रन्थ, (2) टीका-साहित्य और (3) अनूदित ग्रन्थ।

9. ब्रजभाषा के सबसे प्राचीन मौलिक ग्रन्थ का नाम बताइए।

उ०– ब्रजभाषा का सबसे प्राचीन मौलिक ग्रन्थ गोरखनाथ कृत 'गोरखसार' माना जाता है।

10. ब्रजभाषा के गद्य की दो रचनाओं के नाम लिखिए।

उ०– ब्रजभाषा गद्य की दो रचनाएँ शृंगार-रस-मण्डन तथा दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता हैं।

11. खड़ी बोली के गद्य की सबसे पहली रचना कौन-सी है?

उ०– खड़ीबोली के गद्य की सबसे पहली रचना जटमल कृत 'गोरा बादल की कथा' है।

12. कलकत्ता स्थित फोर्ट विलियम कॉलेज के उन दो हिन्दी-शिक्षकों के नाम लिखिए, जिन्हें खड़ी बोली गद्य का प्रारम्भिक उन्नायक माना जाता है।

उ०– कलकत्ता स्थित फोर्ट विलियम कॉलेज के दो हिन्दी-शिक्षकों लल्लूलाल तथा सदल मिश्र को खड़ी बोली गद्य का प्रारम्भिक उन्नायक माना जाता है।

13. इंशा अल्ला खाँ, रामप्रसाद निरंजनी एवं लल्लूलाल की प्रसिद्ध रचनाओं के नाम लिखिए।

उ०–

इंशा अल्ला खाँ	—	रानी केतकी की कहानी
रामप्रसाद निरंजनी	—	भाषा योगवाशिष्ठ
लल्लूलाल	—	प्रेमसागर

14. सदल मिश्र व इंशा अल्ला खाँ की भाषा-शैली में अन्तर बताइए।

उ०– इंशा अल्ला खाँ की रचनाएँ शुद्ध खड़ी बोली में लिखी गई है, फिर भी कहीं-कहीं फारसी शैली का प्रभाव परिलक्षित होता है। इनकी भाषा मुहावरेदार तथा हास्य से परिपूर्ण है।

सदल मिश्र जी की भाषा अधिक स्पष्ट, व्यवहारोपयोगी तथा सुधरी हुई है।

15. खड़ी बोली गद्य के प्रसार में ईसाई मिशनरियों का क्या योगदान रहा?

उ०– ईसाई मिशनरियों ने हिन्दी गद्य के विकास में अधिक योगदान दिया, इन्होंने ईसाई धर्म के प्रचार के लिए 'बाईबिल' एवं अन्य ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद करवाया।

16. 'विलफोर्स एक्ट' कब पास हुआ?

उ०– सन् 1813 ई० में 'विलफोर्स एक्ट' पास हुआ।

17. भारतेन्दु युग से पूर्व किन दो राजाओं ने हिन्दी गद्य के निर्माण में योगदान दिया?

उ०– भारतेन्दु युग से पूर्व राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' तथा राजा लक्ष्मण सिंह ने हिन्दी गद्य के निर्माण में योगदान दिया।

18. मुंशी सदासुखलाल की भाषा की विशेषताएँ बताइए।

उ०– मुंशी सदासुखलाल की भाषा परिमार्जित तथा फारसी शैली से प्रभावित है।

19. 'सत्यार्थ प्रकाश' तथा 'भाषा योगवाशिष्ठ' के लेखकों का नाम बताइए।

उ०– 'सत्यार्थ प्रकाश' के लेखक स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा 'भाषा योगवाशिष्ठ' के लेखक रामप्रसाद निरंजनी हैं।

20. हिन्दी की प्रथम पत्रिका कौन-सी है? यह कब व कहाँ से प्रकाशित हुई?

उ०– हिन्दी की प्रथम पत्रिका 'उदन्त-मार्तण्ड' हैं। यह सन् 1826 ई० में कानपुर से प्रकाशित हुई।

21. हिन्दी गद्य की उर्दू तथा संस्कृतप्रधान शैलियों के पक्षधर दो राजाओं के नाम लिखिए।

उ०– राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' हिन्दी गद्य के उर्दू तथा राजा लक्ष्मण सिंह हिन्दी गद्य के संस्कृत शैली के पक्षधर थे।

22. भारतेन्दु के सहयोगी किन्हीं दो लेखकों के नाम लिखिए।

उ०– प्रतापनारायण मिश्र तथा पं० बालकृष्ण भट्ट भारतेन्दु के सहयोगी लेखक थे।

23. भारतेन्दु युग में प्रकाशित होने वाली हिन्दी की एक प्रमुख पत्रिका व उसके सम्पादक का नाम लिखिए।

उ०– भारतेन्दु युग में प्रकाशित होने वाली हिन्दी की प्रमुख पत्रिका 'कवि-वचन सुधा' है। इसके सम्पादक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी थे।

24. हिन्दी खड़ी बोली गद्य के विकास में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का योगदान लिखिए।

उ०– भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने पहली बार अपनी प्रतिभा का परिचय देते हुए साधारण बोलचाल के शब्दों को हिन्दी में स्थान दिया। भारतेन्दु युग का गद्य अत्यन्त सजीव एवं सशक्त है। इस युग के साहित्यकारों ने काव्य के लिए 'ब्रजभाषा' व गद्य के लिए 'खड़ी बोली' को अपनाया। वर्तमान हिन्दी गद्य को भारतेन्दु जी की देन मानते हुए उन्हें 'हिन्दी गद्य का जनक' संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

25. द्विवेदी युग के प्रमुख गद्य-लेखकों के नाम लिखिए।

उ०– द्विवेदी युग के प्रमुख लेखक हैं— महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचन्द, पूर्णसिंह, सम्पूर्णानन्द, श्यामसुन्दर दास, रामचन्द्र शुक्ल आदि।

26. द्विवेदी युग का समय बताइए और उस व्यक्ति का पूरा नाम बताइए, जिसके कारण इसे द्विवेदी युग कहा जाता है।

उ०– द्विवेदी युग की समय-सीमा सन् 1900 ई० से सन् 1922 ई० तक है। महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान के कारण इस युग को द्विवेदी युग कहा जाता है।

27. भारतेन्दु युग की गद्य-भाषा (हिन्दी) का द्विवेदी युग में क्या सुधार एवं विकास हुआ?

उ०– भारतेन्दु युग के हिन्दी गद्य में परिष्कार और परिमार्जन की आवश्यकता थी। द्विवेदी युग में भाषा को शुद्ध, सुसंस्कृत व परिमार्जित बनाकर व्यवस्थित किया गया।

28. शुक्ल युग के प्रमुख गद्यकारों के नाम लिखिए।

उ०– शुक्ल युग के प्रमुख गद्यकार हैं— पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, डॉ० रघुबीर सिंह, रामचन्द्र शुक्ल, जयशंकर प्रसाद, गुलाबराय, हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि।

29. शुक्ल युग को अन्य किन नामों से जाना जाता है?

उ०– शुक्ल युग को छायावादी युग, प्रसाद युग, प्रेमचन्द युग आदि नामों से भी जाना जाता है।

30. शुक्ल युग में कौन-सी विधाएँ विकसित हुईं?

उ०– शुक्ल युग को कहानी, निबन्ध, उपन्यास, आलोचना, संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, आत्म-कथा, जीवनी, पत्र साहित्य, यात्रा-वृत्त व डायरी आदि गद्य विधाएँ विकसित हुई।

31. शुक्ल युग की कृतियों में प्रयुक्त शैली कौन-सी है?

उ०– इस युग की कृतियों में मुख्य रूप से गवेषणात्मक, भावात्मक, व्यंग्यात्मक, विवेचनात्मक व विवरणात्मक शैली प्रयोग की गई।

32. शुक्ल युग की प्रमुख पत्रिकाओं के नाम बताइए।

उ०– शुक्ल युग की प्रमुख पत्रिकाएँ साहित्य-सन्देश, कर्मवीर, सरोज, हंस, आदर्श/मौजी आदि हैं।

33. प्रगतिवादी युग के प्रथम वर्ग के साहित्यकारों के नाम बताइए।

उ०– प्रगतिवादी युग के प्रथम वर्ग के साहित्यकार— दिनकर, शांतिप्रिय द्विवेदी, यशपाल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, भगवतीचरण वर्मा, जैनेन्द्र, वासुदेवशरण अग्रवाल आदि हैं।

34. प्रगतिवादी युग की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

उ०– मार्क्सवादी प्रभाव, भाषा की सशक्तता, नवीन भाषा-शैलियों का विकास तथा यथार्थता आदि प्रगतिवादी की विशेषताएँ हैं।

35. प्रगतिवादी युग की प्रमुख पत्रिकाओं के नाम लिखिए।

उ०– प्रगतिवादी युग की प्रमुख पत्रिकाएँ सारिका, गंगा, कादम्बिनी, धर्मयुग आदि हैं।

36. आधुनिक युग की समय-सीमा बताइए।

उ०– आधुनिक युग की समय-सीमा सन् 1947 ई० से वर्तमान समय तक है।

37. आधुनिक युग के किन्हीं तीन लेखकों के नाम लिखिए।

उ०– आधुनिक युग के तीन लेखक लक्ष्मी नारायण लाल, विष्णु प्रभाकर, धर्मवीर भारती हैं।

38. हिन्दी गद्य की प्रमुख विधाओं के नाम लिखिए।

उ०– हिन्दी गद्य की प्रमुख विधाएँ— निबन्ध, कहानी, नाटक, उपन्यास, आलोचना, रेखाचित्र, आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण, डायरी, यात्रावृत, भेंट-वार्ता, पत्र-साहित्य तथा गद्य काव्य आदि हैं।

39. विषय और शैली की दृष्टि से निबन्ध के प्रमुख कितने भेद हैं? उनके नाम लिखिए।

उ०– विषय और शैली की दृष्टि से निबन्ध के निम्नलिखित प्रमुख चार भेद हैं—

(1) विवरणात्मक निबन्ध, (2) वर्णनात्मक निबन्ध, (3) विचारात्मक निबन्ध, (4) भावात्मक निबन्ध।

40. भारतेन्दु युग के निबन्धकारों के नाम लिखिए।

उ०– भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पं० बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त भारतेन्दु युग के निबन्धकार हैं।

41. द्विवेदीयुगीन किन्ही दो निबन्धकारों के नाम लिखिए।

उ०– द्विवेदीयुगीन दो निबन्धकार हैं— महावीर प्रसाद द्विवेदी व पूर्णसिंह।

42. भारतेन्दु जी के दो निबन्धों के नाम लिखिए।

उ०– मदालसा तथा सुलोचना भारतेन्दु जी के दो निबन्ध-संग्रह हैं।

43. शुक्ल युग के प्रमुख निबन्धकारों के नाम लिखिए।

उ०– शुक्ल युग के प्रमुख निबन्धकार— आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गुलाबराय, श्यामसुन्दर दास, पीताम्बर दत्त, बड़थ्वाल आदि है।

44. महादेवी वर्मा तथा वासुदेवशरण अग्रवाल किस युग के निबन्धकार है?

उ०– महादेवी वर्मा तथा वासुदेवशरण अग्रवाल शुक्लोत्तर युग के निबन्धकार हैं।

45. हिन्दी की पहली मौलिक कहानी का नाम लिखिए।

उ०– किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'इंदुमती' को हिन्दी की पहली मौलिक कहानी माना जाता है।

46. कहानी के कौन-कौन से तत्व होते हैं?

उ०– कहानी के निम्नलिखित तत्व होते हैं— (1) शीर्षक, (2) पात्र-एवं चरित्र-चित्रण, (3) कथानक या कथावस्तु, (4) संवाद या कथोपकथन, (5) देशकाल या वातावरण, (6) भाषा-शैली तथा (7) उद्देश्य।

47. कहानी की मुख्य विशेषताएँ बताइए।

उ०– लघु कथानक, पात्र एवं चरित्र-चित्रण, भाव अथवा संवेदना का प्रस्तुतीकरण तथा निश्चित उद्देश्य-कहानी की मुख्य विशेषताएँ हैं।

48. जयशंकर प्रसाद की प्रमुख कहानियों के नाम लिखिए।

उ०– जयशंकर प्रसाद की प्रमुख कहानियाँ— आकाशदीप, ममता, पुरस्कार, मधुआ, चित्र-मन्दिर, गुण्डा आदि हैं।

49. प्रेमचन्द जी की पहली कहानी का नाम लिखिए।

उ०– प्रेमचन्द की पहली कहानी 'स्रोत' है।

50. हिन्दी के प्रथम मौलिक उपन्यास एवं उसके लेखक का नाम लिखिए।

उ०– हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास 'परीक्षा गुरु' है। इसके लेखक लाला श्रीनिवासदास हैं।

51. प्रेमचन्द के किन्हीं दो उपन्यासों के नाम लिखिए।

उ०– प्रेमचन्द जी के दो उपन्यास— गबन और गोदान हैं।

52. जयशंकर प्रसाद के उपन्यासों के नाम लिखिए।

उ०– जयशंकर प्रसाद के दो उपन्यास— कंकाल और तितली हैं।

53. देवकीनन्दन खत्री के दो उपन्यासों के नाम बताइए।

उ०– चन्द्रकान्ता सन्तति और भूतनाथ— देवकीनन्दन खत्री के दो उपन्यास हैं।

54. 'परख' तथा 'जहाज का पंछी' उपन्यासों के लेखकों के नाम लिखिए।

उ०– 'परख' उपन्यास के लेखक— जैनेन्द्र तथा 'जहाज का पंछी' उपन्यास के लेखक—इलाचन्द्र जोशी जी हैं।

55. प्रेमचन्दोत्तर युग के किन्हीं दो उपन्यासकारों के नाम लिखिए।

उ०– प्रेमचन्दोत्तर युग के दो प्रमुख उपन्यासकार— जैनेन्द्र तथा इलाचन्द्र जोशी हैं।

56. नाटक को 'रूपक' क्यों कहा जाता है?

उ०– नाटक में पात्रों और घटनाओं को अन्य पात्रों व घटनाओं पर आरोपित किया जाता है, इसलिए इसे 'रूपक' कहा जाता है।

57. हिन्दी के प्रमुख नाटककारों के नाम लिखिए।

उ०– हिन्दी के प्रमुख नाटककार— भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद, हरिशंकर प्रेमी, लक्ष्मीनारायण मिश्र, भीष्म साहनी आदि हैं।

58. जयशंकर प्रसाद के प्रसिद्ध नाटकों के नाम लिखिए।

उ०– जयशंकर प्रसाद के प्रसिद्ध नाटक— चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, अजातशत्रु, करुणालय आदि हैं।

59. 'रक्षाबंधन' तथा 'सिंदूर की होली' किस विधा की रचनाएँ हैं? इनके लेखकों का नाम भी लिखिए।

उ०– 'रक्षाबन्धन' तथा 'सिंदूर की होली' नाटक विधा की रचनाएँ हैं। इनके लेखक हरिशंकर प्रेमी तथा लक्ष्मीनारायण मिश्र हैं।

60. हिन्दी एकांकी का जनक किसे माना जाता है?

उ०– डॉ० रामकुमार वर्मा को आधुनिक हिन्दी एकांकी का जनक माना जाता है।

61. हिन्दी के प्रमुख एकांकीकारों के नाम बताइए।

उ०– हिन्दी के प्रमुख एकांकीकार— भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, डॉ० रामकुमार वर्मा, पं० उदयशंकर भट्ट, सेठ गोविंददास, जगदीशचन्द्र माथुर, विनोद रस्तोगी, लक्ष्मीनारायण मिश्र आदि हैं।

62. हिन्दी की प्रथम एकांकी का नाम लिखिए।

उ०– जयशंकर प्रसाद द्वारा लिखित 'एक घूँट' को हिन्दी की प्रथम एकांकी माना जाता है।

63. डॉ० रामकुमार वर्मा के प्रथम एकांकी नाटकों के संग्रह का क्या नाम है? यह कब प्रकाशित हुआ?

उ०– डॉ० रामकुमार वर्मा के प्रथम एकांकी नाटकों के संग्रह का नाम 'पृथ्वीराज की आँखें' है, यह सन् 1936 ई० में प्रकाशित हुआ।

64. आलोचना किसे कहते हैं?

उ०– किसी वस्तु का सूक्ष्म अध्ययन करना; जिससे उसके गुण-दोष प्रकट हो जाएँ, को आलोचना कहते हैं।

65. हिन्दी में आधुनिक पद्धति की आलोचना का प्रारम्भ कब से माना जाता है?

उ०– हिन्दी में आधुनिक पद्धति की आलोचना का प्रारम्भ भारतेन्दु युग में लाला श्रीनिवासदास के 'संयोगिता स्वयंवर' नामक नाटक की आलोचना से माना जाता है।

66. छायावादी युग के सबसे प्रसिद्ध आलोचना लेखक का नाम बताइए।

उ०– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल छायावादी युग के सबसे प्रसिद्ध आलोचना लेखक हैं।

67. चार आलोचक लेखकों के नाम बताइए।

उ०– चार आलोचक लेखक हैं— आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बाबू श्यामसुन्दर दास, हजारीप्रसाद द्विवेदी एवं महावीर प्रसाद द्विवेदी।

68. द्विवेदी युग के प्रमुख आलोचना लेखकों के नाम लिखिए।

उ०– द्विवेदी युग के प्रमुख आलोचना लेखक हैं— बाबू श्यामसुन्दर दास, पद्मसिंह शर्मा एवं आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी।

69. डॉ० राजेन्द्र प्रसाद की एक रचना का नाम लिखिए।

उ०– डॉ० राजेन्द्र प्रसाद की रचना 'मेरी आत्मकथा' है।

70. हिन्दी के किन्हीं दो रेखाचित्रकारों के नाम लिखिए।

उ०– महादेवी वर्मा तथा अमृतराय हिन्दी के दो प्रमुख रेखाचित्रकार हैं।

71. किन्हीं दो संस्मरण लेखकों व उनकी एक-एक कृति का नाम बताइए।

उ०– महादेवी वर्मा तथा भगवतीचरण वर्मा दो प्रमुख संस्मरण लेखक है। इनकी रचनाएँ— 'स्मृति की रेखाएँ' तथा 'वे सात और हम' है।

72. रेखाचित्र व संस्मरण में अंतर स्पष्ट कीजिए।

उ०– रेखाचित्र में शब्दों की कलात्मक रेखाओं के द्वारा किसी व्यक्ति, वस्तु अथवा घटना के बाह्य तथा आंतरिक स्वरूप का शब्द-चित्र इस प्रकार व्यक्त किया जाता है कि पाठक के हृदय में उसका सजीव तथा यथार्थ चित्र अंकित हो जाए। संस्मरण में लेखक के द्वारा अपनी स्मृति के आधार पर किसी व्यक्ति, परिस्थिति अथवा विषय पर लेख लिखा जाता है।

73. जीवनी किसे कहते है?

उ०– किसी महान् व्यक्ति के जीवन की जन्म से मृत्यु-पर्यन्त सभी महत्वपूर्ण घटनाओं को जब कोई लेखक प्रस्तुत करता है, तब वह विधा जीवनी कहलाती है।

74. जीवनी लिखने वाले किसी एक लेखक तथा उसकी रचना का नाम लिखिए।

उ०– जीवनी लिखने वाले लेखक बनारसी दास चतुर्वेदी हैं। इनकी रचना का नाम 'पण्डित सत्यनारायण की जीवनी' है।

75. रामविलास शर्मा किस रूप में प्रसिद्ध हैं?

उ०– रामविलास शर्मा जीवनी लेखक के रूप में प्रसिद्ध हैं।

76. प्रसिद्ध जीवनी-लेखकों के नाम लिखिए।

उ०– प्रसिद्ध जीवनी लेखक हैं— गुलाबराय, रामनाथ सुमन, डॉ० रामविलास शर्मा, अमृतराय आदि।

77. दो डायरी विधा लेखकों के नाम बताइए।

उ०– श्रीराम शर्मा तथा धीरेन्द्र वर्मा दो प्रमुख डायरी विधा लेखक हैं।

78. गद्य-काव्य किसे कहते हैं?

उ०– गद्यात्मक भाषा के माध्यम से किसी भावपूर्ण विषय पर की गई काव्यात्मक अभिव्यक्ति गद्य-काव्य कहलाती है।

79. यात्रावृत्त किसे कहते हैं।

उ०– लेखक अपने द्वारा की गई किसी यात्रा के अनुभव का वर्णन प्रस्तुत करता है, वह यात्रावृत्त कहा जाता है।

80. दो यात्रावृत्तान्त लेखकों व उनकी एक-एक कृति का नाम लिखिए।

उ०– दो यात्रावृत्तान्त लेखक राहुल सांस्कृत्यायन तथा मोहन राकेश हैं। इनकी रचना क्रमश: 'घुमक्कड़ शास्त्र' तथा 'आखरी चट्टान' है।

81. 'ठेले पर हिमालय' किस विधा की रचना है?

उ०– 'ठेले पर हिमालय' यात्रावृत्त विधा की रचना है।

82. भेंटवार्ता अथवा साक्षात्कार से आप क्या समझते हैं?

उ०– किसी से भेंट करके उसका परिचय जानने का प्रयास 'भेंटवार्ता' के अन्तर्गत आता है।

83. हिन्दी के सर्वप्रथम दैनिक समाचार-पत्र का नाम बताइए।

उ०– हिन्दी के सर्वप्रथम दैनिक समाचार-पत्र 'समाचार सुधावर्षण' है।

84. रिपोर्ताज किसे कहते हैं?

उ०– रिपोर्ताज में किसी घटना का वर्णन इस तरह किया जाता है कि पाठक उससे प्रभावित हो जाता है। रिपोर्ताज का हाल इस तरह से लिखा जाता है कि जैसे वह आँखों देखा हो। इसमें महत्वपूर्ण घटनाओं तथा पाठकों की विशिष्टताओं का निजी और सूक्ष्म निरीक्षण के आधार पर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा विवेचन होता है।

85. हिन्दी के दो रिपोर्ताज लेखकों के नाम लिखिए।

उ०– विष्णु प्रभाकर तथा प्रभाकर माचवे दो प्रमुख रिपोर्ताज लेखक हैं।

86. 'हंस' पत्रिका के सम्पादक का नाम बताइए।

उ०– 'हंस' पत्रिका के सम्पादक प्रेमचन्द जी थे।

87. 'कर्मवीर' किस युग की पत्रिका है तथा यह कहाँ से प्रकाशित होती थी?

उ०– 'कर्मवीर' शुक्ल युग की पत्रिका है, यह जबलपुर से प्रकाशित होती थी।

88. 'धर्मयुग' पत्रिका के सम्पादक का नाम बताइए।

उ०– 'धर्मयुग' पत्रिका के सम्पादक धर्मवीर भारती जी हैं।

89. 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक का नाम लिखिए।

उ०– 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी थे।

90. भारतेन्दु जी के प्रमुख नाटकों के नाम बताइए।

उ०– भारतेन्दु जी के प्रमुख नाटक हैं— वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, अँधेर नगरी, भारत दुर्दशा, नीलदेवी आदि।

91. गद्य-काव्य विधा के दो लेखकों के नाम लिखिए।

उ०– गद्य-काव्य विधा के दो प्रमुख लेखक— माखनलाल चतुर्वेदी तथा वियोगी हरि जी हैं।

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 22-24 का अवलोकन कीजिए।

1 राष्ट्र का स्वरूप

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 29 का अवलोकन कीजिए।

लेखक पर आधारित प्रश्न–

1. वासुदेवशरण अग्रवाल का जीवन-परिचय देते हुए उनकी कृतियों का वर्णन कीजिए।

उ०– प्रसिद्ध साहित्यकार वासुदेवशरण अग्रवाल का जन्म खेड़ा ग्राम, जिला मेरठ, उत्तर प्रदेश में सन् 1904 ई० में हुआ था। इनके माता-पिता लखनऊ में रहते थे, वहीं इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। इन्होंने स्नातक की परीक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से पास की तथा लखनऊ विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर, पी.एच.डी. तथा डी.लिट् की उपाधि प्राप्त की। ये लखनऊ स्थित पुरातत्व संग्रहालय में निरीक्षक के पद पर कार्यरत रहे। दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय के अध्यक्ष पद को भी इन्होंने सुशोभित किया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के भारतीय महाविद्यालय में 'पुरातत्व एवं प्राचीन इतिहास विभाग' के अध्यक्ष तथा कुछ समय आचार्य पद को भी इन्होंने सुशोभित किया। इन्होंने अंग्रेजी, पालि व संस्कृत भाषाओं का गहन अध्ययन किया। पालि, प्राकृत, संस्कृत व हिन्दी के कई ग्रन्थों का सम्पादन एवं पाठ शोधन भी किया। इनके द्वारा की गई मलिक मुहम्मद जायसी के 'पदमावत्' की टीका सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इन्होंने अपने प्रमुख विषय 'पुरातत्व' से सम्बन्धित ज्ञान को अपने निबन्धों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी। यह महान् व्यक्तित्व सन् 1967 ई० में सदा के लिए इस नश्वर संसार से विदा हो गया।

कृतियाँ– डॉ० अग्रवाल ने निबंध रचना, शोध, अनुवाद, सम्पादन और सांस्कृतिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है। डॉ० अग्रवाल की प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

निबन्ध संग्रह– भारत की एकता, कला और संस्कृति, वाग्धारा, कल्पवृक्ष, पृथ्वीपुत्र, मातृभूमि, कल्पलता।

सम्पादन– पोद्दार, अभिनन्दन ग्रन्थ।

अनुवाद– हिन्दू सभ्यता।

शोध– पाणिनीकालीन भारत।

सांस्कृतिक अध्ययन– बाणभट्ट के हर्षचरित का सांस्कृतिक अध्ययन, भारत की मौलिक एकता।

समीक्षा– कालिदास के 'मेघदूत' तथा मलिक मुहम्मद जायसी के 'पद्मावत् ' की समीक्षा।

2. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल की भाषा-शैली की विशेषताएँ लिखिए।

उ०– **भाषा-शैली–** वासुदेवशरण अग्रवाल अन्वेषक विद्वान थे; अत: इनकी भाषा-शैली में उत्कृष्ट पाण्डित्य के दर्शन होते हैं। इनकी भाषा शुद्ध और परिष्कृत खड़ी बोली है, जिसमें सुबोधता और स्पष्टता सर्वत्र विद्यमान है। इन्होंने अपनी भाषा में अनेक देशज शब्दों का प्रयोग किया है; जैसे— अनगढ, कोख, चिलकते आदि। इन शब्दों के प्रयोग से भाषा में सरलता और सुबोधता तो उत्पन्न हुई ही है, साथ ही उसमें व्यावहारिक भाषा का जीवन-सौष्ठव भी देखने को मिलता है। वासुदेवशरण अग्रवाल ने प्राय: पुरातत्व, दर्शन आदि को अपने लेखन का विषय बनाया है। विषयों की गहनता और गंभीरता के कारण इनकी भाषा में कहीं-कहीं अप्रचलित और क्लिष्ट शब्द भी आ गए हैं किन्तु भाषा का ऐसा रूप सभी स्थलों पर नहीं है। वासुदेवशरण अग्रवाल की भाषा मे उर्दू, अंग्रेजी आदि की शब्दावली, मुहावरों तथा लोकोक्तियों के प्रयोग प्राय: नहीं हुए हैं। इनकी भाषा में भाव-प्रकाशन की अद्‌भुत क्षमता है। इनकी प्रौढ़, संस्कृतनिष्ठ और प्रांजल भाषा में गंभीरता के साथ सुबोधता, प्रवाह और लालित्य विद्यमान है।

इनकी शैली में इनकी विद्वत्ता और व्यक्तित्व की सहज अभिव्यक्ति हुई है। इन्होंने प्राय: गम्भीर और चिन्तनपूर्ण विषयों पर लेखनी चलाई है; अत: इनकी शैली विचारप्रधान ही है। पुरातात्विक अन्वेषण से सम्बन्धित रचनाओं में इन्होंने गवेषणात्मक

शैली अपनाई है। इसमें वाक्य कहीं-कहीं लंबे हैं; कहीं-कहीं अप्रचलित एवं क्लिष्ट शब्दावली के प्रयोग से दुरूहता भी आ गई है। कठिन और अस्पष्ट प्रसंगों को सरलतापूर्वक स्पष्ट करने के लिए इन्होंने व्याख्यात्मक शैली का प्रयोग किया है। जायसीकृत पद्मावत की टीका इसी शैली में की गई है। अपनी बात को पुष्ट करने के लिए इन्होंने प्राय: उद्धरण शैली का प्रयोग किया है। कभी-कभी ये भावावेश में संस्कृत से भी उद्धरण देने लगते हैं; जैसे- 'माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:।'' वासुदेवशरण जी की इन शैलियों में ओज, माधुर्य और प्रसाद तीनों ही गुण विद्यमान हैं। इनकी शैली में विद्वता, भावात्मकता और कवित्व का अनोखा संगम है।

3. वासुदेवशरण अग्रवाल का हिन्दी साहित्य में स्थान निर्धारित कीजिए।

उ०- पुरातत्व विशेषज्ञ वासुदेवशरण अग्रवाल हिन्दी-साहित्य में पाण्डित्यपूर्ण एवं सुललित निबन्धकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। पुरातत्व व अनुसन्धान के क्षेत्र में इनकी समता कर पाना अत्यन्त कठिन है। इन्हें एक विद्वान टीकाकार एवं साहित्यिक ग्रन्थों के कुशल सम्पादक के रूप में भी जाना जाता है। अपनी विवेचन-पद्धति की मौलिकता एवं विचारशीलता के कारण ये सदैव स्मरणीय रहेंगे।

व्याख्या संबंधी प्रश्न

1. निम्नलिखित गद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए-

(क) भूमि का निर्माण .... आवश्यक धर्म है।

सन्दर्भ- प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्यपुस्तक 'गद्य गरिमा' के 'वासुदेवशरण अग्रवाल' द्वारा लिखित निबन्ध-संग्रह 'पृथिवीपुत्र' से 'राष्ट्र का स्वरूप' नामक निबन्ध से अवतरित है।

प्रसंग- प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने राष्ट्रीयता के विकास हेतु राष्ट्र के प्रथम महत्वपूर्ण तत्व 'भूमि' के रूप, उपयोगिता एवं महिमा के प्रति सचेत रहने तथा भूमि को समृद्ध बनाने पर बल दिया है।

व्याख्या- लेखक का कथन है कि भूमि का निर्माण देवताओं ने किया है इसका अस्तित्व भी अनन्त काल से है। यह हम सबका परम कर्त्तव्य है कि हम इसके रूप-सौन्दर्य और समृद्धि के प्रति सचेष्ट रहें, इसके रूप-सौन्दर्य को खराब होने से बचाए और इसकी समृद्धि के लिए निरन्तर प्रयास करते रहें। हम पृथ्वी के भौतिक स्वरूप से जितने अधिक परिचित होंगे, हमारी राष्ट्रीयता भावना को उतना ही बल मिलेगा। लेखक का कहना है कि पृथ्वी हमारे राष्ट्रीय विचारों को जन्म देने वाली है। यदि हमारी भावनाओं का संबंध हमारी पृथ्वी के साथ गहराई से जुड़ा हुआ नहीं है तो हमारी राष्ट्रीय भावना (राष्ट्रीयता) कुण्ठित हो जाती है; अर्थात् यदि हम अपनी मातृभूमि से प्रेम नहीं करते तो हमारा राष्ट्र-प्रेम केवल आडम्बर है। राष्ट्रीयता का संबंध पृथ्वी से जितना अधिक जुड़ा होगा, हमारे राष्ट्रीय विचार भी उतने ही अधिक दृढ़ होंगे; अत: हमारा कर्त्तव्य है कि हम पृथ्वी के भौतिक स्वरूप, उसकी सुन्दरता, उपयोगिता और महिमा की प्रारंभ से अन्त तक अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करें।

साहित्यिक सौन्दर्य- 1. भाषा-संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली। **2. शैली-**विवेचनात्मक। **3. वाक्य-विन्यास-** सुगठित। **4. शब्द-चयन-**विषय के अनुरूप। **5.** देश प्रेम के लिए अपने देश की भूमि के भौतिक स्वरूप, उसकी सुन्दरता, उपयोगिता और महत्व की जानकारी आवश्यक है।

(ख) इस कर्त्तव्य की पूर्ति .... होना आवश्यक है।

सन्दर्भ- पूर्ववत्

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यावतरण में वासुदेवशरण अग्रवाल जी ने एक जाग्रत राष्ट्र की विशेषता बताते हुए कहा है कि ऐसे राष्ट्र के नागरिकों को अपनी भूमि के बारे में प्रत्येक प्रकार की जानकारी होनी चाहिए।

व्याख्या- लेखक कहता है कि प्रत्येक नागरिक को अपनी जन्मभूमि अथवा मातृभूमि के भौतिक रूप, सौन्दर्य और समृद्धि से परिचित होना चाहिए। यह उसका श्रेष्ठ कर्त्तव्य है। इसके लिए सैकड़ों और हजारों प्रकार के प्रयत्न भी करने पड़े तो सहर्ष करने चाहिए। अपने देश की धरती से जिस भी चीज का संबंध हो, चाहे आकाश का, समुद्र का, भूगोल का; उसका सारा ज्ञान जागरूक नागरिक को होना चाहिए। अपने देश की धरती के प्रत्येक अंग का ही नहीं, वरन् अंगों के अंगों का भी ज्ञान होना आवश्यक है; क्योंकि राष्ट्रीयता की जड़ें जन्मभूमि से जितनी गहरी होंगी, उतने ही राष्ट्रीय भावों के अंकुर पल्लवित होंगे। इसलिए मातृभूमि की अधिक-से-अधिक जानकारी की योजनाएँ गाँव-गाँव तथा नगर-नगर में बनायी जानी चाहिए।

साहित्यिक सौन्दर्य- 1. भाषा-परिष्कृत साहित्यिक हिन्दी। **2. भाषा-**भावात्मक। **3. वाक्य-विन्यास-**सुगठित। **4. शब्द-चयन-**विषय के अनुरूप। **5. विचार-सौन्दर्य-**राष्ट्र की भूमि का सांगोपांग अध्ययन जाग्रत राष्ट्र की पहली विशेषता बतायी गयी है।

(ग) धरती माता की कोख में .... भी आवश्यक है।

सन्दर्भ- पूर्ववत्

प्रसंग- प्रस्तुत गद्यावतरण में लेखक ने राष्ट्र के निर्माण के प्रथम तत्व 'भूमि' अर्थात् पृथ्वी का महत्व प्रतिपादित किया है। उनके

अनुसार भूमि के पार्थिव स्वरूप के प्रति हम जितने अधिक जाग्रत होंगे, हमारी राष्ट्रीयता उतनी ही बलवती हो सकेगी और हमारी आर्थिक उन्नति का मार्ग भी उतना ही प्रशस्त होगा।

व्याख्या– हमारी धरती के गर्भ में असीम मात्रा में मूल्यवान् खजाना भरा हुआ है। यह पृथ्वी मूल्यवान् वस्तुओं का विशाल कोष है। अनेक प्रकार के मूल्यवान् रत्नों(वसुओं) को अपने में धारण करने के कारण ही इस धरती को वसुन्धरा कहा जाता है। इस तथ्य से हम सभी को परिचित होना चाहिए; क्योंकि यही तथ्य हमें राष्ट्रीय भावना से जोड़ता है और आर्थिक रूप से सम्पन्न भी बनाता है। हजारों-लाखों वर्षों से, जब से इस धरती का निर्माण हुआ है, इसके गर्भ में विभिन्न प्रकार की धातुएँ पोषित होती रही हैं। हमारे पहाड़ों से बड़ी-बड़ी नदियाँ दिन-रात बहती रहती हैं। इन नदियों के साथ पहाड़ों की उपजाऊ मिट्टी भी बहकर आती है। धरती के विस्तृत वक्षस्थल पर बहनेवाली इन नदियों ने अपनी मिट्टी से धरती को सजाया-सँवारा है और इसे उपजाऊ बनाया है। हमारे देश के भावी आर्थिक विकास की दृष्टि से इन सब तथ्यों का परीक्षण परम आवश्यक है। हमारे वैज्ञानिक, भूगोलविद् तथा भूगर्भवेत्ता धरती के रहस्यों की खोज में निरन्तर लगे रहते हैं, जिससे वे धरती के गर्भ में छुपे हुए खजाने की खोज कर सकें।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. धरती को वसुन्धरा इसलिए कहा जाता है; क्योंकि वह अनेक प्रकार के रत्नों (वसुओं) को धारण करनेवाली है। **2.** अपने देश के भावी आर्थिक विकास के लिए धरती के रहस्यों की खोज परम आवश्यक है। **3. भाषा–** परिष्कृत और परिमार्जित। **4. शैली–** गम्भीर विवेचनात्मक। **5. वाक्य-विन्यास–** सुगठित, **6. शब्द-चयन–** विषय के अनुरूप।

(घ) विज्ञान और उद्यम .... किया जा सकता है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने विज्ञान और उद्यम के समन्वय के द्वारा ही राष्ट्र के विकास पर प्रकाश डाला है। लेखक कहता है कि किसी राष्ट्र के स्वरूप को नवीनता प्रदान करने के लिए विज्ञान और उद्यम दोनों का एक साथ आगे बढ़ना आवश्यक है।

व्याख्या– प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का कहना है कि विज्ञान के द्वारा उद्योगों का विकास संभव हो सकता है। किसी भी राष्ट्र का भौतिक स्वरूप अर्थात् अर्थव्यवस्था की रीढ़ उद्योग ही होते हैं, जिनके विकास से ही देश का विकास संभव होता है। अत: हमें देश के सम्यक् निर्माण के लिए विज्ञान का सहारा लेकर उद्योगों को विकसित करना होगा। इस कार्य को करने के लिए प्रसन्नता और उत्साह के साथ-साथ अथक परिश्रम की भी आवश्यकता होती है। इसे भी नित्य प्रति करना होगा न कि एक दिन करके ही अपने कार्य की इति श्री मान ली जाए। यह कार्य किसी एक व्यक्ति के द्वारा पूरा होना भी संभव नहीं है। इसे करने के लिए सम्मत राष्ट्रवासियों का सहयोग होना आवश्यक है। यदि इस कार्य को करने में एक हाथ भी कमजोर रहा है और वह सहायक न बना तो राष्ट्र की समृद्धि भी उतने ही अंशों में कम हो जाएगी और राष्ट्र की समग्र समृद्धि प्राप्त नहीं की जा सकेगी। इससे मातृभूमि का स्वरूप भी संपूर्ण रूप में विकसित न हो सकेगा। अत: सभी राष्ट्रवासियों से यह अपेक्षा है कि वे सभी मिलकर राष्ट्र के निर्माण में सहयोग करें।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. भाषा– सरल एवं सुबोध संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली। **2. शैली–** व्याख्यानात्मक एवं विवेचनात्मक। **3.** उद्योगों के विकास के लिए विज्ञान के प्रयोग को आवश्यक बताया गया है। **4.** लेखक द्वारा राष्ट्र के निर्माण में सभी के सहयोग की अपेक्षा की गयी है।

(ङ) मातृभूमि पर निवास .... उत्पन्न होते हैं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश में राष्ट्र के दूसरे महत्वपूर्ण तत्व 'जन' के सन्दर्भ में लेखक ने अपने विचार व्यक्त किए हैं।

व्याख्या– राष्ट्र के लिए आवश्यक तत्वों के अन्तर्गत 'भूमि' के उपरान्त दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है— उस भूमि पर रहने वाला 'जन' अर्थात् मनुष्य। जो भूमि जनविहीन हो, उसे राष्ट्र नहीं माना जा सकता। राष्ट्र के स्वरूप का निर्माण; पृथ्वी और जन दोनों की विद्यमानता की स्थिति में ही संभव है। पृथ्वी पर 'जन' का निवास होता है, तभी पृथ्वी मातृभूमि कहलाती है। जब तक किसी भू-भाग में निवास करनेवाले मनुष्य वहाँ की भूमि को अपनी सच्ची माता और स्वयं को उस भूमि का पुत्र नहीं मानते, तब तक राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न नहीं हो सकती। जब हम अपने देश को अपनी माता के रूप में अनुभूत करने लगते हैं, तभी हमारे मन में इस प्रकार के भाव उत्पन्न हो सकते हैं, जिनके आधार पर राष्ट्र का निर्माण करने की इच्छा उत्पन्न होती है। इसके अभाव में राष्ट्र का निर्माण कर पाना संभव नहीं है।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. राष्ट्रीयता की भावना के विकास और राष्ट्र के निर्माण हेतु अपनी भूमि अथवा अपने देश को मातृभूमि के रूप में मानना आवश्यक सिद्ध किया गया है। **2. भाषा–** संस्कृत की तत्सम शब्दावली से युक्त परिनिष्ठित खड़ी बोली। **3. शैली–** विवेचनात्मक। **4. शब्द-चयन–** विषय-वस्तु के अनुरूप, **5. वाक्य-विन्यास–** सुगठित, **6. भाव-सौन्दर्य–** मनुष्य और पृथ्वी का समन्वित रूप ही पूजनीय और वन्दनीय है, दोनों का पृथक्-पृथक् कोई महत्व नहीं, **7. भव-साम्य–**

मातृभूमि से विलग व्यक्ति की कैसी दशा होती है, यह भाव कविवर सुन्दरदास की इस पंक्ति में स्पष्ट हो जाता है— ''नीर बिना मीन दु:खी छीर बिना शिशु जैसे।''

(च) पृथिवी पर निवास .... संचालित होना चाहिए।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने इस बात पर बल दिया कि धरती माता के लिए सभी प्राणी समान हैं और सभी को समान अधिकार प्राप्त हैं। उनमें ऊँच-नीच का भेदभाव नहीं होना चाहिए।

व्याख्या– लेखक वासुदेवशरण अग्रवाल जी कहते हैं कि मातृभूमि की सीमाएँ अनन्त हैं। इसके निवासी अनेक नगरों, जनपदों, शहरों, गाँवों, जंगलों और पर्वतों में बसे हुए हैं। यद्यपि अनेक स्थानों पर रहनेवाले ये व्यक्ति अलग-अलग भाषाएँ बालते हैं, अलग-अलग धर्मों को मानते हैं; तथापि ये एक ही धरती माता के पुत्र हैं और इस कारण ये सब पारस्परिक प्रेम, सहयोग और बन्धुता के साथ रहते हैं। भाषा और धर्म अथवा रीति और रिवाज इनकी एकता में बाधा उत्पन्न नहीं करते। विकसित, अर्द्ध-विकसित अथवा अविकसित सभ्यता तथा उच्च-निम्न अथवा सामान्य रहन-सहन के आधार पर पृथ्वी के विभिन्न भागों में रहनेवाले लोग एक-दूसरे से आगे-पीछे हो सकते हैं परन्तु उनका पृथ्वी से जो संबंध, लगाव अथवा मातृ भावना है, उसमें कोई अन्तर नहीं होता, सब अपनी-अपनी जन्मभूमि को एकसमान भाव से चाहते हैं। जब सब लोगों में मातृभूमि के प्रति समान प्रेम-भावना है और पृथ्वी सबके लिए एकसमान रूप से अन्न-जल प्रदान करती है, तब सभी को एकसमान रूप से अपनी प्रगति एवं उन्नति करने के अवसर मिलने ही चाहिए उनमें किसी प्रकार का भेदभाव नहीं होना चाहिए। सबको एकसमान अवसर और अधिकार प्रदान करना ही समन्वय का मार्ग है, जिसका अनुसरण प्रत्येक देश-काल में किया जाना चाहिए। किसी भी व्यक्ति को पीछे छोड़कर कोई भी राज्य प्रगति के मार्ग पर आगे नहीं बढ़ सकता। इसी प्रकार किसी भी वर्ग को अथवा किसी भी क्षेत्र को पिछड़ा हुआ छोड़कर संपूर्ण राष्ट्र प्रगति नहीं कर सकता; अत: राष्ट्र की उन्नति के लिए उसके प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक सम्प्रदाय, प्रत्येक जाति और प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान रखना होगा। यदि देश के किसी एक भाग में गरीबी, अशिक्षा अथवा पिछड़ापन है तो उसका प्रभाव केवल उसी क्षेत्र पर ही नहीं पड़ेगा, अपितु संपूर्ण राष्ट्र उससे प्रभावित होगा। इसलिए समस्त देशवासियों का यह पावन कर्त्तव्य है कि वे अपने निजी स्वार्थों को त्यागकर तथा संकुचित दायरे से निकलकर उदार एवं व्यापक दृष्टिकोण अपनाएँ। इस प्रकार का व्यवहार किए जाने पर ही राष्ट्र की उन्नति संभव है।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. लेखक ने अपने इस दृष्टिकोण को पुष्ट किया है कि धरती पर जन्म लेनेवाला प्रत्येक प्राणी सामान है; अत: उनमें ऊँच-नीच का भाव उत्पन्न करना अनुचित है। **2.** लेखक ने 'अनेकता में एकता' की भावना पर बल दिया है। **3. भाषा–** परिष्कृत और परिमार्जित। **4. शैली–** गंभीर विवेचनात्मक। **5. भावसाम्य–** राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' ने भी राष्ट्र एवं समाज की प्रगति के लिए इसी प्रकार की आवश्यकता पर बल देते हुए लिखा है—

श्रेय उसका, बुद्धि पर चैतन्य उर की जीत,
श्रेय मानव की असीमित मानवों से प्रीत।
एक नर से दूसरे के बीच का व्यवधान,
तोड़ दे जो बस, वहीं ज्ञानी वही विद्वान।

(छ) जन का प्रवाह .... करना होता है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस अवतरण में राष्ट्र के दूसरे अनिवार्य तत्व 'जन' पर विचार किया गया है। लेखक ने स्पष्ट किया है कि राष्ट्र के निवासियों की जीवन-शृंखला कभी समाप्त नहीं होती और जनजीवन की तुलना नदी के प्रवाह से की है।

व्याख्या– लेखक का कहना है कि किसी राष्ट्र में उसके निवासियों के आवागमन का क्रम कभी टूटता नहीं है, सदा चलता रहता है। एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी के क्रम से लोग राष्ट्र में सदा निवास करते आए हैं। ऐसा कभी नहीं हुआ, जब राष्ट्र में मनुष्य न रहते हों। हजारों वर्षों से यही परम्परा चली आ रही है और राष्ट्र के निवासी अपने को राष्ट्र से एक रूप करते आए है; अर्थात् अपने को राष्ट्र के साथ एक होने का अनुभव करते आए हैं। जब तक आकाश में सूर्य निकलता रहेगा और अपनी किरणों से संसार को प्रकाशित करता रहेगा, तब तक राष्ट्र में मनुष्यों का निवास भी बना रहेगा। इतिहास में अनेक परिवर्तन आए, राष्ट्रों का उत्थान भी हुआ और पतन भी; किन्तु राष्ट्र में नागरिक सदैव रहते चले आए है तथा वे प्रत्येक अनुकूल अथवा प्रतिकूल परिस्थिति की नयी शक्ति, उत्साह और साहस के साथ सदा मुकाबला करते रहे हैं। राष्ट्र के निवासियों का जीवन-क्रम नदी के प्रवाह के समान अनवरत है। जैसे नदी में ऊँची-ऊँची लहरें उठती और गिरती रहती हैं, परन्तु नयी उमंग के साथ उनका प्रवाह निरन्तर आगे ही बढ़ता रहता है; उसी प्रकार राष्ट्रीय जन के जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव आते रहते हैं, परन्तु वह उन संघर्षों को झेलता हुआ नए उत्साह के साथ उन्नति के मार्ग पर सदैव अग्रसर होता रहता है। जिस प्रकार नदी का प्रवाह निरन्तर बना रहकर भी बीच-बीच में डेल्टा छोड़ता जाता है, उसी प्रकार नागरिक भी परिश्रम और कर्त्तव्यपरायणता से अपने राष्ट्र के विकास-चिह्न छोड़ते जाते हैं। अत: नागरिकों को सदा पूरी निष्ठा और परिश्रम से राष्ट्र की उन्नति में तत्पर रहना चाहिए।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. भाषा– शुद्ध साहित्यिक, अलंकृत एवं परिमार्जित खड़ी बोली। **2. शैली–** विवेचनात्मक और भावात्मक। **3. वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **4. शब्द-चयन–** विषय-वस्तु के अनुरूप। **5. अलंकार–** उपमा अलंकार के प्रयोग ने भाषा के सौन्दर्य को बढ़ा दिया है। **6.** जन का जीवन सदा नदी की तरह गतिशील रहता है, जो सदा राष्ट्र से आत्मीयता बनाए रखता है।

(ज) राष्ट्र का तीसरा .... पर निर्भर है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यावतरण में लेखक ने संस्कृति की व्याख्या करते हुए राष्ट्रीय संस्कृति के स्वरूप को परिभाषित किया है।

व्याख्या– भूमि और जन के पश्चात् लेखक राष्ट्र के तीसरे अंग संस्कृति का वर्णन करते हुए कहता है कि मानव-सभ्यता का ही दूसरा नाम संस्कृति है और इसका निर्माण मनुष्य द्वारा अनेक युगों की दीर्घावधि में किया गया है। यह उनके जीवन का उसी प्रकार से अभिन्न और अनिवार्य अंग है, जिस प्रकार से जीवन के लिए श्वास-प्रश्वास अनिवार्य है। वस्तुत: संस्कृति मनुष्य का मस्तिष्क है और मनुष्य के जीवन में मस्तिष्क सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है; क्योंकि मानव शरीर का संचालन और नियन्त्रण उसी से होता है। मस्तिष्क की मृत्यु होने पर व्यक्ति को मृत मान लिया जाता है, भले ही उसका संपूर्ण शरीर भली-भाँति कार्य कर रहा हो और जीवित हो। जिस प्रकार से मस्तिष्क से रहित धड़ को व्यक्ति नहीं कहा जा सकता है अर्थात् मस्तिष्क के बिना मनुष्य की कल्पना नहीं की जा सकती, उसी प्रकार संस्कृति के बिना भी मानव-जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। इसलिए संस्कृति के विकास और उसकी उन्नति में ही किसी राष्ट्र का विकास, उन्नति, समृद्धि और वृद्धि निहित है। इस बात में कोई संदेह नहीं कि राष्ट्र के संपूर्ण स्वरूप में संस्कृति का भी उतना ही महत्वपूर्ण स्थान है, जितना कि भूमि और जन का होता है। अर्थात् भूमि और जन के पश्चात् राष्ट्र का सबसे महत्वपूर्ण तत्व उसकी संस्कृति है। किसी राष्ट्र के अस्तित्व में संस्कृति के महत्व को इस बात से समझा जा सकता है कि यदि किसी राष्ट्र की भूमि और जन को संस्कृति से अलग कर दिया जाए तो एक समृद्धिशाली राष्ट्र को मिटते हुए देर न लगेगी। संस्कृति और मनुष्य एक-दूसरे के पूरक होने के साथ-साथ एक-दूसरे के लिए अनिवार्य भी हैं। एक के न रहने पर दूसरे का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। इसीलिए तो कहा जाता है कि जीवनरूपी वृक्ष का फूल भी संस्कृति है; अर्थात् किसी समाज के ज्ञान और उस ज्ञान के आलोक में किए गए कर्त्तव्यों के सम्मिश्रण से जो जीवन-शैली उभरती है या सभ्यता विकसित होती है वही संस्कृति है। समाज ने अपने ज्ञान के आधार पर जो नीति या जीवन का उद्देश्य निर्धारित किया है, उस उद्देश्य की दिशा में उसके द्वारा सम्पन्न किया गया उसका कर्त्तव्य; उसके रहन-सहन, शिक्षा, सामाजिक व्यवस्था आदि को प्रभावित करता है और इसे ही संस्कृति कहा जाता है। प्रत्येक राष्ट्र में अनेक जातियाँ रहती हैं। उन जातियों की अपनी-अपनी विशेषताएँ होती हैं। अपनी इन विशेषताओं के आधार पर ही प्रत्येक जाति अपनी संस्कृति का निर्धारण करती है और उन विशेषताओं से प्रेरित होकर अपनी संस्कृति को विकसित करने का प्रयास करती है। परिणामस्वरूप विभिन्न जातियों की विभिन्न भावनाओं के कारण विभिन्न प्रकार की संस्कृतियाँ विकसित हो जाती हैं; किन्तु राष्ट्र की उन्नति के लिए उन विभिन्न संस्कृतियों के मूल में समन्वय, पारस्परिक सहनशीलता तथा सहयोग की भावना निहित रहती है।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. संस्कृति की भावनात्मक व्याख्या करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि किसी भी देश की उन्नति उसकी संस्कृति पर ही निर्भर करती है। **2.** किसी देश की विभिन्न जातियों में विभिन्न प्रकार की संस्कृतियाँ विकसित हो जाती हैं, किन्तु समन्वय और सहिष्णुता का भाव उन्हें एक सूत्र में बाँध देता है। **3. भाषा–** परिष्कृत और परिमार्जित। **4. शैली–** विवेचनात्मक और भावात्मक। **5. वाक्य-विन्यास–** सुगठित, **6. शब्द-चयन–** विषय-वस्तु के अनुरूप।

(झ) साहित्य, कला .... स्वास्थ्यकर है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– लेखक ने यहाँ स्पष्ट किया है कि संस्कृति जीवन को आनन्द प्रदान करती है। उस आनन्द को मानव विविध रूपों में प्रकट करता है। संस्कृति मनुष्य के आचरण में उदारता की भावना उत्पन्न करती है, जिससे राष्ट्र को बल मिलता है।

व्याख्या– लेखक कहते हैं कि एक ही राष्ट्र के भीतर अनेकानेक उपसंस्कृतियाँ फलती-फूलती हैं। इन संस्कृतियों के अनुयायी नाना प्रकार के आमोद-प्रमोदों में अपने हृदय के उल्लास को प्रकट किया करते हैं। साहित्य, कला, नृत्य, गीत इत्यादि संस्कृति के विविध अंग है। इनका प्रस्तुतीकरण उस आनन्द की भावना को व्यक्त करने के लिए किया जाता है जो संपूर्ण विश्व की आत्माओं में विद्यमान है। यदि संस्कृति के इन अंगों के बाहरी स्वरूप को देखें तो ये सभी भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं। भारत का ही उदाहरण लें तो यहाँ के प्रत्येक प्रदेश का भिन्न साहित्य है, भिन्न संगीत है, भिन्न नृत्य-प्रणालियाँ और भिन्न-भिन्न प्रकार के उत्सव तथा त्योहार हैं। इस बाहरी भिन्नता के रहते हुए भी भारतीय संस्कृति में एक आन्तरिक एकता है। एक उदार हृदय व्यक्ति इन बाहरी भेदों पर ध्यान नहीं देता, वह तो भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के माध्यम से एक ही आनन्द-भावना को प्रकट होते देखता है और इस आनन्द का स्वयं भी लाभ होता है। राष्ट्र के मंगल और स्थायित्व के लिए इसी प्रकार पूर्ण भावना की उदारता होनी चाहिए, तभी विविध जन-समूहों से बना राष्ट्र स्वस्थ और सुखी रह सकता है।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. भाषा– सरल एवं सुबोध। **2. शैली–** विवेचनात्मक। **3. शब्द-चयन–** विषय-वस्तु के अनुरूप। **4. वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **5.** प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने विविध संस्कृति वाले राष्ट्र की एकसूत्रता और उसके एकीकृत स्वरूप पर प्रकाश डाला है।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक वाक्यों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) राष्ट्रीयता की जड़ें पृथिवी में जितनी गहरी होंगी, उतना ही राष्ट्रीय भावों का अंकुर पल्लवित होगा।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'गद्य गरिमा' में संकलित 'राष्ट्र का स्वरूप' नामक निबन्ध से अवतरित है। इसके लेखक 'वासुदेवशरण अग्रवाल' जी हैं।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक वाक्य में लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि सच्ची राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न हो सकती है, जब हम भूमि के प्रति भावात्मक तादात्मय का अनुभव करने लगेंगे।

व्याख्या– लेखक का कथन है कि हम पृथ्वी के भौतिक स्वरूप से जितने अधिक परिचित होंगे, हमारी राष्ट्रीय भावना को उतना ही बल मिलेगा। लेखक का मानना है कि पृथ्वी ही हमारे राष्ट्रीय विचारों को जन्म देने वाली है। यदि हमारा संबंध हमारी पृथ्वी के साथ नहीं जुड़ा है तो हमारी राष्ट्रीय भावना निराधार है। भाव यह है कि यदि हम जन्मभूमि से प्रेम नहीं करते हैं तो हमारा राष्ट्र के प्रति प्रेम केवल दिखावा है, आडम्बर है। अपने देश की धरती से यदि हमें स्नेह है, तभी हम राष्ट्रप्रेमी हो सकते हैं। अत: हमारा कर्त्तव्य है कि हम पृथ्वी के भौतिक स्वरूप, उसकी सुन्दरता, उपयोगिता और महिमा की प्रारम्भ से अन्त तक अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करें।

(ख) पृथ्वी से जिस वस्तु का संबंध है, चाहे वह छोटी हो या बड़ी, उसका कुशल-प्रश्न पूछने के लिए हमें कमर कसनी चाहिए।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में लेखक ने पृथ्वी के विषय में विचार प्रकट किया गया है।

व्याख्या– राष्ट्र का प्रथम अंग पृथ्वी है। राष्ट्रीय भावों के विकास के लिए पृथ्वी के भौतिक स्वरूप की पूरी जानकारी, उसकी सुन्दरता और उपयोगिता का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। इसके प्रति अपने कर्त्तव्यों का भी अनेक प्रकार से पालन होना चाहिए। ज्ञान पृथ्वी का ही नहीं, पृथ्वी से सम्बन्धित वस्तुओं का भी होना चाहिए, क्योंकि पृथ्वी से सम्बन्धित सभी छोटी-बड़ी वस्तुएँ इस पार्थिव जगत् का अंग हैं। उन सबके भौतिक स्वरूप, सौन्दर्य तथा उपयोगिता का परिचय प्राप्त करने के लिए हमें तैयार होना चाहिए।

(ग) यह प्रणाम-भाव ही भूमि और जन का दृढ़ बन्धन है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक वाक्य में लेखक ने जन्मभूमि के प्रति मनुष्य की स्वाभाविक श्रद्धा को व्यक्त किया है।

व्याख्या– विद्वान् लेखक का मत है कि अपनी धरती के प्रति आदर-भाव; व्यक्ति और धरती के सम्बन्ध को दृढ़ करता है तथा पृथ्वी और मनुष्य का दृढ़ सम्बन्ध राष्ट्र को पुष्ट और विकसित करता है। आदर-भाव की इस सुदृढ़ दीवार पर ही राष्ट्र के भवन का निर्माण किया जा सकता है। आदर की यह भावना एक दृढ़ चट्टान के समान है। इस सुदृढ़ चट्टान पर टिककर ही राष्ट्र का जीवन चिरस्थायी हो सकता है।

(घ) जन का सततवाही जीवन नदी के प्रवाह की तरह है, जिसमें कर्म और श्रम के द्वारा उत्थान के अनेक घाटों का निर्माण करना होता है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में चिन्तन की गहराई तथा भावोद्रेक की तरलता व्यंजित हो रही है।

व्याख्या– लेखक कहता है जिस प्रकार नदी का प्रवाह कभी रुकता नहीं वरन् निरन्तर आगे की ओर बहता रहता है, उसी प्रकार मनुष्य का जीवन भी है। वह भी सदा गतिमान रहता है और आगे की ओर बढ़ता जाता है, रुकने का कहीं नाम नहीं लेता। इस जीवन-प्रवाह को ऊँचा उठाने के लिए मनुष्य को कर्म और निरन्तर परिश्रम करना होता है। मनुष्य कठोर परिश्रम और महान् कार्यों के द्वारा उत्थान के लिए ही संघर्ष करता है।

(ङ) बिना संस्कृति के जन की कल्पना कबंध मात्र है; संस्कृति ही जन का मस्तिष्क है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– राष्ट्र का स्वरूप निर्धारित करते हुए लेखक ने संस्कृति को राष्ट्र का मस्तिष्क कहा है।

व्याख्या– युगों-युगों से प्रचलित रीति-रिवाज और विश्वास हमारी संस्कृति का अमिट अंग बन जाते हैं। कोई भी राष्ट्र अपने दीर्घकालीन चिन्तन और मनन के पश्चात् जिन भावों को स्थायी रूप से ग्रहण कर लेता है, उन्हें ही संस्कृति कहा जाता है। बिना संस्कृति के मानव की कल्पना ही नहीं की जा सकती। संस्कृति से रहित मानव को उसी प्रकार समझना चाहिए, जैसे बिना सिर

के धड़, जो निष्क्रिय एवं अनुपयोगी होता है। वह न तो विचार कर सकता है और न ही अपने विचारों को अभिव्यक्त करने में सक्षम हो सकता है। संस्कृति ही हमें चिन्तन-मनन के अवसर प्रदान करती है। इसीलिए संस्कृति को व्यक्ति का मस्तिष्क कहा जाता है।

(च) जीवन के विटप का पुष्प संस्कृति है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– राष्ट्र के स्वरूप निर्धारण में लेखक ने यहाँ 'संस्कृति' के स्वरूप को स्पष्ट किया है।

व्याख्या– कोई वृक्ष कितना ही सुन्दर क्यों न हो, यदि उस पर पुष्प नहीं आते तो वह उतने सम्मान का अधिकारी नहीं होता, जितना सम्मान पुष्प से परिपूर्ण वृक्ष का होता है। जिस प्रकार किसी भी वृक्ष का सारा सौन्दर्य, सारा गौरव और सारा मधुरस उसके पुष्प में विद्यमान रहता है, उसी प्रकार राष्ट्र के जीवन का चिन्तन, मनन एवं सौन्दर्य-बोध उसकी संस्कृति में ही निवास करता है। इसीलिए यही कहा जा सकता है कि जीवन के विटप अथवा राष्ट्ररूपी वृक्ष का पुष्प उसकी संस्कृति ही है।

(छ) ज्ञान और कर्म दोनों के पारस्परिक प्रकाश की संज्ञा संस्कृति है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक वाक्य में यह स्पष्ट किया गया है कि ज्ञान और कर्म के उपयुक्त समन्वय से ही संस्कृति का उदय एवं विकास होता है।

व्याख्या– विद्वान लेखक ने कहा है कि राष्ट्र का स्वरूप निर्धारित करने वाले तीन तत्वों— भूमि, जन और संस्कृति— में एक तत्व संस्कृति भी हैं इसमें ज्ञान और कर्म का समन्वित प्रकाश होता है। तात्पर्य यह है कि भूमि पर बसने वाले मनुष्य ने ज्ञान के क्षेत्र में जो रचा है, वही राष्ट्रीय संस्कृति होती है और उसका आधार आपसी सहिष्णुता और समन्वय की भावना है। इसी दृष्टि से लेखक ने ज्ञान और कर्म के समन्वय को संस्कृति के रूप में परिभाषित किया है।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न–

1. 'राष्ट्र का स्वरूप' पाठ का सारांश लिखिए।

उ०– 'राष्ट्र का स्वरूप' निबन्ध लेखक वासुदेवशरण अग्रवाल जी के निबन्ध-संग्रह 'पृथिवीपुत्र' से अवतरित है। इस निबन्ध में लेखक ने तीन तत्वों-भूमि, जन और संस्कृति पर प्रकाश डालते हुए बताया है कि राष्ट्र का स्वरूप इन्हीं तीन तत्वों से निर्मित होता है। सबसे पहले लेखक ने भूमि तत्व का वर्णन किया है, जिसका निर्माण देवताओं के द्वारा किया गया है और इसका अस्तित्व अनन्तकाल से है। लेखक कहते हैं कि भूमि के स्वरूप को बचाए रखने के लिए मनुष्य को जागरूक रहना होगा और इसकी समृद्धि के लिए निरन्तर प्रयास करने होंगे। लेखक कहते हैं कि राष्ट्रीयता का विचार पृथ्वी से जितना अधिक जुड़ा होगा, हमारे राष्ट्रीय विचार भी उतने ही अधिक सुदृढ़ होगे, इसलिए हमारा कर्त्तव्य है कि हम पृथ्वी के बारे में प्रारम्भ से अन्त तक अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करें। यही मनुष्य का श्रेष्ठ कर्त्तव्य है। इसके लिए सैकड़ों और हजारों प्रकार के प्रयत्न भी करने पड़े तो सहर्ष करने चाहिए। प्रत्येक मनुष्य को अपने देश की धरती के प्रत्येक अंग का ही नहीं, वरन् अंगों के अंगों का भी ज्ञान होना चाहिए, क्योंकि राष्ट्रीयता की जड़े जन्मभूमि में जितनी गहरी होंगी, उतने ही राष्ट्रीय भावों के अंकुर पल्लवित होंगे। मानव को अपने देश की धरती की कोख में भरी अमूल्य निधियों का ज्ञान आवश्यक है इन्हीं अमूल्य निधियों के कारण ही पृथ्वी को वसुंधरा कहते है, इन निधियों से हमारा प्रगाढ़ परिचय होना चाहिए। क्योंकि इन निधियों के सम्पूर्ण ज्ञान होने से ही हमारा भावी आर्थिक विकास सम्भव है। लेखक का कथन है कि देश के नागरिकों को पृथ्वी और आकाश के मध्य स्थित नक्षत्रों, गैसों तथा वस्तुओं का ज्ञान, समुद्र में स्थित जलचरों, खनिजों तथा रत्नों, का ज्ञान और पृथ्वी के गर्भ में छुपी अपार खजिन-सम्पदा की जानकारियों पर आधारित ज्ञान भी राष्ट्रीय चेतना को सुदृढ़ बनाने के लिए आवश्यक है। वासुदेवशरण अग्रवाल जी का कहना है कि विज्ञान के द्वारा उद्योगों का विकास सम्भव है। उद्योग ही किसी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था की रीढ़ होते हैं। इसलिए राष्ट्र को सुदृढ़ बनाने के लिए सभी राष्ट्रवासियों से यह अपेक्षा है कि वे सभी मिलकर राष्ट्र के निर्माण में सहयोग करें। लेखक दूसरे तत्व जन का वर्णन करते हुए कहते हैं कि कोई भू-भाग तब तक राष्ट्र नहीं कहला सकता जब तक उस पर जनसमुदाय निवास न करता हो। भूमि और जनसमुदाय दोनों मिलकर ही राष्ट्र का निर्माण करते हैं। जनसमुदाय होने के कारण ही भूमि मातृभूमि की संज्ञा प्राप्त करती है और पृथ्वी द्वारा माता-पिता की तरह मनुष्य-समुदाय का पालन करने के कारण ही वह पृथ्वी पुत्र कहलाता है। प्रत्येक मनुष्य के हृदय में ये भाव उत्पन्न होने चाहिए, यही राष्ट्रीयता की कुंजी है। जब यह भाव मनुष्य के हृदय में उत्पन्न हो जाते हैं, तब राष्ट्र का स्वार्गीण विकास सम्भव हो पाता है। लेखक का मानना है कि मनुष्य के हृदय में पृथ्वी के प्रति सच्ची श्रद्धा के भाव जाग्रत होने चाहिए, ये सच्ची शृद्धा रूपी भाव ही उसका पृथ्वी से सम्बन्ध दृढ़ करते हैं। इस विश्वास रूपी दीवार पर ही राष्ट्र रूपी भवन का निर्माण होता है और एक लम्बे समय तक अपना अस्तित्व कायम रखने में समर्थ होता है। लेखक कहते हैं कि माता अपने सभी पुत्रों को बिना किसी भेदभाव के प्रेम करती है उसी तरह पृथ्वी माता के लिए भी उस पर बसने वाले सभी मनुष्य बराबर है उनमें कोई ऊँच-नीच तथा भेदभाव नहीं होता है। सबके प्रति उसमें एक जैसा स्नेह का स्रोत प्रवाहित होता है।

वह सबको समान भाव से अपना अन्न, जल और वायु प्रदान करती है। पृथ्वी पर स्थित नगरों, जनपदों, पुरों, गाँवों, जंगलों और पर्वतों पर अनेक प्रकार के लोग निवास करते हैं। एक ही माता के पुत्र होने के कारण विविध भाषाएँ, धर्म, रीति-रिवाज इन्हें अलग नहीं कर पाते, क्योंकि पृथ्वी के प्रति मातृभावना इनके प्रेम को कभी खण्डित नहीं होने देती।

लेखक कहता है कि राष्ट्र के निर्माण के लिए तीसरा आवश्यक तत्व उस राष्ट्र की संस्कृति है। जिसका निर्माण मनुष्यों के द्वारा अनेक युगों में किया गया है। वही उसके जीवन की श्वास-प्रश्वास है। बिना संस्कृति के जन की कल्पना कबंध मात्र है। संस्कृति मानव जीवन का अभिन्न और अनिवार्य अंग है, वास्तव में संस्कृति मनुष्य का मस्तिष्क है जिस प्रकार मस्तिष्क के बिना मानव-जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती उसी प्रकार संस्कृति के बिना भी मानव-जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती।

इसलिए संस्कृति के विकास और उसकी उन्नति में ही किसी राष्ट्र का विकास, उन्नति और समृद्धि निहित है। इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि राष्ट्र के सम्पूर्ण स्वरूप में संस्कृति का भी उतना ही महत्वपूर्ण स्थान है जितना कि भूमि और जन का होता है। किसी राष्ट्र के अस्तितव में संस्कृति के महत्व को इस बात से समझा जा सकता है कि यदि किसी राष्ट्र की भूमि और जन को संस्कृति से अलग कर दिया जाए तो एक समृद्ध राष्ट्र को समाप्त होते देर न लगेगी। यह संस्कृति ही जीवनरूपी वृक्ष का फूल है। जिस प्रकार वृक्ष का सौन्दर्य पुष्प उसके जीवन का सौन्दर्य; संस्कृति के रूप में प्रकट होता है। लेखक कहता है कि जिस प्रकार जंगल में विभिन्न वनस्पतियाँ तथा विभिन्न नामों से पुकारे जाने वाली नदियों में कोई विरोध तथा भेदभाव नहीं दिखाई देता, ठीक उसी प्रकार एक राष्ट्र के नागरिकों को भी चाहिए कि वे भी विविधता में एकता का समन्वय स्थापित करने के लिए जाति, धर्म, भाषा, सम्प्रदाय या क्षेत्र की तुच्छ भावना को भूलकर अपनी पहचान विशाल राष्ट्र के रूप में बनाएँ। जिससे विविध संस्कृतियों में समन्वय स्थापित हो सकें। एक ही राष्ट्र में अनेकों उपसंस्कृतियाँ फलती-फूलती हैं। इन संस्कृतियों के अनुयायी नाना प्रकार के आमोदों-प्रमोदों में अपने हृदय के उल्लास को प्रकट करते हैं। साहित्य, कला, नृत्य, गीत इत्यादि इसी संस्कृति के विविध अंग हैं। हमारे पूर्व पुरुषों ने धर्म, विज्ञान, साहित्य, कला और संस्कृति के क्षेत्र में महान् सफलताएँ प्राप्त की थीं। हम उनकी उपलब्धियों पर गौरव का अनुभव करते हैं। हमें उनके महान् कार्यों को अपने जीवन में अपनाना चाहिए। राष्ट्र की प्रगति और समृद्धि का स्वाभाविक तरीका नहीं है। ऐसा करने से ही राष्ट्र की उन्नति सम्भव है। जिस राष्ट्र में भूतकाल के आदर्श वर्तमान पर बोझ नहीं होते और अतीत के गौरव को ही श्रेष्ठ स्वीकार करके अन्धानुकरण करने की प्रवृत्ति नहीं होती, केवल उसी राष्ट्र की उन्नति होती है। ऐसे राष्ट्र का हम अभिनन्दन करते हैं।

2. राष्ट्र के स्वरूप का निर्माण करने वाले आवश्यक तत्व कौन से है? संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उ०- राष्ट्र के स्वरूप का निर्माण करने वाले आवश्यक तत्व भूमि, जन और संस्कृति हैं। किसी राष्ट्र का स्वरूप इन्हीं तत्वों से निर्मित होता है। हमें अपनी भूमि के प्रति सचेत रहना चाहिए। हम पृथ्वी के भौतिकस्वरूप से जितने अधिक परिचित होंगे, हमारी राष्ट्रीय भावना भी उतनी ही बलवती होगी। किसी राष्ट्र के निर्माण में निश्चित भू-भाग के साथ-साथ जनसमुदाय का होना आवश्यक है, बिना जनसमुदाय के राष्ट्र का निर्माण होना संभव नहीं है। राष्ट्र का तीसरा आवश्यक तत्व उस राष्ट्र की संस्कृति है। यदि भूमि और मनुष्य से संस्कृति को अलग कर दिया जाए, तो राष्ट्र के समग्र रूप को विलुप्त हुआ समझना चाहिए। यह संस्कृति जीवनरूपी वृक्ष का फूल है, मानव के जीवन का सौन्दर्य संस्कृति के रूप में प्रकट होता है। जिस राष्ट्र की संस्कृति जितनी श्रेष्ठ और उन्नत होगी, उस राष्ट्र के जन का जीवन भी उतना ही श्रेष्ठ और उन्नत होगा।

3. ''भूमि माता है, मै उसका पुत्र हूँ।'' इस कथन की व्याख्या कीजिए।

उ०- जिस प्रकार माता हमें जन्म देती है, हमारा पालन-पोषण करती है, हमें प्यार करती है और इसलिए हम अपनी माता के सम्मुख श्रद्धा से सिर झुकाते हैं; उसी प्रकार धरती हमें अन्न देती है, इसकी धूल में खेलकर हम बड़े होते हैं, इसकी हवा में हम साँस लेते हैं; अत: धरती भी एक माता के समान ही हमारा पालन-पोषण करती है। इसलिए प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य है कि वह धरती को अपनी माता समझे और स्वयं को उसका आज्ञाकारी पुत्र। उसकी रक्षा के लिए सर्वस्व अर्पित करने हेतु उसे सदैव तत्पर रहना चाहिए। जब मानवमात्र में अपनी धरती के प्रति इस प्रकार का पूज्य भाव उत्पन्न हो जाएगा तो सच्ची राष्ट्रीयता का विकास सम्भव होगा; क्योंकि यह पूज्य भाव ही सच्ची राष्ट्रीयता की कुंजी है।

4. 'वसुंधरा' से क्या अभिप्राय है?

उ०- वसुंधरा से तात्पर्य पृथ्वी से है। हमारी धरती के गर्भ में असीम मात्रा में मूल्यवान खजाना भरा हुआ है। यह पृथ्वी मूल्यवान् वस्तुओं का विशाल कोष है। अनेक प्रकार के मूल्यवान् रत्नों (वसुओं) को अपने अंदर धारण करने के कारण ही इस धरती को वसुन्धरा कहा जाता है।

पाठ्येतर सक्रियता-

उ०- स्वयं करे।

2 भाग्य और पुरूषार्थ

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य–पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 34 का अवलोकन कीजिए।

लेखक पर आधारित प्रश्न–

1. जैनेन्द्र कुमार का जीवन-परिचय देते हुए इनकी कृतियों का वर्णन कीजिए।

उ०– **लेखक परिचय–** सुप्रसिद्ध साहित्यकार जैनेन्द्र कुमार का जन्म 2 जनवरी सन् 1905 ई० को कौड़ियागंज, अलीगढ़ में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री प्यारे लाल तथा माता का नाम श्रीमती रमादेवी था। बचपन में ही ये पिता की छत्रछाया से वंचित हो गए थे। इनकी माता तथा नाना के संरक्षण में इनका बाल्यकाल व्यतीत हुआ। इनका मूल नाम आनन्दी लाल था। हस्तिनापुर के जैन गुरुकुल 'ऋषि ब्रह्मचर्याश्रम' से इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। पंजाब से मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद इन्होंने उच्च शिक्षा के लिए 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' में प्रवेश लिया। सन् 1921 ई० में महात्मा गाँधी द्वारा चलाए गए असहयोग आन्दोलन में इनका सकारात्मक योगदान रहा और इसी कारण इनका शिक्षा का क्रम टूट गया।

इन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से साहित्य की विविध–विधाओं के क्षेत्र की श्रीवृद्धि की, लेकिन कहानीकार व उपन्यासकार के रूप में इनको विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हुई। गाँधी जी से प्रभावित होने के कारण ये अहिंसावादी व गाँधीवादी दर्शन के प्रतीक के रूप में जाने जाते हैं। इन्होंने कुछ राजनीतिक पत्रिकाओं का भी सम्पादन किया; जिस कारण इनको जेल भी जाना पड़ा। जेल में ही स्वाध्याय करते हुए ये साहित्य–सृजन में संलग्न रहे। 24 दिसम्बर सन् 1988 ई० को माँ सरस्वती का यह महान् सुपुत्र इस संसार से विदा हो गया।

कृतियाँ– जैनेन्द्र जी द्वारा रचित कृतियाँ निम्न प्रकार हैं—

निबन्ध– सोच विचार, जड़ की बात, प्रस्तुत प्रश्न, पूर्वोदय, साहित्य का श्रेय और प्रेम, मन्थन, परिवार, काम–क्रोध, विचार-वल्लरी, साहित्य–संचय।

कहानी– 'खेल' (सन् 1928 ई० में 'विशाल भारत' में प्रकाशित पहली कहानी)। फाँसी, नीलम देश की राजकन्या, जयसन्धि, एक रात, वातायन, दो चिड़ियाँ, पाजेब, ध्रुवयात्रा, जाह्नवी, अपना–अपना भाग्य, ग्रामोफोन का रिकॉर्ड, पान वाला, मास्टर साहब, पत्नी।

उपन्यास– सुखदा, जहाज का पंछी, त्यागपत्र, व्यतीत, सुनीता, कल्याणी, विवर्त, परख, मुक्तिबोध, जयवर्धन।

संस्मरण– ये और वे।

अनुवाद– पाप और प्रकाश (नाटक), मन्दाकिनी (नाटक), प्रेम में भगवान (कहानी संग्रह)।

इनके प्रथम उपन्यास 'परख' पर साहित्य अकादमी द्वारा 'पाँच सौ रुपये' के पुरस्कार से इन्हें सम्मानित किया गया।

2. जैनेन्द्र कुमार की भाषा-शैली की विशेषताएँ लिखिए।

उ०– **भाषा-शैली की विशेषताएँ–** कथाकार और निबन्धकार दोनों ही रूपों में अपने दायित्वों को निभाने के कारण जैनेन्द्र जी की भाषा को भी हम दो वर्गों में विभाजित सकते हैं। इनकी भाषा का एक स्वरूप इनके उपन्यासों और कहानियों में उपलब्ध होता है तथा दूसरे स्वरूप का विकास इनके निबन्धों में हुआ है। इनके द्वारा रचित उपन्यासों और कहानियों में विचारों के स्थान पर भावों को ही प्रधानता दी गई है; अत: इनकी कथात्मक रचनाओं की भाषा में सरलता है। विचार और चिन्तन की प्रधानता होने के कारण इनके निबन्धों में भाषा का गम्भीर रूप ही मिलता है; अत: इनकी भाषा में कहीं–कहीं दुरूहता भी आ गई। जैनेन्द्र जी की भाषा विषय के अनुरूप स्वयं परिवर्तित हो जाती है। इनके विचारों ने जिस स्थान पर जैसा स्वरूप धारण किया है, इनकी भाषा वहाँ उसी प्रकार का रूप धारण कर लेती है। गम्भीर स्थलों पर भाषा का रूप गम्भीर हो गया है। ऐसे स्थलों पर वाक्य बड़े–बड़े हैं तथा तत्सम शब्दों की प्रचुरता दिखाई देती है, किन्तु जहाँ वर्णनात्मकता आई है अथवा उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं, वहाँ इनकी भाषा व्यावहारिक और सरल हो गई है। ऐसे स्थलों पर वाक्य भी छोटे–छोटे है। यद्यपि जैनेन्द्र जी ने साहित्यिक हिन्दी का प्रयोग किया है, तथापि इनकी भाषा में संस्कृत के शब्दों की अधिकता नहीं है। इन्होंने अरबी, फारसी, उर्दू तथा अंग्रेजी भाषाओं के शब्दों का स्वच्छन्दतापूर्वक प्रयोग किया है, इससे इनकी भाषा ने व्यावहारिक और स्वाभाविक रूप धारण कर लिया है। भावों को प्रकट करने की शक्ति, सहजता, चमत्कार और प्रभाव उत्पन्न करने के लिए जैनेन्द्र जी ने अपनी भाषा में मुहावरों और कहावतों का भी प्रयोग किया है। दर–दर भटकना, मन का ठिकाना नहीं होना, हाथ फैलाना, गया बीता होना, पूँछ हिलाना, ठन–ठन गोपाल होना, मुँह उठाकर चलना आदि कितने ही मुहावरे इनकी भाषा में देखे जा सकते हैं। इस प्रकार जैनेन्द्र जी की भाषा

प्राय: सीधी-सादी, सरल एवं स्वाभाविक है। हाँ, कुछ निबन्धों में अवश्य ही संस्कृतनिष्ठता अधिक मात्रा में मिलती है।

जैनेन्द्र जी ने प्रायः दो प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया है— 1. विचारात्मक शैली, 2. वर्णनात्मक शैली।

जैनेन्द्र जी के निबन्धों में प्राय: विचारात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। इस शैली में गम्भीरता और विचार-बहुलता है। चिन्तन के क्षणों में इस शैली में दुरूहता भी आ गई है। जिस क्षण जैनेन्द्र जी विचारों के क्षेत्र से नीचे उतर आते हैं, इनकी शैली वर्णनात्मक रूप धारण कर लेती है। ऐसे स्थलों पर निबन्धों में भी कथात्मकता आ गई है, वाक्य छोटे हो गए हैं तथा भाषा ने सरल रूप धारण कर लिया है। हिन्दी-साहित्य के विद्वानों के समक्ष जैनेन्द्र ऐसी उलझन हैं, जो पहेली से भी अधिक गूढ़ हैं। इनके व्यक्तित्व का यह सुलझा हुआ उलझाव इनकी शैली में भी लक्षित होता है।

3. ''जैनेन्द्र की निबन्ध शैली चिन्तनपरक है।'' पठित निबन्ध के आधार पर इसकी पुष्टि कीजिए।

उ०– जैनेन्द्र कुमार जी एक विचारात्मक और चिन्तनशील लेखक हैं। प्रस्तुत निबन्ध 'भाग्य और पुरुषार्थ' के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इनकी शैली चिन्तनपरक है। इस निबन्ध में लेखक ने भाग्य और पुरुषार्थ अर्थात् कर्म पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। लेखक ने भाग्य के उदय होने का मार्ग पुरुषार्थ को बताया है और चिन्तन किया है कि 'विधाता अर्थात् परमेश्वर की प्राप्ति होने पर अर्थात् संसारिक मोह से विरक्ति के बाद ही व्यक्ति का भाग्योग्य संभव है। जैनेन्द्र कुमार जी ने अपने निबन्ध में विचारात्मक शैली का प्रयोग किया है। इनकी यह शैली चिन्तन की प्रधानता होने के कारण दुर्बोध है। इस शैली में इन्होंने दार्शनिक विषयों का प्रतिपादन किया है। इन्होंने अपने निबन्ध में तत्समयुक्त साहित्यिक भाषा का तथा अपेक्षाकृत अधिक लम्बे तथा जटिल वाक्यों का प्रयोग किया है जिससे इनकी भाषा में उलझाव दृष्टिगोचर होता है।

4. जैनेन्द्र कुमार का हिन्दी साहित्य में स्थान निर्धारित कीजिए।

उ०– श्रेष्ठ उपन्यासकार, कहानीकार एवं निबन्धकार जैनेन्द्र कुमार अपनी चिन्तनशील विचाराधारा तथा आध्यात्मिक और सामाजिक विश्लेषण पर आधारित रचनाओं के लिए निरन्तर स्मरणीय रहेंगे। हिन्दी कथा-साहित्य के क्षेत्र में जैनेन्द्र कुमार का विशिष्ट स्थान है। इन्हें हिन्दी के युगप्रवर्तक मौलिक कथाकार के रूप में जाना जाता है। हिन्दी-साहित्य जगत में ये एक श्रेष्ठ साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं।

व्याख्या संबंधी प्रश्न–

1. निम्नलिखित गद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) एक शब्द है सूर्योदय .... भाग्योदय कहना चाहिए।

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्यपुस्तक 'गद्य गरिमा' के 'जैनेन्द्र कुमार' द्वारा लिखित 'भाग्य और पुरुषार्थ' नामक निबन्ध से अवतरित है।

प्रसंग– लेखक ने कहा है कि सूर्य अपनी जगह स्थिर रहता है और पृथ्वी चलती-फिरती रहती है, फिर भी सूर्योदय शब्द हमको सार्थक लगता है, परन्तु वास्तविकता यह है कि पृथ्वी का रुख जब सूर्य की ओर हो जाए तो वही सूर्योदय समझा जाता है।

व्याख्या– लेखक भाग्योदय को सूर्योदय के समान ही मानता है। जैसे हम जानते हैं कि उदय सूर्य का नहीं होता। सूर्य तो अपनी जगह स्थिर रहता है, घूमती पृथ्वी है। जब धरती का रुख घूमकर सूर्य की ओर हो जाता है, तब उसे हम सूर्योदय कहते हैं। इसी प्रकार भाग्योदय भी है। जब हमारा रुख विधाता की ओर हो जाता है, तब वही हमारे लिए भाग्योदय कहलाता है। यह भाग्य एक घूमते हुए चक्र की तरह है; जैसे— पहिया घूमता है तो उसकी कभी एक अर ऊपर आती है तो कभी दूसरी, उसी प्रकार भाग्य भी निरन्तर समय की गति के अनुसार परिवर्तनशील रहता है। जब सूर्य हमारे समक्ष होता है तो कहा जाता है कि सूर्योदय हो गया है, परन्तु वास्तव में उसका उदय हुआ ही नहीं। वह तो अपनी जगह स्थिर है। अपनी यात्रा में पृथ्वी उसके मार्ग से होकर गुजरती है, जिसके परिणामस्वरूप वह हमें दिखाई देता है। इसी प्रकार विधाता सभी प्राणियों और सभी जीवों में व्याप्त है; उसकी स्थिति भी सदा बनी रहती है। ऐसा नहीं होता कि ईश्वर किसी समय न रहे। जब उसका अस्त नहीं होता, तो उदय कैसे हो सकता है। हम अपनी अपेक्षा से ही भाग्य का उदय मानते हैं। इस प्रकार भाग्य का उदय सूर्य के उदय की तरह अपनी अपेक्षा से है। भाग्योदय का सच्चा अर्थ है; हमारा मुख सांसारिक माया-मोह से विरत होकर ईश्वर की ओर हो जाए।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. भाषा– व्यावहारिक खड़ी बोली। **2. भाषा–** व्याख्यात्मक और विवेचनात्मक। **3. वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **4. शब्द-चयन–** विषय के अनुरूप। **5.** लेखक ने भाग्योदय की व्याख्या सूर्योदय के आधार पर ही की है और भाग्य को ईश्वर का दूसरा रूप माना है।

(ख) वह शून्यावस्था भगवत् .... सदा-सर्वदा है ही।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने दु:ख को ईश्वर का वरदान और अमृत माना है; क्योंकि दु:ख में मनुष्य का अहंकार समाप्त हो जाता है और प्राणी ईश्वर की ओर उन्मुख हो जाता है।

व्याख्या– लेखक कहता है कि भगवान द्वारा दिए जाने वाले दु:ख अपने न होने का भाव अर्थात् अहंकार का भाव नष्ट कर देता है इसलिए जीवन में दु:ख का आना ईश्वर का दिया वरदान है। जब कभी कोई गहरा दु:ख आ पड़ता है, तब कुछ क्षणों के लिए

हमारा अहं समाप्त हो जाता है। अहंकार का विनाश भी ईश्वर की कृपा से ही होता है, अत: हमें दु:ख में ईश्वर की कृपा की आकांक्षा रहती है और हम ईश्वर का स्मरण करने लगते है। यदि दु:ख नहीं होगा तो व्यक्ति का पतन ही होगा। दु:ख में यदि हम अपने कार्यकलापों को कुछ परिवर्तित कर दें, अपने अहंकार को भूलकर परिस्थितियों से समझौता कर लें और दुष्काल में भी अपने कर्त्तव्य-निर्वाह का ध्यान रखें तो अति शीघ्र ही भाग्योदय की संभावना रहती है। मनुष्य का अहंकार केवल दु:ख में ही नष्ट होता है। दु:ख जाने पर हमें ऐसा लगता है कि हम कुछ नहीं हैं। लेखक ने दु:ख को भगवान् का अमृत कहा है। अमृत से मनुष्य में चेतना आती है। अमृत पीकर वह सजग होता है। सुख में वह ईश्वर को भूल जाता है। दु:ख में यदि हमें भगवान् की कृपा का अनुभव हो जाए तो वास्तव में वही क्षण हमारे लिए भाग्योदय का समय है। उस समय हम अपने अहंकार से छूट जाते हैं और भगवान् का स्मरण करने लगते हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. भाषा– परिष्कृत साहित्यिक खड़ी बोली। **2. शैली–** विवेचनात्मक। **3.** पुराणों में कथा है कि कुन्ती ने भगवान् कृष्ण से दु:ख का ही वरदान माँगा था, क्योंकि प्राय: दु:ख में ही ईश्वर-स्मरण कर पाना सम्भव हो पाता है।

(ग) वहाँ दिशाएँ तक .... विस्मय ही क्या है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश में लेखक भाग्य और ईश्वर की सत्ता को सर्वत्र व्याप्त बताते हुए कहता है कि मनुष्य जब अपने कम्र के नशे में ईश्वर की उपेक्षा करने लगता है, तब भाग्य भी उसका साथ नहीं देता।

व्याख्या– लेखक का कहना है कि कुछ लोग बहुत अधिक श्रम करते हैं फिर भी निष्फल रह जाते हैं। इस स्थिति में वे मानने लगते हैं कि उनका भाग्य ही विपरीत है। जबकि भाग्य के तो विपरीत होने का प्रश्न ही नहीं; क्योंकि उसकी सत्ता तो सर्वत्र व्याप्त है। जिसकी सत्ता सर्वत्र व्याप्त हो, उसके लिए दिशाओं का, सम्मुख-विपरीत होने का अर्थ ही नहीं रह जाता। इस प्रकार के निष्फल प्रयत्न वाले स्वयं भाग्य से ही विपरीत हो जाते हैं। आशय यह है कि वे स्वयं को ज्यादा महत्व देने लगते हैं। उनमें अहं-भाव आ जाता है और वे अपने को ही सब-कुछ मानकर दूसरों की उपेक्षा करने लगते हैं। उनका नशा इतना बढ़ जाता है कि वे ईश्वर को भूल जाता है। जब अपने को सब-कुछ मानने का नशा अधिक चढ़ा होता है तो मनुष्य भाग्य और ईश्वर को भूल जाता है। इस समय उसे एक ही धुन सवार होती है और वह यह कि मुझसे बढ़कर कार्यकुशल व्यक्ति कोई है ही नहीं। उस समय फल-प्राप्ति की इच्छा उस पर सवार रहती है। उसके अन्दर विनय का अभाव हो जाता है। वह दूसरों का अनादर और तिरस्कार करने लगता है। वह अज्ञान के वशीभूत हो भाग्य को भी कुछ नहीं गिनता है, उसकी भी उपेक्षा करने लगता है। ऐसी दशा में वह जान-बूझकर भाग्य से मुँह मोड़ लेता है। ऐसी स्थिति में यदि भाग्य उसका साथ नहीं देता है तो इसमें भाग्य का क्या दोष? वास्तव में सारा दोष ईश्वर को विस्मृत कर देने का और भाग्य से मुँह फेरने का है।

साहित्यिक सौन्दर्य– भाषा– शुद्ध परिमार्जित खड़ी बोली। **शैली–** चिन्तनप्रधान और विचारात्मक। **वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **शब्द-चयन–** विषय के अनुरूप। **भावसामय–** यह सर्वप्रसिद्ध उक्ति है कि अभिमान और भगवान् दोनों कभी साथ-साथ नहीं रह सकते—

पीया चाहै प्रेमरस, राखा चाहे मान।
एक म्यान में दो खडग, देखा सुना न कान॥

(घ) पुरुषाथ्र वह है जो .... अकर्त्तव्य-भावना है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत अवतरण में लेखक ने पुरुषार्थ का अर्थ स्पष्ट किया है। उसके अनुसार हमें निरन्तर कर्म करते हुए स्वयं को भाग्य के सम्मुख ले आना चाहिए; क्योंकि भाग्योदय के लिए पुरुषार्थ आवश्यक होता है।

व्याख्या– लेखक कहता है कि पुरुषार्थ वह है, जिसमें व्यक्ति प्रयत्नशील रहे और उसमें सहयोग की भावना जाग्रत हो। पुरुषार्थ तो सात्त्विक वृत्ति है। इसलिए मानव में सहयोग की भावना होनी चाहिए। दूसरों से सहयोग लेना भाग्य में सहयोग लेना ही है। जब तक व्यक्ति में 'मैं ही करने वाला हूँ' यह भाव रहेगा तब तक उसमें अहंकार भी बना रहेगा और वह भाग्य की उपेक्षा करता रहेगा। अहंकार से मुक्त होने पर ही भाग्य व्यक्ति का साथ देता है। जब व्यक्ति पुरुषार्थ को भाग्य से पृथक् कर देता है तथा यह सोचने लगता है कि जो भाग्य में होगा वह तो मिलेगा ही, फिर पुरुषार्थ की क्या आवश्यकता है; तो ऐसा व्यक्ति पुरुषार्थ और भाग्य को एक-दूसरे से अलग नहीं करता, वरन् वह पुरुषार्थ को सही अर्थ में नहीं समझ पाता है। पुरुषार्थ और भाग्य अलग-अलग भाव नहीं है, दोनों एक-दूसरे पर निर्भर हैं। बल-पराक्रम को पुरुषार्थ नहीं कहा जा सकता; क्योंकि यह तो पशु में अधिक होता है। पुरुषार्थ में शारीरिक शक्ति के अतिरिक्त स्नेह और सहयोग जैसी सात्त्विक भावनाएँ अनिवार्य हैं। केवल हाथ-पैर चलाने अथवा क्रिया-कौशल दिखाने को ही पुरुषार्थ नहीं कहा जा सकता। दूसरों को सहयोग देने के लिए प्रेरित करना भी पुरुषार्थ की श्रेणी में है।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. भाषा– परिष्कृत साहित्यिक खड़ी बोली। **2. शैली–** विवेचनात्मक। **3. वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **4.शब्द-चयन–** विषय के अनुरूप। **5. विचार-सौन्दर्य–** विनयशीलता ही सच्ची विजय है। अहंकारी की हार सुनिश्चित है; क्योंकि सांसारिक दृष्टि से स्वयं को कर्ता मानकर व्यक्ति अहंकारी ही हो जाता है।

(ङ) भाग्यवादी बनना दूसरी .... का अनुभव होता है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने भाग्योदय और भाग्यवाद का अन्तर स्पष्ट किया है। भाग्यवाद भाग्य का प्रधान मानकर कर्म से विरत हो जाना है, किन्तु भाग्य के प्रति आत्मीयता का भाव जाग्रत हो जाना ही भाग्योदय है।

व्याख्या– भाग्योदय और भाग्यवाद एक-दूसरे से बहुत भिन्न हैं। भाग्योदय के लिए व्यक्ति स्नेह और सहयोग के साथ क्रियाशील रहता है, किन्तु भाग्यवादी भाग्य को ही सब कुछ मानते हुए निष्क्रिय हो जाता है। वह भाग्य के अधीन हो जाता है। भाग्य के विषय में उसकी यह धारणा कि जो भाग्य में होगा, मिल पाएगा, निश्चित रूप से क्षुद्र और संकुचित है। व्यक्ति में इस प्रकार की धारणा बन जाने से पुरुषार्थ की हानि होती है। हमें अपने को भाग्य से अलग नहीं मानना चाहिए। यदि हम भाग्य के प्रति आत्मीय बन जाएँ— भाग्य के प्रति आत्मीय बनने का अर्थ है कि हम निरन्तर प्रयत्नशील रहकर इष्ट-मित्रों का सहयोग प्राप्त कर और ईश्वर पर विश्वास रखकर अपने कर्त्तव्य का निर्वाह फल की इच्छा के बिना करते रहें— तो भाग्य के साथ हमारा कोई विवाद ही न रहेगा। फिर भाग्योदय के लिए हम चिन्तित भी नहीं होंगे। उस समय हमें प्रत्येक पल भाग्य के उदित होने का आभास होगा। इस प्रकार भाग्य हमारे जीवन को सर्वत्र प्रकाशमय कर देगा और व्यक्ति की यह सोच होगी कि वह जो कर्म कर रहा है, उसे भाग्य ही करा रहा है।

साहित्यिक सौन्दर्य- 1. भाषा– परिष्कृत और परिमार्जित खड़ी बोली। **2. शैली–** विवेचनात्मक। **3. वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **4. शब्द-चयन–** विषय के अनुरूप। **5. भावसाम्य–** व्यक्ति यदि परम सत्ता के प्रति आस्थावान नहीं है तो उसका भाग्योदय उसी प्रकार आड़ में छिप जाता है जैसे लोहे और पारस के मध्य कोई परदा आ जाए—

साँच बिना सुमिरन नहीं, भय बिन भक्ति न होय।
पारस में परदा रहै, कंचन केहि बिधि होय॥

(च) भाग्य के प्रति .... सीमाहीन भाव से है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने भाग्य के प्रति समर्पित होकर पुरुषार्थ करने का सुझाव दिया है।

व्याख्या– जो मनुष्य भाग्य के प्रति समर्पित होकर परिश्रम करता है, वह सफलता की ओर बढ़ने लगता है और उसे निरन्तर लाभ होता है। अत: मनुष्य को कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए भाग्य और ईश्वर पर विश्वास रखकर अपने कार्य करने चाहिए। भाग्य पर विश्वास करने से उसके परिश्रम का परिणाम सुखद होता है और व्यक्ति निरन्तर शक्तिशाली एवं बन्धनमुक्त होता जाता है। इसके साथ ही जो मनुष्य केवल अपने परिश्रम पर भरोसा रखता है और भाग्य की उपेक्षा करता है, वह विधाता के प्रति ही उपेक्षा की भावना नहीं रखता, अपितु स्वयं के प्रति भी उपेक्षा-भाव रखता है। जो भाग्य की उपेक्षा करता है, वह सबसे उपेक्षित हो जाता है; क्योंकि भाग्य के सम्मुख व्यक्ति का अस्तित्व ही क्या है? अपने पुरुषार्थ के बल पर व्यक्ति जिस दृष्टि को नकारता है, उसमें उसका स्थान कुछ भी नहीं होता। वह अपने जीवन के गिनती के वर्ष बिताकर काल के गोल में समा जाता है, परन्तु सृष्टि फिर भी अनवरत चलती रहती है। उसके रहने-न-रहने का सृष्टि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस प्रकार संसार में रहकर भाग्य और सृष्टि को नकारना व्यक्ति का पागलपन ही कहा जाएगा।

साहित्यिक सौन्दर्य- 1. भाषा– परिमार्जित और परिष्कृत खड़ी बोली। **2. शैली–** विचारात्मक। **3. वाक्य विन्यास–** सुगठित। **4. शब्द-चयन–** विषय के अनुरूप। **5.** लेखक का मन्तव्य है कि अपनी सामर्थ्यनुसार पूर्ण पुरुषार्थ करते हुए भी, परम अस्तित्व के प्रति व्यक्ति का यह विश्वास होना चाहिए कि उसे उसके कर्मानुसार फल अवश्य प्राप्त होगा। 6. भाग्य की उपेक्षा करना बुद्धि की निष्क्रियता का प्रतीक है।

(छ) इच्छाएँ नाना हैं .... उसे हाथ आती है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने बताया है कि मनुष्य अपनी अनेक इच्छाओं के कारण प्रवृत्ति और निवृत्ति के चक्र में फँसकर दु:खी होता रहता है।

व्याख्या– लेखक का कथन है कि मनुष्य के मन में विविध प्रकार की अनेक इच्छाएँ हैं। ये इच्छाएँ ही मनुष्य को संसार के कार्यों में लगाए रखती हैं। इच्छाओं की पूर्ति के लिए मनुष्य अनेक कार्यों में प्रवृत्त होता है, परन्तु जब एक के बाद दूसरी इच्छा उभरकर सामने आ जाती है तो वह थकान और टूटन महसूस करता है और अपने को इच्छाओं के जाल से मुक्त करना चाहता है। इस प्रकार वह इच्छाओं की पूर्ति के लिए कार्यों में प्रवृत्त होने और फिर उनसे ऊबकर निवृत्ति चाहने के प्रयत्न में बहुत थक

जाता है। कभी वह इच्छाओं की पूर्ति के लिए संसार के कार्यों में प्रवृत्त होता है और दूसरे ही क्षण उनसे छुटकारा पाने के लिए संसार से दूर जाकर शान्ति का अनुभव करना चाहता है। इस प्रकार वह राग-द्वेष के जाल में फँसा रहता है। द्वन्द्व और संशय की इस स्थिति से वह दु:खी हो जाता है। इनसे ऊबकर वह झुँझलाहट और छटपटाहट का अनुभव करने लगता है। ऐसी दशा में यदि वह भाग्य अथवा विधाता के साथ स्वयं को जोड़कर कर्त्तव्य का पालन करेगा तो निश्चित रूप से उसका भाग्योदय होगा।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. भाषा– मुहावरेदार, परिमार्जित खड़ी बोली। **2. शैली–** विवेचनात्मक। **3.** मनुष्य सांसारिक कार्यों में लगने और उनसे विरक्त होने के चक्र में फँसकर दु:ख का अनुभव करता है।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक वाक्यों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) हमारा मुख सही भाग्य की तरफ हो जाए, तो इसी को भाग्योदय कहना चाहिए।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'गद्य गरिमा' में संकलित 'भाग्य और पुरुषार्थ' नामक निबन्ध से अवतरित है। इसके लेखक 'जैनेन्द्र कुमार' जी हैं।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में सूर्योदय और भाग्योदय का साम्य स्थापित किया गया है।

व्याख्या– लेखक का कहना है कि सूर्य अपनी जगह स्थिर रहता है और पृथ्वी घूमती रहती है। जब पृथ्वी का रुख घूमकर सूर्य की ओर हो जाता है तो इसी को हम सूर्योदय कहते हैं। भाग्य विधाता का ही एक दूसरा नाम है। भाग्योदय को भी सूर्योदय के समान ही समझना चाहिए। यह तो सभी जानते हैं कि उदय सूर्य का नहीं होता, इसी प्रकार उदय भाग्य का भी नहीं होता। जब हमारा रुख भाग्य अर्थात् विधाता की ओर हो जाता है, तो उसी को भाग्योदय समझना चाहिए। इस प्रकार भाग्य का उदय सूर्य के उदय की तरह अपनी अपेक्षा से मानना चाहिए। भाग्योदय का सच्चा अर्थ है, हमारा मुख सांसारिक मोह-माया से विरत होकर ईश्वर की ओर हो जाए।

(ख) दु:ख ही भगवान का अमृत है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इसमें दु:ख के महत्व का विचार करते हुए उसे ईश्वर का वरदान बताया गया है।

व्याख्या– विद्वान लेखक ने कहा है जो लोग दु:ख को अभिशाप समझते हैं, उनकी सोच गलत है; क्योंकि दु:ख तो भगवान् का अनोखा वरदान है। यह ऐसा अमृत है, जो मनुष्य के अहंकार को गलाकर उसे भाग्य से अर्थात् विधाता से जोड़ देता है। इससे मनुष्य अहं से वियुक्त होकर परमात्मा से संयुक्त होता है। इस प्रकार दु:ख व्यक्ति के लिए अभिशाप नहीं, वरन् भगवान् द्वारा दिया हुआ वह अमृत है, जो उसे सचेत और सजग करता है।

(ग) अकर्म का आशय कर्म का अभाव नहीं, कर्त्तव्य का क्षय है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में लेखक ने अकर्म की व्याख्या मौलिक ढंग से की है।

व्याख्या– लेखक कहता है कि 'अकर्म' का अभिप्राय 'कर्म न करना' नहीं है, अपितु 'मैं कार्य कर रहा हूँ' इस भाव को समाप्त कर देना ही है। 'अकर्म' में कर्म करने के अहंकार-त्याग का भाव छिपा हुआ है। जब व्यक्ति यह सोचता है कि कर्म कर रहा हूँ तो उसके मन में अहंकार होता है। अकर्म में कर्त्तापन के नशे का अभाव या कर्त्तापन के अहंकार के त्याग का भाव निहित है। अहंकार के भाव को समाप्त कर देना ही सही अर्थों में अकर्म है।

(घ) पुरुषार्थ वह है जो पुरुष को सप्रयास रखे, साथ ही सहयुक्त भी रखे।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– यहाँ पर लेखक ने पुरुषार्थ को परिभाषित किया है।

व्याख्या– लेखक के विचार में पुरुषार्थ का आशय केवल किसी कर्म में लगे रहना ही नहीं है। यदि ऐसा होता तो पशुओं और बालकों को सर्वाधिक पुरुषार्थी कहा जाता; क्योंकि वे ही विभिन्न क्रियाकलापों में अधिक सक्रिय रहते हैं। वस्तुत: पुरुषार्थ का प्रमुख लक्षण यह है कि व्यक्ति परिश्रम की भावना से निरन्तर प्रयास करता रहे तथा साथ-साथ अहंकार भावना से मुक्त होकर, भाग्य के साथ सम्बद्ध भी हो जाए। अहं भाव से विमुक्त होते ही व्यक्ति का भाग्योदय हो जाता है और वह स्नेह व सहयोग की भावना से प्ररित होता है। इस प्रकार का प्रयास ही पुरूषार्थ कहलाता है।

(ङ) पुरुष अपने अहं से वियुक्त होता है, तभी भाग्य से सयुंक्त होता है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में लेखक ने भाग्य और पुरुषार्थ के समन्वय पर बल दिया है।

व्याख्या– विद्वान लेखक का कथन है कि पुरुषार्थ में प्रयत्न का होना आवश्यक है, किन्तु प्रयत्न करते समय जो अहंकार का भाव रहता है, वह नहीं होना चाहिए। अहं को नष्ट कर स्नेह और सहयोग की भावना से प्रयत्नशील रहकर ही भाग्य अर्थात् परमात्मा से साक्षात्कार हो सकता है और भाग्य से साक्षात्कार होना ही परम पुरुषार्थ है। तात्पर्य यह है कि भाग्य से संयुक्त होने

के लिए मनुष्य को अहं भाव से वियुक्त होना चाहिए। अन्यत्र कहा भी गया है—

माया तजी तो क्या भया, मान तजा नहिं जाय।
मान बड़े मुनिवर गले, मान सबन को खाय।।

वस्तुत: संसार का सबसे बड़ा पुरुषार्थ अहंकार या 'मैं' भावना का त्याग है।

(च) यह प्रवृत्ति और निवृत्ति का चक्र उसको द्वन्द्व से थका मारता है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक वाक्य में यह स्पष्ट किया गया है कि राग-द्वेष की भावनाओं से छटपटाहट ही हाथ आती है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

व्याख्या– विद्वान लेखक का कहना है कि अनेक प्रकार की सांसारिक इच्छाएँ मनुष्य को कर्म में प्रवृत्त रखती हैं और उस प्रवृत्ति के कारण जब मनुष्य बहुत थक जाता है, तब वह सांसारिक इच्छाओं से निवृत्ति चाहता है। प्रवृत्ति और निवृत्ति के इस द्वन्द्व के कारण कभी तो वह इस संसार को राग-भाव से देखता है तो कभी विराग भाव से। इस द्वन्द्व से बचने के लिए उसे चाहिए कि वह भाग्य अर्थात् विधाता से जुड़ जाए और निष्काम कर्म में लीन हो जाए। ऐसी दशा में विराग भाव जागने पर यदि उसका रुख भाग्य (ईश्वर) की ओर हो जाता है तो वह उसका सच्चा भाग्योदय कहलाएगा।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न–

1. 'भाग्य और पुरुषार्थ' पाठ का सारांश लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पाठ 'भाग्य और पुरुषार्थ' लेखक 'जैनेन्द्र कुमार' द्वारा लिखित हैं, इस पाठ में लेखक ने भाग्य और पुरुषार्थ पर अपने मौलिक विचार प्रकट किए है। लेखक के अनुसार 'भाग्य और पुरुषार्थ' विपरित तत्व नहीं है, ये दोनों पारस्परिक रूप से सहवर्ती हैं। लेखक कहता है कि भाग्योदय सूर्योदय के समान है, जैसे हम जानते हैं कि उदय सूर्य का नहीं होता। सूर्य तो अपने स्थान पर स्थिर रहता है, पृथ्वी घूमती है। जब पृथ्वी का रूख घूमकर सूर्य की तरफ हो जाता है, तब उसे सूर्योदय कहते हैं इसी प्रकार भाग्योदय है, जब हमारा रुख विधाता की ओर होता है, तब वही हमारे लिए भाग्योदय कहलाता है। भाग्य तो घूमते हुए चक्र की तरह होता है। विधाता सभी प्राणियों और सभी जीवों में व्याप्त है; उसकी स्थिति सदा बनी रहती है क्योंकि जब उसका अस्त नहीं होता, तो उदय कैसे हो सकता है। हम अपनी अपेक्षा से ही भाग्य का उदय मानते हैं। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं होता, इसी जगह पुरुषार्थ (उद्यम) का औचित्य है। हमें भाग्य को कहीं से खींचकर नहीं लाना है अपितु अपना मुँह ही उस तरफ मोड़ लेना है। हमारे अंदर अहंकार का भाव होता है, हम चाहते हैं सब कुछ हमारे अनुकूल हो, परन्तु अचानक आने वाला दु:ख हमें अंदर तक भेद देता है। यह दु:ख हमारे अहंकार को नष्ट कर देता है, इसलिए दु:ख ईश्वर का वरदान और अमृत है; क्योंकि दु:ख में मनुष्य का अहंकार समाप्त हो जाता है और प्राणी ईश्वर का स्मरण करने लगता है। दु:ख में यदि हमें ईश्वर की कृपा का अनुभव हो जाए तो वास्तव में वही क्षण हमारे लिए भाग्योदय का समय है। पुरुषार्थ का भी यही लक्ष्य होता है, यदि हम पुरुषार्थ का लक्ष्य कोई ओर मानते हैं तो यह हमारी भूल है, लेखक कहते हैं कि कुछ लोग बहुत अधिक श्रम करते हैं फिर भी निष्फल रह जाते हैं। इस स्थिति में वे मानने लगते हैं कि उनका भाग्य ही विपरीत है, परन्तु भाग्य के विपरीत होने का तो प्रश्न ही नहीं है, क्योंकि ईश्वर की सत्ता तो सर्वत्र व्याप्त है। और जिसकी सत्ता सर्वत्र व्याप्त हो, उसके लिए दिशाओं का, सम्मुख विपरीत होने का अर्थ ही नहीं रह जाता। इस प्रकार के निष्फल प्रयत्न वाले स्वयं भाग्य से ही विपरीत हो जाते हैं अर्थात् वे स्वयं को ज्यादा महत्व देने लगते हैं। उनका अहं का नशा इतना बढ़ जाता है कि वे ईश्वर को भी भूल जाते हैं। वह दूसरों का अनादर व तिरस्कार करने लगता है। वह अज्ञान के वशीभूत हो भाग्य को भी कुछ नहीं गिनते हैं, उसकी भी उपेक्षा करने लगते हैं। ऐसी दशा में वह भाग्य से मुँह मोड़ लेते हैं। ऐसी स्थिति में यदि भाग्य उसका साथ नहीं देता तो इसमें भाग्य का क्या दोष? वास्तव में सारा दोष तो ईश्वर को भुला देने को और भाग्य से मुँह फेरने का है। लेखक कहते हैं कि अकर्म से तात्पर्य कर्म की अनुपस्थिति या करने योग्य कर्मों के न किए जाने से कदापि नहीं है। इसका आशय यह है कि व्यक्ति कर्म करते हुए अपने मन में यह भावना रखे कि उसने कोई काम किया ही नहीं, अर्थात् वह किसी कार्य का कर्त्ता नहीं। घमण्ड और अहंकार की भावना से किया जाने वाला कार्य सफलता और सिद्धि के स्थान पर यदि बन्धन और क्लेश को उत्पन्न करता है तो इसमें तर्क की संगति नहीं हो सकती। लेखक का कहना है कि पुरुषार्थ का अर्थ स्वयं के लिए शारीरिक श्रम करना ही नहीं है, वरन् दूसरे के कार्यों में उनका सहयोग करना भी है। जब व्यक्ति अहंकार को मानकर कोई कार्य करता है तो उसके मन में सहयोग की भावना क्षीण हो जाती है। ऐसी स्थिति में उसे पुरुषार्थ कहने का कोई अर्थ नहीं रह जाता। पुरुषार्थ वह है, जिसमें व्यक्ति प्रयत्नशील रहे और उसमें सहयोग की भावना जाग्रत हो। पुरुषार्थ एक सात्विक वृत्ति है। इसलिए मानव में सहयोग की भावना होनी चाहिए। दूसरों से सहयोग लेना भाग्य से सहयोग लेना ही है। जब व्यक्ति पुरुषार्थ को भाग्य से अलग कर देता है तथा यह सोचने लगता है कि जो भाग्य में होगा वह तो मिलेगा ही, फिर पुरुषार्थ की क्या आवश्यकता है; तो ऐसा व्यक्ति पुरुषार्थ और भाग्य को एक दूसरे से अलग नहीं करता, वरन् वह पुरुषार्थ को सही अर्थ में समझ ही नहीं पाता है। पुरुषार्थ और भाग्य अलग-अलग भाव नहीं है। वरन् एक-दूसरे पर निर्भर है। भाग्योदय और भाग्यवाद एक-दूसरे से बहुत भिन्न है। भाग्योदय के लिए व्यक्ति स्नेह और सहयोग के साथ क्रियाशील रहता है, किन्तु भाग्यवादी भाग्य को ही सब कुछ मानते हुए निष्क्रिय हो जाता है। वह भाग्य के

अधीन हो जाता है। उसकी यह धारणा जो भाग्य में होगा मिल जाएगा, निश्चित रूप से क्षुद्र और संकुचित है। मनुष्य की ऐसी धारण से पुरुषार्थ की हानि होती है। हमें अपने भाग्य को अलग नहीं मानना चाहिए। यदि हम भाग्य के प्रति आत्मीय बन जाएँ और ईश्वर पर विश्वास रखकर अपने कर्त्तव्य का निर्वाह फल की इच्छा के बिना करते रहें- तो भाग्य के साथ हमारा कोई विवाद नहीं रहेगा। हमें प्रत्येक पल भाग्य के उदित होने का आभास होगा। मनुष्य का सहयोग की भावना से किया गया प्रत्येक पुरुषार्थ मनुष्य के भाग्य के मार्ग को फैलाता है।

जो मनुष्य भाग्य के प्रति समर्पित होकर परिश्रम करता है, वह सफलता की ओर बढ़ने लगता है और उसे निरन्तर लाभ होता है। इसके साथ ही जो मनुष्य केवल अपने परिश्रम पर भरोसा करता है और भाग्य की उपेक्षा करता है, वह विधाता के प्रति ही नहीं वरन् स्वयं के प्रति भी उपेक्षा के भाव रखता है। वह अपने जीवन की गिनती के वर्ष बिताकर काल के गाल में समा जाता है, परन्तु सृष्टि फिर भी अनवरत चलती रहती है। उसके रहने या न रहने से सृष्टि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। संसार में रहकर भाग्य और सृष्टि को नकारना व्यक्ति की मूर्खता है। भाग्य को विनीत होकर स्वीकार करना ही पुरुषार्थ का परम उद्देश्य है।

यदि हम केवल स्वार्थ के वशीभूत ही रहेंगे तो केवल भाग्योदय की प्रतीक्षा ही करते रह जाएँगे। क्योंकि भाग्य तो उदित है ही मनुष्य का केवल मुख उस तरफ नहीं है। मनुष्य नहीं समझ पाता कि जो उसका वर्तमान है वह उसी भाग्योदय के प्रकाश से चमक रहा है। मनुष्य की अनेक इच्छाएँ है, जो मनुष्य को संसार के कार्यों में लगाए रखती है, इन इच्छाओं की पूर्ति करते-करते मनुष्य थक जाता है और स्वयं को इच्छाओं के जाल से मुक्त करना चाहता है। वह इनसे छुटकारा पाने के लिए संसार से दूर जाकर शांति का अनुभव करना चाहता है। इनसे ऊबकर वह झुँझलाहट और छटपटाहट का अनुभव करने लगता है। ऐसी दशा में यदि वह भाग्य के साथ स्वयं को जोड़कर कर्त्तव्य का पालन करेगा तो निश्चित रूप से उसका भाग्योदय होगा और इस भाग्योदय को ही वह अपने पुरुषार्थ को अंत मानेगा।

2. लेखक के दृष्टिकोण से भाग्य और पुरुषार्थ एक दूसरे के सहयोगी हैं। क्या आप इस दृष्टिकोण से सहमत हैं?

उ०– भाग्य और पुरुषार्थ एक दूसरे के सहयोगी हैं। पुरुषार्थ वह है जिसमें व्यक्ति प्रयत्नशील रहे और उसमें सहयोग की भावना जाग्रत हो। पुरुषार्थ तो सात्त्विक वृत्ति है, दूसरों से सहयोग लेना भाग्य से सहयोग लेना ही है। यदि व्यक्ति पुरुषार्थ और भाग्य को अलग कर देता है तथा यह तो सोचने लगता है कि जो भाग्य में होगा वह तो मिलेगा ही, फिर पुरुषार्थ की क्या आवश्यकता है, तो ऐसा व्यक्ति पुरुषार्थ और भाग्य को एक-दूसरे से अलग नहीं करता, वरन् यह पुरुषार्थ को सही अर्थ में समझ ही नहीं पाता है। पुरुषार्थ और भाग्य अलग-अलग भाव नहीं हैं वरन् एक दूसरे पर निर्भर तथा सहवर्ती हैं। भाग्य के बिना पुरुषार्थ और पुरुषार्थ के बिना भाग्योदय नहीं हो सकता है।

3. ''दु:ख भगवान का वरदान है। अहं और किसी औषध से गलता नहीं'' से लेखक का क्या तात्पर्य है?

उ०– लेखक का तात्पर्य है कि जो लोग दु:ख को अभिशाप समझते हैं, उनकी सोच गलत हैं, क्योंकि दु:ख तो भगवान का अनोखा वरदान है। दु:ख ऐसी औषध या अमृत है जो मनुष्य के अहंकार का नाश कर देता है और मनुष्य को भाग्य से अर्थात् विधाता से जोड़ देता है।

4. क्या मनुष्य के अहंकारयुक्त कर्म बंधन और क्लेश उत्पन्न करते हैं? विवेचना कीजिए।

उ०– मनुष्य के अहंकारयुक्त कर्म बंधन और क्लेश उत्पन्न करते हैं क्योंकि अहंकार की भावना से किया जाने वाला कार्य सदैव सफलता को प्रदान करने वाला नहीं होता, वरन् क्लेश को जन्म देने वाला भी होता है। क्योंकि विनयशीलता ही सच्ची विजय है। अहंकारी की हार स्वाभाविक है। परन्तु सांसारिक दृष्टि से स्वयं को कर्त्ता मानकर व्यक्ति अहंकारी हो ही जाता है और उसके अहंकारयुक्त कर्म क्लेश को बढ़ावा देते हैं।

5. पुरुषार्थ पशु-चेष्टा से कैसे भिन्न है? स्पष्ट कीजिए।

उ०– बल-पराक्रम को पुरुषार्थ नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि बल-पराक्रम तो पशुओं में अधिक होता है। पुरुषार्थ में शारीरिक शक्ति के अतिरिक्त स्नेह और सहयोग जैसी सात्त्विक भावनाएँ अनिवार्य है। केवल पशुओं की तरह हाथ-पैर चलाने अथवा क्रिया-कौशल दिखाने को ही पुरुषार्थ नहीं कहा जा सकता। दूसरों को सहयोग देने के लिए प्रेरित करना भी पुरुषार्थ ही कहलाता है।

6. मनुष्य को अपना सबसे बड़ा पुरुषार्थ क्या समझना चाहिए?

उ०– मनुष्य को दूसरों के सहयोग की भावना को अपना सबसे बड़ा पुरुषार्थ समझना चाहिए। पुरुषार्थ में प्रयत्न का होना आवश्यक है, किन्तु प्रयत्न करते समय जो अहंकार का भाव रहता है, वह नहीं होना चाहिए। अहं को नष्ट कर स्नेह और सहयोग की भावना से प्रयत्नशील रहकर ही भाग्य अर्थात् ईश्वर से साक्षात्कार हो सकता है और भाग्य से साक्षात्कार होना ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है।

पाठ्येतर सक्रियता–

उ०– स्वयं करे

3 राबर्ट नर्सिंग होम में

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 39 व 40 का अवलोकन कीजिए।

लेखक पर आधारित प्रश्न–

1. कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' का जीवन परिचय देते हुए इनके साहित्य योगदान को स्पष्ट कीजिए।

उ०– जीवन परिचय– प्रसिद्ध रिपोर्ताज लेखक कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' का जन्म 29 मई सन् 1906 ई० को देवबन्द, (सहारनपुर) में एक साधारण ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता पं० रमादत्त मिश्र बहुत मृदु स्वभाव के थे, लेकिन माताजी कठोर हृदय वाली थीं। इन्होंने इसी विषय में अपने एक संस्मरण में भी लिखा है—"पिता जी दूध मिश्री थे, तो माँ लाल मिर्च।" परिवार की आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण इनकी प्रारम्भिक शिक्षा ठीक प्रकार नहीं हो पाई। पढ़ने की उम्र में ही देशानुराग की भावना इनके मन में जाग्रत हो गई। खुर्जा के संस्कृत विद्यालय में प्रसिद्ध राष्ट्र-नेता मौलाना आसफ अली के भाषण का इन पर गहरा प्रभाव हुआ और ये स्वतन्त्रता आन्दोलन में कूद पड़े तथा आजीवन देश-सेवा में लगे रहे। इसी कारण कई बार इन्हें जेल-यात्रा भी करनी पड़ी। ये सदैव राष्ट्र-नेताओं के सम्पर्क में रहते थे। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद जीवन-पर्यन्त ये पत्रकारिता में संलग्न रहे। इन्होंने कई स्वतन्त्रता सेनानियों के संस्मरण लिखे है, जिनमें भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास का यथार्थ चित्रण हुआ है। 9 मई सन् 1995 ई० को इस देशानुरागी तथा महान् साहित्यकार ने अन्तिम साँस ली।

साहित्यिक योगदान– हिन्दी के श्रेष्ठ रेखाचित्रकारों, संस्मरणकारों और निबन्धकारों में प्रभाकर जी का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी रचनाओं में कलागत आत्मपरकता, चित्रात्मकता और संस्मरणात्मकता को ही प्रमुखता प्राप्त हुई है। पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रभाकर जी को अभूतपूर्व सफलता मिली। पत्रकारिता को इन्होंने स्वार्थसिद्धि का साधन नहीं बनाया, वरन् उसका उपयोग उच्च मानवीय मूल्यों की स्थापना में ही किया। प्रभाकर जी ने हिन्दी गद्य को एक नई शैली दी। इनकी यह शैली नए मुहावरों और लोकोक्तियों से युक्त है। अपने फुटकर लेखों द्वारा इन्होंने मानवीय आदर्शों की स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इनका यही आदर्श पत्रकारिता के क्षेत्र में भी दिखाई देता है। स्वतंत्रता-आन्दोलन के दिनों में इन्होंने स्वतन्त्रता सेनानियों के अनेक मार्मिक संस्मरण लिखे। इन संस्मरणों में भारत के स्वाधीनता संग्राम का इतिहास स्पष्ट हुआ है और इनमें युगीन परिस्थितियों और समस्याओं का सजीव चित्रण भी हुआ है। इस प्रकार संस्मरण, रिपोर्ताज और पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रभाकर जी की सेवाएँ चिरस्मरणीय हैं।

2. कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' की कृतियों का वर्णन कीजिए।

उ०– कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' जी की मुख्य कृतियाँ निम्नलिखित हैं—

रेखाचित्र– माटी हो गई सोना, नई पीढ़ी के विचार, जिन्दगी मुस्कराई, भूले-बिसरे चेहरे।

संस्मरण– दीप जले शंख बजे।

ललित निबन्ध– क्षण बोले कण मुस्काए, बाजे पायलिया के घुँघरू।

सम्पादन– विकास, नया जीवन (समाचार-पत्र)

लघुकथा– धरती के फूल, आकाश के तारे।

यात्रा-वृत्त– हमारी जापान यात्रा।

अन्य कृति– 'महके आँगन चहके द्वार'।

3. कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' की भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।

उ०– प्रभाकर जी का गद्य इनके जीवन में ढलकर आया है। इनकी शैली में इनके व्यक्तित्व की दृढ़ता, विचारों की सत्यता, सहजता, उदारता तथा मानवीय करुणा की झलक मिलती है। प्रभाकर जी की भाषा सामान्य रूप से तत्सम शब्द-प्रधान, शुद्ध और साहित्यिक खड़ी बोली है। उसमें स्पष्टता, सरलता और सुबोधता है। पाठक सहज प्रवाह के साथ उसका आनन्द लेता है। भाषा को सजीव, गतिशील, व्यावहारिक और स्वाभाविक बनाने के लिए प्रभाकर जी ने अन्य भाषाओं के शब्दों का भी समुचित प्रयोग किया है। मुहावरों, लोकोक्तियों के प्रयोग से प्रभाकर जी की भाषा में अभिव्यंजना का सौन्दर्य उत्पन्न हुआ है। अनेक स्थलों पर आलंकारिक भाषा ने कविता जैसा सौन्दर्य उत्पन्न कर दिया है।

छोटी-से-छोटी बात को लिखकर दीप्तिमय बना देना ही शैली की विशेषता है। हिन्दी में ऐसी शैली कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के पास है। प्रभाकर जी का गद्य अधिकांश रूप में भावात्मक है। अपने संस्मरणों, रेखाचित्रों आदि में प्रभाकर जी एक कवि के

रूप में अपनी बात कहते हुए दिखाई देते हैं। भावुकता और मार्मिकता इनके शब्द-शब्द में विद्यमान है। अनेक स्थलों पर विवरण देने के उद्देश्य से प्रभाकर जी का गद्य वर्णनात्मक हो गया है। ऐसे स्थलों पर प्रयुक्त की गई भाषा पर्याप्त सरल है। अपने वर्णन द्वारा प्रभाकर जी ऐसे स्थलों का सजीव चित्र-सा प्रस्तुत कर देते है। नाटकीयता से रोचकता और सजीवता का गुण उत्पन्न होता है। गम्भीर स्थलों के बीच में नाटकीयता माधुर्य का संचार करती है। प्रभाकर जी ने अपने गद्य में नाटकीय शैली का भरपूर प्रयोग किया है। इन्होंने अपने कथनों में माधुर्य की सृष्टि की है। प्रभाकर जी के वाक्य-विन्यास में विविधता है। भावुकता के क्षणों में इन्होंने व्याकरण के कठोर बन्धन से मुक्त कवित्वपूर्ण वाक्य-रचना भी की है। निश्चय ही ये हिन्दी के एक मौलिक शैलीकार हैं।

4. कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' का हिन्दी साहित्य में क्या स्थान है?

उ०– कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' मौलिक प्रतिभासम्पन्न गद्यकार थे। इन्होंने हिन्दी गद्य की अनेक नई विधाओं पर अपनी लेखनी चलाकर उसे समृद्ध किया है। पत्रकारिता एवं रिपोर्ताज के क्षेत्र में भी इनका अद्वितीय स्थान है। हिन्दी साहित्य-जगत में अपना अलग स्थान रखने वाले और अनेक दृष्टियों से एक विशिष्ट गद्यकार के रूप में प्रतिष्ठित इस महान् साहित्यकार को मानव-मूल्यों के सजग प्रहरी के रूप में सदैव याद किया जाएगा।

व्याख्या सम्बन्धी प्रश्न–

1. निम्नलिखित गद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) मैंने भावना .... बिखेर सकती है।

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्य पुस्तक 'गद्य गरिमा' के कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' द्वारा लिखित 'राबर्ट नर्सिंग होम में' नामक रिपोर्ताज से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यावतरण में लेखक ने विश्वप्रसिद्ध नारी मदर टेरेजा के सेवाभाव का वर्णन किया है।

व्याख्या– लेखक कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने मदर टेरेजा का वर्णन करते हुए कहा है कि मदर टेरेजा को देखकर उनके मन में श्रद्धाभाव उत्पन्न हुए और उन्होंने श्रद्धा के साथ सोचा कि कोई स्त्री, जो बिना शिशु को जन्म दिए माता का पद प्राप्त कर सकती है और मात्र तीस रुपए के मासिक वेतन जो साधारण जीवन निर्वाह करने के लिए भी पर्याप्त नहीं है में पिछले बीस वर्षों से दिन-रात अपनी जन्मभूमि को त्यागकर अपनी कर्मभूमि भारत में सेवा करने में मग्न है, केवल वह स्त्री (नारी) ही असाध्य रोगों (दु:खों) से तड़पते हुए रोगियों के जीवन में हँसी का संचार प्रवाहित कर सकती है अर्थात् केवल वह स्त्री (मदर टेरेजा) ही निस्वार्थ भाव से सेवा करते हुए दुखों-दर्दों से तड़पते हुए असंख्य रोगियों को सात्वना देते हुए उनके जीवन में आशा की किरणें जगमगा सकती है।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. यहाँ लेखक ने मदर टेरेजा के स्वरूप का सुंदर वर्णन किया है। **2. भाषा–** भावाभिव्यक्ति में समर्थ खड़ी बोली। **3. शैली–** भावात्मक। **4. वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **5. शब्द-चयन–** विषय वस्तु के अनुरूप।

(ख) मैंने बहुतों को .... सुरक्षित रहे।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश में विश्व-प्रसिद्ध मानव-सेविका मदर टेरेजा की सेवा-भावना एवं आत्म-त्याग की मनोरम झाँकी प्रस्तुत की गयी है और साथ ही उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व की प्रशंसा भी की गयी है।

व्याख्या– लेखक कहता है मैंने संसार में ऐसे बहुत-से व्यक्तियों को देखा है, जो अपनी विशिष्ट विशेषताओं से लोगों को अपना बना लेते हैं एवं अपार यश अर्जित करते हैं। कुछ लोग अपने रूप-सौन्दर्य द्वारा लोगों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं तो कुछ ऐसे भी लोग होते हैं, जिनके पास अपार धन होता है और वे उसके बल पर लोगों पर अपना प्रभाव जमाते हैं या दूसरों को आत्मीय बना लेते हैं। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जिनमें कोई विशिष्ट गुण होता है और वे अपने गुणों द्वारा बहुत कुछ प्राप्त कर लेते है; परन्तु आज लेखक ने एक ऐसी अद्‌भुत नारी को देखा, जिसने मानवता के लिए सर्वस्व समर्पित करके दूसरों की श्रद्धा और आदर को प्राप्त किया है। लेखक ने आज समर्पण और प्राप्ति का अद्‌भुत और सुन्दर दृश्य अपनी आँखों से देखा था। एक ओर वह पीड़ित रोगी था, जिसने अपनी पीड़ा से मदर टेरेजा जैसी महान् नारी का प्यार और सद्‌भाव प्राप्त किया था तो दूसरी ओर मदर टेरेजा थीं, जिनका समर्पण रोगियों की पीड़ा को दूर करने के लिए सुरक्षित था।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. भाषा– परिमार्जित, अलंकृत, भावमयी और साहित्यिक। **2. शैली–** भावात्मक। **3. वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **4. शब्द-चयन–** विषय-वस्तु के अनुरूप। **5. भावसाम्य–** वस्तुत: प्रेम एवं सेवा मनुष्य का सबसे उच्च लक्ष्य है। व्यक्ति की महानता की यही एकमात्र कसौटी है कि उसके हृदय में मानव-मात्र के लिए कितना प्रेम है। कहा जाता है कि एक रत्ती भर सच्चा प्रेम सम्पूर्ण शरीर को स्वर्ण का ही बना डालता है—

सबै रसायन मैं किया, प्रेम समान न कोय।
रत्ती तन में संचरै, सब तन कंचन होय॥

(ग) ऊपर के बरामदे .... जानना भी तो नहीं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यावतरण में राबर्ट नर्सिंग होम की सबसे वृद्ध मदर मार्ग्रेट के सेवाभावी जादुई व्यक्तित्व का आलंकारिक वर्णन किया गया है।

व्याख्या– लेखक कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' नर्सिंग होम की सबसे वृद्ध मदर मार्ग रेट के जादुई व्यक्तित्व के प्रभाव का वर्णन करते हुए कहते हैं कि मैं जब ऊपर के बरामदे में खड़ा था तो मैंने एक जादू की पुड़िया देखी, जो जीती-जागती थी अर्थात् मैंने जादूगर की पुड़िया के समान एक व्यक्तित्व को देखा। हमने किस्से-कहानियों में कामरूप के जादू के विषय में अनेक विस्मयकारी बातें सुनी हैं कि वहाँ के जादूगर अपने जादू से आदमी को मक्खी बना दिया करते थे। इस जादू के विषय में हमने केवल सुना है, अपनी आँखों से उसे देखा कभी नहीं। मगर मैंने मदर मार्ग्रेट के रूप में एक ऐसी अद्‌भुत जादूगरनी को देखा है, जो अपने ममतामयी, दयालु और सेवाभावी व्यक्तित्व के जादू से मक्खी को आदमी बना देती है। अर्थात् वह मृतप्राय एक दीन-हीन रोगी में जीवन की आशा का संचार करके उसे आदमी बना देती हैं, जिस पर इतनी बड़ी संख्या में मक्खियाँ भिनभिनाती रहती हैं कि वह कोई व्यक्ति न होकर मक्खियों का बड़ा छत्ता हो। जिस रोगी को सामान्य व्यक्ति हाथ लगाना तो दूर, देखना तक न चाहता हो, ऐसी मक्खीमय रोगी को अपनी सेवा-शुश्रूषा से स्वस्थ हँसता-खिलता व्यक्ति बना देने का जादू केवल मदर मार्ग्रेट के पास है। यद्यपि उनकी शारीरिक सामर्थ्य कुछ भी नहीं है। उनका कद इतना छोटा है कि देखने में वह गुड़िया जैसे लगती हैं, किन्तु उस गुड़िया जैसे शरीर में बिजली जैसी चुस्ती और फुर्ती है। उनके व्यवहार में ऐसी मृदुता एवं मस्ती है कि उनको देखकर ही व्यक्ति के मन का अवसाद दूर हो जाता है। उनकी हँसी ऐसी निर्मल और धवल कि जैसे मोतियों की कोई बोरी खुलकर बिखर गई हो। उनके काम में ऐसी निपुणता और सन्तुलन है कि त्रुटि की वैसे ही कोई गुंजाइश नहीं। मानो वह व्यक्ति न होकर कोई मशीन हो। मशीन अपने कार्य में कोई त्रुटि कर सकती है किन्तु मदर मार्ग्रेट कोई त्रुटि करें, ऐसा सम्भव नहीं। वे भारत में पिछले चालीस वर्षों से इसी प्रकार नि:स्वार्थ भाव से मानव सेवा कर रही हैं। इस मानव-सेवा में वे ऐसी आनन्दमग्न हैं कि उसके सम्मुख उन्हें जीवन की कोई इच्छा अथवा लालसा तुच्छ दिखाई देती है। मानव-सेवा के आनन्द रस को त्यागकर वह अपने जीवन में किसी अन्य वस्तु की प्राप्ति की लालसा तो दूर उसके विषय में सोचना अथवा जानना भी नहीं चाहती।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. लेखक ने मानव-सेवा को सबसे बड़े जादू के रूप में निरूपित करके उसका महिमा मण्डन किया है, जो सब प्रकार से सराहनीय है। **2. भाषा–** भावाभिव्यक्ति में समर्थ सरल खड़ीबोली। **3. शैली–** आलंकारिक एवं वर्णनात्मक।

(घ) यह अनुभव .... सर्वोत्तम जोत है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– लेखक ने प्रस्तुत गद्यांश में राबर्ट नर्सिंग होम ने समर्पित भाव से सेवारत और सर्वाधिक वृद्धा नर्स मार्ग्रेट के मुसकानमय जीवन का चरित्रांकन किया है।

व्याख्या– मदर मार्ग्रेट इन्दौर के नर्सिंग होम की सर्वाधिक वृद्धा नर्स हैं। लेखक ने वहाँ रहकर देखा कि उस नर्सिंग होम में जो जितनी वृद्धा नर्स है, वह उतनी ही अधिक सेवा-परायण, कर्त्तव्यपरायण, क्रियाशील, प्रसन्न और मुसकानमीय है। उसके चेहरे पर उतनी ही अधिक खिलखिलाहट देखने को मिलती है। उनके अन्दर अलौकिक प्रकाश है, जिससे उनका जीवन अत्यधिक सजग है। ये सब सेवापरायण जीवन के प्रकाश को फैलाने वाले हैं। इनमें अपूर्व विश्वास भरा है। इनका जीवन एकाग्र साधना का जीवन है। इस नर्सिंग होम में रहने वाली नर्सें यद्यपि भिन्न-भिन्न स्थानों की है, अलग-अलग भाषाएँ बोलती हैं, किन्तु सबके हृदय में जो एक ही अद्‌भुत ज्योति प्रज्वलित है, वह है सेवा और प्यार की ज्योति। यही ज्योति सर्वोत्तम ज्योति है, जो सम्पूर्ण विश्व को आलोकित कर देती है।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. भाषा– परिमार्जित साहित्यिक खड़ी बोली। **2. शैली–** भावात्मक और विचारात्मक शैली का समन्वित रूप। **3. वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **4. शब्द-चयन–** विषय-वस्तु के अनुरूप। **5.** लेखक ने नर्सों के जीवन के नि:स्वार्थ सेवाभाव को अंकित किया है। **6. भावसाम्य–** संस्कृत के किसी छवि ने सेवाधर्म की गहन गम्भीरता इस प्रकार प्रकट की है– **'सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्य।'**

(ङ) वह हम लोगों .... नहीं उलझना है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यावतरण में लेखक ने सिस्टर क्रिस्ट हैल्ड का वर्णन किया है जिसका तबादला धानी के भील सेवाकेंद्र में होने पर वह जाने से पहले सबसे मिलने आती है।

व्याख्या– लेखक कहते हैं कि सिस्टर क्रिस्ट हैल्ड का तबादला धानी के भील सेवाकेंद्र जैसी जगह पर होने पर भी कपूर जैसे गोरे वर्ण वाली वह स्त्री बहुत खुश थी। राबर्ट नर्सिंग होम से जाने से पहले वह लेखक और उसकी मित्र (रोगिणी) से मिलने

आई। जिस प्रकार वह पहले आती थी, हँसती व मुस्कुराती हुई। उस स्थान से जाने का दु:ख उसके मुख पर चिह्नित नहीं था। उसके हृदय में एक नए स्थान को देखने की उमंग थी, परन्तु उसका जाना लेखक को बुरा लग रहा था। परन्तु उसे इसकी परवाह न थी। लेखक के मित्र से मिलकर वह दूसरे रोगियों से विदा लेने के लिए चली गई। इधर-उधर जाते समय सिस्टर क्रिस्ट हैल्ड कई बार लेखक के कमरे के सामने से गुजरी, परन्तु वह दोबारा लेखक के कमरे में उनसे मिलने नहीं आई। लेखक ने स्वयं से कहा कि उसके बारे में कोई कितना ही सोचकर उलझता रहें, परन्तु उसे नहीं उलझना है वरन् उसे तो अपनी नि:स्वार्थ भाव से सेवा करने के कार्य में लीन रहना है।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. यहाँ लेखक ने सिस्टर क्रिस्ट हैल्ड की सुंदरता तथा स्वभाव का वर्णन किया है। **2. भाषा–** भावाभिव्यक्ति खड़ी बोली। **3. शैली–** आलंकारिक एवं वर्णनात्मक।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक वाक्यों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) लम्बा मुँह अच्छा नहीं लगता, बीमार के पास लम्बा मुँह नहीं।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'गद्य गरिमा' से संकलित 'राबर्ट नर्सिंग होम में' नामक रिपोर्ताज से अवतरित है। इसके लेखक 'कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' जी है।

प्रसंग– इस सूक्ति में लेखक ने बताया है कि रोगी के पास निराश और दु:खी चेहरा लेकर नहीं जाना चाहिए।

व्याख्या– राबर्ट नर्सिंग होम में मदर टेरेजा रोगियों के पास स्थित उनके निराश और दु:खी परिजनों को देखकर उन्हें एक मधुर डाँट लगाती हुई कहती हैं कि रोगी के पास निराशा और दु:खी लटका हुआ चेहरा लेकर नहीं जाना चाहिए; क्योंकि इसका रोगी के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। परिजनों को निराश और दु:खी देखकर रोगी समझता है कि उसका रोग असाध्य है और वह अब ठीक नहीं हो सकता। रोगी को इस प्रकार से सोचना उसके लिए घातक होता है। रोगी की इच्छा-शक्ति उसके उपचार से कहीं अधिक उसको स्वस्थ रखने में सहायक होती है और परिजनों की निराशा उसकी इसी इच्छा-शक्ति को नष्ट कर डालती है। इसलिए टेरेजा परिजनों को निर्देश देती हैं कि रोगी के पास लम्बा मुँह (निराश चेहरा) अच्छा नहीं लगता; अत: कोई भी परिजन यहाँ मुँह लटकाए नहीं होना चाहिए।

(ख) मनुष्य-मनुष्य के बीच मनुष्य ने ही कितनी दीवारें खड़ी की है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने इस सूक्ति में समाज में भेदभाव और छुआछूत की नित नयी उभरती दीवारों की ओर संकेत किया है।

व्याख्या– एक समय की बात है, जब लेखक ने फ्रांस की पुत्री मदर टेरेजा से पूछा था कि वह जर्मनी की पुत्री क्रिस्ट हेल्ड के साथ इतने प्यार से कैसे रहती हैं, जब कि हिटलर ने मदर की मातृभूमि फ्रांस को पद दलित किया था। इस पर मदर टेरेजा ने उत्तर दिया कि हिटलर बुरा था, उसने लड़ाई छेड़ी थी, पर उससे इस लड़की का घर भी ढह गया था और मेरा भी; हम दोनों एक हैं। यह उत्तर सुनकर लेखक ने सोचा कि मनुष्य ने ही मनुष्य-मनुष्य के बीच जाति, धर्म, वर्ग तथा भेदभाव की फौलादी दीवारें खड़ी की हैं, जब कि ईश्वर ने उनमें कोई भेद नहीं किया। ईश्वर ने तो सभी को समान ही बनाया है।

(ग) यह किस दीपक की जोत है? जागरूक जीवन की! सेवा निरत जीवन की! अपने विश्वासों के साथ एकाग्र जीवन की।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में लेखक ने राबर्ट नर्सिंग होम की सबसे बूढ़ी मदर मार्गरेट की सेवा के प्रति समर्पण भावना के साथ-साथ उसकी जिजीविषा शक्ति का वर्णन किया है।

व्याख्या– मदर मार्गरेट नर्सिंग होम की सबसे बूढ़ी परिचारिका हैं, किन्तु वे सबसे अधिक उत्साही, सेवा में समर्पित और जीवन और जीवन से निराश रोगियों के जीवन की ज्योति जलाने में सर्वाधिक सक्षम। लेखक उन्हें देखकर आश्चर्यचकित होता है कि मार्गरेट नामक यह दीपक, जो स्वयं बुझने के नजदीक है, कितने शान्त और निश्चल तरीके से जलता हुआ लोगों के जीवन की ज्योति जला रहा है। वास्तव में यह किसी जादू से कम नहीं। लेखक यह निर्णय नहीं कर पाता कि मार्गरेट की इस प्रबल जीवन-ज्योति का आखिर रहस्य क्या है— जीवन के प्रति उनकी अत्यधिक सजगता, जीवन की लक्ष्यशीलता अथवा मानवमात्र की सेवा के प्रति उनकी समर्पणशीलता?

(घ) भाषा के भेद रहे हैं, रहेंगे भी, पर यह जोत विश्व की सर्वोत्तम जोत है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में राबर्ट नर्सिंग होम में कार्यरत अत्यन्त बूढ़ी नर्स मदर मार्गरेट की भेदभावरहित निश्छल सेवा और रोगियों के मध्य बाँटती स्नेहमयी मुस्कान का आलंकारिक वर्णन किया गया है।

व्याख्या– मदर मार्गरेट नर्सिंग होम की सबसे बूढ़ी नर्स हैं, किन्तु सबसे अधिक चुस्त, क्रियाशील और सेवा को समर्पित हैं।

वह विदेशी हैं और उनकी हिन्दी भाषा का उच्चारण भी अंग्रेजी से बहुत अधिक प्रभावित है, किन्तु इसका उनके कार्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। वह देश-जाति और भाषा के भेदभाव के बिना रोगियों की पूरी तन्मयता से सेवा करती हैं और अपने मृदु स्नेह की चुटकी से जीवन से निराश हो चुके रोगियों में जीवन की ऐसी ज्योति जगाती हैं मानो किसी ने बुझते दीपक में तेल उँड़ेल दिया हो। निस्सन्देह यह विश्व की सर्वोत्तम ज्योति है। संसार के लोगों में देश-भाषा-जाति के भेद हैं और आगे भी रहेंगे, किन्तु मदर मार्गरेट की यह स्नेह-ज्योति आजीवन रोग शैया पर बुझने को उद्यत मानव-दीपों में जीवनाशा का स्नेह भरती रहेगी।

(ङ) हम भारतवासी गीता को कण्ठ में रखकर धनी हुए, पर तुम उसे जीवन में ले कृतार्थ हुईं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में लेखक ने सिस्टर क्रिस्ट हैल्ड की सेवा एवं कर्म-भावना पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या– लेखक सिस्टर क्रिस्ट हैल्ड को संबोधित करते हुए कहता है कि गीता में निष्काम कर्म का उपदेश है, जबकि भारतवासी कर्म का क्रियात्मक तथा व्यावहारिक रूप से पालन नहीं कर रहे हैं। गीता का कर्म-सन्देश हमारे दैनिक जीवन में न आकर केवल कण्ठ तक सीमित है, जबकि आप रोगियों की रात-दिन सेवा कर कर्म की भावना को साकार रूप से ग्रहण कर रही हैं, निश्चय ही आप सेवा करके धन्य हैं।

विशेष– भारतवासियों की कर्म के प्रति उदासीनता की ओर संकेत किया गया है।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न–

1. 'राबर्ट नर्सिंग होम में' पाठ का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पाठ 'राबर्ट नर्सिंग होम में' 'कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' द्वारा लिखित रिपोर्ताज है। इसमें लेखक ने इन्दौर के राबर्ट नर्सिंग होम की साधारण घटना को अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। लेखक ने इस रिपोर्ताज में नर्सिंग होम में कार्यरत तीन परिचारिकाओं मदर मार्गरेट, मदर टेरेजा एवं सिस्टर क्रिस्ट हैल्ड का परिचय एवं उनके सेवाभाव का वर्णन किया है। घटना का चित्रण इतने मार्मिक रूप में हुआ है कि वह सच्चे धर्म अर्थात् मानव-सेवा और समता की एक अद्भुत मिसाल बन गया है। लेखक 'प्रभाकर' जी कहते हैं कि जब वह इन्दौर गए तो जिनके यहाँ वह रुके अर्थात् जिनके घर अतिथि बनकर गए थे उनके उस मित्र के रोग के लपेट में आ जाने के कारण उन्हें राबर्ट नर्सिंग होम ले जाना पड़ा तथा उनकी सेवा का उत्तरदायित्व लेखक पर आ गया। यह घटना सितंबर 1951 की है।

रोग पूरे वेग में था और सभी लोग चिन्तित थे, वातावरण रोगी की स्थिति के कारण सुस्त था अचानक लेखक ने देखा सफेद वस्त्र धारण किए हुए पैतालींस वर्ष की, गोरे वर्ण की एक नारी कमरे में आई जिसका चेहरा सूर्य की किरणों के समान लाल तथा जिसका कद लंबा था। उसने कमरे में आते ही लेखक से कहा कि रोगी के पास निराश मुद्रा अच्छी नहीं लगती, इसका रोगी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उनके स्वर में अधिनायक या अधिकारी के समान आदेश न था वरन् एक माँ के समान ममता थी। वास्तव में वह माँ ही थी, उस नर्सिंग होम की अध्यक्षा मदर टेरेजा। जिनकी मातृभूमि फ्रांस थी परन्तु उनकी कर्मभूमि भारत थी, जो युवावस्था से उम्र के ढलाव तक रोगियों की सेवा में लीन थी। इसके सिवा उनके पास कोई काम न था। उनका परम कर्त्तव्य बस यही था— सेवाभाव।

उन्होंने अपने गोरे हाथो ंसे रोगी के गालों को थपथपाया जिससे उसके मुख पर हँसी की लहर दोड़ी और वातावरण का बोझिलपन कुछ कम हो गया। तभी अचानक डॉक्टर ने कमरे में प्रवेश किया। मदर ने डॉक्टर से कहा— डॉक्टर तुम्हारा रोगी हँस रहा है। डॉक्टर ने अपने अनुभवों के आधार पर उत्तर दिया, क्योंकि मदर तुम यह हँसी बिखेरती रहती हो।

लेखक कहता है कि मैंने श्रद्धाभाव से सोचा जो नारी बिना किसी शिशु को जन्म दिए मदर का पद प्राप्त कर सकती है और बहुत कम वेतन में पिछले बीस वर्षों से दिन-रात रोगियों की सेवा कर रही है केवल वह ही बीमार-पीड़ितों के मुख पर हँसी ला सकती है।

तीसरे पहर जब थर्मामीटर लिए मदर टेरेजा आई तो उनके साथ विशिष्ट सफेद वस्त्रों में एक नवयुवती भी थी। उसका नाम क्रिस्ट हैल्ड था जो जर्मन देश की निवासी थी। उसका रूप साक्षात् देवी के समान था। लेखक के कहने पर कि जर्मन देश महान् है जो हिटलर जैसे तानाशाह को भी जन्म दे सकता है और उसके जैसी सेवा में लीन बालिका को भी, तो वह गर्व से अभिभूत हो बोली— यस-यस। उसके दूसरे कमरे में जाने के बाद लेखक ने मदर टेरसा से कहा कि आप इस जर्मन देश की लड़की के साथ प्यार से रहती है तो वह बोली हम दोनों ईश्वर के लिए कार्य करते है। हिटलर के फ्रांस को बरबाद करने के बारे में जिक्र करने पर वह कहती है कि हिटलर एक निरंकुश शासक था जिसकी लड़ाई में मेरा और इस लड़की (क्रिस्ट हैल्ड) का घर ढह गया था। अब हम दोनों एक हैं। मदर के जाने के बाद लेखक सोचता रहा कि मनुष्य ने ही अपने चारों तरफ दीवारें बनाई है, ईश्वर ने तो सबको समान ही बनाया था। क्रिस्ड हैल्ड ने अभी पाँच वर्षों के लिए ही सेवा का व्रत लिया था। रोगिणी के काले

बालों को देखकर उसे अपने पिता की स्मृति हो आई, जिससे उसकी आँखे नरम हो गई। वह अकसर हिन्दी, अंग्रेजी व जर्मन भाषा के शब्दों को मिलाकर बोलती थी।

लेखक ने मदर टेरेजा से वार्तालाप जारी रखा— कि क्या वह अपने देश से आने के बाद फिर कभी वहाँ गई थी। मदर ने बताया कई वर्ष पूर्व विश्वभर के पूजा-गृहों का सम्मेलन फ्रांस में हुआ था। भारत से भी दो मदर गई थी, जो फ्रांस की ही निवासी थी। उनके माता-पिता उनसे मिलने आए परंतु वे उनको नहीं पहचान सके थे। अंत में उनका नाम जानकर वे उनसे मिले। मदर टेरेजा रोगी को सांत्वना देती थी व उनके लिए विनती करती।

लेखक ने वहाँ होम की सबसे वृद्ध मदर मार्गरेट को देखा, जो छोटे कद की थी परंतु उनकी चाल में गजब की चुस्ती थी। जो कार्य करने में बहुत तेज थी, जो पिछले चालीस वर्षों से भारत में सेवा कर रही थीं। वह ऑपरेशन के लिए आए रोगी को अपनी ही अलग शैली में सांत्वना देती थी। जो रोगी को कहती थी—जि-उती, जि-उती अर्थात् जी उठी। लेखक कहते हैं कि मैने वहाँ रहकर ही देखा वहाँ जो जितनी वृद्धा नर्स है उतनी ही अधिक सेवा पारायण व कर्त्तव्यनिष्ठ, क्रियाशील, प्रसन्न और मुस्कानमयी है। वहाँ रहने वाली नर्सें यद्यपि अलग-अलग देशों की हैं, वे भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलती हैं किन्तु उन सबके हृदय में जो एक ही जोत प्रज्वलित है, वह सेवा और प्रेमाभाव की ज्योति है। सिस्टर क्रिस्ट हैल्ड का तबादला धानी के भील सेवाकेंद्र जैसे निर्जन स्थान पर भी हो जाने पर उसके मुख पर उस स्थान से जाने का कोई दु:ख का लक्षण न था। वह प्रसन्न थी, सदैव की तरह। वह जाने से पहले सबसे मिलने आई। लेखक को उसका जाना अच्छा न लगा था परन्तु वह तो नि:स्वार्थ भाव से सेवा करने को तत्पर थी। तब लेखक का मन सम्पूर्ण मदर-सिस्टर वर्ग के प्रति श्रद्धाभाव से भर गया क्योंकि श्रीमद्भागवत गीता में वर्णित निष्काम कर्म का उपदेश तो भारतवासियों के केवल कण्ठ तक ही सीमित रह गया है, जबकि वे रोगियों की सेवा कर कर्म की भावना को साकार रूप में ग्रहण कर रही हैं। निश्चय ही वे धन्य हैं।

2. पाठ के आधार पर एक आदर्श नर्स की विशेषताएँ बताइए।

उ०– एक आदर्श नर्स (परिचारिका) होने के लिए मृदु, सहनशील तथा विनम्र होना चाहिए। वह सेवापरायण, कर्त्तव्यपरायण, क्रियाशील, प्रसन्न और मुसकानमयी हो जिससे वह रोगी को सांत्वना देकर उसे शांति प्रदान कर सके।

3. 'जो बिना प्रसव किए ही माँ बन सकती है' इस कथन से लेखक का क्या तात्पर्य है?

उ०– यहाँ लेखक का तात्पर्य मदर टेरेजा से है जो अपने नि:स्वार्थ सेवाभाव के कारण बिना किसी शिशु को जन्म दिए, असंख्य लोगों की माँ का पद पा गई थी। मदर टेरेजा की मानवता सारे संसार में प्रसिद्ध है। उन्होंने असंख्य रोगियों की एक माँ के समान देखभाल व सेवा की। उनकी ममतामयी मुस्कान से ही रोगी अपनी पीड़ा भूल जाते थे।

4. पाठ से छाँटकर ऐसे पाँच उदाहरण दीजिए, जिनमें कविता जैसी आलंकारिक भाषा का प्रयोग किया गया हो। (उदाहरण– सूखे अधरों पर चाँदी की एक रेखा।)

उ०– प्रस्तुत पाठ 'राबर्ट नर्सिंग होम में' लेखक ने आलंकारिक भाषा का प्रयोग किया है जिसके कुछ उदाहरण निम्न हैं—

(i) उन्होंने रोगी के दोनों म्लान कपोल अपने चाँदनी-चर्चित हाथों से थपथपाए।

(ii) शायद चाँदनी को दूध में घोलकर ब्रह्मा ने उसका निर्माण किया हो।

(iii) मदर के स्वर में मिश्री ही मिश्री, पर मिश्री कूजे की थी।

(iv) हँसी उनकी यों कि मोतियों की बोरी खुल पड़ी और काम यों मशीन मात माने।

(v) बूढ़ी मदर की हँसी के दीपक ने झपकी तक नहीं खाई।

5. मदर टेरेजा और लेखक की बातचीत के आधार पर टिप्पणी लिखिए।

उ०– लेखक ने मदर टेरेजा और क्रिस्ट हैल्ड को एक साथ प्रेम से देखकर मदर टेरेजा से पूछता है आप इस जर्मन लड़की के साथ प्यार से रहती है तो मदर टेरेजा कहती हैं हाँ क्योंकि वे दोनों ईश्वर के लिए काम करती है। लेखक के मदर टेरेजा को टिटोलने पर कि जर्मन के तानाशाह हिटलर ने मदर के देश फ्रांस को बरबाद किया है तब मदर उत्तर देती हैं कि उस युद्ध में क्रिस्ट हैल्ड और मेरा दोनों का घर बरबाद हुआ था। इसलिए हम दोनों समान है लेखक मदर से पूछता है कि क्या वह अपने घर दोबारा गई है, मदर टेरेजा बताती है कि कई वर्ष पहले फ्रांस में विश्वभर के पूजा-ग्रहों के सम्मेलन में भारत से भी जो मदर गई थीं, जो फ्रांस से ही थी। उनकी माताएँ उनसे मिलने जहाज पर आईं पर वे अपनी पुत्रियों को पहचान नहीं पाई और उनसे उनके नाम जानने के बाद ही उनके गले मिलीं। इस कहानी को सुनने के बाद मदर चली गई जिससे लेखक ने महसूस किया कि अपनी माताओं द्वारा पहचानी न जाने वाली पुत्रियों में से मदर अवश्य ही एक होंगी। लेखक मदर से बस यह जान सका, कि उनके घर से चिट्ठी आने पर वे भारत की कोई फोटो अपने घर भेज देती है।

पाठ्येतर सक्रियता

उ०– स्वयं करें।

4 अशोक के फूल

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 46 का अवलोकन कीजिए।

लेखक पर आधारित प्रश्न–

1. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का जीवन-परिचय देते हुए हिन्दी साहित्य में उनका स्थान स्पष्ट कीजिए।

उ०– जीवन परिचय– शुक्लोत्तर युग के सुप्रसिद्ध लेखक आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का जन्म बलिया जिले के 'दूबे का छपरा' नामक ग्राम में सन् 1907 ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम अनमोल द्विवेदी तथा माता का नाम ज्योतिकली देवी था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के ही स्कूल में हुई। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से इन्होंने साहित्य और ज्योतिषाचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की। 'शान्ति-निकेतन' में इन्होंने संस्कृत व हिन्दी के अध्यापक पद को सुशोभित किया। रवीन्द्रनाथ टैगोर से जब इनकी भेंट हुई, तब उन्हीं से साहित्य-सृजन की प्रेरणा इन्हें प्राप्त हुई। 'विश्व भारती' का सम्पादन इनकी ही लेखनी से हुआ। सन् 1949 ई० में लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा इनको 'डी. लिट्' की उपाधि प्रदान की गई। ये पंजाब विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष व प्रोफेसर भी रहे।

हिन्दी साहित्य में इनके महत्वपूर्ण योगदान के कारण भारत सरकार द्वारा इन्हें सन् 1957 ई० में 'पद्मभूषण' से सम्मानित किया गया। सन् 1958 ई० में ये राष्ट्रीय-ग्रन्थ न्यास के सदस्य बने।

'कबीर' नामक कृति पर इन्हें मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्रदान किया गया। 19 मई 1979 ई० को साहित्य का यह महान् साधक चिर-निद्रा में लीन हो गया।

हिन्दी साहित्य में स्थान– आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की कृतियाँ हिन्दी-साहित्य की शाश्वत् निधि हैं। इनके निबन्धों और आलोचनाओं में उच्चकोटि की विचारात्मक क्षमता के दर्शन होते हैं। हिन्दी-साहित्य जगत में इन्हें एक विद्वान समालोचक, निबन्धकार एवं आत्मकथा लेखक के रूप में ख्याति प्राप्त है। यह महान् व्यक्तित्व साहित्य-क्षेत्र में युगों-युगों तक अमर रहेगा।

2. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की भाषा-शैली की विशेषताएँ बताइए।

उ०– भाषा-शैली– द्विवेदी जी अपनी बात को सहज-स्वाभाविक रूप में कहते थे। इन्होंने ऐसी भाषा का प्रयोग नहीं किया, जो बनावटी अथवा प्रयासजन्य हो। इनकी भाषा में बोलचाल की भाषा की ही प्रधानता रही है। बोलचाल की भाषा के माध्यम से इन्होंने गम्भीर तथ्यों को भी आसानी से प्रस्तुत कर दिया है। द्विवेदी जी के स्मृति-कोश में शब्दों का असीम भण्डार था। इन्होंने सभी प्रचलित भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करके हिन्दी को समृद्ध बनाया। ऐसी शब्दावली को इन्होंने हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल बनाकर ही प्रयुक्त किया है। द्विवेदी जी ने संस्कृत शब्दावली को प्राय: तत्सम रूप में ही स्वीकार किया है; जैसे— प्रारम्भ, क्रियमाण, भण्डार, भग्नावशेष, औत्सुक्य, सलज्ज, अवगुण्ठन आदि। द्विवेदी जी ने अपनी अभिव्यक्ति को गहनता के साथ प्रस्तुत करने, भाषा को लोकप्रिय, सरस एवं मनोरंजक बनाने तथा अपने मत के समर्थन के लिए संस्कृत, हिन्दी, बाँग्ला आदि भाषाओं की सूक्तियों का प्रयोग भी पर्याप्त रूप में किया है। द्विवेदी जी ने लोकोक्तियों और मुहावरों का आवश्यकतानुसार प्रयोग किया है। मुहावरों और लोकोक्तियों को इन्होंने स्थानीय बोलचाल की भाषा से ग्रहण किया है। इससे इनकी भाषा की व्यंजना-शक्ति में व्यापकता आई है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने विभिन्न विषयों पर आधारित निबन्धों की रचना की है। इनके ये निबन्ध अनेक शैलियों में लिखे गए हैं। इनका व्यक्तित्व इनकी शैलियों में पूर्ण रूप से मुखरित हुआ है। द्विवेदी जी ने शोध और पुरातत्व से संबधित निबन्धों की रचना गवेषाणात्मक शैली में ही की है। इस शैली पर आधारित निबन्ध साहित्यिक गरिमा से परिपूर्ण है। साहित्य के विभिन्न पक्षों पर विचार करते समय तथा शब्दों के नाम-गोत्र, कुशल-क्षेम का पता लगाने में आचार्य द्विवेदी की गवेषणात्मकता विशेष रूप से दिखाई देती है। गम्भीर स्थलों पर जब प्रसंग में आत्मीयता उत्पन्न होती है अथवा जब द्विवेदी जी प्रसंग के साथ स्वयं को जोड़ना चाहते हैं, तब इनकी शैली आत्मपरक हो गई है। इस शैली में सहजता, सहृदयता और काव्यात्मकता के गुण विद्यमान हैं। द्विवेदी जी के साहित्यिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक निबन्धों में विचारात्मक शैली का विशेष प्रयोग हुआ है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की शैली के समान ही इनकी शैली गम्भीर तथा विचार-प्रधान है; किन्तु शुक्ल जी की शैली में जहाँ गुम्फन है, वही द्विवेदी जी की शैली में विशदता और व्यापकता है। द्विवेदी जी ने विषय को सरस बनाने के लिए कहीं-कहीं वर्णनात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। बौद्धिकता के कारण अनेक स्थलों पर द्विवेदी जी द्वारा प्रयुक्त वाक्यों ने सूत्रों का रूप धारण कर लिया है। सूत्रात्मक शैली के फलस्वरूप इनके द्वारा प्रयुक्त कथनों में विलक्षणता और चमत्कार की सृष्टि हुई है। द्विवेदी जी ने कहीं-

कहीं अभिव्यक्ति को चमत्कार प्रदान करने के लिए आलंकारिक शैली का भी प्रयोग किया है। साहित्यकारों और प्रचलित साहित्यिक प्रवृत्तियों पर मीठी चुटकियाँ लेते हुए द्विवेदी जी ने व्यंग्यात्मक शैली का भी प्रयोग किया है।

3. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की कृतियों का उल्लेख कीजिए।

उ०– हजारीप्रसाद द्विवेदी जी की मुख्य कृतियाँ निम्नलिखित हैं—

निबन्ध संग्रह– साहित्य के साथी, कुटज, अशोक के फूल, विचार और वितर्क, कल्पलता, आलोक-पर्व, विचार-प्रवाह आदि।

उपन्यास– पुनर्नवा, अनामदास का पोथा, चारू-चन्द्र लेख, बाणभट्ट की आत्मकथा।

सम्पादित ग्रन्थ– पृथ्वीराज रासो, सन्देश रासक, नाथ व सिद्धों की बानियाँ।

आलोचना– हिन्दी-साहित्य की भूमिका, नाथ सम्प्रदाय, सूरदास और उनका काव्य, सूर-साहित्य, हिन्दी-साहित्य का आदिकाल, कबीर, कालिदास की लालित्य-योजना, साहित्य का मर्म, भारतीय वाङ्मय।

अनूदित रचनाएँ– प्रबन्ध-कोष, पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह, विश्व-परिचय, प्रबन्ध-चिन्तामणि, मेरा बचपन, लाल कनेर आदि।

इतिहास– हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी साहित्य, हिन्दी साहित्य का आदिकाल।

व्याख्या सम्बन्धी प्रश्न–

1. निम्नलिखित गद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) लेकिन पुष्पित अशोक .... कर सकता हूँ।

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्यपुस्तक 'गद्य गरिमा' के 'आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी' द्वारा लिखित 'अशोक के फूल' नामक निबन्ध से अवतरित है।

प्रसंग– वर्तमान में भारतीय संस्कृति में अशोक के वृक्ष की उपेक्षा के माध्यम से आचार्य द्विवेदी जी ने प्राचीन संस्कृति के प्रति अपनी चिन्ता प्रस्तुत अवतरण में व्यक्त की है।

व्याख्या– द्विवेदी जी कहते हैं कि कभी भारतीय संस्कृति में अत्यधिक आदरित अशोक के वृक्ष को आज जब मैं पुष्पित देखता हूँ तो उसे देखकर मेरा मन उदास हो जाता है। वे अपनी उदासी का कारण स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि मैं इसलिए उदास नहीं हूँ कि अशोक के पुष्प अत्यधिक सुन्दर हैं और उनकी सुन्दरता से मुझे कोई ईर्ष्या हो रही है, इसलिए मैं उसकी कमियों का अन्वेषण कर उसे अभागा बताकर उससे सहानुभूति प्रदर्शित करने का प्रयास करते हुए स्वयं को उससे सुन्दर अथवा सर्वगुणसम्पन्न बताकर अपने मन को सुखी बना रहा हूँ। यद्यपि संसार में इस प्रकार दूसरों में दोष निकालकर स्वयं पर प्रसन्न अथवा आनन्दित होनेवाले लोगों की कमी नहीं है, किन्तु मैं उन लोगों में से नहीं हूँ, जो दूसरों में दोष निकालकर स्वयं को उनसे श्रेष्ठ सिद्ध करके स्वयं पर खुश होते हैं। ऐसे लोगों पर व्यंग्य करते हुए द्विवेदीजी कहते हैं कि ये लोग बड़ी दूर तक की सोचने-विचारनेवाले होते हैं। ये किसी व्यक्ति के अतीत की तो एक-एक परत को उघाड़ते ही है, उनके भविष्य की मृत्युपर्यन्त तक की सम्भावनाओं-दुर्भावनाओं की विवेचन लोगों के सम्मुख प्रस्तुतकर उन्हें सब प्रकार से दीन-हीन प्रमाणित करने का प्रयत्न करते हैं। लेकिन मैं इतनी दूर तक की नहीं सोचता हूँ; क्योंकि मुझे भविष्य में देखने का अवकाश ही नहीं मिलता है अथवा मैं लोगों के भविष्य में झाँकने में स्वयं को असमर्थ पाता हूँ। लेखक कहते हैं कि यद्यपि मैं दूसरों के भविष्य को भी देखनेवालों की तरह बुद्धिमान् अथवा विचारशील नहीं हूँ, फिर भी इस फूल को देखकर मैं उदास हो जाता हूँ। मेरी इस उदासी का वास्तविक कारण तो मेरे मन में बसनेवाले परमपिता परमात्मा ही जानते होंगे, किन्तु अपनी उदासी के कारण का थोड़ा-बहुत अनुमान तो मुझे अवश्य है।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. लेखक ने स्वयं को अन्य लोगों से कम दूरदर्शी बताकर अपनी उदारता और महानता का परिचय दिया है। उसकी यह भावना महाकवि कालिदास से प्रेरित है; क्योंकि 'रघुवंशम् महाकाव्य में उन्होंने भी स्वयं अल्पबुद्धि बताया है—

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्॥

2. भाषा– संस्कृत शब्दावली से युक्त सरल खड़ीबोली। **3. शैली–** व्यंग्यात्मक। **4. वाक्य-विन्यास–** सुगठित, **5. शब्द-चयन–** विषय के अनुरूप, **6. गुण–** प्रसाद, **7. शब्द-शक्ति–** अभिधा और लक्षणा।

(ख) भारतीय साहित्य में .... सुकुमारता हैं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्राचीनकाल में भारतीय साहित्य और जनजीवन में अशोक के वृक्ष का क्या और कितना महत्व था, इसका विवेचन प्रस्तुत गद्यावतरण में किया गया है।

व्याख्या– द्विवेदी जी अशोक के वृक्ष की महता पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि प्राचीन भारतीय साहित्य में अशोक के वृक्ष का पर्याप्त उल्लेख मिलता है। अनेक ग्रन्थों में उसके महत्व का प्रतिपादन किया गया है। साहित्य क्योंकि समाज का दर्पण होता

है; अत: साहित्य में अशोक की महत्ता के प्रतिपीदन से यह स्वयं सिद्ध हो जाता है कि तत्कालीन जनजीवन में अशोक को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। इसके बाद के साहित्य में अशोक के वृक्ष का उल्लेख प्राय: नहीं मिलता, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि बाद में जनजीवन में भी अशोक का कोई महत्व नहीं रह गया था। साहित्य और जनजीवन दोनों में इस प्रकार से अशोक का प्रवेश करना और फिर अचानक उससे बाहर हो जाना लेखक को ठीक वैसा ही प्रतीत होता है, जैसे किसी नाटक में कोई पात्र अचानक मंच पर प्रवेश करता है और फिर अचानक ही नाटक से बाहर आ जाता है। कालिदासकालीन साहित्य में अशोक का प्रचुरता में उल्लेख मिलता है। लेखक का मानना है कि यह कहना तो कठिन है कि इससे पहले भारतवर्ष में अशोक का नाम कोई नहीं जानता था, किन्तु इतना निश्चित है कि उसका महत्व जनजीवन में नगण्य ही था। कालिदास ने अपने काव्य-ग्रन्थों में अशोक की जैसी मोहक छटा और कोमलता (सुकुमारता) का वर्णन किया है, वैसा वर्णन इससे पहले के साहित्य में कहीं नहीं मिलता। इससे पहलो यदि कहीं उसका उल्लेख मिलता भी है तो केवल नाममात्र के लिए। भारतीय साहित्य में अशोक का यह प्रवेश (वर्णन) इतना मोहक और आकर्षक है, जितना मोहक और आकर्षक दृश्य किसी नई नवेली दुल्हन के प्रथम गृह-प्रवेश का होता है। जिस प्रकार नई-नवेली दुल्हन का घर में प्रथम आगमन अत्यन्त गरिमापूर्ण पवित्र, निश्छल और नवयौवन की कोमलता (नजाकत और नसाफत) के साथ है, वैसा ही गरिमापूर्ण, पवित्र और सुकोमल वर्णन करके कालिदास ने अशोक का भारतीय साहित्य में प्रवेश कराया है।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. भारतीय साहित्य में अशोक के वर्णन की गौरवशाली परम्परा कालिदास से आरम्भ होती है, इसका वर्णन लेखक ने आलंकारिकता के साथ किया है। **2.** 'भारतीय साहित्य में, और इसलिए जीवन में भी' इस वाक्यांश के द्वारा लेखक ने 'साहित्य समाज का दर्पण होता है' इस सिद्धान्त की पुष्टि की है। **3. भाषा–** संस्कृत शब्दावली से युक्त सरल-सरस खड़ीबोली। **4. शैली–** विवेचनात्मक एवं आलंकारिक।

(ग) अशोक के जो सम्मान .... क्यों ऐसा हुआ?

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यावतरण में आचार्य द्विवेदी जी ने इस बात का विवेचन किया है कि महाकवि कालिदास ने किस प्रकार अशोक का वर्णन अपने साहित्य में करके उसे अत्यधिक सम्मान का अधिकारी बनाया।

व्याख्या– द्विवेदी जी बताते हैं कि संस्कृति-कवि कालिदास ने अशोक का अत्यधिक वर्णन करके उसे तत्कालीन समाज में सम्मानित स्थान दिलाया। इससे पहले किसी भी साहित्यकार ने अशोक को अपना वर्ण्य-विषय नहीं बनाया था। कालिदास ने न केवल अशोक की सुन्दरता का वर्णन किया, वरन् उसके चामत्कारिक प्रभावों का विवेचन भी अपने संस्कृत ग्रन्थों में किया। उनकी मान्यता के अनुसार अशोक पर तभी पुष्प आते थे, जब कोई अत्यन्त सुन्दर और कोमलांगी युवती अपने मृदु एवं संगीतमय नुपूरवाले चरणों का प्रहार उस पर करती थी। अशोक के फूलों की कोमलता, मोहकता और कामोत्तेजक गुणों के कारण सुन्दरियाँ उन्हें अपने कानों का आभूषण बनाती थीं। अशोक-फूलों का यह आभूषण जब उनके गालों पर झूलता था तो उनकी मोहकता में अपरिमित वृद्धि हो जाया करती थी। वे अपनी काली-नीली वेणी (चोटी) में जब अशोक-पुष्पों को गूँथती थीं तो उनकी चंचल लटाओं की शोभा को ये पुष्प सौ गुना बढ़ाकर उन्हें ऐसा मनोमुग्धकारी रूप प्रदान करते थे। कि देखनेवाले की दृष्टि उन चंचल लटाओं से भी स्थिरता को प्राप्त कर लेती थी। अर्थात् देखनेवाले की दृष्टि उनसे हटती ही नहीं थी। अशोक के कामोत्तेजक गुणों के कारण ही भगवान् महादेव का हृदय उसके प्रति क्षोभ(क्रोध) से भर गया था। इसी कारण वियोगी राम भी उसकी पुष्पित लता को अपनी प्रिया के स्तन समझकर उसका आलिंगन करने को उद्यत हो गए थे। यह काम के देवता मनोज के एक संकेत पर ऊर्ध्व भाग को इतना कामुक बना देता है, जिसे देखकर ऐसा लगता है कि मानो व्यक्ति के कन्धों पर साक्षात् अशोक का वृक्ष ही फूट पड़ा है। किन्तु यह अशोक अचानक ही ऐसे गायब हो गया है जैसे कोई अभिनेता रंगमंच पर आकर, लोगों को अभिभूत कर, रोमांचित कर अचानक मंच से चला गया हो। सहृदय कवियों और लेखकों ने उसे क्यों भुला दिया? इस बात का द्विवेदी जी को बहुत दु:ख है।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. भारतीय साहित्य में महाकवि कालिदास ने प्राय: अपने सभी ग्रन्थों में अशोक का अतिशययुक्त वर्णन किया है। अशोक का ऐसा वर्णन इससे पहले के साहित्य में नहीं हुआ है। **2.** अशोक-पुष्पों की कामोत्तेजक विशेषता को कालिदास ने सर्वत्र रेखांकित किया है। **3.** कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम्, मालविकाग्निमित्रम्, कुमारसम्भवम् एवं रघुवंशम् में अशोक की गद्यांश में वर्णित विशेषताओं का वर्णन किया है। **4. भाषा–** प्रवाहपूर्ण संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली। **5. शैली–** विवेचनात्मक।

(घ) कंदर्प-देवता के .... तो अपमान करके।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यावतरण में लेखक ने अशोक के फूल के प्रति मन में उत्पन्न भावनाओं को व्यक्त करते हुए कालिदास के परवर्ती काव्य से अशोक के गायब होने पर अपना क्षोभ (दु:ख) प्रकट किया है।

व्याख्या– आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी कहते हैं कि भारतीय काव्य-वाङ्मय में कामदेव के पाँच पुष्प-बाणों में अशोक के

पुष्प-बाण के अतिरिक्त अन्य समस्त बाणों का सम्मान आज भी वैसा ही है, जैसा पहले हुआ करता था। अरविन्द का फूल किसी भी कवि के द्वारा भुलाया नहीं गया, आम्र-पुष्प भी किसी कवि के द्वारा छोड़ा नहीं गया और नीचे कमल की महिमा तो कभी कम हुई ही नहीं। चमेली के पुष्प की अब नव-साहित्यिकों में कोई विशेष रुचि नहीं है, लेकिन इसका सम्मान तो पहले भी इससे अधिक नहीं था। लेकिन अशोक के फूल को तो भुला ही दिया गया है। हजारों वर्षों तक यह पुष्प काव्य-जगत् से दूर रहा। किसी ने भी उसकी ओर देखने का अर्थात् उसके सम्बन्ध में कुछ लिखने का साहस नहीं किया। मेरे मन में बार-बार विचार उठते रहते हैं कि इतना सुन्दर पुष्प क्या वास्तव में भुला देने की वस्तु था?

लेखक का मन आज से हजारों वर्ष पूर्व के उस भारतीय साहित्य पर न्योछावर होता है, जिसमें अशोक-पुष्प के मोहक वर्णन की रसिकता विद्यमान थी। लेखक के मन में यह टीस है कि कालिदास के परवर्ती काव्य में जिस प्रकार से अशोक को भुला दिया गया है, वह कोई स्वस्थ परम्परा नहीं है।

इस पर लेखक अपना क्षोभ व्यक्त करता हुआ कहता है कि इसलिए लगता है कि कवियों के हृदयों से कोमलता की भावना लुप्त हो गयी थी, अन्यथा उनकी कविता इस प्रकार रूखी न होतीं उनकी रसिकता इस प्रकार सो न गयी होती। पुन: लेखक कहता है कि वह इस बात को नहीं मान सकता कि साहित्य से अशोक की उपेक्षा इसलिए की गयी होगी कि साहित्यिक पाठकवर्ग में रसिकता मर गयी थी, इसलिए उसमें अशोक की सुकुमारता के प्रति अरुचि उत्पन्न हो गयी होगी। इसके लिए लेखक केवल कविवर्ग को उत्तरदायी मानता है और उसकी दृष्टि में उनका यह कृत्य क्षम्य नहीं है। इन कवियों और लेखकों ने एक ओर अक्षम्य कृत्य करके जल पर नमक छिड़कने का कार्य किया है कि उन्होंने लहरदार पत्तियों वाले उस वृक्ष को अशोक के नाम से प्रतिष्ठित कर दिया, जिस पर फूल भी नहीं खिलते। उत्तर-भारतीय साहित्यिकों का अशोक के प्रति यह अपमानपूर्ण व्यवहार किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। उन्होंने अशोक का वर्णन अपनी कृतियों में नहीं किया, इससे लेखक के मन को उतनी पीड़ा नहीं हुई जितनी पीड़ा अशोक के नाम से किसी अन्य वृक्ष को प्रतिष्ठत करने से हुई है।

साहित्यिक सौन्दर्य– **1.** अशोक के पुष्प को कामदेव के पंच पुष्प बाणों में से एक बताया गया है। **2.** उत्तर भारत में जिस वृक्ष को अशोक के नाम से जाना जाता है, कालिदास के साहित्य में वर्णित अशोक वृक्ष उससे अलग है। **3.** लोक-जीवन में किस प्रकार परम्पराएँ विलुप्त होती हैं और नयी परम्पराएँ प्रतिष्ठित होती हैं, उनकी प्रक्रिया को अशोक के रूप में किसी निफूले वृक्ष को प्रतिष्ठित किए जाने के माध्यम से प्रकट किया है। **4. भाषा–** सरल, मुहावरेदार, प्रवाहपूर्ण और साहित्यिक खड़ी बोली। **5. शैली–** आलोचनात्मक और विवेचनात्मक।

(ङ) पंडितों ने शायद .... हार मानने वाले जीव न थे।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इन पंक्तियों में लेखक ने गन्धर्व और कन्दर्प शब्द की समानता तथा विभिन्न धर्मों और उनके अनुयायियों से अशोक के फूल की सम्बद्धता को स्पष्ट किया है।

व्याख्या– आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कहना है कि उनके पूर्ववर्ती विद्वानों द्वारा गन्धर्व और कन्दर्प शब्द को एक ही अर्थ का बोधक तथा भिन्न-भिन्न उच्चारणों को ध्वनित करने वाला माना है। गन्धर्वों को वर्तमान में देवताओं की एक योनि माना जाता है और कन्दर्प को काम के अधिष्ठाता कामदेव का एक पर्याय-वाचक। कामदेव ने यदि अपने अस्त्रों के लिए अशोक का चयन किया तो इसे निश्चित रूप से आर्य सभ्यता से अलग किसी अन्य सभ्यता की देन माना जाना चाहिए। इसका कारण यह है कि आर्यों के अतिरिक्त जो जातियाँ अथवा सभ्यताएँ भारतभूमि पर विद्यमान थीं, उनके द्वारा पूजित देवताओं में जल के अधिष्ठाता वरुण, धन के अधिष्ठाता कुबेर तथा देवताओं के स्वामी वज्र को धारण करने वाले इन्द्र थे। वर्तमान समय में काम के अधिष्ठाता कामदेव का ही एक नाम कन्दर्प भी है, तथापि यह तो निश्चित ही है कि कन्दर्प शब्द गन्धर्व का ही पर्याय है; अर्थात् दोनों ही एक ही अर्थ का बोध कराते हैं। भारतीय वाङ्मय में उल्लेख है कि ये एक बार भगवान् शिव के पास उनको विजित करने की दृष्टि से गए, लेकिन जल गए, ये विष्णु से भी बहुत भयभीत रहते थे और भगवान बुद्ध से भी युद्ध कर पराजित हो वापस लौट आए थे। लेकिन ये ऐसे देवता थे, जो अपनी पराजय स्वीकार हीं नहीं करते थे।

साहित्यिक सौन्दर्य– **1.** भारत में प्रचलित विभिन्न धर्मों और मतों के शीर्ष पुरुषों द्वारा पराजित होने पर भी कन्दर्प देवता द्वारा उनके अनुयायियों को पराजित किए जाने का वर्णन साहित्यिक शब्दावली में किया गया है। **2.** मनुष्य-योनि में काम की सर्वव्यापकता का संकेत किया गया है। **3. भाषा–** तत्सम शब्दों से युक्त सरल, सहज और प्रवाहयुक्त खड़ी बोली। **4. शैली–** वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक। **5. वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **6. शब्द-चयन–** विषय के अनुरूप। **7. गुण–** प्रसाद। **8. शब्द-शक्ति–** अभिधा, लक्षणा और व्यंजना।

(च) जहाँ मूठ थी .... फूलों में बदल गया।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश में विभिन्न प्रकार के पुष्पों के निर्मित होने की साहित्यिक प्रक्रिया पर प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या– किसी एक विषय को प्रारम्भ कर अनेक विचारों को स्पर्श करने की कला में निपुण आचार्य द्विवेदी जी का कथन है

कि वह निश्चित ही कोई बुरा मुहूर्त था, जब मन को मथने वाले कामदेव के ध्यान मग्न भगवान् शिव की समाधि को भंग करने के लिए उन पर अपने फूलों वाले धनुष से बाण का प्रहार किया था। परिणाम यह हुआ कि कामदेव का शरीर भगवान् शंकर के क्रोध से भस्मीभूत हो गया और वामन पुराण के षष्ठ अध्याय के अनुसार उसका रत्नमय धनुष टुकड़े-टुकड़े होकर धरती पर गिर गया। उसका मूठ वाला भाग जो रुकम अर्थात् सुवर्ण से बना था— वह चम्पे का फूल बन गया। हीरे से बना नाह अर्थात् बन्धन वाला भाग मौलसरी के मन को हारने वाले फूलों में बदल गया। इन्द्रनील मणियों से बना धनुष का कोटि वाला भाग अर्थात् अग्र-भाग टूटकर पाटल के फूलों में बदल गया। कामदेव के धनुष का मध्य भाग जो चन्द्रकान्त गणियों से निर्मित था, वह टूटकर चमेली के फूलों और विद्रम से बना नीचे का किनारा भाग टूटकर बेला के पुष्पों में परिवर्तित हो गया। जिस अत्यन्त कठोर धनुष ने स्वर्ग पर विजय पायी थी वहीं जब धरती पर गिरा तो उसने कोमल फूलों का रूप धारण कर लिया।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. भाषा– परिष्कृत साहित्यिक खड़ी बोली। **2. शैली–** भावात्मक। **3. शब्द-चयन–** विषय के अनुकूल। **4. वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **5. विचार-विश्लेषण–** धरती का स्पर्श इतना महत्वपूर्ण है, जो दैवीय साधनों को और भी अधिक सुन्दरता और कोमलता प्रदान करता है।

(छ) कहते हैं, दुनिया .... अखाड़ा ही तो है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– साहित्यिकों ने अशोक के पुष्प को भुला दिया है, इसी पर अपने विचार व्यक्त करते हुए द्विवेदी जी कहते हैं—

व्याख्या– यह संसार बड़ा स्वार्थी है। इसलिए यह उन्हीं बातों को याद रखता है, जिनसे उसका कोई स्वार्थ सिद्ध होता है, अन्यथा व्यर्थ की स्मृतियों से यह आपको बोझिल नहीं बनाना चाहता। यह उन्हीं वस्तुओं को याद रखता है, जो उसके दैनिक जीवन की स्वार्थ-पूर्ति में सहायता पहुँचाती है। बदलते समय की दृष्टि में अनुपयोगी होने पर कोई वस्तु उपेक्षित हो जाती है। समय-परिवर्तन के साथ अशोक की भी मूल्यवती उपयोगिता नष्ट हो गई है। सम्भवत: इसीलिए मनुष्य को उसकी आवश्यकता ही नहीं रह गई, फिर अकारण उसे स्मरणकर वह अपनी स्मरण शक्ति को क्यों खर्च करता? सारा संसार स्वार्थ के विविध कार्य-व्यापारों से भरा हुआ एक क्रीडा-स्थल ही तो है।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. संसार को स्वार्थी सिद्ध किया गया है। **2.** अशोक को विस्मृत करने का आधार स्वार्थ-वृत्ति को माना गया है। **3. भाषा–** सरल, सरस एवं साहित्यिक खड़ी बोली है। **4. शैली–** व्याख्यात्मक एवं सूत्रात्मक।

(ज) मुझे मानव-जाति .... भी पवित्र है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश में लेखक मानव के जीने की इच्छा-शक्ति की बलवत्ता पर प्रकाश डाल रहे हैं।

व्याख्या– आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी कह रहे हैं कि मानव-जाति के विकास के हजारों वर्षों के इतिहास के मनन और चिन्तन के परिणामस्वरूप उन्होंने जो अनुभव किया है वह यह है कि मनुष्य में जो जिजीविषा है वह अत्यधिक निर्मम और मोह-माया के बन्धनों से रहित है। सभ्यता और संस्कृति के जो कतिपय व्यर्थ या मोह थे, उन सबको रौंदती हुई व सदैव आगे बढ़ती चली गई। मानव जीवन की इस धारा ने विभिन्न धर्मों द्वारा प्रतिपादित अनगिनत आचरणों, विश्वासों, उनसे सम्बद्ध उत्सवों और व्रतों को अपने में समा लिया या परिष्कृत करते हुए आगे ही बढ़ती चली गई। ऐसे ही अनेकानेक संघर्षों के परिणामस्वरूप मनुष्य सदैव नवीन शक्ति अर्जित करता रहा है। वर्तमान समय में समाज का जैसा भी स्वरूप हमारे सामने है वह अनगिनत स्वीकृतियों और त्याग का परिणाम है। आशय यह है कि मनुष्य ने अपने विकास-क्रम में जो कुछ उचित समझा उसे स्वीकार कर लिया और जिसे अनुचित समझा उसका त्याग कर दिया। जाति और देश की जो संस्कृति है, वह बाद की ही बात है; अर्थात् इसका विकास तो मनुष्य के विकास के बाद ही हुआ है। लेखक का कहना है कि आज जो कुछ भी हमारे सम्मुख उपलब्ध है, उनमें मिलावट है, वह सब कुछ शुद्ध नहीं है। शुद्ध केवल एक ही चीज है और वह है मनुष्य के जीने की दुर्दमनीय इच्छा अर्थात् जिजीविषा। यह मात्र मनुष्य की जिजीविषा ही है कि जिससे आज मनुष्य विभिन्न क्षेत्रों में ऊँचा और ऊँचा उठता ही चला जा रहा है। जिस प्रकार गंगा की अबाधित-अविरल धारा सब कुछ को अपने में समाहित करती हुई, आज भी पवित्र है और आगे बढ़ती ही चली जा रही है, वैसे ही मनुष्य की दुर्दमनीय जिजीविषा भी है, जो कि अपने विकास-मार्ग में आए पवित्र-अपवित्र, ग्राह्य-अग्राह्य सभी को समाहित करती हुई अबाधित रूप से अपने पवित्र स्वरूप में सतत आगे बढ़ती ही जा रही है।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. मनुष्य की इच्छा-शक्ति को निर्मम, प्रबल और पवित्र बताया गया है। **2.** इच्छा-शक्ति की तुलना गंगा की धारा से की गयी है और इसे पवित्र घोषित किया गया है। **3. भाषा–** तत्सम शब्दों से युक्त सरल, सहज और प्रवाहयुक्त खड़ी बोली। **4. शैली–** वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक। **5. वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **6. शब्द-चयन–** विषय के अनुरूप। **7. गुण–** प्रसाद। **8. शब्द-शक्ति–** अभिधा और लक्षणा।

(झ) आज जिसे हम .... धरती धसकेगीं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक बताना चाहता है कि संसार में सब कुछ परिवर्तनशील है; क्योंकि सभी नवीन को ग्रहण करना और प्राचीन को छोड़ना चाहते हैं।

व्याख्या– आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी का कहना है कि आज जिस संस्कृति को हम मूल्यवान् मानते हैं और जिसे अपने जीवन में अपनाना उचित और श्रेयस्कर समझते है; क्या यह संस्कृति सदैव ऐसी ही बनी रहेगी, इसमें कोई परिवर्तन नहीं आएगा। सम्राटों और सामन्ती व्यवस्था के शीर्ष पुरुषों ने जिस आचरण और निष्ठा को अत्यधिक मोहक और मादक स्वरूप प्रदान किया था, वह व्यवस्था भी आज लुप्त हो चुकी है। प्राचीन धर्मों के श्रेष्ठ पुरुषों ने ज्ञान और वैराग्य को जनसामान्य के लिए सर्वोत्तम और ग्रहण करने योग्य बताया, वह मान्यता भी आज समाप्त हो चुकी है। मध्यकालीन मुस्लिम संस्कृति के अनुयायी धनाढ्यों के अनुसरण करते हुए सामान्य लोगों में जो भोगवादी प्रवृत्ति पनपी थी, वह भी भाप के समान उड़ गयी। वर्तमान व्यावसायिक युग में जो आज कमल-पुष्प के सदृश दीख रहा है, वह मध्यकालीन संस्कृति के विनष्ट हो चुके आधार पर अवस्थित है, यह भी स्थायी नहीं रहेगा, समाप्त हो जाएगा। महाकाल अर्थात् सबसे शक्तिशाली समय के परिवर्तन होने के कारण पृथ्वी खिसकेगी और जो कुछ भी वर्तमान में विद्यमान है उसका कुछ-न-कुछ भाग हमेशा अपने साथ ले जाएगी।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. विभिन्न उदाहरणों के माध्यम से लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि सब कुछ परिवर्तनशील है। **2. भाषा–** संस्कृतनिष्ठ शब्दों से युक्त जनसामान्य में प्रयुक्त खड़ी बोली। **3. शैली–** वर्णनात्मक, विचारात्मक व उद्धरणात्मकं **4. वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **5. शब्द-चयन–** विषय के अनुरूप। **6. गुण–** प्रसाद। **7. शब्द-शक्ति–** अभिधा और लक्षणा। **8. भावसाम्य–** महात्मा कबीर ने भी ऐसी ही भावना व्यक्त करते हुए संसार को काल का चबैना बताया है—

झूठे सुख को सुख कहैं, मानता है मन मोद
जगत चबैना काल का, कछु में कछु गोद॥

(ञ) मगर उदास होना .... मस्ती में हँस रहा है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यावतरण में मनुष्य की बदलती मनोवृत्ति के परिणाम की विवेचना की गई है।

व्याख्या– आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि व्यक्ति का किसी भी परिस्थिति में उदास अथवा व्याकुल होना व्यर्थ ही होता है; क्योंकि उसकी यह उदासी अथवा व्याकुलता उन परिस्थितियों में कोई परिवर्तन नहीं ला सकती। उसकी किसी समस्या का निराकरण भी उसकी उदासी से नहीं हो सकता, फिर उदास होकर जीने से क्या लाभ? सम्भवत: यही सोचकर अशोक ने उदास होना छोड़ दिया है। वह प्रत्येक परिस्थिति में मस्त रहता है। आज से दो हजार वर्ष पूर्व कालिदास के समय में, जब वह समाज के द्वारा समादरित होने पर जैसा प्रसन्नचित्त रहता था, वैसा ही प्रसन्नचित्त वह आज अनादरित होकर है। उसकी प्रवृत्ति, रूप-स्वरूप में किसी प्रकार का कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ है और न ही उसमें किसी नई प्रवृत्ति का विकास हुआ है। भले ही अशोक में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, किन्तु मनुष्य की मनोवृत्तियों में तो आमूल-चूल परिवर्तन हो गया है। यह उसकी परिवर्तित मनोवृत्ति का ही तो परिणाम है कि वह जिस अशोक वृक्ष को कभी अत्यन्त श्रद्धा और विश्वास के साथ अपने जीवन का अभिन्न अंग मानता था, आज उसी वृक्ष को वह बिलकुल ही भूल गया है। द्विवेदी जी मनुष्य की मनोवृत्ति में परिवर्तन को अनिवार्य मानते हैं, इसलिए वे कहते हैं कि अशोक का काम तो बिना बदले चल गया, किन्तु मनुष्य का काम इससे नहीं चल सकता। यदि मनुष्य का काम बिना बदले चल सकता तो उसकी मनोवृत्ति कभी परिवर्तित न होती और आज भी मनुष्य सदियों पुराना जंगली आदिमानव ही होता। यदि आदिमानव के बाद की व्यावसायिक परिस्थिति में मनुष्य का जीवन स्थिर हो जाता तो आज उसमें भयंकर व्यावसायिक संघर्ष होता। यदि इसके बाद विज्ञान का मशीनी रथ अपने पूर्ण घर्घर नाद के साथ अपनी पूरी गति से दोड़ने लगता तो आज बड़ी विकट समस्या उत्पन्न हो जाती। लोगों के हाथों का रोजगार छिन जाता, केवल मुट्ठी भर लोग, जो मशीनों के संचालन में कुशल होते, सर्वसम्पन्न होते और शेष सम्पूर्ण समाज दीन-हीन अवस्था में होता। कुछ लोगों का मानना है कि हमारी संस्कृति पूर्ण रूप से परिवर्तित हो गयी है। वास्तव में उसमें पूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ है। वह आंशिक रूप से ही परिवर्तित हुई है, लेकिन सतत परिवर्तनशील है। आशय यह है कि संस्कृति ने नवीनता को धारण किया, जो कमियाँ थी, उन्हें दूर किया और अच्छाईयों को ग्रहण किया। अशोक का फूल आज भी अपनी उसी पुरानी मस्ती में विहँस रहा है, वह अभी भी अपरिवर्तित है।

साहित्यिक-सौन्दर्य– 1. लेखक ने उस समय की भारतीय विचारधारा का उल्लेख किया है, जब गाँधीयुग में सम्पूर्ण विश्व मशीनीकरण की ओर कदम तेजी से बढ़ा रहा था, किन्तु गाँधीजी के नेतृत्व में भारत ने मशीनों के स्थान पर मानव-श्रम को ही वरीयता दी। **2.** लेखक ने आज के मशीनी वैज्ञानिक युग की कल्पना न की थी, अन्यथा वह विज्ञान की धीमी गति की बात न करता। **3. भाषा–** सरल खड़ी बोली। **4. शैली–** विवेचनात्मक।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक वाक्यों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) वे बहुत दूरदर्शी होते हैं। जो भी सामने पड़ गया, उसके जीवन के अन्तिम मुहूर्त तक का हिसाब ले लगा लेते हैं।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'गद्य गरिमा' में संकलित 'अशोक के फूल' नामक निबन्ध से अवतरित है। इसके लेखक 'आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी' जी हैं।

प्रसंग– द्विवेदी जी ने उन लोगों की प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए उनकी आलोचना की है, जो दूसरों को प्रसन्न और सम्पन्न देखकर ईर्ष्यावश उनकी निन्दा करते हैं।

व्याख्या– संसार में बहुत-से लोग ऐसे हैं, जिन्हें दूसरों की खुशी अथवा प्रसन्नता और सम्पन्नता किसी भी प्रकार अच्छी नहीं लगती। वे सदैव प्रसन्न लोगों से ईर्ष्या करते हुए उनकी आलोचना करके उन्हें स्वंय से निकृष्ट सिद्ध करना चाहते हैं। जिन लोगों में वे वर्तमान में ऐसा दोष नहीं ढूँढ पाते, जिसको लेकर वे उनकी आलोचना करें; ऐसे लोगों के विषय में उनके मरने तक की भविष्यवाणियाँ करके यह बताना चाहते हैं कि अमुक व्यक्ति बाहरीतौर पर ही देखने में अच्छा लगता है, किन्तु हृदय से बहुत खराब, दुष्ट अथवा पापी है, इसलिए इसका अन्त बहुत खराब होगा। यह कुत्ते की मौत मरेगा। इस प्रकार वह बहुत दूर दूसरों के भविष्यों में झाँककर उनके पाप-पुण्यों और स्वर्ग-नर्क तक का विवेचन कर देते हैं। इसीलिए लेखकों ने उन्हें व्यंग्य के रूप में दूरदर्शी कहा है।

(ख) उस प्रवेश में नववधू के गृह-प्रवेश की भाँति शोभा है, गरिमा है, पवित्रता है और सुकुमारता है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में लेखक ने अशोक के पुष्प की तुलना नववधू से की है।

व्याख्या– कालिदास से पहले अशोक के पुष्प को व्यक्ति नाममात्र ही जानते थे। कालिदास ने अपने काव्यों में इस पुष्प की गरिमामय उपस्थिति करायी। जिस प्रकार नववधू के घर में प्रवेश के पूर्व अर्थात् ससुराल में आगमन से पूर्व घर को अच्छी तरह से सजा सँवार कर उसकी गरिमा में वृद्धि की जाती है, उसकी पवित्रता बढ़ायी जाती है। उसी प्रकार कालिदास ने भी इस पुष्प को अपने काव्य में स्थान देकर उसकी गरिमा, पवित्रता और सुकुमारता को बनाए रखने का सफल प्रयास किया। निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि कालिदास ने ही अपने काव्य में अशोक के पुष्प को सर्वप्रथम प्रतिष्ठित किया।

(ग) स्वर्गीय वस्तुएँ धरती से मिले बिना मनोहर नहीं होती।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति वाक्य में पार्थिव सौन्दर्य की अनुपमता एवं महत्ता पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या– इस संसार और परलोक में यदि कहीं मन को मोहनेवाला सौन्दर्य विद्यमान है तो वह इस धरती पर स्थित है। स्वर्ग के सौन्दर्य की तो हम केवल कल्पना करते हैं और वह कल्पना अपने सम्पूर्ण स्वरूप में पृथ्वी के सौन्दर्य से ही प्रेरित होती है; क्योंकि हम कल्पना भी वही कर सकते है, जिसे हमने किसी-न-किसी रूप में अपनी आँखों से देखा हो। जब हम किसी अलौकिक अर्थात् स्वर्गीय सौन्दर्य की बात करते हैं तो निश्चय ही वह इस धरती पर कहीं-न-कहीं किसी रूप में उपस्थित होता ही है। पृथ्वी के सौन्दर्य की अनुपस्थिति में हम स्वर्गीय सौन्दर्य की बात नहीं कर सकते, भले ही वह किसी दूसरे लोक में विद्यमान हो। जिसे न हम अपनी आँखों से देख सकते हैं और न अपने हाथ से स्पर्श कर सकते हैं, ऐसे सौन्दर्य का हमारे लिए कोई महत्व नहीं, तब उसके होने या न होने से क्या लाभ? वह तो हमारी मिट्टी के समान तुच्छ है। उसका महत्व, उसका आकर्षण तभी सार्थक है, जब वह इस पृथ्वी पर उपस्थित हो और लोगों के मन को आकर्षित कर आह्लादित करता है। इसीलिए अमीर खुसरो ने भी ''गैर फिरदौस वर-रु-जमी अस्त, हमीं अस्तो, हमीं अस्तो।'' कहकर कश्मीर के विषय में यह घोषणा की है कि यदि पृथ्वी पर स्वर्ग है तो यहीं है, यहीं है।

(घ) सारा संसार स्वार्थ का अखाड़ा ही तो है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में लेखक ने अशोक के माध्यम से संसार की स्वार्थी प्रवृत्ति का वर्णन किया है।

व्याख्या– यह सारा संसार स्वार्थ के वशीभूत होकर ही अपने क्रिया-कलाप करता है। मनुष्य उसी कार्य को करता है, जिसमें उसका कोई हित-साधन छिपा होता है, जिसमें उसका कोई हित नहीं होता, उसके विषय में यह सोचता भी नहीं है। यहाँ तक कि धर्म-कर्म के कार्य भी उसके स्वार्थ से प्रेरित होते हैं; क्योंकि व्यक्ति को पता होता है कि इन कार्यों को करके उसको पुण्य की प्राप्ति होगी, जिसके परिणामस्वरूप मरने पर उसको मोक्ष मिलेगा। संसार की इसी स्वार्थी प्रवृत्ति के कारण लोगों ने अशोक को भुला दिया है। उन्हें ज्ञात है कि अशोक से उन्हें कोई लाभ होनेवाला नहीं है, फिर वे क्यों उसे याद रखें, क्यों उसका संरक्षण करें? आशय यह है कि मनुष्य की स्मरण-शक्ति उसके स्वार्थ से संचालित और प्रेरित है। यह संसार की परम्परा है कि लोग केवल उसी बात को याद रखते हैं, जिसमें उनका कोई स्वार्थ निहित होता है, जहाँ उनका स्वार्थ नहीं होता, वहाँ उनकी स्मरण शक्ति कुन्द हो जाती है और वे भुलक्कड़ बन जाते हैं।

(ङ) मनुष्य की जीवनी-शक्ति बड़ी निर्मम है, वह सभ्यता और संस्कृति के वृथा मोहों को रौंदती चली आ रही है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में जीवन के प्रति व्यक्ति के मोह का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– इस संसार में व्यक्ति को यदि सबसे प्रिय कोई वस्तु है तो वह है उसके प्राण। अपने प्राणों को सुरक्षित बचाए रखने

की लालसा के कारण ही यह संसार चल रहा है। व्यक्ति सदैव अपने प्राणों की रक्षा के लिए ही प्रयत्नशील रहता है। इनकी रक्षा के लिए वह कितना ही क्रुर, निर्मम, पापपूर्ण, घृणित कार्य कर सकता है। उसका अपने प्राणों के प्रति यही मोह उसकी सबसे बड़ी शक्ति है, जिसे जीवनी-शक्ति कहा जाता है। यदि व्यक्ति सीधे-सीधे अपने प्राणों की रक्षा नहीं कर पाता तो वह किसी के भी प्राण लेने में देरी नहीं लगाता। एक भूखा व्यक्ति अपने प्राणों की रक्षा के लिए एक टुकड़े को पाने के लिए कितने ही लोगों की जान ले सकता है, अपने प्राणों से प्रिय पुत्र, पुत्री अथवा पत्नी तक के मान-सम्मान अथवा प्राणों तक का सौदा करने में भी वह नहीं हिचकिचाता। इसीलिए संस्कृत में भी कहा गया है भूखा क्या पाप नहीं करता— ''बुभुक्षित: किं न करोति पापम्।''

(च) सबकुछ अविशुद्ध है। शुद्ध केवल मनुष्य की दुर्दम जिजीविषा।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में लेखक ने मनुष्य की जीवित रहने की इच्छा को ही पवित्र बताया है।

व्याख्या– आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी का कहना है कि जो कुछ भी उपलब्ध है, वह सब कुछ अविशुद्ध है। शुद्ध है मात्र मनुष्य की जीने की दुर्दमनीय इच्छा। दुर्दमनीय इच्छा से आशय मनुष्य की दबायी न जा सकने वाली इच्छाओं से है। मनुष्य की जीने की यह दुर्दमनीय इच्छा गंगा की अबाधित-अनाहत-अविरल धारा के समान सब कुछ को स्वयं में समाहित करती हुई उत्तरोत्तर आगे बढ़ती जाती है। इस अबाधित धारा में सब कुछ बह जाता है। वही कुछ क्षण तक संघर्ष कर पाता है, जिसकी जीवनी-शक्ति कुछ समर्थ होती है, कुछ विशुद्ध होती है। लेखक का कहना है कि मनुष्य की जिजीविषा के अतिरिक्त सब कुछ अपवित्र है अविशुद्ध है। यही कारण है कि प्रबल जिजीविषा वाला मनुष्य ही आगे बढ़ पाता है और शेष सब काल के गाल में समा जाते है। Survival of the fittest का सिद्धान्त लेखक की इस मान्यता की पुष्टि करता है।

(छ) महाकाल के प्रत्येक पदाघात में धरती धसकेगी।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– संसार की नश्वरता के विषय में प्रस्तुत सूक्ति में प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या– इस संस्था में सभी कुछ नाशवान् है। आज हमें जो कुछ भी देख रहा है, वह सब एक-न-एक दिन नष्ट हो जाएगा, चाहे वह सूर्य हो, चन्द्रमा हो अथवा पृथ्वी। समय का चक्र सभी को अपने आपमें समाहित कर लेता है, एक दिन यह पृथ्वी भी उसके प्रहार से बच न सकेगी। उसकी एक ही ठोकर से यह रसातल में धँस जाएगी अथवा खंड-खंड होकर नष्ट हो जाएगी।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न–

1. 'अशोक के फूल' पाठ का साराशं अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– अशोक के फूल निबन्ध आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के सामाजिक एवं सांस्कृतिक चिन्तन की परिणति है। भारतीय परम्परा में अशोक के फूल दो प्रकार के होते हैं। प्रथम—श्वेत पुष्प, जो तांत्रिक क्रियाओं की सिद्धि के लिए उपयोगी है तथा द्वितीय— लाल पुष्प, जो स्मृतिवर्धक होता है। लेखक कहते हैं कि कन्दर्प देवताओं ने भी इन लाल छोटे-छोटे फूलों को अपने पाँच तूणीरों में स्थान दिया था। परन्तु उनका मन इन फूलों को देखकर उदास है। इसका कारण यह नहीं है कि सौन्दर्य से युक्त वस्तुओं को वे अल्प भाग्य वाला मानते हैं और इसमें उन्हें आनन्द मिलता है। इस उदासी का कारण क्या है यह तो, उनके अंदर निवास करने वाला ईश्वर ही जानता था। इसका तो उन्हें बस कुछ अनुमान ही है। लेखक कहते हैं कि भारतीय साहित्य तथा भारतीय जीवन में अशोक के फूल का प्रवेश और विलुप्त होना विचित्र नाटकीय स्थिति के समान है। कालिदास ने अपने काव्य में इस पुष्प को महत्वपूर्ण स्थान दिया। कालिदास ने इसे एक नववधू के गृहप्रवेश के समान भारतीय साहित्य में प्रवेश कराया। परन्तु भारत में मुस्लिम सल्तनत के प्रवेश ने इसकी प्रतिष्ठा को धूमिल कर दिया। ऐसा भी नहीं है कि लोग इसके नाम से परिचित नहीं थे और इसे महत्व नहीं देते थे, लेकिन इसे उसी प्रकार महत्व दिया जाता था, जैसे वर्तमान समय में भगवान बुद्ध और विक्रमादित्य को। सुन्दरियों के चरणों के मधुर आघात से अशोक का वृक्ष फूलों से खिल उठता था। इन पुष्पों को कानों में धारण करके सुंदरियाँ प्रसन्न होती थी तथा ये फूल सुंदरियों के बालों की शोभा बढ़ाते थे। यह पुष्प महादेव शिव तथा श्रीराम के मन में क्षोभ उत्पन्न कर देते थे। कंदर्प-देवताओं के तूणीर के अन्य बाणों का महत्व कवियों में अभी भी है इसे कोई नहीं भूला है। अरविन्द का फूल, आम्र-वृक्ष, नीला कमल की महिमा कभी खत्म नहीं हुई। चमेली के पुष्प में अब कोई विशेष रूचि नहीं है। मेरे मन में बार-बार यह विचार उत्पन्न होता है कि क्या यह फूल भुला देने योग्य था। लेखक अशोक के फूल की उपेक्षा के लिए केवल कविवर्ग को उत्तरदायी मानता है और उनका यह कृत्य अक्षाम्य है। इन कवियों ने एक ऐसे लहरदार पत्तियों वाले वृक्ष को अशोक के नाम से प्रतिष्ठित करकर जिस पर फूल ही नहीं खिलते जले पर नमक छिड़कने का कार्य किया है। लेखक कहते हैं कि पूर्ववर्ती विद्वानों ने गन्धर्व और कन्दर्प शब्द को एक ही अर्थ का बोधक तथा भिन्न-भिन्न उच्चारणों को ध्वनित करने वाला माना है। यदि कामदेव देवताओं ने अशोक के फूल का चुना है तो इसे निश्चित रूप से आर्य सभ्यता से अलग किसी अन्य सभ्यता की देन माना जाना चाहिए। कंदर्प यद्यपि गन्धर्व का पर्याय है अर्थात् दोनों एक ही अर्थ का बोध कराते हैं। भारतीय वाङ्मय में उल्लेख है कि कामदेव शिव से लड़े, विष्णु से भयभीत रहते थे, भगवान बुद्ध से पराजित हुए परन्तु इन्होंने हार नहीं मानी। इन्होंने नए-नए अस्तों का प्रयोग किया और अशोक का फूल इनका अन्तिम अस्त था। इस अस्त ने बौद्ध धर्म को घायल कर दिया तथा शैवमार्ग को अभिभूत कर शक्ति साधना को झुका दिया।

लेखक ने इसमें रवीन्द्रनाथ टैगोर के विचारों को भी उद्धृत किया। जिन्होंने भारतवर्ष को अनेकों मानव जातियों के मिलन या विलीन होने के कारण 'महामानवसमुद्र' कहा है। अनेकों संस्कृतियों के विचित्र एकत्रीकरण के कारण ही भारतीय संस्कृति को 'अनेकता में एकता' की संस्कृति कहा जाता है। लेखक कहते हैं कि कामदेव ने शिव पर बाण फेंका जिसके कारण कामदेव शिव के क्रोध से भस्मीभूत हो गए तथा वामन पुराण के षष्ठ अध्याय के अनुसार उनका रत्नजड़ित धनुष टूटकर पृथ्वी पर गिर गया और चम्पे मौलसरी, पाटल, चमेली, बेला के पुष्पों में बदल गया। जिस कठोर धनुष ने स्वर्ग पर विजय पाई थी।

पृथ्वी पर गिरकर वह कोमल पुष्पों में परिवर्तित हो गया। स्वर्ग की वस्तुएँ धरती से मिलने पर ही मनमोहक रूप धारण कर पाती है। परन्तु लेखक यह विचार करते हैं कि क्या वास्तव में ये पुष्प गन्धर्वों की ही देन है? क्या ये फूल उन्हीं से मिले हैं? द्विवेदी जी कहते हैं कि पुराने साहित्य में गन्धर्वों के देवता— कुबेर, सोम, अप्सराएँ देवताओं के रूप में वर्णित है। बौद्ध साहित्य में ये भगवान बुद्ध को बाधा देते बताए गए है। महाभारत में भी ऐसी कुछ कथाएँ वर्णित हैं, जिनमें स्त्रियाँ सन्तान प्राप्ति के लिए इन वृक्षों के देवता यक्षों के पास जाया करती थी। भरहुत, बोधगया तथा साँची आदि में उत्कीर्ण मूर्तियों में इन प्रकार के चित्र अंकित हैं। अशोक कल्प के अनुसार अशोक के फूल दो प्रकार के होते हैं— सफेद एवं लाल।

लेखक कहते हैं कि आर्य जाति बहुत गर्वीली थी उसने किसी जाति की आधीनतता स्वीकार नहीं की। सारा भारतीय साहित्य इन्हीं आर्यों की ही देन है परन्तु अशोक वृक्ष की पूजा गन्धर्वों और यक्षों की देन है। इस वृक्ष के पूजा के उत्सव में इनके अधिष्ठाता की पूजा की जाती थी जिसे 'मदनोत्सव' कहते हैं। यह उत्सव त्रयोदशी के दिन मनाया जाता था। 'मालविकाग्निमित्र' तथा 'रत्नावली' आदि नाटकों में भी इस उत्सव का वर्णन मिलता है। प्राचीन समय में राजघरानों की रानियाँ भी अपने नुपुरमय चरणों के आघात से इस वृक्ष को पुष्पित किया करती थी। द्विवेदी जी कहते हैं कि संसार बड़ा स्वार्थी है। यह केवल उन्हीं बातों को याद रखता है, जिनसे उनका कोई स्वार्थ सिद्ध होता है। शायद समय-परिवर्तन से अशोक की उपयोगिता भी नष्ट हो गई है। इसलिए मनुष्य को उसकी आवश्यकता ही नहीं रइ गई। अशोक का वृक्ष कितना भी मनोहर, रहस्यमय तथा अलंकारमय हो, किन्तु यह सदैव सामन्ती सभ्यता का प्रतीक रहा है, जो किसान-मजदूरों का शोषण करती रही है। परन्तु समय परिवर्तन हुआ तथा सामन्तों और पूँजीपतियों की बादशाहत समाप्त हो गई। सन्तान कामना करने वाली स्त्रियों को गन्धर्वों से शक्तिशाली देवताओं से वरदान प्राप्त होने लगे।

लेखक कहते हैं कि मनुष्य में जो जिजीविषा है वह बहुत निर्मम है। सभ्यता और संस्कृति के जो कतिपय व्यर्थ बचपन थे, उन सबको रौंदती हुई वह सदैव आगे बढ़ती है। लेखक कहते हैं कि जो कुछ आज हमारे सामने है उस सबमें मिलावट है। वह शुद्ध नहीं है। केवल एक चीज शुद्ध है और वह है मनुष्य के जीने की दुर्दुमनीय इच्छा अर्थात् जिजीविषा। द्विवेदी जी कहते हैं कि आज अशोक के फूल देखकर मेरा मन उदास हुआ है, कल जाने किस सहृदय का मन कोई वस्तु देखकर उदास हो जाए। द्विवेदी जी कहते हैं कि केवल अशोक के फूल नहीं अपितु किसलय भी हृदय को बींध रहे हैं। आज जिस संस्कृति को हम मूल्यवान समझ रहे हैं, क्या वह संस्कृति ऐसी ही बनी रहेगी, इसमें कोई परिवर्तन नहीं आएगा। मध्यकालीन संस्कृति के अनुयायी धनवानों के अनुसरण करते हुए सामान्य लोगों में उत्पन्न हुई भोगवादी प्रवृत्ति भी भाप बनकर उड़ गई। महाकाल अर्थात् सबसे शक्तिशाली समय के परिवर्तन से पृथ्वी खिसकेगी और जो कुछ भी वर्तमान में है उसका कुछ-न-कुछ भाग अपने साथ अवश्य ले जाएगी। भगवान बुद्ध ने काम विजय का उपदेश दिया परन्तु यक्षों के देवता वज्रपाणि इस वैराग्यप्रवण धर्म में घुसकर बोधिसत्वों के प्रमुख बन गए। त्रिरत्नों में कामदेव ने स्थान प्राप्त किया। परन्तु निराश होना भी व्यर्थ है, क्योंकि उसकी उदासी उन परिस्थितियों में कोई परिवर्तन नहीं ला सकती हैं। इसलिए यही सोचकर अशोक ने उदास होना छोड़ दिया। आज से दो हजार वर्ष पहले जैसा कालिदास से सम्मान पाकर वह प्रसन्न था ऐसा ही वह आज भी है। द्विवेदी जी कहते हैं कि कुछ लोग समझते हैं हमारी संस्कृति पूरी तरह परिवर्तित हो गई है, परन्तु वह पूर्ण नहीं आंशिक रूप से परिवर्तित हुई है। अशोक का फूल आज भी उसी मस्ती से हँस रहा है, वह आज भी अपरिवर्तित है। कालिदास ने अपने तरीके से इसका रसास्वादन किया था। मैं भी अपने तरीके से इसका आस्वादन कर सकता हूँ अर्थात् कालिदास जैसे विचारों के साथ। इसलिए उदास होना व्यर्थ है।

2. रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भारतवर्ष को 'महामानवसमुद्र' क्यों कहा है?

उ०– रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भारतवर्ष को 'महामानवसमुद्र' अर्थात् अनेकानेक मानव जातियों का मिलन या विलीन होने के स्थान कहा है क्योंकि इस अद्भुत देश में समय-समय पर असुर, आर्य, हूण, नाग, शक, यक्ष, गन्धर्व और अनेक मानव-जातियाँ आई और इसी भूमि में विलीन हो गईं। आज के भारतवर्ष का जो भी स्वरूप हमारे सम्मुख है वह इन्हीं मानव-जातियों द्वारा बनाया हुआ है।

3. वामन-पुराण के षष्ठ अध्याय से हमें क्या पता चलता है?

उ०– वामन-पुराण के षष्ठ अध्याय से हमें पता चलता है कि शिव के क्रोध से कामदेव का शरीर भस्मीभूत् हो गया। और उसका रत्नमय धनुष टुकड़े-टुकड़े होकर धरती पर गिर गया। उसका मूठ वाला भाग जो सुवर्ण से बना था— वह चम्पे का फूल बन गया। हीरे से बना नाहा अर्थात् बन्धन वाला भाग मौलसरी के फूलों में बदल गया। इन्द्रनील मणियों से बना धनुष का कोटि भाग

अर्थात् अग्र-भाग टूटकर पाटल के फूलों में बदल गया। चन्द्रकांत मणियों का बना हुआ मध्य भाग टूटकर चमेली के पुष्पों में परिवर्तित हो गया तथा विद्रुम से बना नीचे का किनारा भाग टूटकर बेला के फूलों में परिवर्तित हो गया।

4. कालिदास से अशोक को क्या सम्मान मिला?

उ०– कालिदास ने जैसे अपने ग्रन्थों में अशोक के फूल की मोहक छटा और कोमलता का वर्णन किया है, वैसा वर्णन इससे पहले के साहित्य में कहीं नहीं मिलता। भारतीय साहित्य में अशोक का यह प्रवेश (वर्णन) इतना मोहक और आकर्षक है, जितना मोहक और आकर्षक दृश्य किसी नई नवेली दुल्हन के प्रथम गृह प्रवेश का होता है। जिस प्रकार नई-नवेली दुल्हन का घर में प्रथम आगमन अत्यन्त गरिमापूर्ण पवित्र, निश्छल और नवयौवन के साथ है, वैसा ही गरिमापूर्ण, पवित्र और सुकोमल वर्णन अपने ग्रन्थों में करके कालिदास ने अशोक को सम्मान दिया है।

5. 'मदनोत्सव' किसे कहते हैं? यह उत्सव कब मनाया जाता था?

उ०– प्राचीन साहित्य में अशोक के वृक्ष के वृक्ष की पूजा के उत्सवों का वर्णन है। वास्तव में यह पूजा अशोक के वृक्ष की नहीं अपितु इसके अधिष्ठाता कामदेव की होती थी। इस पूजा के उत्सव को ही मदनोत्सव कहते हैं। महाराजा भोज के 'सरस्वती-कंठाभरण' के अनुसार यह उत्सव त्रयोदशी के दिन मनाया जाता था।

पाठ्येतर सक्रियता

उ०– स्वयं करें।

5 सन्नाटा

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 52-53 का अवलोकन कीजिए।

लेखक पर आधारित प्रश्न–

1. सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' का जीवन परिचय देते हुए इनकी कृतियों का उल्लेख कीजिए।
अथवा अज्ञेय जी का साहित्यिक परिचय दीजिए।

उ०– **जीवन परिचय–** डॉ० सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' का जन्म 7 मार्च सन् 1911 ई० को उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले के कसया (कुशीनगर) नामक स्थान पर हुआ था। ये बचपन से ही प्रतिभाशाली थे। 'अज्ञेय' इनका उपनाम था तथा वास्तविक नाम था— 'सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन'। इनके पिता का नाम हीरानन्द शास्त्री था, जो मूल रूप से भणोत सारस्वत ब्राह्मण थे। इनके पिता भारत के प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता थे; अत: बचपन से ही अज्ञेय जी पर्वतों व वनों में निहित पुरातत्व अवशेषों के बीच रहे; जिस कारण परिवार से इन्हें अलग रहना पड़ा और इन्हें एकान्त ही प्रिय लगने लगा।

इनकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। घर पर ही इन्होंने संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी व फारसी आदि भाषाओं का अध्ययन किया। सन् 1929 ई० में विज्ञान विषय में स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण करके ये अंग्रेजी साहित्य से स्नातकोत्तर उपाधि के लिए अध्ययन कर रहे थे कि क्रान्तिकारी आन्दोलन में भाग लेने के कारण इन्हें सन् 1930 से 1934 ई० तक जेल में रहना पड़ा। तत्पश्चात् एक वर्ष तक घर पर ही नजरबन्दी में समय व्यतीत करना पड़ा लेकिन इन्होंने अपना साहित्य-सृजन का क्रम जारी रखा। जेल में ही इनका नाम 'अज्ञेय' रखा गया। सन् 1943 ई० में प्रथम 'तार सप्तक' का सम्पादन करके काव्य-जगत में एक नया कीर्तिमान स्थापित किया।

सन् 1943 ई० से 1946 ई० तक इन्होंने सेना में सेवा की। इन्होंने सन् 1955 ई० में यूरोप तथा 1957 ई० में जापान और पूर्वी एशिया का भ्रमण किया। कुछ समय तक ये अमेरिका में 'भारतीय साहित्य और संस्कृति' के प्राध्यापक रहे। जोधपुर विश्वविद्यालय में 'तुलनात्मक साहित्य तथा भाषा अनुशीलन विभाग' के निदेशक रहे। साप्ताहिक समाचार-पत्र 'दिनमान' के प्रथम सम्पादक भी रहे। इन्होंने दिल्ली से 'नया प्रतीक' भी निकाला। 4 अप्रैल सन् 1987 ई० को यह गरिमामयी व्यक्तित्व पंचतत्वों में विलीन हो गया। मरणोपरान्त 'अज्ञेय' जी को 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' से सम्मानित किया गया।

अज्ञेय जी ने साहित्य की विविध विधाओं (उपन्यास, समीक्षा-ग्रन्थ, निबन्ध, कहानी, यात्रा-साहित्य, नाटक काव्य) को अपनी लेखनी से समृद्ध किया। कहानी की परिभाषा देते हुए अज्ञेय जी ने कहा है— ''कहानी जीवन की प्रतिच्छाया है और जीवन स्वयं एक अधूरी कहानी, एक शिक्षा है, जो उम्र भर मिलती है और समाप्त नहीं होती।''

कृतियाँ– अज्ञेय जी की कृतियाँ इस प्रकार हैं—

निबन्ध संग्रह– लिखि कागद कोरे, हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य, सब रंग और कुछ राग, त्रिशंकु, आत्मनेपद।

कहानी– हरसिंगार, कड़ियाँ, रेल की सीटी, खितीन बाबू, अमर–वल्लरी, हजामत का साबुन, पठार का धीरज, रोज, शरणार्थी, सिगनेलर, मैना, गैंगरीन, कोठरी की बात, विपथगा, परम्परा, जयदोल, तेरे ये प्रतिरूप।

यात्रा वृतान्त– एक बूँद सहसा उछली, अरे यायावर रहेगा याद।

नाटक– उत्तर प्रियदर्शी।

संस्मरण– स्मृति लेख।

उपन्यास– शेखर: एक जीवनी, अपने–अपने अजनबी, नदी के द्वीप।

समीक्षा– तार–सप्तकों की भूमिकाएँ।

काव्य-कृतियाँ– इत्यलम्, बावरा अहेरी, हरी घास पर क्षण भर, सुनहले शैवाल, इन्द्रधनुष रौंदे हुए से, आँगन के पार द्वार, कितनी नावों में कितनी बार, अरी ओ करुणा प्रभामय, पूर्वा।

2. अज्ञेय जी की भाषा-शैली की विशेषताएँ बताइए।

उ०– **भाषा-शैली–** अज्ञेय जी की भाषा में विविधता है। इन्होंने अपनी रचनाओं में विभिन्न प्रकार की भाषा का प्रयोग किया है। भाषा की दृष्टि से अज्ञेय जी ने सदैव जीवन्त एवं समर्थ शब्दों का प्रयोग किया है। इन्होंने शब्दों के प्रयोग में मितव्ययिता का दृष्टिकोण अपनाया है और एक ही शब्द को कई नए अर्थ में भी प्रयुक्त किया है। अज्ञेय जी ने अपनी अधिकांश रचनाओं में संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग किया है, जो शब्दों की अभिव्यंजना–शक्ति की समर्थता के कारण सारगर्भित दृष्टिगोचर होती है। यद्यपि इनकी भाषा में एक–दो सामान्य उर्दू के शब्द भी दृष्टिगोचर होते हैं, किन्तु उनकी उपस्थिति नगण्य ही है। अज्ञेय जी ने अपनी भाषा में अनेक स्वनिर्मित शब्द–युग्मों का प्रयोग किया है और इस प्रयोग से अपनी भाषा की अभिव्यक्ति–क्षमता को एक नया रूप प्रदान कर नई शक्ति से भर दिया है।

अज्ञेय जी की शैली में बौद्धिकता की अधिकता है। उन्होंने शैली पर आधारित अनेक प्रयोग भी किए हैं। इन्होंने आलोचनात्मक शैली का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है। इस शैली की भाषा तत्सम शब्दों से युक्त है। इनकी अन्य शैलियों की अपेक्षा यह शैली दुरूह और गम्भीर है। इस शैली में बीच–बीच में सूक्तियों का प्रयोग भी किया गया है। इन्होंने कुछ विषयवस्तुओं और स्थानों का परिचय विवरणात्मक शैली में भी दिया है। इस शैली के वाक्य छोटे–छोटे व सरल हैं। 'एक बूँद सहसा उछली' और 'अरे यायावर रहेगा याद' आदि में इनकी इस शैली के दर्शन किए जा सकते हैं। अज्ञेय जी ने अपने निबन्धों में नाटकीय संवादों का भी भरपूर प्रयोग किया है। इससे रोचकता बढ़ने के साथ–साथ भाषा बड़ी प्रभावशाली हो गई है। कवि–हृदय के कारण अज्ञेय जी के गद्य में भावात्मक शैली का प्रयोग नजर आता है। भावात्मक स्थलों पर लक्षणा शक्ति का प्रचुर प्रयोग हुआ है। अज्ञेय जी ने अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत के उद्धरणों का प्रयोग भी यहाँ–वहाँ किया है। कई बार तो लेख का आरम्भ ही उद्धरणों से किया गया है। इससे इनकी उद्धरण शैली के बारे में पता चलता है। अज्ञेय जी ने अपने लेखन में व्यंग्यात्मक शैली का भी कहीं–कहीं प्रयोग किया है।

व्याख्या संबंधी प्रश्न–

1. निम्नलिखित गद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) असल में सन्नाटा .... आवाज होती है।

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्यपुस्तक 'गद्यगरिमा' में 'सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' जी द्वारा लिखित 'सब रंग और कुछ राग' निबन्ध संग्रह से 'सन्नाटा' नामक निबन्ध से अवतरित हैं।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यावतरण में लेखक ने सन्नाटे की नीरवतता में भी स्वर के गुणों का वर्णन किया है।

व्याख्या– लेखक अज्ञेय जी सन्नाटे का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वास्तव में सन्नाटा अत्यधिक आवाज से रहित होना नहीं होता, सन्नाटा तो शब्द का ही एक गुण है। आप मान सकते हैं कि मौन का जो स्वर होता है वही सन्नाटे की गति होती है अर्थात् जब व्यक्ति या वातावरण में सन्नाटा होता है तब भी वहाँ एक स्वर होता है, चाहे वह सूक्ष्म ही क्यों न हो। लेखक अज्ञेय जी कहते हैं कि यह कोई विरोध नहीं है कि सन्नाटे में स्वर होता है, क्योंकि जिस प्रकार स्वर के क्षेत्र में सन्नाटा होता है, उसी तरह दूसरी इन्द्रियों के क्षेत्र में भी होता। वे स्वाद का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि अगर किसी चीज में कोई स्वाद नहीं होता है तो हम कहते हैं कि अमुक वस्तु का स्वाद फीका है। लेकिन यह विचारणीय विषय है कि क्या वास्तव में स्वादहीन वस्तु फीकी होती है? लेखक कहते हैं कि जिस प्रकार पानी स्वादहीन होता है– पर उसे हम फीका नहीं कहते। अगर हम कभी विशेष पानी को फीका कहते हैं तो केवल तब जब उसमें कोई विशेष स्वाद मिश्रित हो, अगर उसमें वह स्वाद न हो तो हम उसे फीका कह सकते हैं क्योंकि हम उसमें विशेष स्वाद की कमी को फीका कहेंगे। जिस तरह से स्वाद में फीकापन भी स्वाद का एक गुण है उसी प्रकार सन्नाटा भी स्वर का ही एक गुण है, जिसकी एक विशेष आवाज होती है।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. भाषा– सजीव, प्रवाहपूर्ण खड़ीबोली। **2. शैली–** विवेचनात्मक। **3.** इसमें लेखक ने सन्नाटे की विशेषता या गुणों का वर्णन किया है।

(ख) भाषा बुद्धि का .... समा नहीं सकती।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने स्पष्ट किया है, कि मनुष्य किसी वस्तु का पूर्ण नकार स्वीकार नहीं करता इसलिए वह अँधेरे का रंग भी 'काला' बताता है, जब कि अँधेरे का कोई रंग नहीं होता।

व्याख्या– भाषा एक ऐसा साधन है, जिसे बुद्धि अपने प्रयोग में लाती है। मनुष्य भाषा द्वारा ही अपने अनुभवों भावों और विचारों को व्यक्त करता है और अपनी बात को दूसरों तक पहुँचाता है। किसी वस्तु का वर्णन भाषा द्वारा ही किया जाता है। कभी-कभी भाषा का त्रुटिपूर्वक प्रयोग भी किया जाता है। हम न जाने किस प्रभाव के कारण सन्नाटा शब्द का अर्थ गलत रूप से ग्रहण करते हैं। अँधेरे का रंग न होने पर भी हम उसे 'काला' कहते हैं। लेखक कहता है कि यदि हम इन प्रयोगों को ध्यान से देखें तो पाएँगें कि यह भाषा का गलत प्रयोग नहीं है। सत्यता यह है कि मनुष्य बुद्धि या तर्क को प्रधानता देता है; अत: वह पूर्ण नकार से डरता है, उसे स्वीकार करना नहीं चाहता मनुष्य तर्क-वितर्क करके ही किसी बात को स्वीकार करता है। वह जानता है कि किसी वस्तु को पूर्ण रूप से नकार देने पर उसका किसी-न-किसी रूप में अस्तित्व हो सकता है; अत: वह पूर्ण नकार को स्वीकार करने से बचता है। सोचता है कि सम्पूर्ण नकार है तो वह विराट् निराकार परम ब्रह्म है, जिसका ऐश्वर्य मनुष्य की कल्पना से परे है।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. भाषा– परिमार्जित और परिष्कृत खड़ी बोली। **2. शैली–** विवेचनात्मक। **3.** मानव तर्कजीवी और बुद्धिजीवी प्राणी है, फिर भी वह किसी वस्तु को पूर्ण रूप से नकार नहीं सकता।

(ग) नकार का अपना .... वही तो परमात्मा है!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश में लेखक का मानना है कि सम्पूर्ण नकार हमारी कल्पना से परे है और वही ईश्वर है। लेखक की मान्यता है कि यदि सम्पूर्ण नकार है तो वह विराट् निराकार परम ब्रह्म हैं, जिसका ऐश्वर्य मनुष्य की कल्पना से परे है।

व्याख्या– लेखक की मान्यता है कि यदि सम्पूर्ण नकार है तो वह विराट् निराकार ब्रह्म है, जिसका विराट् ऐश्वर्य मनुष्य की कल्पना से परे है; अर्थात् सम्पूर्ण नकार का विराट् ऐश्वर्य; मनुष्य की वाणी तथा कल्पना का विषय नहीं है। इसीलिए ईश्वर के सभी विशेषण नकारात्मक हैं; यथा— अनादि (जिसका आदि नहीं), अनन्त (जिसका अन्त नहीं), अगम (जिस तक पहुँचा नहीं जा सकता); अरूप (जो रूपरहित है), असीम (जो सीमारहित है) तथा अप्रमेय (जो विचार से परे है।) यहाँ तक कि बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी जिस परमात्मा के विषय में बताते-बताते अन्त में "यह नहीं, यह नहीं" कह देते हैं, वह निराकार परम ब्रह्म ही तो है। 'नेति-नेति' कहना ईश्वर की परिभाषा की पराजय नहीं, अपितु यही उस परमात्मा की पूरी परिभाषा है; क्योंकि सत्य यही है कि सम्पूर्ण नकार अर्थात् परमात्मा हमारी वाणी और कल्पना में नहीं समा सकता, वह तो हमारी पहुँच से परे हैं। आशय यह है कि जो हमारी पहुँच से परे है, वहीं परमात्मा है।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. भाषा– सजीव, प्रवाहपूर्ण एवं संस्कृतनिष्ठ। **2. शैली–** विचारात्मक। **3. वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **5.** लेखक के विचार से सम्पूर्ण नकार (ईश्वर) का स्वरूप विराट् है। वह मनुष्य की कल्पना में नहीं समा पाता है।

(घ) स्थिति-वैचित्र्य .... विश्वास नहीं होता।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत अवतरण में लेखक ने इन्द्रिय-ज्ञान की उपेक्षा करने के कारण प्रगतिवादी कवियों पर तीक्ष्ण व्यंग्य किया है।

व्याख्या– लेखक के अनुसार यदि स्थितियाँ भिन्न-भिन्न हों तो पूरा समाज उसे अलग-अलग प्रकार से अनुभव करता है, परन्तु देखने में यह भी आता है कि एक ही स्थिति में भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार के अनुभव करने लगते हैं। ध्वनि का उदाहरण देते हुए लेखक कहता है कि प्रत्येक शब्द में ध्वन्यात्मकता छिपी होती है तथा उस ध्वनि का प्रभाव व्यक्ति पर अवश्य होता है। वह उससे बच नहीं पाता है और तभी नवीन शब्दों का निर्माण होता है। लोग अपनी रुचि या अनुभूति के अनुसार शब्दों का निर्माण कर लेते हैं; जैसे— पानी का जो शब्द होता है, उसे सभी 'कल-कल' ध्वनि के नाम से सुनते हैं। वाल्मीकि से लेकर कालिदास तक और कालिदास से लेकर हिन्दी के छायावादी कवियों तक सभी ने पानी की ध्वनि को 'कल-कल' रूप में ही सुना है और 'कल-कल' शब्द के रूप में ही व्यक्त भी किया है। लेकिन प्रयोगवादी कवियों या लेखकों ने प्रकृति की ध्वनि को सुना और उस ध्वनि को काल्पनिक मानकर सुनने से इंकार कर दिया; क्योंकि वे इसे छायावादी कवियों की कल्पना की उपज मानते थे। वे सम्भवत: मानव की समस्त क्रियाओं को बन्द कारखाने के समान मान बैठे थे और उन्होंने इन्द्रिय संवेदनाओं से अपने को आश्चर्यजनक ढंग से दूर ही कर लिया था।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. भाषा– परिमार्जित खड़ी बोली। **2. शैली–** विवेचनात्मक और व्यंग्यात्मक। **3. वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **4. शब्द-चयन–** विषय के अनुरूप। **5.** लेखक ने प्रकृति से प्राप्त इन्द्रिय-ज्ञान को मानव के लिए आवश्यक बताया है। **6.** इन्द्रिय-ज्ञान की उपेक्षा करने से मनुष्य का मन अपंग हो जाता है। **7.** मन इन्द्रियों के द्वारा ही सभी प्रकार का ज्ञान प्राप्त करता है। **8.** प्रगतिवादी कवियों ने प्रकृति-वर्णन की जो उपेक्षा की है, लेखक ने उस पर तीक्ष्ण व्यंग्य किया है।

(ङ) और शायद सन्नाटे .... हुई मुक्त हवा।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने सन्नाटे की ध्वनि का सूक्ष्म विवेचन किया है।

व्याख्या– लेखक कहता है कि जब सन्नाटा होता है, उस समय हमें 'साँय-साँय की जो ध्वनि सुनाई पड़ती है वह अपने भीतर की आवाज ही होती है। तो हमारे शरीर की नसों में जो रक्त निरन्तर दौड़ता रहता है, उसकी भी गूँज होती है। सन्नाटे के समय हम उसी रक्त-प्रवाह की गूँज को साँय-साँय' के रूप में सुनते हैं। सीपी में भी हम सागर की ध्वनि सुनते हैं, वास्तव में यह ध्वनि सीपी में सागर की नहीं होती, वरन् अपने भीतर के रक्त-प्रवाह की मन्द-मन्द ध्वनि है; जो हमें इस रूप में सुनाई देती है। लेखक कहता है कि सन्नाटे के क्षणों में हमें जो रक्त-प्रवाह की मन्द-मन्द ध्वनि सुनाई देती है, उसमें हमें 'साँय-साँय' की अनुभूति होती है। कुछ लोग उस ध्वनि को 'भाँय-भाँय' रूप में भी सुनते हैं, पर वे ऐसे लोग होंगे, जिनकी रक्त की धमनियाँ चूना जम जाने से पथरा गयी और उनमें रक्त के अधिक दबाव के कारण लचीलापन समाप्त हो गया हो। उन्हें ही रक्त के दौड़ने की ध्वनि 'साँय-साँय' के स्थान पर 'भाँय-भाँय' सुनाई पड़ती है। जैसा कि लोहे के पाइप में किसी द्रव के बहने से ध्वनि होती है, ऐसे लोगों को रक्त-प्रवाह की ध्वनि पेड़ों की पत्तियों में सनसनाती मुक्त हवा की तरह नहीं सुनाई पड़ती उन्हें साँय-साँय की जगह 'भाँय-भाँय' ध्वनि सुनाई पड़ती है।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. भाषा– सरल खड़ी बोली। **2. शैली–** विवेचनात्मक। **3.** लेखक ने 'साँय-साँय को 'भाँय-भाँय' सुनने वालों के प्रति कटाक्ष किया है। **4.** सन्नाटे के क्षणों में रक्त-प्रवाह की गूँज ही 'साँय-साँय' सुनाई पड़ती है।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक वाक्यों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) सन्नाटा आत्यन्तिक रवहीनता नहीं है।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'गद्यगरिमा' में संकलित 'सन्नाटा' नामक निबन्ध से अवतरित है। इसके लेखक 'सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय' जी हैं।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में लेखक कहता है कि सन्नाटे का अर्थ पूर्ण रूप से ध्वनि का अभाव नहीं है, वरन् यह तो शब्द का ही एक गुण है। सन्नाटा ध्वनि के क्षेत्र में नकारात्मक अवश्य प्रतीत होता है, किन्तु सूक्ष्म ध्वनियों के द्वारा हम उसकी अनुभूति करते हैं। ध्वनि के क्षेत्र में सन्नाटे का वही भाव होता है, जो अच्छे स्वच्छ जल में स्वादहीनता का, किन्तु उसे तो हम कभी फीका नहीं कहते। इसी प्रकार सन्नाटे की भी अपनी सूक्ष्म ध्वनि होती है, जो व्यक्ति और स्थिति की भिन्नता के कारण अनेक प्रकार की ध्वनियों (सूँ-सूँ, साँय-साँय, भाँय-भाँय, हाऊँ-हाऊँ) के रूप में सुनाई पड़ती है जहाँ कोई शब्द नहीं होता है, वहाँ प्राकृतिक ध्वनि नीरवता को समाप्त कर देती है।

(ख) अँधेरा प्रकाश की एकान्त अनुपस्थिति है, और रंग क्योंकि प्रकाश का गुण है, इसलिए अँधेरे का कोई भी रंग नहीं हो सकता।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में अँधेरे और काले रंग की वैज्ञानिक और तार्किक दृष्टिकोण से विवेचना की गयी है।

व्याख्या– यहाँ लेखक ने कहा है कि जहाँ प्रकाश की अनुपस्थिति होती है, वहीं अँधेरा होता है। यदि प्रकाश न हो तो हमें कोई रंग दिखाई नहीं देगा; क्योंकि रंग प्रकाश का ही गुण है। इसीलिए जहाँ प्रकाश न हो, वहाँ कोई रंग नहीं होता, परन्तु हम कहते हैं कि काला अँधेरा है। इस प्रकार काला भी रंग नहीं है, वरन् रंग की अनुपस्थिति को ही हम काला कह देते हैं।

(ग) भाषा बुद्धि का एक उपकरण है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक वाक्य में सन्नाटा के प्रसंग में 'भाषा' तत्व पर विचार हुआ है।

व्याख्या– विद्वान लेखक ने कहा है कि भाषा का प्रयोग हम अपनी बुद्धि के अनुसार करते हैं। इसके माध्यम से अपने मनोभावों और विचारों को दूसरों तक पहुँचाते हैं और दूसरों के भावों तथा विचारों को समझते हैं, किन्तु भाषा में शब्द होते हैं और शब्द ध्वनियों से बनते हैं, जब कि सन्नाटा में ध्वनि की प्रतीति नहीं होती, परन्तु फिर भी वह मौन की अभिव्यक्ति करता है। वस्तुत: यह शब्द का ही एक गुण है, जो शब्द को गति देता है। जिस प्रकार लिखने का साधन कलम है, उसी प्रकार बुद्धि द्वारा चिन्तन को व्यक्त करने का साधन भाषा है। यही कारण है कि लेखक ने भाषा को बुद्धि का उपकरण माना है।

(घ) सम्पूर्ण नकार कुछ है कुछ बहुत बड़ा, कुछ विराट है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में 'नकार' के माध्यम से ईश्वर की सत्ता को मानवेन्द्रिय से परे की वस्तु बताया गया है।

व्याख्या– लेखक का मत है कि मनुष्य नकारात्मक परमात्मा की महानता की कल्पना भी नहीं कर सकता। उसकी विराटता की कल्पना करना उसकी सामर्थ्य से परे की बात है। यही कारण है कि ईश्वर की विराटता को व्यक्त न कर सकने के कारण उसके सारे विशेषण नकारात्मक हैं; जैसे— अगम, अगोचर, असीम आदि। इसी प्रकार किसी वस्तु को पूर्ण रूप से नकारने पर उसका स्वरूप इतना विराट हो जाता है कि उसे मानव-बुद्धि समझ पाने में ही असमर्थ हो जाती है।

(ङ) स्थिति-वैचित्र्य तो पूरे समाज को प्रभावित करता है। पर व्यक्ति-वैचित्र्य का भी असार हो सकता है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में प्रगतिवादी कवियों के व्यक्तित्व तथा उनकी अनुभूति की भिन्नता का विश्लेषण किया गया है। इस सूक्ति के द्वारा प्रगतिवादी कवियों पर कटाक्ष किया गया है।

व्याख्या– लेखक ने स्पष्ट किया है कि स्थिति की भिन्नता को तो सम्पूर्ण समाज भिन्न-भिन्न रूप में ही अनुभव करता है, परन्तु कभी-कभी अनुभव करने वाले व्यक्तियों की भिन्नता एक ही स्थिति को भिन्न-भिन्न अनुभूतियों में ढाल देती है। प्रगतिवादी कवियों का व्यक्तित्व भी पूर्व काल के कवियों से भिन्न है, इसलिए उनकी अनुभूति भी भिन्न है।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न–

1. सन्नाटा पाठ का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– 'सन्नाटा' निबन्ध 'सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय' जी के निबन्ध-संग्रह 'सब रंग और कुछ राग' से संकलित है। लेखक ने इस निबन्ध में सन्नाटा शब्द को परिभाषित किया है कि सन्नाटा शब्द का ही गुण है। इसमें एक स्वर होता है, भले ही वह स्वर सूक्ष्म ही क्यों न हो। लेखक कहते हैं कि सन्नाटे का अर्थ पूर्ण रूप से ध्वनि का अभाव नहीं है, वरन् शब्द का ही एक गुण है। सूक्ष्म ध्वनियों के द्वारा हम सन्नाटे की अनुभूति करते हैं। ध्वनि के क्षेत्र में सन्नाटे का वही भाव होता है, जो अच्छे स्वच्छ जल में स्वादहीनता का, किन्तु उसे तो हम कभी फीका नहीं कहते। इसी प्रकार सन्नाटे की भी अपनी सूक्ष्म ध्वनि होती है, जो व्यक्ति और स्थिति की भिन्नता के कारण अनेक प्रकार की ध्वनियों के रूप में सुनाई पड़ती है। लेखक कहते हैं कि जहाँ प्रकाश की अनुपस्थिति होती है, वहीं अँधेरा होता है। यदि प्रकाश न हो तो हमें कोई रंग नहीं दिखाई पड़ता, क्योंकि रंग प्रकाश का एक गुण है। इसलिए जहाँ प्रकाश न हो, वहाँ कोई रंग नहीं होता, परन्तु हम अँधेरे को काला कहते हैं। लेखक कहते हैं कि हम जानते हैं कि अँधेरा नीला और भूरा किसी अवर्णनीय रंग का धुँधला भी हो सकता है। लेखक अपने निजी अनुभव के आधार पर बताते हैं कि जब हमारी आँखों के सामने अँधेरा छा जाता है तो हमें उस अँधेरे में भी लाल, पीला, हरा आदि रंग दिखाई देते हैं। लेखक कहते हैं कि भाषा एक ऐसा साधन है, जिसे बुद्धि अपने प्रयोग में लाती है। मनुष्य भाषा के माध्यम से ही अपने भावों और विचारों को व्यक्त करता है और अपनी बात को दूसरों तक पहुँचाता है। परन्तु कभी-कभी भाषा का त्रुटिपूर्वक प्रयोग भी किया जाता है। हम सन्नाटा शब्द का अर्थ गलत रूप में ग्रहण करते हैं। अँधेरे का रंग न होने पर भी उसे काला कहते हैं। सत्यता यह है कि मनुष्य बुद्धि या तर्क को प्रधानता देता है। मनुष्य तर्क-वितर्क करके ही किसी बात को स्वीकार करता है। वह सोचता हैं कि किसी वस्तु को पूर्ण रूप से नकार देने पर उसका किसी-न-किसी रूप में अस्तित्व हो सकता है इसलिए वह पूर्ण नकार करने से बचता है। यदि सम्पूर्ण नकार है तो वह विराट निराकार परम ब्रह्म है, जिसका ऐश्वर्य मनुष्य की कल्पना से परे है अर्थात् सम्पूर्ण नकार का विराट ऐश्वर्य मनुष्य की वाणी और कल्पना का विषय नहीं है। इसलिए ही ईश्वर को सभी नकारात्मक विशेषणों अनादि, अनन्त, अगम, अगाध, अरूप, असीम, अप्रमेय आदि से पुकारा जाता है। यहाँ तक कि बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी जिस परमात्मा के विषय में बताते-बताते अन्त में 'यह नहीं, यह नहीं' कह देते हैं, वह निराकार ब्रह्म ही तो है। यह ईश्वर की पराजय नहीं, अपितु परमात्मा की पूरी परिभाषा है क्योंकि परमात्मा हमारी कल्पना और वाणी में नहीं समा सकता।

'सन्नाटा' शब्द नीरवता की सन्-सन् ध्वनि से बना है। भारत में अलग अलग स्थानों पर इसे अलग-अलग ध्वनि में सुना जाता है। या ऐसा भी संभव हो सकता है अलग-अलग स्थानों के सन्नाटे के स्वर में भिन्नता हो सकती है। या हमारे कानों में भी अन्तर सम्भव है। शब्दों के निर्माण में उसकी ध्वनि महत्वपूर्ण स्थान रखती है। ध्वन्यनुसारी के शब्द प्रत्येक भाषा में है। जैसे गोली की आवाज में हम ठाँय शब्द सुनते हैं लेकिन अंग्रेजी में वह 'बैंग या क्रैंक' हो जाता है। इसी प्रकार तोप की आवाज हमारे लिए धाँय, अंग्रेजी में बूम हो जाती है। इसी तरह रूनझन, गड़गड़ाहट, पानी की कल-कल की ध्वनि के लिए भी टिंकल, रम्बल, रसल आदि शब्द प्रयोग होते हैं। लेखक इन भेदों को देखकर पंजाबी का एक जन-गीत याद करता है। लेकिन ऐसा नहीं है कि इन ध्वन्यनुसारी शब्दों में केवल भेद भी होता है, कुछ शब्दों में इनमें साम्य भी देखने को मिलता है। परन्तु इन शब्दों में यह साम्य और विभेद तुलना के लिए एक अच्छा विषय बन सकता है।

लेखक कहता है कि यदि स्थितियाँ भिन्न-भिन्न हों तो पूरा समाज उसे भिन्न-भिन्न प्रकार से अनुभव करता है, परन्तु यह संभव है कि एक ही स्थिति भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार से अनुभव करें। पानी के स्वर को सभी लोग कल-कल की ध्वनि से सुनते हैं, वाल्मीकि से लेकर कालीदास तथा सभी छायावादी कवियों ने इसे कल-कल के रूप में ही सुना था परन्तु

प्रगतिवादी कवियों या लेखकों ने प्रकृति की इस ध्वनि को नहीं सुना और उस ध्वनि को काल्पनिक मानकर सुनने से इनकार कर दिया। यदि प्रगतिवादी कवियों की तरह हम प्रकृति के रस, रूप, गन्ध, स्पर्श, ध्वनि की उपेक्षा कर दे तो हमारा सामाजिक ज्ञान समाप्त हो जाएगा। हमारी विचार शक्ति धीमी पड़ जाएगी।

लेकिन सन्नाटा वास्तव में नकार ही है, जिसे हम उसके कुछ लक्षणों के द्वारा अनुभव कर सकते हैं। और यही मनोरंजक है कि कोई भी लक्षण नकारात्मक नहीं होता है अपितु सूक्ष्म होता है। जिस प्रकार हम सूक्ष्म को अपर्याप्त लक्षणों के द्वारा अनुभव करते हैं उसी प्रकार विराट को भी करते हैं। सन्नाटे को हम पूर्ण-रूप से साक्षात नहीं जानते हैं अपितु इन छोटे-छोटे स्वरों के सहारे जानते हैं और उन स्वरों को सुनने में अपनी इच्छाओं तथा विचारों के अनुसार सुनते हैं। हम प्रभात के समय को शान्त सुहावना बताते हैं। परन्तु क्या वास्तव में प्रभात का समय शान्त होता है। प्रभात में इतने सारे स्वर होते हैं कि आप गिनने लगे तो चकित हो जाएँगे। भारत में सन्नाटे की स्थिति अगर होती है तो वह लगभग दोपहर के समय होती है जब हमारी शिथिल इन्द्रिया इस सन्नाटे की ध्वनि को अनसुनी कर देती है।

लेखक कहता है कि सन्नाटे की साँय-साँय की जो ध्वनि हमें सुनाई पड़ती है वह वास्तव में हमारे भीतर की आवाज होती हैं। हमारे शरीर की नसों में दौड़ते हुए रक्त की भी एक गूँज होती है। उसी रक्त-प्रवाह की गूँज को हम सन्नाटे में साँय-साँय के रूप में सुनते हैं। सीपी में सागर की ध्वनि भी हम इसी प्रकार सुनते हैं। कुछ लोग रक्त प्रवाह की ध्वनि को भाँय-भाँय के रूप में सुनते हैं, पर वे ऐसे लोग होंगे, जिनकी रक्त की धमनियाँ चूना जम जाने से पथरा गई हो और इनका लचीलापन समाप्त हो गया हो। लेकिन साँय-साँय और भाँय-भाँय के चक्कर में उलझने की कोई जरूरत नहीं है। ऐसे भेद जीवन की विचित्रता के लिए आवश्यक होते हैं। लेखक कहते हैं कि मेरा बोलना आपको बड़बड़ाना लगेगा। अगर आप कुछ बोलेगे, तो समझूँगा व्यर्थ बोलते हैं और यदि मैं यह कह दूँगा तो आप नाराज हो जाएँगे और मैं चुप हो जाऊँगा। और फिर वही सन्नाटा होगा। लेकिन आप सन्नाटे का स्वर सुनिए और साँय-साँय है या कुछ और।

2. ध्वन्यनुसारी शब्द किसे कहते हैं? समझाइए।

उ०– ध्वन्यनुसारी शब्दों से तात्पर्य ध्वनि के अनुकरण पर बनने वाले शब्दों से है। ये शब्द अलग-अलग देशों में अलग-अलग होते हैं। जैसे गोली की आवाज हम सुनते हैं ठाँय, लेकिन अंग्रेजी में वह 'बैंग' या 'क्रैंक' हो जाता है। इसी प्रकार अलग-अलग देशों में अलग-अलग ध्वनि पर आधारित शब्दों को ध्वन्यनुसारी शब्द कहते हैं।

3. जिस तरह से स्वर के क्षेत्र में सन्नाटा नकारात्मक प्रतीत होता है, उसी प्रकार अन्य इन्द्रियों के क्षेत्र में उदाहरण दीजिए।

उ०– जिस तरह से स्वर में सन्नाटा नकारात्मक होता है उसी तरह स्वाद में फीकापन नकारात्मक होता है क्योंकि फीकापन भी एक स्वाद ही है। फीकापन का एक स्वरूप होता है। जब हम कोई वस्तु खाते हैं और उसके स्वाद में कमी महसूस करते हैं तो हम कह सकते हैं कि फीका है, परन्तु यह फीकापन ही उस वस्तु का स्वाद है। इसी प्रकार अन्य दूसरी इन्द्रिय जिसके द्वारा हम देखते हैं, उसमें भी नकारात्मक दृष्टिकोण प्रतीत होता है क्योंकि जहाँ प्रकाश की अनुपस्थिति होती है, वहीं अँधेरा होता है। यदि प्रकाश न हो तो हमें कोई रंग दिखाई नहीं देगा; क्योंकि रंग प्रकाश का ही गुण है। इसलिए जहाँ प्रकाश न हो, वहाँ कोई रंग नहीं होता, परन्तु हम कहते हैं कि काला अँधेरा है। इस प्रकार काला भी कोई रंग नहीं है, वरन् रंगों की अनुपस्थिति है।

4. जिस तरह से 'सनसनाहट' 'गड़गड़ाहट' शब्दों में आहट प्रत्यय का प्रयोग हुआ है। उसी प्रकार 'आहट' प्रत्यय से बने कुछ अन्य शब्द लिखिए।

उ०– 'आहट' प्रत्यय के योग से बने कुछ शब्द निम्नलिखित हैं—

घबराहट, मुस्कुराहट, चहचहाहट, बड़बड़ाहट, सरसराहट, कड़कड़ाहट, तड़तड़ाहट, कुलबुलाहट, चिड़चिड़ाहट, तमतमाहट, बिलबिलाहट, छटपटाहट, तड़पाहट आदि।

5. ईश्वर के सब विशेषण नकारात्मक कैसे हैं?

उ०– ईश्वर के सब विशेषण नकारात्मक हैं क्योंकि इन सबसे ईश्वर की कल्पना मानव नहीं कर सकता, जैसे— अनादि (जिसका अंत नहीं), अनन्त (जिसका अंत नहीं), अगम (जिस तक न पहुँचा जा सके), अरु (जो रूपरहित हो), असीम (जो सीमारहित हो), तथा अप्रमेय (जो विचार से परे है।) अर्थात इस सब विशेषणों के द्वारा उस परमात्मा के विराट ऐश्वर्य का मानव अपनी वाणी से वर्णन तथा कल्पना नहीं कर सकता। क्योंकि ये सब विशेषण मनुष्य की कल्पना से परे हैं जिनका गुणगान मनुष्य वाणी द्वारा संभव नहीं है।

पाठ्येतर सक्रियता

उ०– छात्र स्वयं करें।

6 भाषा और आधुनिकता

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 57-58 का अवलोकन कीजिए।

लेखक पर आधारित प्रश्न–

1. प्रो० जी० सुन्दर रेड्डी का जीवन परिचय देते हुए हिन्दी साहित्य में उनका स्थान निर्धारित कीजिए।

उ०– जीवन परिचय– सुप्रसिद्ध निबन्धकार, विचारक व समालोचक श्री जी० सुन्दर रेड्डी का जन्म सन् 1919 ई० में दक्षिण भारत के आन्ध्र प्रदेश में हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा तेलुगू और संस्कृत में तथा उच्च शिक्षा हिन्दी में हुई। हिन्दी, तमिल व मलयालम आदि भाषाओं पर इनका समान अधिकार था। हिन्दी व तेलुगू साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन पर इन्होंने गहन शोध किया। अंग्रेजी, हिन्दी व तेलुगू के अनेक पत्र-पत्रिकाओं में इनके निबन्ध प्रकाशित हुए हैं। ये अहिन्दी भाषी क्षेत्र से सम्बन्धित थे, लेकिन फिर भी इन्होंने हिन्दी भाषा में साहित्य-सृजन करके एक अनोखा उदाहरण प्रस्तुत किया है। भाषा और आधुनिकता विषय पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार प्रस्तुत करने वाले साहित्यकारों में श्री जी० सुन्दर रेड्डी ने महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। इन्होंने बत्तीस वर्ष तक 'आन्ध्र विश्वविद्यालय' में हिन्दी विभागाध्यक्ष के पद को सुशोभित किया। उत्तर-भारत के लोगों को दक्षिणी भाषाओं का ज्ञान प्रदान करने तथा दक्षिण-भारत के लोगों को हिन्दी भाषा का ज्ञान प्रदान करने एवं उसके प्रति आकर्षण उत्पन्न करने की दृष्टि से श्री जी० सुन्दर रेड्डी ने अपनी प्रेरक कृतियाँ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत की है। 30 मार्च सन 2005 को श्री जी० सुन्दर रेड्डी का देहान्त हो गया।

हिन्दी साहित्य में स्थान– निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि प्रो० जी० सुन्दर रेड्डी हिन्दी-साहित्य जगत के उच्चकोटि के विचारक, समालोचक एवं निबन्धकार हैं। इनकी रचनाओं में विचारों की परिपक्वता, तथ्यों की सटीक व्याख्या एवं विषय सम्बन्धी स्पष्टता दिखाई देती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अहिन्दी भाषी क्षेत्र से होते हुए भी, इन्होंने हिन्दी भाषा के प्रति अपनी जिस निष्ठा व अटूट साधना का परिचय दिया है, वह अत्यंत प्रेरणास्पद है। हिन्दी साहित्य जगत सदैव इनका ऋणी रहेगा।

2. प्रो० जी० सुन्दर रेड्डी की कृतियों का उल्लेख करते हुए उनकी भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।

उ०– कृतियाँ– इनकी प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं—

हिन्दी और तेलुगू: एक तुलनात्मक अध्ययन, साहित्य और समाज, वैचारिकी, दक्षिण की भाषाएँ और उनका साहित्य, शोध और बोध, मेरे विचार, लैंग्वेज प्रॉब्लम इन इंडिया (अंग्रेजी भाषा में सम्पादित), तेलुगू दारुल (तेलुगू)।

भाषा-शैली– प्रो० रेड्डी की भाषा परिमार्जित तथा सशक्त है। इनकी भाषा सरलता, स्पष्टता तथा सहजता के गुणों से परिपूर्ण है। भाषा की सम्पन्नता के लिए इन्होंने अपनी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ-साथ उर्दू, फारसी एवं अंग्रेजी भाषा के शब्दों का भी प्रयोग किया है। इन्होंने अपनी भाषा में मुहावरों और लोकोक्तियों का भी सुन्दर प्रयोग किया है, जिससे भाषा प्रभावशाली हो गई है।

कठिनतम विषय को सरल एवं सुबोध ढंग से प्रस्तुत करना इनकी शैली की विशेषता है। इनकी शैली इनके भाव एवं विषय के अनुकूल है। प्रो० रेड्डी ने अपने अधिकांश निबन्धों में विचारात्मक शैली का प्रयोग किया है। जहाँ इस शैली का प्रयोग किया गया है, वहाँ भाषा संस्कृतनिष्ठ एवं परिष्कृत हो गई है। इनके निबन्धों में गवेषणात्मक शैली के भी दर्शन होते हैं। लेखक ने इस शैली का जहाँ भी प्रयोग किया है, वहाँ भाषा अत्यन्त गम्भीर है और परिमार्जित है। लेखक ने इस शैली में खोजपूर्ण और नवीन विचारों को प्रदर्शित किया है। जहाँ लेखक ने किसी विषय की आलोचना की है, वहाँ समीक्षात्मक या आलोचनात्मक शैली का प्रयोग किया है। इस शैली से भाषा संयत और प्रभावशाली हो गई हैं। इसके अतिरिक्त इनके निबन्धों में प्रश्नात्मक शैली।

व्याख्या संबंधी प्रश्न–

1. निम्नलिखित गद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) रमणीयता और नित्य .... सोची नहीं जाती।

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्यपुस्तक 'गद्य गरिमा' के 'प्रो० जी० सुन्दर रेड्डी' द्वारा लिखित 'भाषा और आधुनिकता' नामक निबन्ध से अवतरित है।

प्रसंग– भाषा की आधुनिकता के सन्दर्भ में लेखक ने इस तथ्य पर बल दिया है कि जिस प्रकार सौन्दर्य में नवीनता होनी चाहिए, उसी प्रकार भाषा में भी नवीनता आती रहनी चाहिए।

व्याख्या– भाषा की नवीनता ही उसकी सुन्दरता और रमणीयता की द्योतक है। जो वस्तु रमणीय होगी, वह नवीन भी होगी और

जो नवीन होगी, उसमें रमणीयता भी रहेगी। इस प्रकार नवीनता और रमणीयता एक-दूसरे पर आश्रित हैं अथवा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। बिना रमणीयता के कोई भी वस्तु महत्वपूर्ण नहीं हो सकती। उसको मौलिकता की मान्यता भी नहीं मिल सकती। इसी प्रकार किसी भी कलाकार की रचना में व्याप्त नवीनता ही उसकी मौलिकता का सबसे बड़ा प्रमाण है। इस नवीनता के होने पर ही समाज उस रचना के प्रति आकर्षित होगा। वास्तविकता यह है कि मौलिक साहित्यकार और कलाकार की रचना में कुछ-न-कुछ नवीनता अवश्य होती है। यदि कोई कलाकार या साहित्यकार अपनी रचना को नवीन या मौलिक दृष्टि नहीं दे सकता तो उसकी रचना को सामाजिक स्वीकृति नहीं मिल सकती। जिस प्रकार पिछड़ी हुई रूढ़ियों से ग्रस्त समाज प्रगति नहीं कर पाता; उसी प्रकार पुरानी रीतियों, परम्पराओं और शैलियों से जकड़ी हुई भाषा भी समाज में आदर प्राप्त नहीं कर पाती; क्योंकि वह युग के अनुरूप जन-चेतना उत्पन्न करने में असमर्थ हो जाती है। नवीन विचारों और वैज्ञानिकता से परिपूर्ण भाषा ही समाज में प्रतिष्ठित हो सकती है। समय की मान्यताओं के अनुसार शब्दावली तथा शैली को स्वीकार करनेवाली भाषा ही सुन्दर हो सकती है। सभ्यता-संस्कृति और ज्ञान के विकास के फलस्वरूप जो वैचारिकता क्रान्ति होती है, जिसे हम युग-चेतना के नाम से जानते हैं, उसकी सफल अभिव्यक्ति का एकमात्र सशक्त माध्यम भाषा ही है। और कोई भी भाषा ऐसी सशक्तता तभी प्राप्त कर सकती है, जब वह अपने युग के अनुरूप सटीक, औचित्यपूर्ण नए मुहावरों को ग्रहण करे। भाषा का एकमात्र उद्देश्य यही है कि समाज के लोगों के भावों और विचारों को सरलता से एक-दूसरे तक पहुँचा सके। इसके अतिरिक्त उसका समाज में अन्य कोई उपयोग नहीं है।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. लेखक ने भाषा के विकासशील स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उसमें नवीनता को आवश्यक माना है। **2.** भाषा वही श्रेष्ठ होगी, जो युगानुरूप भावों को ग्रहण कर सके और समाज में चेतना जाग्रत कर सके। **3. भाषा–** प्रवाहपूर्ण, परिष्कृत और परिमार्जित। **4. शैली–** विवेचनात्मक।

(ख) भाषा स्वयं संस्कृति .... महती आवश्यकता है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यावतरण में लेखक ने विज्ञान की प्रगति के कारण जो सांस्कृतिक परिवर्तन होता है, उसे शब्दों द्वारा व्यक्त करने के लिए भाषा में नये प्रयोगों की आवश्यकता पर बल दिया है।

व्याख्या– किसी देश की भाषा का उसकी संस्कृति से गहरा संबंध होता है। संस्कृति यद्यपि परम्परागत होती है, तथापि समय के अनुसार उसमें परिवर्तन और विकास होता रहता है । जैसे-जैसे विज्ञान की प्रगति होती है वैसे-वैसे संस्कृति की प्रगति भी होती रहती है। जब कोई देश वैज्ञानिक प्रगति करता है तो उसका प्रभाव उस देश की संस्कृति पर अवश्य पड़ता है। जब देश में विज्ञान के नए-नए आविष्कार होते हैं, तो उनके प्रभाव से उस देश की संस्कृति में अनेक परिवर्तन आते हैं। संस्कृति के उन परिवर्तनों को शब्दों द्वारा व्यक्त करने के लिए भाषा में भी परिवर्तन लाना आवश्यक होता है। भाषा में जो प्रयोग प्राचीनकाल से चले आ रहे हैं, वे नये सांस्कृतिक परिवर्तनों को व्यक्त करने में समर्थ नहीं है। नित्यप्रति संस्कृति में हुए परिवर्तनों को भाषा द्वारा व्यक्त करने के लिए भाषा में नये-नये शब्दों की खोज का कार्य होना बहुत आवश्यक है, जिससे बदलते हुए नये भावों को उचित रूप से व्यक्त किया जा सके।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. भाषा– शुद्ध और पारिमार्जित खड़ी बोली। **2. शैली–** सुगम, सुबोध एवं विवेचनात्मक। **3.** हर क्षेत्र में नवीनता आवश्यक है, किन्तु भाषा के विषय में अभी भी कुछ संकीर्ण दृष्टिकोण व्याप्त है। **4**. लेखक ने भाषा में भी नवीनीकरण को औचित्यपूर्ण ढंग से आवश्यक सिद्ध किया है।

(ग) भाषा की साधारण .... ग्रहणीय नहीं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– लेखक ने भाषा में नये प्रयोगों की आवश्यकता पर बल दिया है।

व्याख्या– लेखक कहता है कि किसी भी भाषा के अर्थ को अभिव्यक्त करने की सामर्थ्य उसके शब्दों में होती है। शब्द ही अर्थ को स्पष्ट करते हैं। अत: वे भाषा की इकाई होते हैं। शब्दों के अभाव में भाषा की कल्पना करना दुरूह ही नहीं बल्कि असम्भव है। यदि भाषा में विकास होता है तो वह शब्दों में परिवर्तन करके ही किया जाता है। प्रतिदिन के सामाजिक व्यवहार में हम ऐसे बहुत से शब्दों को प्रयोग करते हैं जो अंग्रेजी फारसी, अरबी आदि विदेशी भाषाओं से लिए गए हैं। वैसे ही नये शब्दों का गठन अनायास ही हो जाता है। दूसरी भाषाओं के शब्द अवश्य प्रयोग किये जाते हैं, लेकिन उनका रूप अविकृत होता है। भाषा में प्रयोग किये जाने वाले ऐसे शब्द कामचलाऊ रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं। साहित्यिक भाषा में उनका प्रयोग नहीं किया जाता। यदि मजबूरीवश उन्हें ग्रहण करना भी पड़े तो भाषा मूल प्रकृति के अनुरूप साहित्यिक शुद्धता प्रदान करके उनका प्रयोग करना पड़ता है। तभी वे भाव को स्पष्ट करने में समर्थ होते हैं। व्याकरणिक, दृष्टि से उनमें संशोधन, परिमार्जन और परिष्करण करना पड़ता है।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. भाषा– प्रवाहपूर्ण, परिष्कृत एवं परिमार्जित। **2. शैली–** विवेचनात्मक। **3. वाक्य-विन्यास–**

सुगठित। **4. शब्द-चयन–** विषयानुरूप। **5.** लेखक ने स्पष्ट किया है कि भाषा में नवीनीकरण व्याकरणिक दृष्टि से उचित होने पर ही किया जाना चाहिए।

(घ) विज्ञान की प्रगति .... द्रष्टव्य नहीं होते।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– लेखक ने भाषा की नवीनता के आशय को स्पष्ट किया है।

व्याख्या– भाषा में नवीनता का गुण होना आवश्यक है। भाषा की नवीनता ही, उसकी सुन्दरता और उपयोगिता में वृद्धि करती है। भाषा में नवीनता लाने के लिए अथवा भाषा का उत्तरोत्तर विकास करने के लिए भाषा के शब्दों पर ही प्रमुख रूप से ध्यान देना चाहिए: क्योंकि शब्द ही भाषा की इकाई है, परन्तु भाषा के नवीनीकरण अथवा शुद्धीकरण का यह आशय नहीं है कि हम दूसरी भाषा से आए प्रत्येक शब्द में परिवर्तन का प्रयास करें। यदि कोई विदेशी भाषा का शब्द अपना भाव सम्प्रेषित करने में सक्षम है तो उसमें परिवर्तन करने का प्रयास करना उचित नहीं है। उदारहण के लिए; आज प्रत्येक देश में विज्ञान के क्षेत्र में विभिन्न आविष्कार हो रहे हैं और उन्हें नए-नए नाम दिए जा रहे हैं। प्रत्येक देश अपने देश की आविष्कृत वस्तु का अपनी भाषा या अपने विवेक के अनुसार नामकरण कर रहा है और दूसरों देशों में भी वही नाम प्रचलित हो जाता है। इस प्रकार के प्रचलित नामों को समझने या उन नामों से भी किसी वस्तु-विशेष का बोध होने में भी कोई कठिनाई नहीं होती; जैसे— रेडियो, टेलीविजन, स्पुतनिक आदि शब्द। यदि प्रत्येक देश उन वस्तुओं को नामकरण अपने अनुसार करने लगे तो इन्हें समझने में अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ उत्पन्न जाएँगी। एक दूसरा उदाहरण सीढ़ी का है। भारतवर्ष में आदिकाल से ही ऊपर छत आदि पर चढ़ने के लिए साधन सीढ़ी का प्रयोग होता रहा है अर्थात् ऊपर चढ़ने का एकमात्र साधन सीढ़ी ही था परन्तु देश तथा विदेशों में आई औद्योगिक क्रान्ति ने ऊपर चढ़ने के लिए अलग-अलग प्रकार की सीढ़ियों जैसे— लिफ्ट, एलिवेटर, एस्कलेटर आदि का निर्माण कर सीढ़ी का नाम परिवर्तित कर दिया, ये नाम भारतीय समुदाय के लिए एकदम नए थे, परन्तु भारतीय भाषा में इन शब्दों के लिए नए-नए शब्द प्रयोग नहीं होते अर्थात् ये नाम उसी रूप में मिलते हैं, जिस रूप में इनके आविष्कारों ने रखे हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. भाषा– प्रवाहपूर्ण, परिष्कृत एवं परिमार्जित। **2. शैली–** विवेचनात्मक। **3. वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **4. शब्द-चयन–** विषयानुरूप। 5. लेखक ने सरल उदाहरणों के माध्यम से स्पष्ट किया है कि शब्दों में परिवर्तन आवश्यकतानुसार ही किया जाना चाहिए।

(ङ) नवीनीकरण में कितना .... अंग्रेजों का नहीं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– यहाँ लेखक का मन्तव्य स्पष्ट करना है कि यद्यपि भाषा द्वारा अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से होनी चाहिए, तथापि नवीनीकरण की प्रक्रिया में शब्दों की आत्मा विखण्डित नहीं होनी चाहिए।

व्याख्या– लेखक ने इस तथ्य को पूरी तरह स्वीकार किया है कि भाषा को नए शब्द और मुहावरे प्रदान करते समय हमें यह बात भी भली-भाँति याद रखनी चाहिए कि भाषा का प्रमुख कार्य भावनाओं, अनुभवों तथा विचारों की अभिव्यक्ति है। यह अभिव्यक्ति नितान्त स्पष्ट होनी चाहिए। यदि किसी भाषा में स्पष्टता का गुण नहीं है अथवा भाषा में निर्देश देने की क्षमता नहीं है तो ऐसी भाषा बहुत समय तक जीवित नहीं रह सकती। अपनी बात कहने के लिए हम आवश्यकतानुसार नए शब्द और मुहावरे बनाते हैं। नए शब्दों की रचना करते समय हमें अपने हठ और आग्रह को छोड़कर इस बात पर विचार करना चाहिए कि शब्द की मूल आत्मा क्या है तथा उससे किस प्रकार का भाव प्रकट हो रहा है। इसी के साथ-साथ उसके प्रयोग की सार्थकता पर भी गम्भीरता से विचार किया जाना चाहिए। यहीं पर लेखक ने कहा है कि हम अपनी अभिव्यक्ति के लिए प्राय: अंग्रेजी, अरबी, फारसी आदि भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करते हैं। यदि हम यह सोचें कि अंग्रेजी हमारे शासकों की भाषा रही है इससे परतन्त्रता की गन्ध आती है अथवा अरबी-फारसी के शब्दों से इस्लाम के वर्चस्व का बोध होता है; इसलिए हमें इन भाषाओं के शब्दों का प्रयोग नहीं करना है तथा इनके स्थान पर नए शब्दों की रचना करनी है तो ये बात हमें स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि ऐसा करने पर हमारी भाषा की सहजता और स्वाभाविकता समाप्त हो जाएगी और भाषा बनावटी बन जाएगी।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. नए शब्दों की रचना करते समय यह बात याद रखनी चाहिए कि उससे हमारी अभिव्यक्ति स्पष्टता के साथ हो सके। **2.** यदि विदेशी भाषा के शब्दों में हमारे किन्हीं विशिष्ट भावों की अभिव्यक्ति होती है तो उन शब्दों को ग्रहण करने में कोई हानि नहीं है। **3. भाषा–** संस्कृतनिष्ठ। **4. शैली–** विवेचनात्मक।

(च) नये शब्द, नये मुहावरे .... होना आवश्यक है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– यहाँ भाषा की आधुनिकता और उसको आधुनिक बनाने के उपायों पर प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या– भाषा में आधुनिकता लाने के लिए यह आवश्यक है कि नवीन शब्दों, नवीन मुहावरों एवं नवीन रीतियों के आधार पर भाषा को व्यावहारिक बनाने के प्रयास किए जाएँ। आधुनिक युग की विचारधाराओं के अनुरूप अनेक व्यक्ति नवीन शब्दों

का प्रयोग करना ही भाषा के विकास की दृष्टि से पर्याप्त मानते हैं, परन्तु इस प्रकार की धारणा उचित नहीं है। केवल नवीन शब्द गढ़कर ही भाषा को आधुनिक नहीं बनाया जा सकता, वरन् भाषा को आधुनिक बनाने के लिए यह आवश्यक है कि हम नवीन परिभाषिक शब्दों एवं नवीन लेखन-शैलियों पर आधारित लेखन पद्धतियों को प्रयुक्त करें। नवीन शब्दों एवं नवीन शैलियों को साहित्य से लेकर विद्यालयों में निर्धारित पाठ्य पुस्तकों तक प्रयुक्त किया जाना चाहिए। इस प्रकार के नवीन शब्दों एवं शैलियों को, शिक्षित अथवा अशिक्षित व्यक्तियों या जहाँ से भी ये मिलें, खोजकर, भाषा में प्रयुक्त करना चाहिए। ऐसा करके ही भाषा को व्यावहारिक, आधुनिक अथवा प्रगतिशील बनाया जा सकता है। भाषा की व्यावहारिकता ही उसके प्राण होती है, इसीलिए जो भाषा व्यावहारिकता को त्याग देती है, वह शीघ्र मर जाती है। यह भाषा तभी जीवित हर सकती है जब प्रत्येक पुस्तक चाहे वह पाठ्यपुस्तक हो या साहित्यिक, प्रत्येक प्राणी चाहे वह शिक्षित हो या अशिक्षित इन नए शब्दों व नए प्रयोगों को अपने कार्यकलापों में सम्मिलित करें अर्थात् इन नए शब्दों को अपनाएँ।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. भाषा की आधुनिकता के संबंध में महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं। **2.** भाषा की आधुनिकता के वास्तविक आशय का बोध कराया गया है। **3. भाषा–** संस्कृत के तत्सम शब्दों से युक्त। **4. शैली–** विवेचनात्मक।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक वाक्यों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) रमणीयता और नित्य नूतनता अन्योन्याश्रित हैं।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'गद्य गरिमा' में संकलित 'भाषा और आधुनिकता' नामक निबन्ध से अवतरित है। इसके लेखक 'प्रो० जी० सुन्दर रेड्डी' जी है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में सुन्दरता एवं नवीनता के पारस्परिक संबंध को स्पष्ट किया गया है।

व्याख्या– लेखक का कथन है कि साहित्यकारों द्वारा भाषा के प्रवाह, बोधगम्यता आदि की दृष्टि से भाषा में जितने भी नवीन प्रयोग किए जाते हैं, वे सभी भाषा के सौन्दर्य में वृद्धि कर देते हैं। इसी प्रकार भाषा को सुन्दर बनाने का प्रयास, भाषा के क्षेत्र में अनेकानेक नवीनताओं का समावेश कर देता है। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि सुन्दरता एवं नवीनता दोनों ही एक-दूसरे के पूरक अथवा एक-दूसरे पर आश्रित हैं। एक के विकास का प्रयास करते ही दूसरे का भी विकास होने लगता है।

(ख) भाषा समूची युग-चेतना की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में भाषा के महत्व की व्याख्या की गई है।

व्याख्या– हमारे अनुभव, विचार, मत, सिद्धान्त आदि सभी की अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा ही है। समाज के उत्थान तथा विकास के साथ-साथ भाषा का भी विकास हो जाता है; क्योंकि परम्परागत लीक पर चलनेवाली भाषा जब जन-चेतना को गति देने में असमर्थ हो जाती है, तब नई चेतना और परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल बदली हुई भाषा ही प्रेरणा का स्रोत बनती है। वस्तुत: भाषा ही वह तत्त्व है, जो युग की बदलती हुई चेतना को सशक्त रूप में व्यक्त कर पाती है। इस शक्ति को प्राप्त करने के लिए उसे युगानुरूप मुहावरों को ग्रहण करना होता है।

(ग) भाषा 'म्यूजियम' की वस्तु नहीं है, उसकी स्वत: सिद्ध एक सहज गति है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्ति में लेखक ने भाषा की सजीवता, जीवन्तता और परिवर्तनशीलता को बनाए रखने पर बल दिया है।

व्याख्या– लेखक कहता है कि भाषा म्यूजियम में रखी जाने वाली अन्य प्राचीन वस्तुओं के समान ऐतिहासिक वस्तु नहीं है। म्यूजियम में प्राचीन व ऐतिहासिक महत्व की निष्प्राण वस्तुओं का संग्रह होता है। भाषा उन वस्तुओं की तरह निष्प्राण वस्तु नहीं है। उसमें परिवर्तनशीलता, नयापान, सजीवता आदि विशेष गुण होते हैं तथा युग के अनुरूप संस्कृति, विचारों और भावों को व्यक्त करने का स्वाभाविक गुण होता है। वह युग के प्रवाह के साथ आगे बढ़ती रहती है, यही भाषा की स्वाभाविक गति होती है।

(घ) भाषा स्वयं संस्कृति का एक अटूट अंग है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति-वाक्य में संस्कृति एवं भाषा के सम्बन्ध की व्याख्या की गयी है।

व्याख्या– विद्वान् लेखक का कहना है कि प्रत्येक देश की भाषा का वहाँ की संस्कृति के साथ अटूट-सम्बन्ध होता है। भले ही संस्कृति का उद्भव परम्पराओं और मान्यताओं से होता है, फिर भी उसमें परिवर्तन होता रहता है। इसलिए उसमें गतिशीलता बनी रहती है। यह गतिशीलता विज्ञान के नए आविष्कारों के प्रभाव से आती है, क्योंकि भाषा के परम्परागत प्रयोग तब पर्याप्त नहीं होते तथा नए शब्दों और नई भाव-योजनाओं की आवश्यकता होती है। अत: भाषा में भी परिवर्तनशीलता और गतिशीलता का होना आवश्यक है।

(ङ) भाषा की साधारण इकाई शब्द है, शब्द के अभाव में भाषा का अस्तित्व ही दुरूह है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– लेखक ने बताया है कि शब्द के अभाव में भाषा का अस्तित्व अस्पष्ट रहता है।

व्याख्या– विद्वान् लेखक के कहने का आशय यह है कि किसी भाषा की साधारण इकाई शब्द होते हैं। शब्द ही वाक्य के अर्थ को स्पष्ट करते हैं। भाषा में यदि विकास की बात की जाती है तो वह विकास शब्दों के स्तर पर ही होता है। व्यक्ति को अपने भावों को व्यक्त करने के लिए जब किसी दूसरी भाषा से शब्द लेने पड़ते हैं; तो उन शब्दों को साहित्यिक शुद्धता प्रदान करनी पड़ती है तब वह वाक्य (शब्दों का समूह) हमारे भावों को प्रकट करने में समर्थ होता है। यदि शब्दों का साहित्यिक प्रयोग नहीं किया गया है तो शब्द की सार्थकता के अभाव में बाधा का अस्तित्व ही स्पष्ट हो जाएगा।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न–

1. 'भाषा और आधुनिकता' पाठ का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– 'भाषा और आधुनिकता' निबन्ध में प्रो० जी० सुन्दर रेड्डी' ने भाषा और आधुनिकता पर विशेष बल दिया है। इस लेख में लेखक ने वैज्ञानिक दृष्टि को अपनाया है। लेखक कहते हैं कि भाषा का नवीनता ही उसकी सुन्दरता और रमणीयता का द्योतक है। जो वस्तु रमणीय होगी, वह नवीन भी होगी और जो नवीन होगी, उसमें रमणीयता भी रहेगी। नवीनता और रमणीयता एक–दूसरे पर आश्रित हैं। जिस प्रकार पिछड़ी हुई रूढ़ियों से ग्रस्त समाज प्रगति नहीं कर पाता, उसी प्रकार पुरानी रीतियों, परम्पराओं और शैलियों से जकड़ी हुई भाषा भी समाज में आदर प्राप्त नहीं कर पाती, क्योंकि वह युग के अनुरूप जन–चेतना उत्पन्न करने में असमर्थ हो जाती है। नवीन विचारों और वैज्ञानिकता से परिपूर्ण भाषा ही समाज में प्रतिष्ठित हो सकती है। सभ्यता संस्कृति और ज्ञान के विकास के फलस्वरूप जो वैचारिक, क्रान्ति होती है, जिसे हम युग चेतना के नाम से जानते हैं, उसकी सफल अभिव्यक्ति का एकमात्र सशक्त माध्यम भाषा ही है और कोई भी भाषा ऐसी सशक्तता तभी प्राप्त कर सकती है, जब वह अपने युग के अनुरूप सटीक, औचित्यपूर्ण नए मुहावरों को ग्रहण करे।

लेखक रेड्डी जी कहते हैं कि भाषा का प्रमुख उद्देश्य समाज के भावों की अभिव्यक्ति को सरल बनाना ही है। इसके अलावा भाषा की अन्य कोई आवश्यकता अनुभव नहीं की जाती है। भाषा की उपयोगिता तभी सार्थक हो सकती है जब समसमायिक चेतना की अनेकों कठिनाइयों को दूर करके विचाराभिव्यक्ति कर सकें। यह कार्य तभी संभव है, जब भाषा विभिन्न संस्कृतियों अथवा जातियों के सम्पर्क में आने पर उनमें सम्बन्धित विभिन्न भाषाओं और बोलियों के शब्दों को सहज रूप से ग्रहण कर ले। यदि इन नए शब्दों के लिए हमारी भाषा में कोई पर्यायवाची शब्द है तो हम उसका प्रयोग कर सकते हैं। परन्तु यदि उपयुक्त पर्यायवाची हमारी भाषा में न हो तो इसके लिए बलात् पर्यायवाची गढ़ने की आवश्यकता नहीं है और न ही उन शब्दों के प्रयोग से परहेज करना चाहिए। इससे किसी भाषा–भाषी को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। ये शब्द भाषा को नवीनता प्रदान करते हैं। लेखक कहते हैं कि भाषा म्यूजियम में रखे जाने वाली वस्तु नहीं है। इसमें नयापन, सजीवता आदि के गुण होते हैं तथा यह युग के प्रवाह के साथ आगे बढ़ती रहती है, यही भाषा की स्वाभाविक गति होती है।

प्रो० रेड्डी कहते हैं कि भाषा संस्कृति का अभिन्न अंग है, क्योंकि संस्कृति की अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा ही है। परम्पराएँ परिवर्तनशील होती है इसलिए संस्कृति भी कभी एक जैसी नहीं रहती, वह भी परम्पराओं की तरह बदलती रहती है। संस्कृति की गति को विज्ञान प्रगति के परिणामस्वरूप होने वाले नए अविष्कार और अधिक तेज कर देते हैं। हमें विज्ञानों के इन प्रयोगों और जीवन में आए बदलावों को व्याप्त करने के लिए नए शब्दों की खोज करनी पड़ती है।

लेखक कहते हैं कि यह एक विचारणीय प्रश्न है कि भाषा में ये परिवर्तन किस प्रकार किए जा सकते हैं? भाषा को युग के अनुकूल बनाने के लिए किसी व्यक्ति या समूह के प्रयास होने चाहिए या भाषा की गति इतनी स्वाभाविक है कि किसी प्रयत्न विशेष की आवश्यकता नहीं होती है। अठारहवीं शताब्दी में अंग्रेजी तथा बीसवीं शताब्दी में जापानी भाषा ने अपनी गति से नवीनीकरण की पद्धति को सम्पन्न बनाया। प्रत्येक भाषा के अपने विशेष लक्षण होते हैं, शब्द निर्माण, अर्थ आदि में उसका अलग रूप होता है।

लेखक कहते हैं कि किसी भी भाषा के अर्थ को स्पष्ट करने की सामर्थ्य उसके शब्दों में होती है। अत: वे भाषा की इकाई होते हैं। यदि भाषा में विकास होता है तो वह शब्दों में परिवर्तन करके ही किया जा सकता है। प्रतिदिन हम सामाजिक व्यवहार में अंग्रेजी, फारसी, अरबी आदि विदेशी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करते हैं। दूसरी भाषाओं के शब्द प्रयोग अवश्य किए जाते हैं, लेकिन उनका रूप अविकृत होता है। साहित्यिक भाषा में उनका प्रयोग नहीं किया जाता। लेखक कहते हैं कि यह प्रश्न भी विचारणीय है कि भाषा के साहित्यिक शुद्धीकरण का दायित्व कौन ले? भारत सरकार ने हिन्दी भाषा के नवीनीकरण के लिए काफी प्रयास किए। सन् 1950 ई० में 'शास्त्रीय एवं तकनीकी शब्दावली आयोग' की स्थापना की गई, जो विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र के लिए शब्दों का निर्माण कर रही है। 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' जैसी संस्थाओं ने भी इस दिशा में कार्य किया। राहुल सांस्कृत्यायन और डॉ० रघुवीर जैसे विद्वानों ने भी इस दिशा में प्रयास किए। परन्तु अब तक इस दिशा में किए गए सभी प्रयास अपर्याप्त हैं क्योंकि ये प्रयास बाल्यावस्था से निकलकर परिपक्व रूप धारण नहीं कर सके। इन प्रयासों की प्रगति दो वर्ग के कारण बाधित होती है। प्रथम वे शुद्ध साहित्यिक दृष्टि के कारण उन पराए शब्दों को ग्रहण नहीं करते तथा दूसरे वे अपने विषय में पारंगत होने के कारण उन पराए शब्दों को अपने अनुरूप विकृत करके अपनी मातृभाषा में थोपते हैं।

लेखक का मानना है कि यदि कोई विदेशी भाषा का शब्द अपने भावों को सम्प्रेषित करने में सक्षम है तो उसमें परिवर्तन नहीं करना चाहिए। आज विज्ञान की प्रगति के कारण नए–नए आविष्कार हो रहे हैं। जिन देशों में ये आविष्कार होते हैं, वे अपनी

भाषा के अनुसार इन आविष्कारों का नामकरण कर देते हैं, यदि प्रत्येक देश अपनी भाषा में इन वस्तुओं का नामकरण करने लगे तो उन्हें समझनने में पर्याप्त कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाएँगी। इसलिए सभी भाषाओं में इन आविष्कारों के लिए एक ही शब्द प्रयुक्त किया जाता है। फ्रेंच और लैटिन भाषाओं में अंग्रेजी के ऐसे बहुत से शब्दों तथा अंग्रेजी ने रूसी शब्दों को अपना लिया है।
कभी-कभी एक ही भाव होने पर भी उनकी अभिव्यक्ति नहीं हो सकती इसके लिए उन शब्दों के पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है। विद्वान लेखक रेड्डी जी कहते हैं कि नवीनीकरण के फेर में पड़कर भाषा की स्पष्टता नष्ट नहीं होनी चाहिए; क्योंकि भावों को व्यक्त करना ही भाषा का मुख्य कार्य है। जिसे भाषा के शब्द अपना मूल अर्थ स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं कर सकते, ऐसी भाषा अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकती। नए शब्दों के निर्माण में भी इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यदि दूसरी भाषा के शब्द हमारे भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति में सक्षम हैं तो हमें उन्हें नि:संकोच ग्रहण कर लेनी चाहिए। यदि हम यह सोचे कि अंग्रेजी भाषा से परतन्त्रता की गन्ध आती है अथवा अरबी-फारसी के शब्दों से इस्लाम का वर्चस्व स्थापित होता है, इसलिए हमें इन भाषाओं के शब्दों को त्यागकर नए शब्दों का निर्माण करना चाहिए, तो हमें यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि ऐसा करने से हमारी भाषा की सहजता तथा स्वाभाविकता समाप्त हो जाएगी।
यह नवीनीकरण सिर्फ कुछ विद्वानों तथा आचार्यों तक ही सीमित नहीं हैं अपितु यह नवीनीकरण भाषा के प्रयोग से हैं। यदि ये शब्द अपने उद्गम स्थल पर ही स्थित रहे और इनका प्रयोग न हो, तो इन शब्दों के निर्माण का उद्देश्य पूरा नहीं होगा।
किसी भाषा में आधुनिकता का समावेश तभी हो सकता है, जब उसमें नए-नए जन प्रचलित शब्दों, मुहावरों तथा लोकोक्तियों को सामाहित कर लिया जाए। इससे भाषा व्यावहारिक हो जाती है, और भाषा का व्यावहारिक होना ही उसकी आधुनिकता है। भाषा के नए शब्दों को व्यवहार में लाकर ही इसे आधुनिक रूप दिया जा सकता है क्योंकि किसी भी भाषा का प्राण तत्व उसकी व्यावहारिकता ही है। ये नए शब्द सभी पाठ्यपुस्तकों तथा साहित्यिक पुस्तकों, शिक्षित व अशिक्षित सभी के द्वारा प्रयुक्त होने चाहिए। जब हम भाषा को अपने जीवन में प्रयुक्त करेंगे तो स्वत: ही भाषा में आधुनिकता आ जाएगी।

2. लेखक का भाषा की आधुनिकता से क्या तात्पर्य है?

उ०– लेखक का भाषा की आधुनिकता से तात्पर्य उन नए-नए जन प्रचलित शब्दों, मुहावरों तथा लोकोक्तियों को भाषा में समाहित कर लेने से है। जिनसे भाषा व्यावहारिक हो जाती है, क्योंकि किसी भी भाषा का व्यावहारिक होना भी उसकी आधुनिकता है।

3. शब्दों के अभाव में भाषा का अस्तित्व कैसे स्पष्ट है?

उ०– शब्द ही भाषा के अर्थ को स्पष्ट करते हैं, वे भाषा की इकाई होते हैं। शब्दों के अभाव में भाषा की कल्पना करना दुरूह ही नहीं अपितु असम्भव है। किसी भी भाषा का विकास शब्द के स्तर से ही आरम्भ होता है इसलिए शब्दों के अभाव में भाषा का अस्तित्व अस्पष्ट होता है।

4. 'भाषा और आधुनिकता' निबन्ध में हिन्दी भाषा की उन्नति के क्या उपाय बताए गए हैं?

उ०– हिन्दी भाषा की उन्नति के लिए अनेक लोगों ने प्रयत्न किए हैं। भारत सरकार ने हिन्दी भाषा की उन्नति के लिए सन् 1950 में 'शास्त्रीय एवं तकनीकी शब्दावली आयोग' की स्थापना की, जो विज्ञान की हर शाखा के लिए योग्य शब्दावली का निर्माण करता है। 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' जैसी ऐच्छिक संस्थाओं ने भी हिन्दी भाषा की उन्नति की दिशा में कार्य किए हैं। राहुल सांस्कृत्यायन तथा डॉ० रघुवीर सिंह जैसे विद्वानों ने भी हिन्दी को गतिशील बनाने के प्रयास किए हैं।

पाठ्येतर सक्रियता–

उ०– छात्र स्वयं करें।

7 निन्दा रस

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या– 62 का अवलोकन कीजिए।

लेखक पर आधारित प्रश्न–

1. हरिशंकर परसाई जी का जीवन परिचय देते हुए हिन्दी साहित्य में इनके योगदान का वर्णन कीजिए।

उ०– **लेखक परिचय–** श्री हरिशंकर परसाई का जन्म मध्य प्रदेश में इटारसी के निकट स्थित 'जमानी' नामक ग्राम में 22 अगस्त सन् 1924 ई० को हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर स्नातक तक की शिक्षा मध्य प्रदेश में प्राप्त करने के बाद नागपुर विश्वविद्यालय से इन्होंने हिन्दी विषय में स्नातकोत्तर की परीक्षा उत्तीण की तथा कुछ समय तक अध्यापन-कार्य किया।

अध्यापन-कार्य करते हुए भी इन्होंने लेखन-कार्य को जारी रखा, किन्तु इन्हें ऐसा अनुभव हुआ कि नौकरी इनके साहित्य-सृजन में बाधक है, तब इन्होंने अध्यापन-कार्य छोड़कर साहित्य-सृजन की ओर रूझान किया। इन्होंने जबलपुर से 'वसुधा' नामक साहित्यिक मासिक पत्रिका का सम्पादन व प्रकाशन किया; परन्तु आर्थिक क्षति के कारण इन्होंने इस पत्रिका का प्रकाशन बन्द कर दिया और 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' व 'धर्मयुग' के लिए ही रचनाएँ लिखते रहे। 10 अगस्त सन् 1995 ई० को सरस्वती का यह वरद् पुत्र परलोकवासी हो गया।

हिन्दी साहित्य में स्थान– परसाई जी ने व्यंग्यप्रधान निबन्धों की रचना बड़ी ही कुशलता के साथ की है। वस्तुत: हिन्दी-साहित्य में व्यंग्यप्रधान लेखन के अभाव को हरिशंकर परसाई जी ने दूर कर दिया। हरिशंकर परसाई हिन्दी-साहित्य के एक प्रतिष्ठित व्यंग्य-लेखक थे। मौलिक एवं अर्थपूर्ण व्यंग्यों की रचना में परसाई जी सिद्धहस्त रहे हैं। हास्य एवं व्यंग्यप्रधान निबन्धों की रचना करके, इन्होंने हिन्दी-साहित्य के एक विशिष्ट अभाव की पूर्ति की। इनके व्यंग्यों में समाज एवं व्यक्ति की कमजोरियों पर तीखा प्रहार मिलता है। आधुनिक हिन्दी-साहित्य जगत में व्यंग्यात्मक कृतियों में प्रणेता हरिशंकर परसाई का नाम सदैव अमर रहेगा।

2. हरिशंकर परसाई जी की भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।

उ०– भाषा-शैली– परसाई जी ने प्राय: सरल, सुबोध, प्रवाहमयी एवं बोलचाल की भाषा को अपनाया है। ये सरल एवं व्यावहारिक भाषा के पक्षपाती थे। इस कारण साधारण पाठक भी इन्हें आसानी से समझ सकता है। इनकी रचनाओं के वाक्य छोटे और व्यंग्यप्रधान हैं। इनके व्यंग्यों का विषय सामाजिक व राजनैतिक है। भाषा में प्रयुक्त होने योग्य शब्दों का चुनाव परसाई जी बहुत सोच-समझकर करते थे। कहाँ पर कौन-सा शब्द अधिक चोट करेगा, कौन-सा शब्द बात को अधिक बल प्रदान करेगा, इस बात का ध्यान परसाई जी सदैव रखते थे। भाषा में व्यावहारिकता लाने के लिए इन्होंने उर्दू एवं अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है; जैसे— मिशनरी, दगाबाज, टॉनिक, केटलाग आदि। इनकी रचनाओं में कहीं-कहीं पर मुहावरों एवं कहावतों का प्रयोग भी देखने को मिलता है।

परसाई जी की मुख्य शैली व्यंग्यप्रधान है। इस शैली का प्रयोग अपने अधिकतर निबन्धों में इन्होंने किया है। यह शैली परसाई जी के निबन्धों का प्राण है। इस शैली पर आधारित इनके निबन्ध पाठक एवं श्रोता दोनों के लिए रोचक एवं आनन्द प्रदान करने वाले बन गए हैं। इनके निबन्धों में प्रश्नात्मक शैली के भी दर्शन होते हैं। परसाई जी स्वयं प्रश्न करके उसका उत्तर भी स्वयं ही दे देते हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं में सूत्रात्मक वाक्यों के प्रयोग से गागर में सागर भर दिया है। इनके निबन्धों में प्रयुक्त सूत्र-वाक्य विचारों को सुगठित रूप में प्रस्तुत करने में सहायक सिद्ध हुए हैं।

3. हरिशंकर परसाई जी की कृतियों का उल्लेख कीजिए।

उ०– कृतियाँ– इनकी समस्त रचनाओं का संग्रह 'परसाई रचनावली' के नाम से छ: खण्डों में प्रकाशित हो चुका है। यद्यपि इन्होंने साहित्य की अन्य विधाओं पर भी अपनी लेखनी चलाई हैं; परन्तु एक सफल व्यंग्यकार के रूप में इन्हें विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। परसाई जी की उल्लेखनीय रचनाएँ इस प्रकार हैं—

व्यंग्यात्मक निबन्ध– वैष्णव की फिसलन, श्रद्धा का दौर, बेईमानी की परत, तब की बात और थी, सदाचार का ताबीज, पगडण्डियों का जमाना, निठल्ले की कहानी, भूत के पाँव पीछे, सुनो भई साधो, और अन्त में, शिकायत मुझे भी है, ठिठुरता हुआ गणतन्त्र।

कहानी– जैसे उनके दिन फिरे, हँसते हैं रोते हैं।

उपन्यास– रानी नागफनी की कहानी, तट की खोज।

व्याख्या संबंधी प्रश्न–

1. निम्नलिखित गद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) ऐसे मौके पर .... आगे बढ़ाना चाहिए।

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्यपुस्तक 'गद्य गरिमा' के 'हरिशंकर परसाई' द्वारा लिखित 'निन्दा रस' नामक निबन्ध से अवतरित है।

प्रसंग– लेखक के पास प्रात: काल एक ऐसा मित्र 'क' मिलने आया, जो पहले दिन शाम को किसी दूसरे मित्र से उसकी निन्दा कर रहा था। लेखक को यह सूचना पहले ही मिल गयी थी; अत: लेखक सच्चे मन से उससे नहीं मिला; क्योंकि वह जानता था कि यह मित्र उससे छल-छद्मपूर्ण व्यवहार कर रहा है।

व्याख्या– लेखक उस मित्र 'क' से प्रेम के साथ गले नहीं मिला। लेखक को उस पौराणिक घटना का स्मरण हो आया, जब भीम ने दुर्योधन को मार डाला था और अन्धे धृतराष्ट्र ने अपने पुत्र की हत्या का बदला भीम से छलपूर्वक लेना चाहा था। श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र का यह मन्तव्य समझ गये थे। इसलिए उन्होंने लोहे से बना भीम का पुतला धृतराष्ट्र के सामने बढ़ा दिया था। तब धृतराष्ट्र ने प्रेम से गले मिलने के बहाने भीम के लौहनिर्मित कृत्रिम शरीर (पुतले) को अपनी जकड़ से चूर-चूर कर दिया था। लेखक कहता है कि जब मित्र 'क' मुझसे गले मिला, तब मैंने शरीर से अपने मन को चुपचाप अलग कर दिया था और

अचेतन की तरह मैंने अपने शरीर को उसकी बाँहों में सौंप दिया था। लेखक के मन में उस मित्र के प्रति सद्‌भाव न था, अपितु रोष था। मन में व्याप्त रोष या द्वेष अदृश्य होता है, परन्तु यदि कहीं भावना के सचमुच काँटे होते तो उस कपटी मित्र को पता चलता कि वह नागफनी को कलेजे में चिपकाए खड़ा है। लेखक उस मित्र से सच्चे हृदय से इसलिए नहीं मिला; क्योंकि वह सच्चा मित्र नहीं था। वह कल रात दूसरे मित्र से उसकी निन्दा कर रहा था। यहाँ लेखक पाठकों को एक परामर्श भी देता है कि जब कोई छली व्यक्ति गले मिले तो उसके सामने अपना पुतला ही बढ़ाना चाहिए; अर्थात् दुष्ट के साथ दिखावटी व्यवहार ही करना चाहिए।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. भाषा– शुद्ध साहित्यिक खड़ीबोली। **2. शैली–** उद्धरण शैली द्वारा घटना का स्पष्टीकरण। **3. वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **4. शब्द-चयन–** विषय के अनुरूप। **5. भाव साम्य–** कपटी के साथ कपटपूर्ण व्यवहार ही करना चाहिए। इस बात को संस्कृत में भी इस प्रकार कहा गया है– **'शठे शाठ्यं समाचरेत्।'**

(ख) अद्‌भुत है मेरा .... सुख होता होगा।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने विरोधियों की निन्दा से प्राप्त होने वाले आनन्द का वर्णन किया है।

व्याख्या– लेखक श्री हरिशंकर परसाई जी का कहना है कि उनका निन्दक मित्र बहुत ही अद्‌भुत और विचित्र है जिनके पास दोषों और बुराइयों का अच्छा-खासा सूची-पत्र है। उनके सम्मुख जिस किसी की भी चर्चा छिड़ जाती वह उसी की निन्दा में चार-छः वाक्य बोल दिया करता था। लेखक के मन में विचार आया कि क्यों न वह भी अपने कुछ-एक परिचितों की जो उसके विरोधी हैं, की निन्दा उसके माध्यम से करवा ले। लेखक ने अपने विरोधियों की चर्चा उनके सामने करनी शुरू कर दी और उनके उस निन्दक मित्र ने बारी-बारी से उनके प्रत्येक विरोधी की भरपूर निन्दा की। आरा मशीन की सहायता से लकड़ी काटने का उदाहरण देते हुए लेखक कहता है कि उसने अपने विरोधियों के नाम अपने निन्दक मित्र के समक्ष उसी प्रकार धीरे-धीरे खिसकाने शुरू किए जिस प्रकार मजदूर लकड़ी काटने की आरा मशीन के नीचे लकड़ी खिसकाता है। उनका वह मित्र भी उनके विरोधियों को वैसे ही आसानी से काटता चला गया जैसे आरा मशीन लकड़ी के लट्‌ठे को आसानी से काट डालती है। वह समय बहुत ही आनन्ददायक था। सम्भवतः वैसा ही आनन्द और सुख किसी योद्धा को उस समय प्राप्त होता होगा जब वह युद्ध-भूमि में अपने शत्रुओं को कट-कटकर गिरते हुए देखता होगा।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. निन्दा से प्राप्त सुख और आनन्द की अनुभूति का सरस वर्णन किया गया है। **2. भाषा–** शुद्ध साहित्यिक खड़ीबोली। **3. शैली–** उद्धरण। **4. वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **5. शब्द-चयन–** विषय के अनुरूप व अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग।

(ग) मेरे मन में .... सलाह दी है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– यहाँ लेखक ने विरोधियों की निन्दा करने में मिले आनन्द का व्यंग्यात्मक चित्रण किया है तथा निन्दा के महत्व का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि निन्दकों में ईश्वर भक्तों जैसी लीनता और निमग्नता होती है।

व्याख्या– लेखक कहता है कि मेरा निन्दक मित्र जब तक अपने परिचितों की निन्दा करता रहा, तब तक उसका व्यवहार मुझे उचित नहीं लगा लेकिन जब उसने मेरे विरोधियों की निन्दा करनी प्रारम्भ की, तब उसके प्रति मैं विनम्र हो गया; क्योंकि दोनों की भावनाएँ समान हो गईं और हमारा स्वाभाविक भेदभाव भी समाप्त हो गया; क्योंकि इस प्रकार के भेद दोषरूपी अन्धकार में दिखाई नहीं देते और स्वच्छ आचरणरूपी दिन में स्पष्ट हो जाते हैं। निन्दा की वैचारिकता के कारण लोगों के मन शान्त एवं तृप्त हो जाते हैं; यही कारण है कि दो निन्दक मित्र वैचारिक भिन्नता होने पर भी वे अपने-अपने विरोधियों की निन्दा एक-दूसरे से सुनते समय आपस में सहानुभूति का परिचय देते हैं।

लेखक कहते हैं कि निन्दा की महिमा ही ऐसी होती है अर्थात् निन्दा में एक अद्‌भुत गुण होता है। दो-चार निन्दा करने वाले लोगों को एक जगह बैठाकर निन्दा में लीन देखिए तथा उनकी तुलना भगवान या ईश्वर की भक्ति में लीन उन भक्तों से कीजिए।

जो ईश्वर का भजन कर रहे हैं अर्थात् ईश्वर की भक्ति में लीन भक्त और निन्दा रस में लीन निन्दक में से निन्दक अधिक मग्न दिखाई पड़ते हैं। लेखक कहते हैं कि एकाग्रता, परस्पर, आत्मीयता, अपने आराध्य के ध्यान में डूब जाने के गुण ईश्वर भक्तों में सर्वाधिक पाए जाते हैं; क्योंकि इन गुणों के अभाव में ईश्वर भक्ति नहीं हो सकती, मगर ये दुर्लभ गुण ईश्वर भक्तों में ज्यादा निन्दकों में पाए जाते हैं। एक सार को ईश्वर-भक्त इन गुणों के अभाव में भक्ति से विरक्त हो सकता है, किन्तु निन्दक कैसी भी विषम परिस्थिति में अपने इन गुणों का त्याग नहीं करता। यही कारण है कि कबीर जैसे संत कवियों ने निन्दा करने वाले लोगों को आँगन में कुटी बनवाकर पास रखने की सलाह दी है; क्योंकि निन्दक हमारे दुर्गणों की बार-बार निन्दा करेगा और हम उसकी निन्दा से बचने के लिए अपने दुर्गणों को त्यागकर, सही आचरण करने का प्रयास करेंगे, जिससे हमारा स्वभाव पवित्र हो जाएगा।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. भाषा– सरल, सरस एवं प्रवाहपूर्ण। **2. शैली–** व्यंग्यात्मक। **3. वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **4. शब्द-चयन–** विषय के अनुरूप। **5.** यहाँ स्वभाववश निन्दा करने वाले व्यक्तियों की प्रवृत्ति का सजीव व्यंग्यात्मक चित्रण किया गया है। **6.** रात्रि के अन्धकार की दोषों से और दिन के उजाले की स्वच्छ आचरण से तुलना की गयी है। **7.** परसाई जी ने परनिन्दा में तल्लीन होने वाले निन्दकों के प्रति तीखा व्यंग्य किया है। **8. भावसाम्य–** किसी कवि ने उचित ही कहा है—

निन्दक दूरि न कीजिए, दीजै आदर मान।
निर्मल तन-मन सब करै, बकि-बकि आनही आन।।

(घ) कुछ 'मिशनरी' .... लिए दे देगा।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने निन्दकों के विभिन्न प्रकारों में से मिशनरी निन्दकों की विशेषता बतायी है तथा निन्दकों के स्वभाव पर आलंकारिक भाषा में प्रकाश डाला है।

व्याख्या– लेखक कहता है कि कुछ निन्दक मिशनरी होते हैं। निन्दा करना उनका 'मिशन' होता है। वे बिना किसी द्वेष-भाव के धर्म-प्रचार और सेवा-भाव में संलग्न मिशनरी की भाँति निन्दा करने में लगे रहते हैं। उनका किसी से वैर नहीं होता और न वे किसी का बुरा सोचते हैं, किन्तु निन्दा करना उनका स्वभाव होता है और निन्दा करने में उन्हें विशेष आनन्द की प्राप्ति होती है। ऐसा करने में वे कोई पक्षपात नहीं करते। ऐसे निन्दक प्रसंग आने पर वे अपने पिता की निन्दा भी उसी आनन्द के साथ करते हैं, जिस आनन्द के साथ अन्य लोग अपने दुश्मनों की। निन्दा ऐसे लोगों के लिए 'टॉनिक' होती है, जो उन्हें उल्लास और आनन्द प्रदान करती है। परसाई जी कहते हैं कि आज ट्रेड यूनियनों का जमाना है, हर छोटी-बड़ी कम्पनी अथवा संस्था में काम करनेवाले सभी वर्गों के लोगों ने अपने अधिकारों और हितों की रक्षा के लिए लड़ने हेतु अपने-अपने संघ (यूनियन) बना लिए हैं। इसीलिए निन्दकों ने भी अपने निन्दा के कारोबार को बढ़ाने के लिए अपने संघ बना लिए हैं। निन्दक संघों के सदस्य अपने कार्यों को बड़ी लगन और निष्ठा से सम्पन्न करते हैं। ये यहाँ-वहाँ से निन्दा करने हेतु छोटी-बड़ी खबरें जुटाकर अपने संघ के अध्यक्ष अर्थात् मुख्य निन्दक को लाकर देते हैं। ये खबरें एक प्रकार से निन्दा के कारोबार के लिए कच्चे माल के समान होती हैं। अब संघ-प्रमुख उन खबरों में नमक-मिर्च लगाकर उन्हें पक्के माल में इस प्रकार परिवर्तित करता है कि निन्दापसन्द लोगों को उसमें ऐसा रस मिलता है कि वे चटखारे ले-लेकर उन्हें सुनने-सुनाने लगते हैं। जब कच्चे माल से पक्का माल तैयार हो जाता है तो संघ का मुखिया उसे अपने उन सदस्यों को उस निन्दा के पक्के माल को सारे-संसार में फैलाने के लिए बाँट देता है, जो कि खबरों के रूप में कच्चा माल लेकर उसके पास आए थे। लेखक यहाँ व्यंग्य करता हुआ कहता है कि संघ का मुखिया यह सब कार्य समाज के अधिकांश लोगों के कल्याण के लिए करता है। समाज के अधिकांश सदस्य निन्दास्पन्द हैं और उन्हें दूसरों की निन्दा करने और सुनने में परम-सुख प्राप्त होता है। उन्हें यह परम-सुख प्रदान करने के लिए ही निन्दक संघ का मुखिया इस पुनीत कार्य को सम्पन्न करता है।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. जैसे मूर्ख की मित्रता मूर्ख के साथ ही होती है, उसी प्रकार निन्दक का मेलजोल भी निन्दक के ही साथ होता है और वे अपने जैसे निन्दकों को ढूँढकर अपने जैसे लोगों का समूह बना लेते हैं। इसी मनौवैज्ञानिक तथ्य का उल्लेख यहाँ हुआ है। **2. भाषा–** व्यंग्यात्मक एवं चुलबुली। 'मिशनरी' एवं 'टॉनिक' जैसे अंग्रेजी शब्दों के प्रसंगानुकूल प्रयोग से भाषा को सशक्त व्यंग्यात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है। **3. शैली–** व्यंग्यात्मक। **4. वाक्य-विन्यास–** सुगठित, **5. शब्द-चयन–** विषय के अनुरूप। **6. भावसाम्य–** निन्दा प्राय: सभी की कमजोरी है। किसी कवि ने कहा है कि—

सातो सागर मैं फिरा, जंबू दीप दै पीठ।
पर निन्दा नाहीं करै, सो कोई बिरला दीठ।।

(ङ) ईष्या-द्वेष से प्रेरित .... दुगुना हो जाएगा।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यावतरण में ईर्ष्या-द्वेष के कारण निन्दा करनेवाले निन्दकों की दयनीय स्थिति का अत्यन्त मार्मिक वर्णन व्यंग्यात्मक शैली में किया गया है।

व्याख्या– परसाई जी के अनुसार निन्दक दो प्रकार के होते हैं— प्रथम, मिशनरी निन्दक अर्थात् जिनका स्वभाव ही निन्दा करने का है और दूसरे, ईर्ष्या-द्वेष से प्रेरित निन्दक। मिशनरी निन्दकों के लिए निन्दा टॉनिक का कार्य करती है, किन्तु ईर्ष्या-द्वेष से प्रेरित निन्दक अत्यधिक पीड़ित होता है। वह निरन्तर द्वेष की भावना से जलता रहता है, वह निन्दारूपी जल के माध्यम से अपने आप को तृप्त करता है। निन्दक की यह दशा बड़ी दयनीय होती है। अपने अभावों के कारण वह दु:खी होता हुआ जिस प्रकार कुत्ता रात्रि के अन्धकार को देखकर भौंकता रहता है, उसी प्रकार सम्पूर्ण रात्रि ईर्ष्या की अग्नि में जलता रहता है। इस प्रकार ईर्ष्या से प्रभावित व्यक्ति को दण्ड की आवश्यकता नहीं होती; क्योंकि वह स्वयं ही अपनी प्रकृति के कारण दु:ख प्राप्त करता है। ऐसे व्यक्ति जीवन में किसी प्रकार की उन्नति की अपेक्षा दु:ख के भागी होते हैं। ऐसे व्यक्ति को दण्ड देने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि आप तो सुख से चैन- की नींद सोते हैं और वह निन्दक ईर्ष्या की पीड़ा के कारण एक भी पल को चैन से सो

नहीं पाता। अब भला इससे अधिक कठोर और कौन-सा दण्ड इस व्यक्ति को दिया जा सकता है। आपके द्वारा लगातार अच्छे कार्य करने से उसकी पीड़ा बढ़ती जाएगी और वह अधिक ईर्ष्या करेगा जिससे उसका दण्ड बढ़ता जाएगा। उदाहरण के लिए किसी कवि ने किसी अच्छी कविता की रचना की, उससे ईर्ष्या करने वाले निन्दक को उसके इस कार्य से पीड़ा होगी, परंतु यदि उस कवि ने एक और अच्छी 'कविता की रचना कर दी, तो उस निन्दक का दु:ख या पीड़ा कई गुणा बढ़ जाएगी।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. निन्दक व्यक्ति को दण्ड देने की आवश्यकता नहीं होती, वह अपने स्वभाव के कारण स्वयं ही दण्डित होता रहता है। **2. भाषा–** सरल, सुबोध एवं प्रवाहमयी। **3. शैली–** विषय के अनुकूल एवं व्यंग्यात्मक। **4. वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **5. शब्द-चयन–** विषय के अनुरूप।

(च) निन्दा का उद्गम .... ईर्ष्या होती है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश में लेखक ने निन्दा की उत्पत्ति का कारण हीनता और आलस्य को बताया है।

व्याख्या– लेखक कहता है कि मनुष्य की हीन-भावना और कर्म न करने की प्रवृत्ति ही उसमें दूसरों की निन्दा करने की भावना को जन्म देती है। वह व्यक्ति अपनी हीनता को प्रकट नहीं होने देना चाहता है और दूसरों की निन्दा करके दूसरों को अपने से तुच्छ सिद्ध करने का असफल प्रयास करता है। वह दूसरों की निन्दा करके यह दिखाने की कोशिश करता है कि दूसरे उससे तुच्छ हैं और वह उनसे महान्। वह दूसरों की निन्दा करके आत्म-सन्तोष की अनुभूति करने लगता है। उसका यह प्रयास ऐसा ही है, जैसे कोई व्यक्ति बड़ी लकीर (महान् व्यक्ति) को मिटाकर, छोटी लकीर (हीन व्यक्ति) को बड़ा (महान् व्यक्ति) समझने लगे।

लेखक कहता है कि जैसे-जैसे निकक्मेपन की भावना बढ़ती जाती है, निन्दा करने की प्रवृत्ति को भी बढ़ावा मिलता है। आदमी जब खाली बैठा रहता है, तब खाली समय में वह दूसरों की निन्दा करता रहता है। जो व्यक्ति निरन्तर कठिन कर्म में व्यस्त रहता है, उसका ध्यान निन्दा जैसी व्यर्थ की बातों की ओर नहीं जाता। लेखक कहता है कि इन्द्र को बड़ा ईर्ष्यालु माना जाता है; क्योंकि वह निठल्ला रहता है, उसे कुछ नहीं करना पड़ता। उस खाने के लिए अन्न नहीं उगाना पड़ता, फल पाने के लिए पेड़ नहीं बोने पड़ते तथा रहने के लिए बना-बनाया महल मिल जाता है। स्वर्ग में ये सभी चीजें स्वत: प्राप्त हो जाती हैं, इन्हें प्राप्त करने के लिए कुछ भी श्रम नहीं करना पड़ता। खाली रहने के कारण उसे अपनी अप्रतिष्ठा का डर बना रहता है। इसलिए वह किसी तपस्वी को तपस्या करते देखकर, किसी कर्मठ व्यक्ति को श्रेष्ठ कर्म करते देखकर ही भयभीत हो जाता है कि कहीं यह अपनी कर्मठता से मेरे पद को न छीन ले; अत: वह उससे ईर्ष्या करने लगता है।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. लेखक का मत है कि निन्दा का जन्म कर्महीनता की स्थिति में होता है। **2.** यहाँ लेखक ने समाज को कर्मठ बनने की प्रेरणा दी है। **3.** इन्द्र का उदाहरण देकर लेखक ने अकर्मण्य और आलसी व्यक्तियों पर तीखा व्यंग्य किया है। **4. भाषा–** सरल एवं बोधगम्य। **5. शैली–** व्यंग्यात्मक।

(छ) निन्दा कुछ लोगों .... अनुभव करते हैं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– यहाँ निन्दा करने वाले व्यक्तियों की प्रकृति और आचरण का व्यंग्यात्मक चित्रण किया गया है।

व्याख्या– निन्दा करने वाले व्यक्तियों के विचित्र स्वभाव पर व्यंग्य करते हुए परसाई जी कहते हैं कि कुछ लोग निन्दा को उसी प्रकार महत्व देते हैं, जैसे व्यापारी अपनी पूँजी को। वे निन्दा को पूँजी समझते हुए ही अपना व्यापार बढ़ाने में लगे रहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की अधिक-से-अधिक और सर्वत्र निन्दा करना ही उनके जीवन का प्रमुख लक्ष्य होता है। उनकी यह धारणा होती है कि वे जितनी अधिक निन्दा करेंगे, उतने ही अधिक लाभ उन्हें प्राप्त होंगे। कुछ लोगों को तो प्रतिष्ठित होने का अवसर भी इसीलिए प्राप्त हो पाता है कि वे दूसरों की निन्दा करने में कुशल होते हैं। वे दूसरों की निन्दा करने में उसी प्रकार तल्लीन हो जाते हैं, जैसे 'रामायण' का पाठ करनेवाला व्यक्ति रामायण पढ़ने में। ऐसे निन्दक अत्यन्त रुचिपूर्वक दूसरों के जीवन से सम्बन्धित कलंकपूर्ण घटनाओं को सुनाया करते हैं। कभी-कभी तो निन्दा रस में रुचि लेनेवाले लोग मात्र कल्पना के आधार पर ही किसी को बदनाम कर दिया करते हैं। दूसरों के प्रति ऐसा वास्तविक, किन्तु काल्पनिक दुष्प्रचार करके वे स्वयं को सन्त समझने और स्वयं के अहम् की तुष्टि करने का ही प्रयास करते हैं। दूसरों की निन्दा करके वे भ्रमवश ऐसा अनुभव करने लगते हैं कि अन्य व्यक्तियों की तुलना में वे बहुत अधिक श्रेष्ठ हैं।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में निन्दक व्यक्ति को भ्रमित धारणा को स्पष्ट करने की दृष्टि से लेखन को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। **2. भाषा–** सरल, सुबोध एवं आलंकारिक। **3. शैली–** व्यंग्यात्मक।

(ज) उस मित्र की .... 'रसाल' कहा है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– यहाँ लेखक ने अपने मित्र से मिलने के बाद स्वयं की मनोस्थिति का वर्णन किया है।

व्याख्या– लेखक कहते हैं कि उस मित्र से मुलाकात होने पर उसके जाने के दस–बारह घंटे बाद मेरे मन में वही बस बाते घूम रही है, जो उसने कही थी अर्थात् उसकी बातों का प्रभाव मेरे मन पर अभी तक था। परंतु अब इस समय मैं उदासीन हो गया हूँ अर्थात् उन बातों से मुझे उतना रस प्राप्त नहीं हो रहा है जितना कि उस समय हो रहा था, जब सुबह उसके आने पर उसके साथ बैठकर हो रहा था। उस समय तो मैं निन्दा रूपी काला सागर मैं तैरते हुए आनन्दित हो रहा था। लेखक कहते हैं कि मित्र की बातें ध्यान आने पर उनका प्रभाव तो मन पर हैं परन्तु आनन्द प्राप्त नहीं हो रहा है। लेखक कहते हैं कि निन्दा में बहुत आनन्द प्राप्त होता है। इसलिए ही तो कवि सूरदास ने भी निन्दा को आम के समान मीठा बताया है।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. यहाँ लेखक ने अपने मन पर पड़ने वाले निन्दा के प्रभाव का वर्णन किया है। **2. भाषा–** शुद्ध साहित्यिक खड़ीबोली। **3. शैली–** व्यंग्यात्मक।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक वाक्यों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) भावना के अगर काँटे होते तो उसे मालूम होता कि वह नागफनी को कलेजे से चिपकाए है।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'गद्य गरिमा' में संकलित 'निन्दा रस' नामक निबन्ध से अवतरित है। इसके लेखक 'हरिशंकर परसाई' जी हैं।

प्रसंग– यहाँ यह स्पष्ट किया गया है कि छल करनेवाले के साथ छलपूर्ण नीति का ही प्रयोग करना चाहिए।

व्याख्या– भावना व्यक्ति का ऐसा गुण है, जिसका अनुमान केवल व्यक्ति को देखकर नहीं लगाया जा सकता। प्राय: होता यह है कि व्यक्ति के मन में होती तो दुर्भावना है, किन्तु वह सामाजिक एवं नैतिक बाध्यताओं के कारण स्वयं को सद्भावना के पुतले के रूप में प्रस्तुत करता है। अपने मित्र से मिलते समय लेखक ने भी ऐसा ही प्रदर्शन किया। यदि भावना के काँटे होते, तब उसके मित्र को यह पता चलता कि वह अपने प्रिय मित्र को गले से नहीं चिपटाए हैं; बल्कि नागफनी को अपने कलेजे से लगाए है।

(ख) छल का धृतराष्ट्र जब अलिंगन करे तो पुतला ही आगे बढ़ाना चाहिए।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में कहा गया है कि छल करने वाले के साथ छल का ही व्यवहार करना चाहिए।

व्याख्या– महाभारत के युद्ध का आधार लेते हुए लेखक कहते हैं कि महाभारत के युद्ध में अपने सभी पुत्रों को मारने का दोषी मानकर, धृतराष्ट्र भीम को मारना चाहता था। इसके लिए उसने भीम से स्नेह का नाटक रचा और उसे गले लगाने की बात कही, परन्तु श्रीकृष्ण उसका मन्तव्य समझा गये थे। उन्होंने लोहे का पुतला आगे बढ़ाकर कह दिया कि यह भीम है। धृतराष्ट्र ने लोहे के पुतले को आलिंगन में लेकर कुछ ही देर में तोड़ दिया। लेखक का मित्र बीती रात किसी से लेखक की जी भरकर निन्दा करता रहा और अब झूठा स्नेह दिखाने के लिए आँखों में आँसू भरे उससे गले मिल रहा है। लेखक ने भी अपने शरीर से मन को खिसकाकर अपनी कँटीली देह उसकी बाँहों में डाल दी। तात्पर्य यह है कि वह मन से उससे नहीं मिला।

(ग) कुछ लोग बड़े निर्दोष मिथ्यावादी होते हैं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में यह भाव निहित है कि यदि कोई व्यक्ति अपने किसी स्वार्थ अथवा लोभ के वशीभूत होकर झूठ नहीं बोलता है तो उसके द्वारा बाले गये झूठ को दोषपूर्ण नहीं कहा जाना चाहिए।

व्याख्या– समाज में कुछ व्यक्ति स्वार्थवश अथवा लोभवश झूठ बोलते हैं। विशेषकर स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों के लिए बोला जाने वाला झूठ अत्यन्त निम्नस्तरीय होता है। इस प्रकार के व्यक्ति दोषी होते हैं और उनका अपराध अक्षम्य होता है। इसके विपरीत कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो केवल आदत पड़ जाने के कारण ही झूठ बोलते हैं। झूठ बोलने के पीछे उनका कोई स्वार्थ निहित नहीं होता; अर्थात् किसी को धोखा देने अथवा किसी लोभ के कारण वे झूठ नहीं बोलते। इस प्रकार के व्यक्तियों को दोषी मानकर उनका तिरस्कार करना उचित नहीं है।

(घ) अद्भुत है मेरा यह मित्र। उसके पास दोषों का केटलाग है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– लेखक यहाँ अपने एक निन्दक मित्र पर हास्यपरक टिप्पणी करता हुआ उसकी विशेषताओं से अवगत करा रहा है।

व्याख्या– परसाई जी प्रस्तुत पंक्ति में अपने मित्र की विचित्रता का परिचय दे रहे हैं कि उनका वह निन्दक मित्र ऐसा विचित्र है कि उससे जिसकी चाहे उसकी निन्दा करवायी जा सकती है। रात को वह 'ग' के समक्ष मेरी निन्दा कर रहा था। यहाँ आते ही मेरे समक्ष 'ग' की निन्दा करने लगा। उसके सामने मैंने जिस किसी जानकार व्यक्ति का नाम लिया, उसी के बारे में उसने चार–छह वाक्य निन्दा के कह दिये। ऐसा प्रतीत होता है, मानो मेर इस मित्र के पास बुराइयों का सूची–पत्र हो। निन्दा करने के लिए जो भी शब्द प्रयुक्त हो सकते हैं, वे सब इसके सूची–पत्र में है और जिस–जिस में जो भी कमी हो सकती है, उसकी पूर्ण जानकारी उसके पास सदैव उपलब्ध रहती है।

(ङ) निन्दा का ऐसा ही भेदनाशक अँधेरा होता है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में लेखक ने निन्दकों के भेद को दूर करने में निन्दारूपी अन्धकार को सहायक बताया है।

व्याख्या– परसाई जी कहते हैं कि यदि दो निन्दकों में किसी प्रकार का भेद हो तो रात्रि के अन्धकार की भाँति निन्दा का अन्धकार उस भेद को मानो अपने प्रभाव से समाप्त कर डालता है; क्योंकि लेखक ने जब अपने निन्दक मित्र के साथ मिलकर बहुत-से विरोधियों की निन्दा की तो निन्दक मित्र के प्रति उनके मन में जो भी द्वेष था, वह दूर हो गया। इससे तात्पर्य है कि निन्दा के अन्धकार से समस्त भेदभाव समाप्त हो जाते हैं।

(च) इसलिए संतों ने निन्दकों को 'आँगन कुटी छवाय' पास रखने की सलाह दी है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में समाज और व्यक्ति के लिए निन्दा और निन्दक के महत्व का प्रतिपादन किया गया है।

व्याख्या– लेखक कहता है कि साथ बैठकर निन्दा करने वाले लोगों में परस्पर जो अपनापन, तन्मयता और एकाग्रता होती है, वैसी एक साथ बैठकर ईश्वर का भजन करने वाले भक्तों में भी नहीं होती। यही कारण है कि कबीर जैसे सन्त कवियों ने निन्दा करने वाले लोगों को आँगन में कुटी बनवाकर पास रखने की सलाह दी; क्योंकि निन्दक हमारे दुर्गुणों की बार-बार निन्दा करेगा और हम उसकी निन्दा से बचने के लिए अपने दुर्गुणों का त्यागकर, सही आचरण करने का प्रयत्न करेंगे। इससे हमारा स्वभाव बिना प्रयास के ही पवित्र हो जाएगा।

(छ) ईर्ष्या-द्वेष से प्रेरित निन्दा करने वाले को कोई दंड देने की जरूरत नहीं है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति के माध्यम से निन्दा करने वाले व्यक्ति की दयनीय स्थिति को प्रदर्शित किया गया है।

व्याख्या– लेखक के अनुसार निन्दा करने वाले व्यक्ति की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो जाती है। वह अपनी अयोग्यताओं एवं असमर्थताओं के कारण सदैव दु:खी रहता है और दूसरों की सुख-समृद्धि एवं प्रगति को देखकर उसी प्रकार बड़बड़ाता रहता है, जिस प्रकार चन्द्रमा को देखकर कोई कुत्ता पूरी रात भौंकता रहे। अपनी योग्यताओं एवं सामर्थ्य में वृद्धि करने के स्थान पर वह निरन्तर हीन ही बना रहता है और अपने अहं की तुष्टि हेतु, सक्षम एवं प्रगतिशील व्यक्तियों की निन्दा में ही व्यस्त रहता है। ईर्ष्या-द्वेष से प्रेरित निन्दक व्यक्ति का दण्ड देने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि वह निन्दा की जलन में स्वयं पीड़ित रहते हुए निरन्तर तड़पता रहता है।

(ज) निन्दा का उद्‌गम ही हीनता और कमजोरी से होता है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में लेखक ने कहा है कि निन्दा की प्रवृत्ति का जन्म हीनता की भावना से होता है।

व्याख्या– विद्वान लेखक का कहना है कि किसी मनुष्य के मन में पर निन्दा की प्रवृत्ति उसकी अपनी कमजोरी और आलस्य के कारण उत्पन्न होती है। अपने समकक्ष किसी व्यक्ति के पास जो कुछ है, वह उसके पास नहीं है; अर्थात् वह उससे छोटा या तुच्छ है। अपनी इसी हीन भावना के कारण उसकी निन्दा करके स्वयं को इससे बड़ा साबित करने का निरर्थक प्रयास करता है और उसकी निन्दा करने लगता है, जिससे कि वह दूसरों की नजर में नीचे गिर जाए।

(झ) ज्यों-ज्यों कर्म क्षीण होता जाता है, त्यों-त्यों निन्दा की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति वाक्य में निन्दा-प्रवृत्ति की उत्पत्ति सम्बन्धी व्याख्या की गई है।

व्याख्या– हीनभावना से ग्रस्त व्यक्ति दूसरों की निन्दा करके तथा इन्हें तुच्छ और निकृष्ट बताकर अपने अहम् की तुष्टि करता है। वह समझता है कि इस प्रकार वह समाज में अपने महत्व की स्थापना कर रहा है। उसका यह प्रयास ऐसा ही है, जैसे कोई व्यक्ति किसी की बड़ी लकीर को मिटाकर अपनी छोटी लकीर को बड़ा समझने लगा। जैसे-जैसे व्यक्ति कर्महीन होता जाता है, वैसे-वैसे उसमें निन्दा की प्रवृत्ति बढ़ती चली जाती है। कर्मठ व्यक्ति में न तो ईर्ष्या और द्वेष का भाव होता है और न उसमें निन्दा की आदत होती है। वस्तुत: अपनी कर्मशीलता के क्षणों में उसे इन बातों का ध्यान ही नहीं रहता।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न–

1. 'निन्दा रस' पाठ का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– 'निन्दा रस' नामक निबन्ध में 'हरिशंकर परसाई' जी ने निन्दा से प्राप्त होने वाले रस पर तीखा व्यंग्य किया है। लेखक कहते हैं कि जब एक दिन सुबह वे चाय पीकर अखबार पढ़ रहे थे तो उनके मित्र 'क' कई महीने बाद तूफान की तरह कमरे में आए और चक्रवात की तरह उनको अपनी बाँहों में उसी प्रकार जकड़ लिया जिस प्रकार 'धृतराष्ट्र' ने भीम से अपने पुत्रों की मृत्यु का बदला लेने के लिए भीम के पुतले को अपनी भुजाओं में जकड़कर चकनाचूर कर दिया था। लेखक कहते हैं कि अपने उस

मित्र से मैं प्रेम से गले नहीं मिला, जब मित्र 'क' उनसे गले मिला तो उन्होंने अपने शरीर से अपने मन को चुपचाप अलग कर दिया था और अचेतन शरीर को उसकी बाँहों में सौंप दिया था। लेखक के मन में उस मित्र के लिए सद्भाव न था। मन में व्याप्त द्वेष या रोष अदृश्य होता है, परन्तु यदि कही भावनाओं के काँटे होते तो तो उस मित्र को पता चलता कि वह नागफनी को कलेजे से चिपकाए खड़ा है। यहाँ लेखक पाठकों को परामर्श भी देता है कि जब कोई छली व्यक्ति गले मिले तो उसके सामने अपना पुतला ही बढ़ाना चाहिए।

लेखक आगे कहते हैं कि उनका मित्र अभिनय करने में निपुण है। उनसे (लेखक से) मिलकर केवल उसकी आँखें ही सजल नहीं हुई अपितु मिलन के कारण होने वाले हर्ष के सभी चिह्न दिखाई देने लगे। और वह लेखक से बोला कि अभी सुबह की गाड़ी से ही वह आया है और तुरंत उनसे मिलने चला आया। इनके मित्र ने आते ही झूठ बोला, लेखक के दूसरे मित्र ने उन्हें पहले ही बता दिया था कि उनका मित्र 'क' कल से आया हुआ था। परन्तु कुछ लोग आदतन प्रकृति के अनुरूप झूठ बोलते हैं। लेखक कहते हैं मेरे मित्र ने आते ही 'ग' की निन्दा आरम्भ कर दी। उसने 'ग' की निन्दा में जो शब्द कहे उन्हें सुनकर लेखक यह सोचकर काँप गया कि 'क' ने कल 'ग' के सामने लेखक की भी इसी प्रकार निन्दा की होगी।

लेखक परसाई जी कहते हैं कि उनका निन्दक मित्र बहुत ही अद्भुत और विचित्र है, जिसके पास सभी के दोषों और बुराईयों का अच्छा-खासा सूची-पत्र है। उसके सामने जिस किसी की भी चर्चा छिड़ती वह उसी की निन्दा में चार-छ: वाक्य बोल देता था। लेखक के मन में भी विचार आया कि क्यों न मैं भी अपने कुछ विरोधियों की निन्दा अपने मित्र के माध्यम से करवा लूँ। लेखक ने अपने विरोधियों की चर्चा उसके सामने शुरू कर दी और उनके मित्र ने उनके प्रत्येक विरोधी की भरपूर निन्दा की। लेखक कहते हैं कि उस समय उन्हें ऐसा आनन्द प्राप्त हुआ जैसा किसी योद्धा को उस समय प्राप्त होता होगा जब वह युद्ध-भूमि में अपने शत्रु को कट-कटकर गिरते हुए देखता होगा। लेखक कहता है कि मेरा निन्दक मित्र जब तक अपने विरोधियों की निन्दा करता रहा जब तक उसका व्यवहार मुझे उचित नहीं लगा, लेकिन जब उसने मेरे विरोधियों की निन्दा शुरू की तब उसके प्रति मैं विनम्र हो गया, क्योंकि दोनों की भावनाएँ समान हो गई थीं और स्वाभाविक भेद-भाव भी समाप्त हो गया; क्योंकि ये भेद दोषरूपी अंधकार में दिखाई नहीं देते और स्वच्छ आचरणरूपी दिन में स्पष्ट हो जाते हैं। जब वह विदा हुआ तो हम दोनों को बड़ी शान्ति और तुष्टि थी। लेखक कहते हैं कि निन्दा में एक ऐसा गुण है जो अद्भुत है। दो-चार लोग एक जगह बैठकर निन्दा करने में इतने तल्लीन हो जाते हैं, जैसे कुछ भक्तगण ईश्वर-भक्ति में तल्लीन होते हैं। निन्दा करने में उन्हें वही आनन्द प्राप्त होता है, जो ईश्वर का भजन करने वाले भक्तों को मिलता हैं। निन्दकों का मन निन्दा करने में जितना अधिक एकाग्र होता है, आपस में उतना अधिक अपनापन, उतनी एकाग्रता और तन्मयता भक्तों में भी मिलनी कठिन होती है। इसलिए सन्तों ने भी निन्दकों को अपने पास रखने की सलाह दी है। लेखक कहते हैं कि कुछ निन्दक मिशनरी होते हैं, जिनका मिशन ही निन्दा करना होता है। उनका किसी से वैर नहीं होता है, न ही वे किसी का बुरा सोचते हैं, किन्तु निन्दा करना उनका स्वभाव होता है और निन्दा करने में उन्हें विशेष आनन्द की प्राप्ति होती है। जिसे करने में वे कोई पक्षपात नहीं करते। निन्दा ऐसे लोगों के लिए 'टॉनिक' होती है, जो उन्हें उल्लास और आनन्द प्रदान करती है। परसाई जी कहते हैं कि आज ट्रेड यूनियनों का जमाना है सभी वर्गों के लोगों ने अपने हितों की रक्षा के लिए लड़ने हेतु अपने-अपने संघ बना लिए हैं। इसी प्रकार निन्दकों ने भी अपने संघों का निर्माण कर लिया है। इन संघों के अध्यक्ष छोटी-छोटी खबरों को बढ़ा-चढ़ा कर उन्हें पक्के माल में परिवर्तित करके निन्दापसन्द लोगों को बाँटने के लिए दे देते हैं। निन्दा के लिए इस प्रकार सामग्री तैयार करना बड़ी फुरसत का कार्य है, जिसे जल्दबाजी में सम्पन्न नहीं किया जा सकता।

लेखक कहते हैं कि निन्दा दो भावों से की जाती है— मिशनरी भाव से तथा ईर्ष्या भाव से। ईर्ष्या भाव से प्ररित होकर निन्दा करने में वह आनन्द नहीं आता, जो आनन्द मिशनरी भावों से प्ररित होकर निन्दा करने में आता है, क्योंकि जो ईर्ष्या-द्वेष के कारण दूसरे व्यक्तियों की निन्दा करता रहता है, वह सदा दु:खी रहता है। उसकी दशा बहुत दयनीय होती है। ऐसा व्यक्ति स्वयं तो कुछ कर नहीं पाता, किन्तु दूसरे समर्थ व्यक्ति को देखकर इस तरह प्रलाप करने लगता है; जैसे रात्रि में चाँद को देखकर कुत्ते भौंकने लगते हैं। निन्दक को कोई दण्ड देने की आश्यकता नहीं होती, क्योंकि वह तो निन्दा की जलन में स्वयं ही पीड़ित रहता है।

मनुष्य की हीन-भावना तथा कर्महीनता की प्रवृत्ति ही उसमें दूसरों की निन्दा करने की भावना को जन्म देती है। दूसरों की निन्दा करके वह उन्हें तुच्छ तथा स्वयं को महान् प्रदर्शित करना चाहता है। वह दूसरों की निन्दा करके आत्म-सन्तोष की अनुभूति करने लगता है। उसकी यह कोशिश ऐसी है, जैसे कोई व्यक्ति बड़ी लकीर को मिटाकर, छोटी लकीर को बड़ा समझने लगे। लेखक कहते हैं कि जैसे-जैसे निकम्मेपन की भावना बढ़ती जाती है, निन्दा करने की प्रवृत्ति भी बढ़ती जाती है। इन्द्र को बहुत बड़ा ईर्ष्यालु माना जाता है; क्योंकि वह निठल्ला रहता है उसे खाने के लिए अन्न नहीं उगाना पड़ता, फल पाने के लिए पेड़ नहीं उगाने पड़ते तथा रहने के लिए महल नहीं बनाना पड़ता इसलिए उसे अपनी अकर्मण्यता के कारण अपनी अप्रतिष्ठा का भय बना रहता है, इसलिए वह कर्म करते हुए मनुष्यों को देखकर ईर्ष्या करने लगता है।

कुछ लोगों के लिए निन्दा उनकी पूँजी के समान होती है। वे निन्दा को पूँजी समझते हुए भी अपना व्यापार बढ़ाने में लगे रहते हैं। ऐसे लोग दूसरों के जीवन से सम्बन्धित कलंकपूर्ण घटनाओं को बढ़ा-चढ़ाकर दूसरों को सुनाते हैं। कभी-कभी तो निन्दा रस में रूचि लेने वाले मात्र कल्पना के आधार पर ही किसी को बदनाम कर दिया करते हैं। ऐसे निन्दकों के विषय में दूसरे लोग जो

भी समझते हों, पर वे अपने आप को सन्त-महात्मा समझकर स्वयं सन्तुष्ट होने का झूठा अनुभव करते हैं। आप इन लोगों के पास बैठकर ऐसा अनुभव कर सकते हैं। यहाँ लेखक उदाहरण देते हैं कि एक स्त्री अपने पति से अपनी सहेली के पति की बेईमानी के कार्यों की निन्दा कर रही थी और कह रही थी कि अगर सहेली की जगह मैं होती तो मैं ऐसे पति का त्याग कर देती परन्तु उसके पति के कहने पर मैं भी अमुक कार्य करता हूँ यह सुनकर वह स्तब्ध हो जाती है और वहाँ से चली जाती है, परन्तु त्याग नहीं करती। लेखक कहते हैं कि मित्र के चले जाने के दस-बारह घंटे बाद भी उसकी निन्दा का प्रभाव मेरे मन पर था परन्तु अब मुझे उतना रस प्राप्त नहीं हो रहा था जितना उसके साथ बैठकर हुआ था। निन्दा करने में बड़ा रस है इसलिए कवि सूरदास जी ने भी निन्दा के शब्दों को मीठा बताया है।

2. लेखक ने निबन्ध में अपने मित्र की कौन-सी आदतों का वर्णन किया है?

उ०– लेखक ने अपने मित्र की आदतों का वर्णन करते हुए बताया है कि उनका मित्र अभिनय करने में निपुण, झूठ बोलने वाला, स्नेहसिक्त वाणी वाला, तथा निन्दा करने में निपुण है।

3. 'निन्दा रस' से लेखक से क्या अभिप्राय है?

उ०– 'निन्दा रस से लेखक का तात्पर्य दूसरों की निन्दा करने में मिलने वाले आनन्द से है, जो व्यक्ति किसी दूसरे की निन्दा करके प्राप्त करता है। दूसरों की निन्दा करके व्यक्ति शान्ति और तृष्टि प्राप्त करता है।

4. निन्दा की महिमा कैसी है?

उ०– निन्दा की प्रवृत्ति निन्दा करने वाले को और श्रोता को अपरिमित शान्ति और सन्तोष प्रदान करती है। दो चार लोग एक जगह बैठकर निन्दा करने में इतने तल्लीन हो जाते हैं, मानो कुछ भक्तगण ईश्वर-भक्ति में तल्लीन हों। उन्हें निन्दा करने में, उन्हें वही आनन्द प्राप्त होता है, जो ईश्वर का भजन करने में भक्तों को प्राप्त होता है। निन्दकों का मन निन्दा करने में जितना अधिक एकाग्र होता है, आपस में उतना अधिक अपनापन, उतनी एकाग्रता और तन्मयता भक्तों में भी मिलनी कठिन होती है।

5. निन्दा का उद्‌गम कैसे होता है?

उ०– निन्दा का उद्‌गम मनुष्य की हीन भावना और कर्म न करने की प्रवृत्ति से होता है। जब व्यक्ति अपनी हीनता को प्रकट नहीं होने देना चाहता है, तो दूसरों की निन्दा करके उसे तुच्छ सिद्ध कर देना चाहता है। वह यह दिखाने की कोशिश करता है कि दूसरा उससे तुच्छ है और वह उनसे महान्।

पाठ्येतर सक्रियता–

उ०– छात्र स्वयं करें।

8 आखिरी चट्‌टान

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 68-69 का अवलोकन कीजिए।

लेखक पर आधारित प्रश्न–

1. मोहन राकेश का जीवन परिचय देते हुए उनकी कृतियों का उल्लेख कीजिए।

उ०– **लेखक परिचय–** प्रसिद्ध साहित्यकार मोहन राकेश का जन्म 8 जनवरी सन् 1925 ई० को अमृतसर (पंजाब) में हुआ था। इनके पिता श्री करमचन्द गुगलानी एक प्रसिद्ध वकील थे; परन्तु साहित्य व संगीत के प्रति उनका विशेष प्रेम था।, जिसका प्रभाव मोहन राकेश के कोमल हृदय पर भी पड़ा। ओरियण्टल कॉलेज (लाहौर) से 'शास्त्री' की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद हिन्दी तथा संस्कृत विषय से इन्होंने स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की। इसके बाद इन्होंने शिमला, जालन्धर, बम्बई (मुम्बई) और दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन-कार्य किया।

अध्यापन करते हुए बहुत-सी परेशानियाँ आने के कारण इन्होंने अध्यापन-कार्य छोड़ दिया। सन् 1962-63 ई० में इन्होंने हिन्दी की प्रसिद्ध कहानी पत्रिका 'सारिका' के सम्पादन का दायित्व निर्वहन किया, किन्तु कार्यालय की यान्त्रिक पद्धति इनके मन के अनुकूल नहीं थी; अत: इस कार्य का भी इन्होंने परित्याग कर दिया। सन् 1963 ई० से इन्होंने स्वतंत्र रूप से लेखन-कार्य आरम्भ किया और यही इनके जीविकोपार्जन का माध्यम था। भारत सरकार द्वारा 'नाटक की भाषा' पर कार्य करने के लिये इन्हें 'नेहरू फेलोशिप' प्रदान की गई। 3 जनवरी 1972 ई० को अकस्मात् इनका देहावसान हो गया।

कृतियाँ– इनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं—

निबन्ध संग्रह– बकलमखुद, परिवेश।

उपन्यास– नीली रोशनी की बाँहें, न आने वाला कल, अँधेरे बन्द कमरे, अन्तराल।
कहानी संग्रह– वारिस, क्वार्टर, पहचान।
नाटक– आधे-अधूरे, आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस, मृच्छकटिक और शाकुन्तलम के हिन्दी नाट्य-रूपान्तर, दूध और दाँत।
जीवनी-संकलन– समय सारथी।
यात्रा वृत्तान्त– आखिरी चट्टान तक।
डायरी साहित्य– मोहन राकेश की डायरी।

2. मोहन राकेश की भाषा-शैली की विशेषताएँ बताते हुए हिन्दी साहित्य में उनका स्थान निर्धारित कीजिए।

उ०– **भाषा-शैली–** मोहन राकेश की भाषा परिष्कृत, परिमार्जित, संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली है। इनकी भाषा विषय, पात्र और देश-काल के अनुसार बदलती रहती है। एक ओर इनकी भाषा में संस्कृत की तत्सम शब्दावली दिखाई देती है तो दूसरी ओर सरल एवं काव्यात्मक भाषा भी मिलती है। बोलचाल के सरल शब्दों और स्थान-स्थान पर उर्दू, अंग्रेजी आदि के प्रचलित शब्दों के प्रयोग से इनकी भाषा में आधुनिकता का गुण आ गया है। मोहन राकेश जी की भाषा यद्यपि मुख्य रूप से संस्कृत के तत्सम शब्दों से युक्त है, तथापि उसमें अंग्रेजी, उर्दू एवं क्षेत्रीय भाषा के प्रयोग भी दृष्टिगोचर होते हैं। इस कारण इनकी भाषा वातावरण, प्रकृति एवं पात्रों का सजीव चित्र प्रस्तुत करने में समर्थ है।

कहानियों, उपन्यासों और यात्रा-संस्मरणों में मोहन राकेश जी ने वर्णात्मक शैली का प्रयोग किया है। सरल भाषा के द्वारा इन्होंने यथार्थ चित्र उपस्थित करने का कार्य भी इसी शैली में किया है। इन्होंने अपनी रचनाओं में भावात्मक शैली का सर्वाधिक प्रयोग किया है। भावात्मक एवं काव्यात्मक गुणों पर आधारित इनकी यह शैली बड़ी रोचक एवं लोकप्रिय रही है। मोहन राकेश मूलत: नाटककार हैं; अत: इनके निबन्धों में संवाद शैली की बहुलता है। इससे नाटकीयता तो आती ही है, साथ की रोचकता भी बढ़ती है और पात्र का चरित्र भी निखर उठता है। इन्होंने यात्रा निबन्धों में प्राय चित्रात्मक शैली का प्रयोग किया है। इससे प्राकृतिक चित्र सजीव हो उठे है। इन्होंने अपनी रचनाओं में अपनी बिम्ब-विधायिनी शक्ति का परिचय दिया है। राकेश जी ने अपने यात्रा वृत्तान्तों में विवरणात्मक शैली का भी अद्‍भुत प्रयोग किया है। मोहन राकेश जी की भाषा-शैली किसी भी पाठक को सहज ही आकर्षित कर लेने में समर्थ है। विचारों एवं भावों के अनुकूल प्रयुक्त की गई उनकी भाषा-शैली अत्यन्त प्रभावपूर्ण है।

हिन्दी साहित्य में स्थान–आधुनिक साहित्यकारों में मोहन राकेश अद्वितीय हैं। इन्होंने अपनी प्रखर बुद्धि से हिन्दी-साहित्य जगत की जो श्रीवृद्धि की है, उसके लिए हिन्दी-साहित्य जगत सदैव इनका आभारी रहेगा।

व्याख्या सम्बन्धी प्रश्न–

1. निम्नलिखित गद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) पृष्ठभूमि में .... यात्री, एक दर्शक।

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यावतरण हमारी पाठ्यपुस्तक 'गद्य गरिमा' के 'मोहन राकेश' द्वारा लिखित 'आखिरी चट्टान' नामक यात्रा वृत्तांत से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने कन्याकुमारी के पास दिखाई देनेवाले समुद्री दृश्य का बड़ा ही सुन्दर, मोहक और सजीव चित्र प्रस्तुत किया है।

व्याख्या– लेखक मोहन राकेश बताते हैं कि जब वे केप होटल के बाथ टैंक के बाईं तरफ समुद्र में उभरी एक चट्टान पर खड़े होकर भारत की स्थल सीमा की आखिरी चट्टान को देख रहे थे तो उनके पीछे कन्याकुमारी के मन्दिर की रोशनी की लाल और सफेद लकीरें चमक रही थी। वह चट्टान जिस पर स्वामी विवेकानन्द ने समाधि लगाई थी वह, अरब सागर, हिन्द सागर और बंगाल की खाड़ी की संगम स्थली बन गई थी, जो स्वामी विवेकानन्द की तरह ही समाधि में लीन प्रतीत हो रही थी।

लेखक कहता है कि उसके चारों ओर विशाल सागर फैला हुआ था और उसकी लहरें चट्टान से टकरा रही थी। समुद्र के इस विस्तार को देखकर लेखक चिन्तन में लीन हो गया। वह अपनी पूरी चेतना से समुद्र की शक्ति के विस्तार का और उस विस्तार की शक्ति का अनुभव करता रहा। तीनों तरफ जहाँ भी दृष्टि जाती थी, वहाँ पानी-ही-पानी दिखाई देता था, किन्तु सामने हिन्द महासागर का क्षितिज, उनमें अधिक दूर तथा और अधिक गहरा मालूम दे रहा था। लगता था उस ओर धरती का तट ही नहीं है। समुद्र के जल और क्षितिज के सौन्दर्य को देखकर लेखक भाव-विभोर हो गया और सोचने लगा कि उसकी जन्मभूमि कितनी सुन्दर और मनमोहक है। उसके सौन्दर्य को देखकर लेखक अपने आप को ही भूल गया। आत्म-लीनता के इन क्षणों में वह अपने जीवित होने का आभास भी न कर सका। वह तो यह भी भूल गया कि वह बहुत दूर से आया हुआ एक यात्री है, एक दर्शक मात्र है।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. भाषा– सरल साहित्यिक खड़ीबोली। **2. शैली–** वर्णनात्मक और चित्रात्मक। **3. वाक्य विन्यास–** सुगठित। **4. शब्द-चयन–** विषय के अनुरूप। **5.** प्रस्तुत अंश में विशेष रूप से लेखक की अनूठी संवेदना-शक्ति का परिचय मिलता है।

(ख) पीछे दायीं तरफ .... उड़ेला गया हो।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में लेखक ने कन्याकुमारी में सूर्यास्त के अनुपम सौन्दर्य का सजीव चित्रण किया है।

व्याख्या– लेखक जिस स्थान पर बैठकर सूर्यास्त की छटा को देख रहा था, उसके पीछे दायीं ओर नारियल के वृक्षों के झुरमुट दिखाई दे रहे थे। गूँजती हुई तेज हवा चल रही थी और उस हवा से नारियल के वृक्षों की टहनियाँ ऊपर को उठ रही थीं। समुद्र के पश्चिमी तट के किनारे-किनारे सूखी पहाड़ियों; ऐसी पहाड़ियाँ जिस पर हरियाली न हो; की एक पंक्ति दूर तक फैली हुई थी। उसके आगे रेत-ही-रेत फैला हुआ था, जिससे रूखापन, भयानकता और अकेलापन प्रकट हो रहा था। सूर्य समुद्र के जल की सतह के पास पहुँचा गया था; अर्थात् सूर्यास्त होने ही वाला था। सूर्य की सुनहली किरणें रेत पर पड़ रही थीं, जिनकी आभा ने उस रेत को एक नवीन रंग दे दिया था। उस रंग में चमकती हुई रेत को देखकर ऐसा लगता था, मानो इसका निर्माण अभी किया गया हो और उसे समुद्र तट पर बिखेर दिया गया हो।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. भाषा– सरल खड़ी बोली। **2. शैली–** वर्णनात्मक और चित्रात्मक। **3. वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **4. शब्द-चयन–** विषय-वस्तु के अनुरूप। **5.** कन्याकुमारी के सूर्यास्त के मनोरम दृश्य का गतिशील सौन्दर्य चित्रित हुआ है।

(ग) सूर्य का गोला .... फैल गयी थी।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इन पंक्तियों में लेखक ने कन्याकुमारी के समुद्र-तट पर समुद्र में डूबते सूर्य का मनोहारी चित्रण किया है।

व्याख्या– सन्ध्या समय सुनहरे सूर्य का बड़ा-सा गोला अन्तत: पश्चिमी समुद्र के पानी की सतह को छू गया, सूर्य का स्पर्श पाते ही सारा समुद्र-जल जैसे सोने में बदल गया, किन्तु उसका यह सुनहरा रंग बहुत देर तक स्थायी न रह सका। उस समय पानी की रंगत प्रतिक्षण बदल रही थी। उसके रंग बदलने की गति इतनी तीव्र थी कि उसके रंग को किसी भी एक पल के लिए कोई नाम देना सम्भव न था। कुछ ही क्षणों में सूर्य की सुनहरी आभा लालिमा में बदल गई और उसके प्रभाव से सारा समुद्र ज्वालामुखी के दहकते लाल लावे के रूप में परिवर्तित हो गया अर्थात् समुद्री जल की आभा लालिमायुक्त हो गई। उस लाल जल में डूबता सूर्य ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो उसे उस दहकते लावे में डूबने के लिए मजबूर किया जा रहा हो। क्षण-क्षण पानी में डूबता सूर्य अन्तत: पूरी तरह समुद्र में डूब गया और सम्पूर्ण आकाश लालिमा से युक्त हो गया। उस लालिमा के जल में प्रतिबिम्बित होने के कारण सारा समुद्री जल लाल रंग में बदल गया। अभी कुछ क्षण पहले तक जिस समुद्र में सोना बहता नजर आ रहा था, अब वहाँ लहू-सा बहता नजर आने लगा। कुछ क्षण बीतते-बीतते उस रक्तिम जल की आभा पहले बैंगनी और फिर काली पड़ गई।

लेखक आगे कहते हैं कि उसी क्षण मैंने अपने दाईं ओर पीछे मुड़कर समुद्र-तट की ओर देखा तो मुझे नारियलों की टहनियाँ पहले की भाँति ही हवा में ऊपर उठी हुई दिखाई दी। उनके व्यवहार में किसी प्रकार का परिवर्तन न हुआ था। वृक्षों की टहनियाँ दिन में जैसे हवा के झोंकों के साथ गूँज उत्पन्न कर रही थीं, वैसे ही वे सूर्यास्त के पश्चात् भी गूँज उत्पन्न कर रही थीं। उस समुद्री तट के दृश्य में यदि कोई परिवर्तन हुआ था तो केवल इतना कि उस पर कालिमा की चादर छा गई थी। इसकी तुलना लेखक ने उस चित्र से की है, जिस पर स्याही गिरकर फैल गई हो।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. कन्याकुमारी के सूर्यास्त का अत्यन्त स्वाभाविक आलंकारिक और हृदयकारी वर्णन हुआ है। **2. भाषा–** प्रवाहपूर्ण शुद्ध साहित्यिक। **3. शैली–** वर्णनात्मक एवं आलंकारिक।

(घ) कारण था, तट की .... पैरों से मसल दिया।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत अवतरण में लेखक ने कन्याकुमारी की रेत पर फैले विभिन्न मनमोहक रंगों का वर्णन किया है।

व्याख्या– लेखक कहता हैं कि जब उन्हें ध्यान आया कि उन्हें रेत के टीलों से होकर वापस जाना है तो वह घबरा गया। उसे तुरंत निश्चय करना था कि कैसे वापस जाया जाए। ऐसा विचारकर वह रेत पर नीचे फिसल गया। पर समुद्र तट पर पहुँचकर वह अँधेरे को भूल गया। इसका प्रमुख कारण था समुद्र तट की रेत। लेखक कहता है मैंने इससे पहले भी समुद्र तट पर कई रंगों-सुरमई, खाकी, पीली और लाल रेत देखी थी, परन्तु जिस प्रकार के रंग कन्याकुमारी के समुद्र तट की रेत के थे ऐसे इससे पहले कभी नहीं देखे थे। उस रेत में कितने अनाम रंग थे जो एक-एक इंच पर भी एक-दूसरे से अलग थे और एक-एक अनाम रंग कई-कई रंगों की झलक लिए हुआ था। अर्थात् वहाँ अनेक प्रकार के आकर्षक रंग थे। लेखक कहता है कि यदि काली घटा और लाल आँधी का मिश्रित कर दिया जाए तो जितने रंग प्राप्त होंगे वे सभी रंग इस रेत पर उतरे हुए थे और इनके अतिरिक्त भी अनेक रंग थे जिनका वर्णन करना अकल्पनीय है। लेखक कहता है कि मैंने उन रंगों को छूने के लिए कई-अलग-अलग रंगों की रेत को अपने हाथों में लिया और उसे वापस गिरा दिया, मैं उन रंगों को छूने का अभिलाषी था इसलिए जिन रंगों मैं नहीं छू पाया उन रंगों को मैंने अपने पैरों से कुचल दिया अर्थात् मैंने उन रंगों का आभास करने का पूरा प्रयत्न किया।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. यहाँ लेखक ने कन्याकुमारी में सूर्यास्त के समय वहाँ के समुद्र तट की रेत पर उभरे अनाम असंख्य रंगों का मनमोहक वर्णन किया है। **2. भाषा–** शुद्ध सरल साहित्यिक खड़ीबोली, **3. शैली–** वर्णनात्मक एवं चित्रात्मक।

4. वाक्य-विन्यास– सुगठित। **5. शब्द चयन–** विषय के अनुरूप।

(ङ) मन बहुत बैचेन .... दराज में बंद थे।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यावतरण में लेखक ने अपने मन के भावों को प्रदर्शित किया है।

व्याख्या– लेखक कहता है कि जब रात्रि में केप होटल के लॉन में बैठकर मैं कन्याकुमारी के सागर तट की प्राकृतिक छटा का रसास्वादन कर रहा था, तो मेरा मन ऐसा व्याकुल हो रहा था— मानो कोई मिट्टी न तो भीगी हो और न पूरी तरह से सूखी हो। लेखक को वह स्थान इतना पसंद आया था कि, उसका मन कर रहा था कि वह अधिक समय तक इस प्राकृतिक छटा का आस्वादन करता रहे। परन्तु अपने भुलक्कड़पन की आदत के कारण ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उसे तुरंत उस स्थान से प्रास्थान करना पड़ेगा क्योंकि जब उसने अपना सूटकेस खोला तो उसे पता चला कि कनानोर में सत्रह दिन व्यतीत करके उसने जो अस्सी-नब्बे पन्नों का लेखन कार्य किया था वह वही कनानोर के सेवाय होटल के मेज की दराज में छूट गया है। अब लेखक को यह निश्चय करना था कि वह दो में से किसे चुने कन्याकुमारी के प्राकृतिक सौन्दर्य को या कनानोर के सेवाय होटल के मेज की दराज में बंद अपने लिखे पन्नों को। जो शायद अभी तक वहीं पर बंद थे। इस प्रकार लेखक दो परस्पर विरोधी विचारों के कारण बैचेने अनुभव कर रहा था।

साहित्यिक सौन्दर्य– 1. यहाँ लेखक ने अपनी विवशता का वर्णन किया है। यहाँ लेखक की भुलक्कड़पन की आदत का भी पता चलता है। **2. भाषा–** शुद्ध सरल साहित्यिक खड़ीबोली। **3. शैली–** वर्णनात्मक। **4. वाक्य-विन्यास–** सुगठित। **5. शब्द-चयन–** विषय के अनुरूप।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक वाक्यों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) मैं देख रहा था और अपनी पूरी चेतना से महसूस कर रहा था- शक्ति का विचार, विस्तार की शक्ति।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'गद्यगरिमा' में संकलित 'आखिरी चट्टान' नामक यात्रा वृतांत से अवतरित है। इसके लेखक 'मोहन राकेश' जी हैं।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में लेखक ने समुद्र के विस्तार को देखकर अपने मन में उठने वाले भावों का वर्णन किया है।

व्याख्या– लेखक का कहना है कि कन्याकुमारी में चट्टान पर खड़े होकर जब उसने अरब सागर, हिन्द महासागर तथा बंगाल की खाड़ी द्वारा निर्मित विशाल समुद्र को देखा, तो वह अपनी पूरी चेतना और मन से उस समुद्र की शक्ति के विस्तार अर्थात् जल को और उस विस्तार की शक्ति अर्थात् जल की शक्ति को देखता रहा तथा उसका अनुभव करता रहा क्योंकि जल में इतनी शक्ति होती है कि बड़ी से बड़ी चट्टान को भी खण्ड-खण्ड कर सकती है।

(ख) पानी पर दूर तक सोना-ही-सोना ढुल आया।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– सायंकाल में सूर्यास्त से पहले जब सूर्य समुद्र पर झुका था, तब उसकी पीली आभा से समुद्र के जल के भी पीला होने का वर्णन यहाँ किया गया है।

व्याख्या– सायंकाल समुद्र पर झुके सूर्य की पीली किरणों की आभा के संयोग से समुद्र के पानी की आभा भी पीली हो गई। समुद्र का सारा जल पीला दिखाई देने लगा। समुद्र की इस मोहक छटा का वर्णन करता हुआ लेखक कहता है कि समुद्र को देखकर ऐसा लगता है मानो समुद्र की सतह पर पिघला हुआ सोना दूर-दूर तक फैल गया है और उसी की पीली छटा मन को मोह रही है।

(ग) जिन रंगों को हाथों से नहीं छू सका, उन्हें पैरों से मसल दिया।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्ति में लेखक ने कन्याकुमारी में समुद्र के किनारे फैली विभिन्न रंगों की रेत का वर्णन किया है।

व्याख्या– समुद्र-तट पर रात हो चुकी थी और लेखक श्री मोहन राकेश को होटल पहुँचने की जल्दी थी। समुद्र के किनारे फैली रेत रात्रि की कालिमा और सूर्यास्त की लालिमा के मिश्रण से अनेकानेक रंगों की प्रतीत हो रही थी। ये रेत एक-एक इंच पर अलग रंग का आभास करा रही थी। इन अलग रंगों में भी कई-कई रंगों की झलक मिश्रित थी। लेखक चाहता था कि वह प्रत्येक रंग की थोड़ी-थोड़ी रेत अपने पास रख ले, जो कि सम्भव नहीं था। इसलिए चलते हुए ही उसने विभिन्न रंगों की रेत को हाथ से उठाकर देखा, उनको मसलकर उनके स्पर्श का सुख प्राप्त किया और फिर उन्हें गिर जाने दिया। जिन रंगों को वह हाथों से नहीं छू सका, उन्हें पैरों से ही मसल दिया। आशय यह है कि जैसे भी सम्भव हो सका उसने रेतों के स्पर्श का सुख प्राप्त किया।

(घ) मन बहुत बैचेन था- बिना पूरी तरह भीगे सूखती मिट्टी की तरह।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में लेखक के अन्तर्मन के द्वन्द्व का आलंकारिक चित्रण हुआ है।

व्याख्या– रात्रि में लेखक केप होटल के लॉन में बैठा हुआ कन्याकुमारी के सागर तट की प्राकृतिक छटा का रसास्वादन कर रहा होता है कि इतने में उसे कनानोर में स्वयं के द्वारा लिखे गये अस्सी-नब्बे पृष्ठों के छूट जाने का ध्यान आ जाता है। उनका ध्यान आते ही उसका मन ऐसे व्याकुल हो जाता है, मानो कोई मिट्टी न तो भीगी हो और न पूरी तरह सूखी हो। तात्पर्य यह है कि लेखक न तो वहाँ रुककर प्राकृतिक सौन्दर्य का रसास्वादन कर पा रहा था और न निश्चय ही कर पा रहा था कि अपने लिखे पृष्ठों को कनानोर से जाकर वापस ले आए। इस प्रकार लेखक दो परस्पर विरोधी विचारों में आबद्ध होने के कारण बैचेन हो उठा था। यहाँ लेखक के मन की यथार्थ स्थिति को सर्वथा नवीन उपमा द्वारा साकार किया गया है।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न–

1. 'आखिरी चट्टान' पाठ का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– 'आखिरी चट्टान' नामक यात्रा-वृत्तांत में मोहन राकेश जी ने कन्याकुमारी के असीम सौन्दर्य का वर्णन किया है। लेखक ने कन्याकुमारी को सुनहरे सूर्योदय और सूर्यास्त की भूमि कहा है। लेखक कहता हैं कि केप होटल के बाथ टैंक के बाई तरफ समुद्र के उभरी चट्टानों पर खड़ा होकर वह भारत की अन्तिम स्थल सीमा— विवेकानन्द चट्टान को देख रहा था। यह चट्टान अरब सागर, हिन्द महासागर तथा बंगाल की खाड़ी के संगम पर स्थित है। इस चट्टान पर स्वामी विवेकानन्द ने समाधि लगाई थी। लेखक कहता है कि चारों ओर विशाल समुद्र की लहरें हिलौरें ले रही थी। इस सौन्दर्य को देखकर लेखक चिन्तन में डूब गया। वह अपनी पूरी चेतना से उस समुद्र की शक्ति व विस्तार को और उस विस्तार की शक्ति को देखता रहा तथा उसका अनुभव करता रहा। तीनों तरफ जहाँ भी दृष्टि जाती थी, वहाँ पानी-ही-पानी दिखाई देता था, किन्तु हिन्द महासागर का क्षितिज, उनमें अधिक दूर तथा और अधिक गहरा मालूम पड़ रहा था। समुद्र के जल और क्षितिज के सौन्दर्य को देखकर लेखक भाव-विभोर हो गया और सोचने लगा कि उसकी जन्मभूमि कितनी सुन्दर और मनमोहक हैं इस सौन्दर्य को देखकर लेखक स्वयं को ही भूल गया। लेखक जब अपनी चेतना में वापस आया तो उसने पाया कि जिस चट्टान पर वह खड़ा था, वह बढ़ते पानी से चारों ओर से घिर गई है। यह देखकर लेखक का पूरा शरीर सिहर गया। सूर्य धीरे-धीरे अस्त होने लगा। लेखक ने सोचा कि क्यों न वह भी पश्चिमी तट रेखा के टीले पर जाकर सूर्यास्त देखे। उस तरफ कितने ही यात्रियों की टोलियाँ वहाँ जा रही थी। लेखक के आगे कुछ मिशनरी युवतियाँ मोक्ष पर विचार करती जा रही थी। स्याह सफेद रंग के टीले लेखक को बहुत आकर्षक लगे। लेखक टीले पर पहुँच गया, यह वही सैण्डहिल थी जिसके सूर्यास्त के दर्शन के बारे में लेखक पहले ही सुन चुका था। वहाँ बहुत से लोग सूर्यास्त देख रहे थे। लेखक को महसूस हुआ कि सैण्डहिल से सामने का विस्तार तो दिखाई दे रहा है, परन्तु अरब सागर की तरफ जो टीला है वह उस तरफ के विस्तार को ओट में लिए हैं। इसलिए लेखक सैण्डहिल से आगे टीले की तरफ चल दिया। लेखक ने जल्दी-जल्दी कई टीलों को पार किया और अन्त में वह उस टीले पर पहुँच गया जहाँ से समुद्र का अनन्त विस्तार दिखाई दे रहा था। लेखक जिस स्थान पर बैठकर सूर्यास्त की छोटा को देख रहा था, उसके पीछे दायीं ओर नारियल के वृक्षों के झुरमुट दिखाई दे रहे थे। हवा गूँजती हुई चल रही थी। समुद्र के पश्चिमी तट के किनारे-किनारे सूखी पहाड़ियों, ऐसी पहाड़ियाँ जिस पर हरियाली न हो, की एक पंक्ति दूर तक फैली हुई थी। सूर्य समुद्र के जल की सतह तक पहुँच गया था। सूर्य की सुनहरी किरणें रेत पर पड़ रही थीं, जिन्होंने उस रेत को नवीन रंग दे दिया था। उस रंग की चमकती रेत को देखकर ऐसा लगता था, मानो इसका निर्माण अभी किया गया हो और उसे समुद्र के तट पर बिखेर दिया हो। लेखक का कहना है कि सन्ध्या के समय सूर्य पश्चिम दिशा में क्षितिज पर पहुँचकर समुद्र के जल-तल को छूता हुआ प्रतीत होता है। इस समय सूर्य की सुनहरी किरणें जल पर ऐसी प्रतीत हुई जैसे वहाँ सोना ही सोना फैल गया हो, परन्तु सूर्यास्त के समय यह बहुत तेजी से रंग बदलता है। जैसे-जैसे सूर्य अस्त होता जाता है यह सुनहरी किरणें समाप्त एवं लुप्त हो जाती हैं और वहाँ केवल लालिमा शेष रह जाती है। इसके बाद यह लालिमा भी समाप्त होने लगती है और उसके बाद वहाँ का रंग पहले बैंगनी और बाद में काला पड़ जाता है। लेखक कहता है कि मैंने फिर से अपने दायीं तरफ मुड़कर देखा। नारियल की डालियाँ हवा से हिल रही थी। सभी तरफ अँधकार फैल गया था। अचानक वह अपने स्थान से उठा और कभी वह समुद्र और कभी नारियल के वृक्षों को देखने लगा।

अचानक लेखक को ध्यान आया कि उसे वापस भी जाना है यह सोचकर उसने सैण्डहिल की तरफ देखा वहाँ उसे कुछ धुँधले रंग हिलते नजर आए। लेखक के मन में डर समाने लगा कि क्या अँधकार होने से पहले वह इन टीलों को पार कर पाएगा। परन्तु वह उन टीलों से फिसलकर नीचे समुद्र तट पर पहुँच गया, वहाँ पहुँचकर वह अंधेरे को भूल गया। जिसका कारण समुद्र की तट की रेत पर उभरे विभिन्न प्रकार के रंग थे। एक-एक रंग अलग-अलग कई-कई रंगों की छटा लिए हुए था। लेखक ने उन रंगों को छूने के लिए उन्हें हाथों में लिया तथा पैरों से मसलकर उन्हें छूने का आनन्द प्राप्त किया।

समुद्र में बढ़ते पानी से लेखक को डर लगने लगा। लेखक उस स्थान से निकलने के लिए दौड़ने लगा। दौड़ते समय सामने की चट्टान से टकराने के कारण लेखक को खरोंच आ गई। समुद्र के पानी में जाने के बजाय लेखक चट्टान पर चढ़ गया और देखा दूसरी तरफ खुला तट था।

रात में लेखक केप होटल के लॉन में बैठा हुआ था और कन्याकुमारी के तट के सौन्दर्य का आनन्द ले रहा था कि अचानक उसे याद आया कि कनानोर में सत्रह दिन रहकर उसने जो लेखन कार्य किया था वह वहीं होटल के मेज की दराज में रह गया था। लेखक यह निश्चय नहीं कर पा रहा था कि वह वही रहकर प्राकृतिक सौन्दर्य का रसास्वादन करे या वापस कनानोर जाकर

अपने लेखन कार्य के पन्ने लाए। तभी होटल में लड़कियों की एक बस आकर रुकी। वे लड़कियाँ अंग्रेजी में गीत गा रही थीं। लेखक का मन वहाँ की सुन्दरता तथा बसों के प्रस्थान के टाइम-टेबिल में उलझा हुआ था।

सूर्योदय देखने के लिए लेखक अन्य सात लोगों के साथ विवेकानन्द चट्टान पर मौजूद था। जिनमें से तीन कन्याकुमारी के युवक व चार मल्लाह थे। चट्टान पर पहुँचने में लेखक को बहुत डर लगा। उनमें से एक नवयुवक ने लेखक को बताया कि कन्याकुमारी की आठ हजार की आबादी में से लगभग चार-पाँच सौ नवयुवक बेरोजगार है। सूर्य, पानी और आकाश में अलग-अलग रंग बिखेरकर उदित हो रहा था। घाट पर बहुत से लोग सूर्य को अर्घ्य दे रहे थे। वहाँ से वापस लौटते समय लेखक के साथियों ने नाव को घाट की तरफ से लाने का प्रस्ताव किया। यह मार्ग उससे बहुत खतरनाक था, जिनसे वे चट्टान तक पहुँचते थे। लेखक बहुत डर महसूस कर रहा था क्योंकि खतरनाक लहरें नाव को पलटने को तैयार थीं। तभी लेखक की नाव भँवर में प्रवेश कर गई जिससे लेखक की चेतना लगभग समाप्त ही हो गई। अन्त में लेखक घाट के पास पहुँच गया।

कन्याकुमारी के मंदिर में पूजा की घंटियाँ बज रही थी, चारों तरफ चहल-पहल थी। नाव के किनारे पर पहुँचने पर लेखक को फिर से वहाँ से प्रास्थान के लिए बसों का टाइम-टेबिल याद आने लगा।

2. पाठ के आधार पर सूर्यास्त के समय कन्याकुमारी के सौन्दर्य का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।

उ०– सूर्यास्त के समय कन्याकुमारी में सूर्य पश्चिम दिशा में क्षितिज पर पहुँचकर समुद्र के जल-तल को छूता हुआ प्रतीत होता है, सूर्य की किरणें जल पर बिखरी हुई ऐसी दिखाई देती हैं जैसे वहाँ सोना फैल गया हो। यहाँ सूर्यास्त के समय तेजी से रंग बदलते रहते हैं, जैसे-जैसे सूर्य अस्त होता है ये रंग परिवर्तित होने लगते हैं। जब समुद्र तल पर सुनहरी किरणें समाप्त होती है वहाँ केवल लालिमा शेष रह जाती है, धीरे-धीरे यह लालिमा भी बैंगनी और फिर काली हो जाती है। यहाँ सूर्यास्त के समय समुद्र तट की रेत में भी असंख्य रंग दृष्टिगोचर होते हैं, जो एक-एक इंच की दूरी पर भी अलग-अलग होते हैं।

3. विवेकानन्द चट्टान कहाँ स्थित है और वह क्यों प्रसिद्ध है?

उ०– विवेकानन्द चट्टान कन्याकुमारी में भारत की अन्तिम स्थल सीमा है जो अरब सागर, हिन्द महासागर तथा बंगाल की खाड़ी इन तीनों के संगम पर स्थित है। इस चट्टान पर स्वामी विवेकानन्द ने समाधि लगाई थी, जिस कारण यह चट्टान प्रसिद्ध है।

4. लेखक ने कन्याकुमारी के सागर तट की रंगीन रेत का वर्णन किस प्रकार किया है? अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– लेखक कहता है कि कन्याकुमारी के समुद्र तटों पर रेत जो रंग बिखरे पड़े थे वे अद्‌भुत थे, इससे पहले भी उसने समुद्र तट पर सुरमई खाकी, पीली, लाल कई रंगों की रेत देखी थी, परन्तु कन्याकुमारी में समुद्र तट पर फैली रेत रात्रि की कालिमा और सूर्यास्त की लालिमा के मिश्रण से अनेकानेक रंगों की प्रतीत हो रही थी। ये रेत एक-एक इंच पर अलग रंग का आभास करा रही थी। इन अलग रंगों में भी कई-कई रंगों की झलक मिश्रित थी। लेखक ने उन बिखरे रंगों को छूने के लिए रेत को हाथ में उठाकर देखा, उनको मसलकर उसने सुख का अनुभव किया और फिर नीचे गिर जाने दिया। जिन रंगों को वह हाथों से नहीं छू सका, उन्हें पैरों से मसल दिया अर्थात् जैसे भी संभव हो सका उसने रेतों के स्पर्श का आनन्द प्राप्त किया।

5. लेखक वापस कनानोर क्यों जाना चाहता था?

उ०– लेखक वापस कनानोर इसलिए जाना चाहता था क्योंकि लेखक ने अपने कनानोर प्रवास से सत्रह दिनों में जो अस्सी-नब्बे पेजों का लेखन कार्य किया था, वह सभी कार्य कनानोर के सेवाय होटल की एक दराज में रह गया था।

पाठ्येतर सक्रियता–

उ०– छात्र स्वयं करे।

काव्यांजलि

भूमिका

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न–

1. काव्य के कितने भेद होते हैं?

उ०– काव्य के दो भेद होते हैं— (i) श्रव्य काव्य, (ii) दृश्य काव्य।

2. श्रव्य काव्य के कितने भेद होते हैं?

उ०– श्रव्य काव्य के दो भेद होते हैं— (i) प्रबन्ध काव्य, (ii) मुक्तक काव्य।

3. प्रबन्ध काव्य तथा मुक्तक काव्य में मुख्य अन्तर कौन-सा है?

उ०– प्रबन्ध काव्य में कोई कथा काव्य का आधार होती है। इसमें किसी क्रिया अथवा घटना का काव्यात्मक वर्णन होता है। मुक्तक

काव्य, काव्य का वह रूप है जिसमें पद तो कई हो सकते हैं, लेकिन प्रत्येक पद स्वयं में पूर्ण होता है। उनमें परस्पर सम्बन्ध का होना अनिवार्य नहीं है।

4. महाकाव्य तथा खण्डकाव्य का अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उ०– महाकाव्य का नाटक उदात्त चरित्र का होता है। शान्त, शृंगार व वीर में से कोई रस प्रधान तथा अन्य रस गौण रूप में उपस्थित रहते हैं। इसमें कम से कम आठ सर्ग होते हैं। खण्डकाव्य किसी लोकनायक के जीवन के किसी एक अंश पर आधारित काव्यात्मक रचना होती है।

5. दो महाकाव्यों के नाम बताइए।

उ०– दो महाकाव्य के नाम हैं— (i) श्रीरामचरितमानस्, (ii) पद्‌मावत।

6. मुक्तक काव्य का एक उदाहरण बताइए।

उ०– रीतिकालीन कवि 'बिहारीलाल' की 'बिहारी-सतसई' मुक्तक काव्य का प्रमुख उदाहरण है।

7. खण्डकाव्य किसे कहते हैं?

उ०– किसी लोकनायक के जीवन के किसी एक अंश पर आधारित काव्यात्मक रचना खण्डकाव्य कहलाती है। इसकी रचना महाकाव्य की शैली पर ही होती है।

8. शब्द-शक्ति किसे कहते हैं?

उ०– शब्द के आन्तरिक अर्थ को स्पष्ट करने वाली शक्ति शब्द-शक्ति कहलाती है।

9. हिन्दी-काव्य-साहित्य के इतिहास के विभिन्न कालों के नाम लिखिए।

उ०– हिन्दी-काव्य साहित्य के इतिहास के काल के नाम हैं— आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, आधुनिककाल।

10. आदिकाल के लिए प्रयुक्त विभिन्न नामों में से किन्हीं दो नामों का उल्लेख कीजिए।

उ०– आदिकाल को चारणकाल तथा वीरगाथाकाल के नाम से भी जाना जाता है।

11. आदिकालीन दो प्रमुख रचनाओं के नाम लिखिए।

उ०– आदिकाल की दो प्रमुख रचनाएँ हैं— (i) पृथ्वीराज रासो, (ii) जयचन्द प्रकाश।

12. वीरगाथाकाल के एक प्रमुख कवि और उनकी एक रचना का नाम लिखिए।

उ०– वीरगाथाकाल के प्रमुख कवि चन्द्रवरदाई थे जिनकी रचना पृथ्वीराज रासो है।

13. हिन्दी के प्रथम कवि का नाम लिखिए।

उ०– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'चन्द्रवरदाई' को तथा राहुल सांकृत्यायन ने 'सरहपा' को हिन्दी का प्रथम कवि माना है परन्तु सर्वमान्य मत के अनुसार 'सरहपा' को हिन्दी का प्रथम कवि माना जाता है।

14. आदिकाल की दो प्रमुख प्रवृत्तियों का उल्लेख कीजिए।
या वीरगाथाकालीन काव्य की दो प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

उ०– (i) युद्धों के सुन्दर व सजीव वर्णन। (ii) आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा।

15. आदिकाल के सिद्ध साहित्य और जैन साहित्य के एक-एक प्रमुख कवि का नाम लिखिए।

उ०– आदिकाल के सिद्ध साहित्य के प्रमुख कवि सरहपा है। तथा जैन साहित्य के प्रमुख कवि मुनि जिनविजय हैं।

16. आदिकाल के साहित्य को कितने वर्गों में विभाजित किया जा सकता है?

उ०– आदिकाल के साहित्य को पाँच वर्गों में विभाजित किया जाता है—
(i) सिद्ध साहित्य, (ii) जैन साहित्य, (iii) नाथ साहित्य, (iv) रासो साहित्य,
(v) लौकिक साहित्य।

17. जैन साहित्य का सबसे अधिक लोकप्रिय ग्रन्थ कौन-सा माना जाता है?

उ०– जैन साहित्य का सर्वाधिक लोकप्रिय ग्रन्थ 'रूपरास' माना जाता है।

18. जैन साहित्य के तीन रास ग्रन्थों और उनके रचयिताओं के नाम लिखिए।

उ०– जैन साहित्य के तीन रास ग्रन्थ एवं उनके रचयिता हैं—
(i) मुनि जिनविजय का भरतेश्वर बाहुबली रास (ii) जिन धर्म सूरि का स्थूलभद्र रास
(iii) विजयसेन सूरि का रेवंतगिरी रास

19. नाथ साहित्य के प्रवर्त्तक कौन माने जाते हैं?

उ०– नाथ साहित्य के प्रवर्तक गोरखनाथ माने जाते हैं।

20. रासो साहित्य के दो कवियों व उनकी एक-एक रचना का नाम बताइए।

उ०– रासो साहित्य के दो कवि नरपति नाल्ह तथा दलपति विजय हैं। जिनकी रचनाएँ क्रमश: बीसलदेव रासो तथा खुमानरासो हैं।

21. 'पृथ्वीराज रासो' की रचना किस काल में हुई? इसके रचयिता कौन हैं?

उ०– 'पृथ्वीराज रासो' की रचना आदिकाल में हुई। इसके रचयिता कवि चन्द्रवरदाई है।

22. 'नरपति नाल्ह' द्वारा रचित रासो साहित्य से सम्बन्धित रचना कौन-सी है?

उ०– बीसलदेव रासो।

23. भक्तिकाल की सभी मुख्य काव्यधाराओं का परिचय दीजिए।

उ०– भक्तिकाल की दो प्रमुख काव्यधाराएँ हैं—

(i) निर्गुण भक्तिधारा, (ii) सगुण भक्तिधारा।

निर्गु भक्तिधारा की भी दो उपशाखाएँ हैं—

(i) ज्ञानमार्गी शाखा, (ii) प्रेममार्गी शाखा।

सगुण भक्ति-धारा की भी दो उपशाखाएँ हैं—

(i) कृष्णभक्ति शाखा, (ii) रामभक्ति शाखा।

24. भक्तिकाल की कालाविधि बताइए।

उ०– भक्तिकाल की कालावधि सन् 1343 ई० से सन् 1643 ई० तक की मानी जाती है।

25. ज्ञानमार्गी शाखा के दो प्रमुख कवियों के नाम बताइए।

उ०– ज्ञानमार्गी शाखा के दो प्रमुख कवियों के नाम हैं— (i) सन्तकबीर, (ii) रैदास।

26. प्रेममार्गी शाखा के दो प्रमुख कवियों के नाम बताइए।

उ०– प्रेममार्गी शाखा के दो प्रमुख कवियों के नाम हैं— (i) मलिक मुहम्मद जायसी, (ii) कुतुबन।

27. भक्तिकाल की निर्गुण भक्तिधारा की प्रेममार्गी शाखा के प्रमुख कवि और उनकी रचना का नाम लिखिए।

उ०– भक्तिकाल की निर्गुण भक्तिधारा की प्रेममार्गी शाखा के प्रमुख कवि मलिक मुहम्मद जायसी हैं, इनकी प्रमुख रचना पद्मावत है।

28. प्रेममार्गी शाखा के कवियों ने किस भाषा का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है?

उ०– प्रेममार्गी शाखा के कवियों ने अवधी भाषा का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है।

29. प्रेमामार्गी शाखा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ बताइए।

उ०– (i) सामाजिक रूढ़ियों से मुक्त एवं सौन्दर्य-वृत्ति से प्रेरित स्वच्छन्द प्रेम तथा प्रगाढ़ प्रणय की भावना,

(ii) सांसारिक प्रेम की सहज अनुभूति में आध्यात्मिकता तथा उसकी प्राप्ति के प्रयास में योग-साधना के दर्शन,

(iii) आध्यात्मिकता, दार्शनिकता एवं रहस्यवादिता का आरोपण,

(iv) रहस्यवाद के दर्शन, (v) अवधी भाषा एवं मसनवी शैली का प्रयोग।

30. सगुण भक्तिधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ बताइए।

उ०– सगुण भक्तिधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित है—

(i) परमात्मा के सगुण रूप की उपासना,

(ii) जीवन की सामान्य भावनाओं- वात्सल्य, सख्य, रति भाव के सभी रूपों की भक्ति में परिणति,

(iii) वैदिक धर्म की पुन: प्रतिष्ठा,

(iv) जीवन की सभी परिस्थितियों के लिए आचार एवं धर्म के मानदण्ड।

31. अवधी भाषा के किसी एक कवि का नाम बताइए।

उ०– अवधी भाषा के प्रमुख कवि गोस्वामी तुलसीदास हैं।

32. कृष्णभक्ति शाखा का प्रथम कवि कौन माना जाता है?

उ०– कृष्णभक्ति शाखा का प्रथम कवि विद्यापति को माना जाता है।

33. 'अष्टछाप' समूह के कवियों के नाम लिखिए।

उ०– 'अष्टछाप' समूह के कवियों के नाम हैं— सूरदास, कृष्णदास, कुम्भनदास, छीतस्वामी, चतुर्भुजदास, गोविन्द स्वामी, नन्ददास व परमानन्द दास।

34. कृष्णभक्ति शाखा के किन्हीं तीन सम्प्रदायों के नाम लिखिए।

उ०– कृष्णभक्ति शाखा के तीन सम्प्रदाय निम्नलिखित हैं—

(i) वल्लभ सम्प्रदाय, (ii) हरिदासी सम्पद्राय, (iii) चैतन्य सम्प्रदाय।

35. सूरदास किस शाखा के प्रसिद्ध कवि थे?

उ०– सूरदास कृष्णभक्ति काव्यधारा के प्रसिद्ध कवि थे।

36. कृष्णभक्ति शाखा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ लिखिए।

उ०– कृष्णभक्ति शाखा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं—

(i) कृष्ण के बाल और किशोर रूप की आराधना, (ii) ब्रजभाषा का प्रयोग जिसमें मुक्तक काव्य की प्रचुरता है,
(iii) काव्य में शृंगार एवं वात्सल्य रसों की प्रधानता,
(iv) उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप आदि अलंकारों का सर्वाधिक प्रयोग,
(v) जीवन की सभी इच्छाओं का पालनकर्ता श्री कृष्ण को माना गया है।

37. कृष्ण की बाललीला का वर्णन करने वाले दो प्रमुख कवियों के नाम बताइए।

उ०– सूरदास एवं कृष्णदास।

38. रामभक्ति शाखा के दो कवियों के नाम बताइए।

उ०– गोस्वामी तुलसीदास एवं केशव।

39. रामभक्ति शाखा के किसी एक कवि द्वारा रचित दो ग्रन्थों के नाम लिखिए।

उ०– रामभक्ति शाखा के प्रमुख कवि गोस्वामी तुलसीदास जी है इनके दो प्रमुख ग्रन्थ श्रीरामचरितमानस एवं गीतावली है।

40. तुलसीदास का रचना-काल किस युग में पड़ता है? उनकी सर्वप्रमुख रचना का उल्लेख कीजिए।
या 'रामचरितमानस' के रचयिता कौन हैं? यह किस काल की रचना है?

उ०– गोस्वामी तुलसीदास जी भक्तिकाल की सगुण काव्यधारा के प्रमुख कवि है। इनकी सर्वप्रथम रचना 'श्रीरामचरितमानस' है।

41. रामभक्ति शाखा की दो विशेषताएँ बताइए।

उ०– (i) शान्त रस तथा दास्य-भावना की प्रधानता,
(ii) अवधी तथा ब्रजभाषा का प्रयोग, प्रबन्ध और मुक्तक दोनों काव्य शैलियों तथा विविध छंदों का प्रयोग।

42. केशव द्वारा रचित किसी एक रचना का नाम बताइए।

उ०– केशव द्वारा रचित प्रमुख रचना का नाम रामचन्द्रिका है।

43. भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्ण काल क्यों कहा जाता है?

उ०– भक्तिकाल की विभिन्न विशेषताओं के कारण भक्तिकाल को हिन्दी-काव्य साहित्य का स्वर्ण काल माना जाता है।

44. हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल का क्या योगदान रहा?

उ०– हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल का प्रमुख योगदान यह रहा है कि भक्त कवियों ने डूबती हुई भारतीय संस्कृति को विनष्ट होने से बचा लिया है।

45. रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ बताइए।

उ०– रीतिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं—

(i) रीति निरूपण, (ii) शृंगारिकता की प्रधानता, (iii) भक्ति का पुट, (iv) राजाओं की प्रशंसा,
(v) वीर रस का प्रयोग, (vi) नीति की प्रवृत्ति।

46. रीतिकाल की प्रथम कृति कौन-सी है?

उ०– रीतिकाल की प्रथम कृति नन्ददास की 'रसमंजरी' है।

47. रीतिकालीन कविता की दोनों प्रमुख धाराओं का नाम बताइए।

उ०– रीतिकाल की दोनों प्रमुख धाराओं के नाम हैं—

(i) रीतिबद्ध काव्यधारा, (ii) रीतिमुक्त काव्यधारा।

48. रीतिकाल में वीर रस का प्रमुख कवि कौन था? उसकी एक रचना का नाम बताइए।

उ०– कविवर भूषण रीतिकाल में वीर रस के प्रमुख कवि थे। उनकी एक रचना छत्रसाल दशक है।

49. रीतिबद्ध काव्यधारा के दो कवियों के नाम उनकी एक-एक रचना सहित बताइए।

उ०– रीतिबद्ध काव्यधारा के दो कवि चिन्तामणि एवं केशव है जिसकी रचनाएँ क्रमश: रस विलास एवं कविप्रिया है।

50. रीतिकाल के किन्हीं दो रीतिमुक्त कवियों के नाम लिखिए।

उ०– रीतिकाल के दो रीतिमुक्त कवियों के नाम हैं— (i) घनानन्द, (ii) भूषण।

51. बिहारी लाल किस काव्यधारा के कवि हैं?

उ०– बिहारी लाल रीतिमुक्त काव्यधारा के कवि हैं।

52. रीतिकाल की पाँच प्रमुख काव्य कृतियों के नाम बताइए।

उ०– रीतिकाल की पाँच प्रमुख काव्य कृतियाँ निम्न हैं—

(i) शृंगार मंजरी, (ii) शिवा-बावनी, (iii) रसिक प्रिया, (iv) ललितललाम, (v) बिहारी सतसई।

53. रीतिकाल को और किस नाम से पुकारा जाता है?

उ०– रीतिकाल को अलंकृतकाल, शृंगारकाल एवं कलाकाल आदि नामों से पुकारा जाता है।

54. रीतिकाल में काव्य-रचना किन छन्दों में की गई है?

उ०– रीतिकाल में दोहा, सवैया, घनाक्षरी एवं कवित्त आदि छन्दों में काव्य-रचना की गई।

55. पुनर्जागरण काल किस युग को मानते हैं? उस युग की एक काव्य कृति का नाम बताइए।

उ०– भारतेन्दु युग को पुनर्जागरण काल मानते हैं। भारतेन्दु जी की प्रेम-सरोवर इस युग की एक काव्य कृति है।

56. भारतेन्दु युग और किन-किन नामों से जाना जाता है?

उ०– भारतेन्दु युग को पुनर्जागरण काल, नई धारा एवं प्रथम उत्थान के नाम से जाना जाता है।

57. भारतेन्दु जी ने किस सभा की स्थापना की? इसका क्या उद्देश्य था?

उ०– भारतेन्दु जी ने कवितावर्धिणी सभा की स्थापना की। इसका उद्देश्य हिन्दी काव्यधारा में नवजीवन का संचार करना था।

58. 'कवि-वचन सुधा' पत्रिका के सम्पादक कौन थे?

उ०– 'कवि-वचन सुधा' पत्रिका के सम्पादक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी थे।

59. भारतेन्दु युग के प्रमुख दो कवियों के नाम लिखिए।

उ०– भारतेन्दु युग के दो प्रमुख कवियों के नाम हैं— (i) भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, (ii) बदरीनारायण चौधरी।

60. भारतेन्दु जी की दो काव्य रचनाओं के नाम बताइए।

उ०– भारतेन्दु जी की दो काव्य रचनाओं के नाम हैं— (i) प्रेम-सरोवर, (ii) प्रेम-माधुरी।

61. द्विवेदी युग की कालावधि बताइए।

उ०– द्विवेदी युग की कालावधि सन् 1900 ई० से सन् 1922 तक मानी गई है।

62. द्विवेदी युग का नाम किसके नाम पर रखा गया?

उ०– द्विवेदी युग का नाम आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के नाम पर रखा गया।

63. द्विवेदी युग के दो कवियों के नाम बताइए।

उ०– द्विवेदी युग के दो कवियों के नाम हैं— (i) मैथिलीशरण गुप्त, (ii) अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'।

64. द्विवेदी युग की दो विशेषताएँ बताइए।

उ०– (i) इस युग में कवियों ने ब्रजभाषा के मध्ययुगीन माध्यम को छोड़कर खड़ी बोली के आधुनिक माध्यम को अपनाया,

(ii) परम्परा के जड़ पक्षों को छोड़कर नए क्षेत्रों व विषयों के पक्ष पर अग्रसर होने का आह्वान।

65. मैथिलीशरण गुप्त की दो काव्य रचनाओं के नाम लिखिए।

उ०– (i) साकेत, (ii) पंचवटी।

66. द्विवेदी युग के दो महाकाव्यों के नाम बताइए।

उ०– द्विवेदी युग के दो महाकाव्यों के नाम हैं— (i) साकेत, (ii) प्रियप्रवास।

67. द्विवेदीयुगीन काव्यधारा के किन्हीं दो कवियों की दो-दो रचनाओं के नाम बताइए।

उ०– मैथिलीशरण गुप्त जी का साकेत एवं पंचवटी तथा अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जी का प्रियप्रवास एवं पारिजात इस युग की रचनाएँ हैं।

68. छायावाद की कालावधि बताइए।

उ०– छायावाद की कालावधि सन् 1919 ई० से 1938 ई० तक मानी गई है।

69. छायावाद की दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ बताइए।

उ०– छायावाद की दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं— (i) स्वच्छन्दकारी काव्य रचनाएँ, (ii) आध्यात्मिकता का संस्पर्श।

70. कामायनी तथा दीपशिखा के रचयिताओं के नाम बताइए।

उ०– कामायनी के रचयिता जयशंकर प्रसाद तथा दीपशिखा की रचयिता महोदवी वर्मा हैं।

71. जयशंकर प्रसाद तथा सुमित्रानन्दन पन्त की दो-दो रचनाओं के नाम लिखिए।

उ०– जयशंकर प्रसाद की दो रचनाएँ हैं— (i) कामायनी, (ii) झरना तथा
सुमित्रानन्दन पन्त की दो रचनाएँ हैं— (i) वीणा, (ii) लोकायतन।

72. जयशंकर प्रसाद की किस कृति में सर्वप्रथम छायावाद की झलक दिखाई देती है?

उ०– जयशंकर प्रसाद की कृति 'झरना' में सर्वप्रथम छायावाद की झलक दिखाई देती है।

73. छायावादी कविता के ह्रास का क्या कारण था?

उ०– विदेशी शासन के दमन-चक्र के नीचे पिसते हुए भारतीय जनसाधारण की निरन्तर बढ़ती हुई पीड़ा को छायावादी कविता के ह्रास का सबसे बड़ा कारण कहा जा सकता है।

74. 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना कब हुई? इसके प्रथम सभापति कौन थे?

उ०– प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना सन् 1936 ई० में हुई। इसके प्रथम सभापति 'मुंशी प्रेमचन्द' जी थे।

75. प्रगतिवादी युग के तीन प्रमुख कवि कौन थे?

उ०– प्रगतिवादी युग के तीन प्रमुख कवि थे—
(i) रामधारी सिंह 'दिनकर', (ii) रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', (iii) शिवमंगल सिंह 'सुमन'।

76. पहला 'तार सप्तक' कब प्रकाशित हुआ? इसके कवियों के नाम बताइए।

उ०– पहला 'तार सप्तक' सन् 1943 ई० में प्रकाशित हुआ। इसमें सात कवि हैं— जिनके नाम इस प्रकार हैं—
(i) अज्ञेय, (ii) नेमिचन्द्र जैन, (iii) भारत भूषण, (iv) रामविलास शर्मा,
(v) गजानन माधव 'मुक्ति बोध', (vi) गिरिजाकुमार माथुर, (vii) प्रभाकर माचवे।

77. पहले 'तार सप्तक' का प्रकाशन किसने किया?

उ०– पहले 'तार सप्तक' का प्रकाशन सन् 1943 ई० में सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने किया।

78. दूसरे 'तार सप्तक' के कवियों के नाम बताइए।

उ०– दूसरे 'तार सप्तक' के कवियों के नाम इस प्रकार हैं—
(i) रघुवीर सहाय, (ii) शकुन्तला माथुर, (iii) हरिनारायण व्यास, (iv) भवानीप्रसाद मिश्र,
(v) शमशेर बहादुर, (vi) धर्मवीर भारती, (vii) नरेश मेहता।

79. धर्मवीर भारती की दो रचनाओं के नाम बताइए।

उ०– धर्मवीर भारती की दो रचनाओं के नाम हैं— (i) कनुप्रिया, (ii) ठण्डा लोहा।

80. प्रयोगवादी युग में कौन-कौन सी पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं?

उ०– पाटला, प्रतीक, दृष्टिकोण आदि पत्रिकाएँ प्रयोगवादी युग में प्रकाशित हुईं।

81. 'सुनहले शैवाल' तथा 'गीतफरोश' के रचनाकारों के नाम बताइए।

उ०– 'सुनहले शैवाल' के रचनाकार अज्ञेय जी तथा 'गीतफरोश' के रचनाकार भवानी प्रसाद मिश्र जी हैं।

82. नयी कविता से आप क्या समझते हैं?

उ०– सन् 1960 ई० में नयी कविता प्रकाश में आई, जो कि प्रयोगवादी धारा का विकसित रूप थी। हिन्दी कविता वर्तमान में प्रयोगशीलता की प्रवृत्ति से आगे बढ़ गई है। नयी कविता अब पहले की कविता से अपनी पूर्ण पृथकता घोषित करने के लिए प्रयत्नशील है।

83. नयी कविता की दो विशेषताएँ बताइए।

उ०– नयी कविता की दो विशेषताएँ हैं— (i) नवीन-अभिव्यञ्जना विधान, (ii) नूतन कलात्मकता।

84. नयी कविता की किन्हीं दो रचनाओं के नाम बताइए।

उ०– नयी कविता की दो रचनाएँ हैं— (i) कला और बूढ़ा चाँद, (ii) चक्रवाल।

85. नयी कविता को अकविता क्यों कहा जाने लगा?

उ०– कविता के परम्परागत स्वरूप से अत्यधिक भिन्नता धारण किए होने के कारण नयी कविता को 'अकविता' कहा जाने लगा।

86. 'नयी कविता' से सम्बन्धित किन्हीं दो पत्रिकाओं के नाम लिखिए।

उ०– (i) कल्पना, (ii) ज्ञानोदय।

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 87-90 का अवलोकन कीजिए।

काव्यांजलि

1 प्रेम-माधुरी, यमुना-छवि

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 94 का अवलोकन कीजिए।

कवि पर आधारित प्रश्न–

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी का जीवन परिचय देते हुए हिन्दी साहित्य में इनके योगदान पर प्रकाश डालिए।

उ०– कवि परिचय– प्रसिद्ध कवि होने के साथ ही भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कुशल पत्रकार, नाटककार, आलोचक, निबन्धकार के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। सेठ अमीचन्द के वंश में उत्पन्न हुए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म 9 सितम्बर, 1850 ई० में काशी में हुआ था। इनके पिता का नाम गोपालचन्द्र गिरिधरदास था। पाँच वर्ष की अवस्था में ही ये माता की छत्रछाया से वंचित हो गए। सात वर्ष की अवस्था में एक दोहा लिखकर इन्होंने अपने पिता को सुनाया, जिससे प्रसन्न होकर पिता ने इन्हें महान् कवि होने का आशीर्वाद दिया। जब इनकी आयु दस वर्ष थी तब इनके पिता इस संसार से विदा हो गये। इन्होंने घर पर रहकर मराठी, बंग्ला, संस्कृत तथा हिन्दी आदि भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। इसके बाद इन्होंने क्वीन्स कॉलेज में प्रवेश लिया, किन्तु काव्य-रचना में रुचि के कारण इनका मन अध्ययन में नहीं लगा। इन्होंने कॉलेज छोड़ दिया। 13 वर्ष की अवस्था में मन्नो देवी से इनका विवाह हुआ। भारतेन्दु जी युग प्रवर्त्तक साहित्यकार थे। सन् 1868 ई० से 1900 ई० तक की अवधि में साहित्य क्षेत्र में इनके महत्वपूर्ण योगदान के कारण इस अवधि को 'भारतेन्दु युग' कहा गया। भारतेन्दु जी ने समाज में व्याप्त कुरीतियों व विसंगतियों पर व्यंग्य बाणों का प्रहार किया। कविता व नाटक के क्षेत्र में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा। अत्यधिक उदार व दानशील होने के कारण इनकी आर्थिक स्थिति कमजोर हो गयी और ये ऋणग्रस्त हो गए। हर सम्भव प्रयास के बाद भी ये ऋण-मुक्त नहीं हो पाए। साथ ही इन्हें 'क्षय रोग' ने घेर लिया, जिसके चलते 6 जनवरी, सन् 1885 ई० को 34 वर्ष 4 मास की अल्पायु में इनका निधन हो गया।

हिन्दी साहित्य में स्थान– गद्यकार के रूप में भारतेन्दु जी को 'हिन्दी गद्य का जनक' माना जाता है तो काव्य के क्षेत्र में उनकी कृतियों को उनके युग का दर्पण। भारतेन्दु जी की विलक्षण प्रतिभा के कारण ही इनको 'युग-प्रवर्त्तक साहित्यकार' के रूप में जाना जाता है।

2. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी की रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

उ०– भारतेन्दु जी की प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं—

काव्य कृतियाँ– भारत-वीणा, वैजयन्ती, प्रेम-सरोवर, दान-लीला, प्रेम-मालिका, कृष्ण-चरित्र, प्रेम-तरंग, प्रेम-माधुरी, प्रेमाश्रु-वर्षण, सतसई शृंगार, प्रेम-प्रलाप, प्रेम-फुलवारी।

नाटक– पाखण्ड विडम्बनम, प्रेमजोगिनी, धनंजय विजय, सत्य हरिश्चन्द्र, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, श्रीचन्द्रावली, भारत-दुर्दशा, अँधेर नगरी, नीलदेवी, विद्या-सुन्दर, रत्नावली, मुद्राराक्षस, कर्पूर मंजरी, भारत-जननी, विषस्य विषमौषधम्, दुर्लभबन्धु, सती-प्रताप।

जीवनी– सूरदास, महात्मा मुहम्मद, जयदेव।

उपन्यास– पूर्ण प्रकाश और चन्द्रप्रभा इनके द्वारा रचित उपन्यास हैं।

पत्र-पत्रिकाएँ (सम्पादन)– हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका, हरिश्चन्द्र मैगजीन (हरिश्चन्द्र मैगजीन का नाम आठ अंकों के बाद हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका हो गया था), कवि-वचन-सुधा।

इतिहास व पुरातत्व सम्बन्धी कृतियाँ– रामायण का समय, कश्मीर-कुसुम, चरितावली महाराष्ट्र देश का इतिहास, बूँदी का राजवंश, अग्रवालों की उत्पत्ति।

यात्रा-वृत्तान्त– लखनऊ की यात्रा, सरयू पार की यात्रा।

निबन्ध संग्रह– परिहास-वंचक, दिल्ली दरबार दर्पण, लीलावती, सुलोचना, मदालसा।

3. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी की भाषा शैली की विशेषताएँ बताइए।

उ०– भाषा-शैली– भातरेन्दु हरिश्चन्द्र अनेक भारतीय भाषाओं में कविता करते थे, किन्तु ब्रजभाषा पर इनका विशेष अधिकार था। ब्रजभाषा में इन्होंने अधिकतर शृंगारिक रचनाएँ की हैं।

भारतेन्दु जी के काव्य में प्रकृति के रमणीक चित्र उपलब्ध होते हैं। भारतेन्दु जी ने शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है।

भारतेन्दु जी ने अपने काव्य में शिष्ट, सरल एवं माधुर्य से परिपूर्ण ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। प्रचलित शब्दों, लोकोक्तियों तथा मुहावरों आदि के यथास्थान प्रयोग से भाषा में प्रवाह उत्पन्न हो गया है। इन्होंने अपनी रचनाओं में कवित्त, सवैया, लावनी, चौपाई, दोहा, छप्पय तथा कुण्डलिया आदि छन्दों को अपनाया है। भारतेन्दु जी की शैली इनके भावों के अनुकूल है। इन्होंने मुख्य रूप से मुक्तक शैली को अपनाया है और उसमें अनेक नवीन प्रयोग करके अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। लोकगीतों की शैली में भी भारतेन्दु जी ने राष्ट्रीयता से परिपूर्ण काव्य की रचना की है और इसमें वे पूर्णतया सफल भी रहे हैं। भारतेन्दु जी के काव्य में अलंकारों का सहज प्रयोग हुआ है। इन्होंने अलंकारों को अपने काव्य के साधन रूप में ही अपनाया है, साध्य-रूप में नहीं; अर्थात् अलंकारों की साधना करना इनका लक्ष्य नहीं था।

व्याख्या संबंधी प्रश्न–

1. निम्नलिखित पद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) मारग प्रेम को .... कौन बिथा है।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि के 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' द्वारा रचित काव्य ग्रन्थ 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' से 'प्रेम माधुरी' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– इस पद में प्रेम के मार्ग पर चलने से होने वाली निन्दा और कष्टों का वर्णन करते हुए ब्रजबाला अपनी सखी से कहती है—

व्याख्या– हे सखी! प्रेम के मार्ग को भला कौन समझ सकता है? यह तो जीवन के कटु यथार्थ (वास्तविकता) के सदृश ही कठोर और कष्टकर है। बार-बार अपनी कथा लोगों को सुनाने से भी क्या लाभ; क्योंकि इससे तो बदनामी के अतिरिक्त और कुछ भी हाथ आने वाला नहीं; अर्थात् जो यह प्रेम-कहानी सुनेगा, वह सहानुभूति दिखाना तो दूर, मुझे ही बुरा कहेगा और संसार में मेरी बदनामी भी करेगा। मैं इस बात को भली प्रकार समझ गयी हूँ कि इस प्रेम-व्यथा से छुटकारा पाने के सारे उपाय व्यर्थ हैं अत: चुपचाप इसे सहते जाना भी उत्तम है।) लगता है ब्रज के सारे लोग बावले हो गए हैं, जो मुझसे व्यर्थ ही बार-बार मेरी पीड़ा के विषय में पूछते हैं कि मुझे क्या कष्ट है (भला प्रेम-पीड़ा भी क्या किसी पर प्रकट करने की वस्तु है)। मैं अत्यन्त दु:खी हूँ। इस दु:ख को कह भी नहीं सकती हूँ और सहना भी मुश्किल हो रहा है।

काव्य-सौन्दर्य– 1. प्रेम-पीड़ा को भुक्तभोगी ही जान सकता है। अन्य लोग तो उसका उपहार ही करते हैं। इसलिए सच्चे प्रेमी उसे प्रकट न करके चुपचाप सहते हैं। **2. भाषा–** ब्रज। **3. छन्द–** सवैया। **4. रस–** विप्रलम्भ शृंगार। **5. शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **6. गुण–** माधुर्य। **7. अलंकार–** अनुप्रास, रूपक। **8. भावसाम्य–** किसी कवि ने कहा भी है—

कहिबौ को व्यथा, सुनिबै को हँसी।
को दया सुन कै डर आनतु है॥

(ख) रोकहिं जो तौ .... हमै समुझाइए।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में नायिका (गोपिका) परदेश-गमन के लिए प्रस्थान करने वाले अपने पति से अपने हृदय के प्रेम-भाव की चतुरतापूर्ण अभिव्यक्ति करती है।

व्याख्या– गोपिका का पति परदेश-गमन के लिए प्रस्थान करने वाला है। गोपिका उससे कहती है कि यदि मैं आपको परदेश जाने से रोकती हूँ तो अमंगल होगा (यह मान्यता है कि प्रस्थान हेतु करने वाले व्यक्ति को रोकने-टोकने से उसका अमंगल होता है) और यदि मैं कहती हूँ कि प्रिय जाओ, तो मेरे प्रेम का नाश होगा; अर्थात् इससे आप यही समझेंगे कि आपके लिए मेरे हृदय में प्रेम नहीं है। यदि मैं इस समय कहती हूँ कि ''प्रिय मत जाओ तो यह आप पर प्रभुता प्रदर्शित करने वाले आदेश के समान होगा; अर्थात् आप यह समझेंगे कि मैं आप पर अपनी प्रभुत्ता का प्रदर्शन कर रही हूँ और यदि मैं कुछ भी न कहूँ तो भी प्रेम का अन्त हो जाएगा; क्योंकि आप समझेंगे कि मेरे हृदय में आपके लिए कोई मोह या प्रेम-भावना नहीं है। हे प्रियतम! यदि मैं आपसे कहूँ कि मैं आपके बिना जी नहीं सकती तो आपको इस पर विश्वास कैसे होगा? अत: आप ही समझाइए कि आपके इस प्रस्थान के समय मैं आपसे क्या कहूँ?''

काव्य-सौन्दर्य– 1. नायिका का कथन कि 'मैं अपनी प्रभुता व्यक्त नहीं कर सकती।' से उसका समर्पण भाव व्यक्त हुआ है। **2.** अन्तिम पंक्तियों में नायिका के भोलेपन की सुन्दर व्यंजना हुई हैं; क्योंकि वह जानेवाले से ही पूछती है कि वह ऐसे समय पर उससे क्या कहे। **3. भाषा–** ब्रजभाषा। **4. अलंकार–** अनुप्रास। **5. रस–** शृंगार। **6. शब्दशक्ति–** लक्षणा। **7. गुण–** माधुर्य। **8. छन्द–** सवैया।

(ग) आजु लौं जौ .... कंठ लगावैं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत भावपूर्ण छन्द में गोपियों को श्रीकृष्ण के विरह में मरणासन्न दिखाया गया है। अपनी मृत्यु से पहले एक बार श्रीकृष्ण से मिलन की उनकी उत्कट अभिलाषा है।

व्याख्या– गोपियाँ श्रीकृष्ण से कहती हैं कि प्रिय! जब से तुम यहाँ से गये हो, तब से आज तक नहीं मिले। किन्तु इससे क्या; हम तो हर प्रकार से तुम्हारी हैं। सब लोग तुम्हारी प्रेमिका के रूप में ही जानते हैं। तुम हमें नहीं मिल पाये, इसका हम तुम्हें कोई उलाहना नहीं दे रही हैं सब अपने–अपने भाग्य का फल भोगते हैं। आपसे भेंट होना हमारे भाग्य में ही नहीं था। आपका इसमें क्या दोष है? हमारे भाग्य में यह बिछोह ही विदा था, फिर उलाहना काहे का। हे प्रिय! जो हुआ सो हुआ; किन्तु अब तो हमारे प्राण शरीर छोड़कर चल देने को तत्पर हैं। अन्त समय में हम तुमसे एक बात कहती हैं—हे प्रिय! दुनिया की यह परम्परा है कि जब कोई विदा होता है तो सब लोग उसे गले लगाकर विदा करते हैं (अर्थात् अब हम भी चलने वाली हैं, अब तुम भी हमें गले से लगा लो)। आशय यह है कि जीते जी तो आपने स्नेह नहीं किया, परन्तु मरते समय मिल ही जाइए।

काव्य सौन्दर्य– 1. गोपियों ने जग की रीति का स्मरण कराते हुए बड़ी चतुराई से श्रीकृष्ण से मिलने की प्रार्थना की है। **2.** प्रस्तुत छन्द में गहन भावानुभूति की मार्मिक व्यंजना हुई है। **3. भाषा–** ब्रज। **4. छन्द–** सवैया। **5. रस–** शृंगार। **6. अलंकार–** लोकोक्ति।

(घ) तरनि-तनूजा .... सुख लहत।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' के 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' द्वारा रचित काव्य-ग्रन्थ 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' से 'यमुना–छवि' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– इन काव्य–पंक्तियों में यमुना नदी की शोभा का सुन्दर व आलंकारिक वर्णन किया गया है।

व्याख्या– यमुना के किनारे तमाल के अनेक सुन्दर वृक्ष सुशोभित हैं। वे तट पर आगे को झुके हुए ऐसे लगते हैं, मानो यमुना के पवित्र जल का स्पर्श करना चाहते हों अथवा जलरूपी दर्पण में अपनी शोभा देखने के लिए उचक–उचककर आगे झुक गये हैं; अथवा यमुना–जल को परम पवित्र जानकर उसे प्रणाम कर रहे हैं, जिससे उन्हें उत्तम फल की प्राप्ति हो सके अथवा वे तट को धूप के ताप से बचाने के लिए साथ सिमटकर खड़े हो गए हैं, जिससे तट पर घनी छाया हो जाए अथवा ये भगवान् कृष्ण के प्रति नमन कर रहे हैं, उनकी सेवा में झुके हुए हैं, जिससे इन्हें देखकर नेत्रों को और मन को बड़ा सुख प्राप्त होता है। ये वृक्ष बहुत ही परोपकारी, सुखकारी और दु:खनाशक हैं, इन पंक्तियों में यह भाव ध्वनित हो रहा है।

काव्य-सौन्दर्य– 1. यमुना के किनारे खड़े वृक्षों की शोभा का वर्णन किया गया है। **2. भाषा–** ब्रज। **3. छन्द–** छप्पय (छ: पंक्तियों का छन्द, जिसके प्रथम चार चरण 'रोला' के और अन्तिम दो चरण 'उल्लास' के होते हैं।) **4. रस–** शृंगार। **5. शब्द-शक्ति–**लक्षणा। **6. गुण–** माधुर्य। **7. अलंकार–** अनुप्रास, सन्देह और उत्प्रेक्षा।

(ङ) परत चन्द्र .... प्रतिबिम्ब लखात है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने यमुना के चंचल जल में पड़ते हुए चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब का सजीव सौन्दर्य बड़े कलात्मक रूप में प्रस्तुत किया है।

व्याख्या– यमुना में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जल के मध्य चमकता हुआ दिखाई पड़ता है। वह जब कभी चंचलता के साथ नृत्य करने लगता है, तब वह बड़ा मनभावन लगता है; अर्थात् जब पानी की लहर चंचल होकर हिलती है, तब चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब भी हिलता हुआ और नाचता हुआ दिखाई पड़ता है। चन्द्रमा के इस प्रतिबिम्ब की शोभा ऐसी लगती है, मानो विष्णु (जल में वास करने वाले नारायण) के दर्शन करने के लिए चन्द्रमा जल में वास करता हुआ शोभा पा रहा है अथवा चन्द्रमा इस भाव से आकाश से यमुना–जल में उतर आया है कि जब कृष्ण यमुना–तट पर विहार करने आएँगे, तब उनके दर्शन प्राप्त हो जाएँगे अथवा चन्द्रमा की छवि ऐसी शोभा पा रही है, जैसे लहरें अपने हाथ में चन्द्रमा का प्रतिबिम्बरूपी दर्पण लिये हुए हों अथवा रास–क्रीडा में रमे हुए श्रीकृष्ण के चमकते हुए मुकुट की कान्ति ही इस चन्द्र–बिम्ब के रूप में जल में दिखाई दे रही है अथवा चन्द्रमा के रूप में यमुना के हृदय में परम कान्तिवान् भगवान श्रीकृष्ण की मूर्ति बसी हुई है, यह उसी का प्रतिबिम्ब मालूम पड़ रहा है।

काव्य सौन्दर्य– 1. यहाँ कवि ने प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण किया है। **2.** जल में पड़ते चन्द्र–प्रतिबिम्ब की चंचल छवि विविध कल्पनाओं के द्वारा प्रस्तुत की गयी है। **3. भाषा–** ब्रज। **4. छन्द–** छप्पय। **5. रस–** शृंगार। **6. अलंकार–** अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, सन्देह तथा मानवीकरण।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) प्यारे जू है जग की यह रीति बिदा के समै सब कंठ लगावैं।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' में संकलित 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' द्वारा रचित 'प्रेम माधुरी' शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– इस सूक्ति में भारतेन्दु जी ने विदाई–वेला के समय की लोक–परम्परा के माध्यम से नायक कृष्ण को उलाहना दिया है।

व्याख्या– विरहिणी नायिका विरहाग्नि से संतप्त होकर मरणासन्न अवस्था को प्राप्त हो गई है। अपनी इस अन्तिम अवस्था में

वह अपने निष्ठुर प्रियतम का स्मरण करती हुई कहती है कि अब तो मैं इस संसार से विदा ले रही हूँ; अत: मुझे अपने गले से लगाकर यहाँ से विदा करो; क्योंकि यह लोक-परम्परा है कि लोग एक-दूसरे के गले मिलकर उसे विदाई देते हैं।

(ख) पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँखिया दुखियाँ नहीं मानती हैं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रंसग– प्रस्तुत सूक्ति में गोपी अपने प्रेम की निश्छल अभिव्यक्ति कर रही है।

व्याख्या– गोपी उद्धव से कहती है कि हे उद्धव यह बात तो हम भी भली-भाँति जानती हैं, आपका निर्गुण ब्रह्म इस सम्पूर्ण संसार में व्याप्त है, किन्तु हम क्या करें, हमारी ये आँखें हमारा कहा नहीं मानती हैं। तुम प्रियतम श्रीकृष्ण से जाकर हमारा यह सन्देश कह दो कि हे प्यारे! तुम्हारी गोपियों की आँखें तुम्हें देखे बिना नहीं मानती हैं। तुम्हारे दर्शन के अभाव में वे प्रत्येक क्षण दु:खी रहती हैं।

(ग) मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुन जल।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' में संकलित 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' द्वारा रचि 'यमुना-छवि' शीर्षक से अवतरित हैं।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में कवि ने यमुना नदी के जल में चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब का अलंकार पूर्ण वर्णन किया है।

व्याख्या– कवि कहते हैं कि यमुना के चंचल जल में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब कभी तो दिखाई देता है और कभी नहीं। इससे ऐसा प्रतीत होता है, मानो यमुना के जल में दोनों पक्ष (कृष्ण और शुक्ल) मिल गए हैं; और उनका भेद समाप्त हो गया है अर्थात् चन्द्रमा के छिप जाने पर लगता है कि कृष्ण पक्ष आ गया है और निकल आने पर लगता है कि कृष्ण पक्ष समाप्त हो गया है और शुक्ल पक्ष आ गया है।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न–

1. 'प्रेम-माधुरी' कविता का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– 'प्रेम-माधुरी' कविता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा रचित 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' से संकलित है। इस शीर्षक में कवि ने कृष्ण के विरह में व्याकुल गोपियों की विरह वेदना का वर्णन किया है। एक गोपी अपनी सखी से कहती हैं कि प्रेम के मार्ग एवं उसके वास्तविक रूप को संसार में कौन समझ पाया है। बार-बार अपनी कथा दूसरों से कहने का भी कोई लाभ नहीं है क्योंकि इससे तो केवल बदमानी के अतिरिक्त कुछ भी हाथ नहीं आने वाला। मेरा मन यह भली-भाँति जानता है कि इस प्रेम-व्यथा से छुटकारा पाने के सारे उपाय व्यर्थ है इसलिए इसे चुपचाप सहना भी उत्तम है। गोपी कहती है कि हे सखी मुझे तो लगता है कि ब्रज के सारे लोग बावले हो गए हैं, जो मुझसे व्यर्थ में ही मेरी पीड़ा का कारण पूछते रहते हैं कि मुझे क्या दु:ख है।

वह गोपी जिसका पति परदेश-गमन के लिए प्रस्थान करने वाला है वह अपने भावों को प्रदर्शित करते हुए उससे कहती है कि यदि मैं आपको परदेश जाने से रोकती हूँ तो अमंगल होगा क्योंकि यात्रा के लिए प्रस्थान करने वालो को टोकने से उसका अमंगल होता है ऐसी मान्यता है, परन्तु यदि मैं कहती हूँ कि प्रिय आप जाओ, तो मेरे प्रेम का नाश होगा। यदि मैं इस समय कहती हूँ कि 'प्रियतम जाओ' तो आप समझेंगे कि मैं आप पर अपनी प्रभुता प्रदर्शित कर रही हूँ, और यदि कुछ न कहूँ तो भी प्रेम का अन्त हो जाएगा। इसलिए हे प्रियतम! आप ही बताइए कि मैं आपसे कैसे कहूँ कि मैं आपके बिना जी नहीं सकती और आपके प्रस्थान के समय आपको क्या कहूँ?

गोपियाँ श्रीकृष्ण से कहती हैं कि जब से तुम गोकुल से गए हो, तब से आज तक तुम हमसे मिलने नहीं आए परन्तु इससे कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि हम तो पूर्ण रूप से तुम्हारी है। हम आपको उलाहना नहीं देते क्योंकि सब अपने-अपने भाग्य का फल भोगते हैं जब हमारे भाग्य में आपसे मिलना लिखा ही नहीं तो आपका क्या दोष। हे प्रिय, जो होना था हो चुका परन्तु अब तो हमारे प्राण हमारा शरीर छोड़कर जाने को तैयार है। इसलिए हम आपको सुनाते हुए कह रही हैं कि दुनिया की यह परम्परा है कि विदा होकर जाते हुए को गले से लगाकर विदा किया जाता है।

गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हे उद्धव हमें पता है कि परमात्मा जल-थल सभी जगह विद्यमान है परन्तु हमें तो नदंलाल श्रीकृष्ण के बिना कुछ भी अच्छा नहीं लगता। इसलिए हम तुम्हारे ज्ञानमार्ग को कोई महत्व नहीं देती है। हमारा हृदय श्रीकृष्ण के बिना कही भी अनुरक्त नहीं है इसलिए हे उद्धव तुम श्रीकृष्ण से जाकर कह देना कि गोपियाँ और कुछ नहीं जानती और हमारी ये दु:खी आँखे श्रीकृष्ण से मिलन अर्थात् दर्शन के बिना मानने वाली नहीं हैं।

2. 'यमुना-छवि' कविता का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– 'यमुना-छवि' कविता में कवि भारतेन्दु जी ने सूर्य-पुत्री यमुना नदी के सौन्दर्य का वर्णन किया है। कवि कहते हैं कि यमुना नदी के तट पर तमाल के सुन्दर वृक्ष किनारे की ओर झुके हुए ऐसे सुशोभित हो रहे हैं, मानों वे जल का स्पर्श करने के लिए झुक गए हो। ऐसा लग रहा है कि वे जल में झुक-झुककर अपनी शोभा देख रहे हो या जल को देखकर पवित्र जल के लोभ में उसे प्रणाम कर रहे हों, ऐसा लगता है जैसे वे अपने ताप को दूर करने के लिए सिमटकर किनारे पर एकत्र हो गए हैं। और भगवान की सेवा के लिए झुक गए है जिसे देखकर हमारे नेत्रों को सुख प्राप्त हो रहा है।

कवि कहते हैं कि पूर्णिमा की रात में जब चन्द्रमा की किरणें नदी के जल में पड़ती है तो ऐसा प्रतीत होता है कि इन किरणों ने पृथ्वी से आकाश तक तम्बू लगा दिया हो। उस समय उनका उज्जवल प्रकाश दर्पण-सा प्रतीत होता है। यमुना की सुन्दरता को देखकर तन, मन और नेत्रों को आनन्द मिलता है। इस समय यमुना नदी के जल की सुन्दरता का वर्णन कोई कवि नहीं कर सकता। ऐसे समय नभ और पृथ्वी की आभा एक समान रहती है।

जब चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब यमुना के जल में पड़ता हैं तो यमुना की चंचल लहरें नृत्य करती हुई प्रतीत होती है उस समय ऐसा लगता है जैसे चन्द्रमा स्वयं जल में निवास करने वाले भगवान विष्णु के दर्शन करने के लिए जल में उतर गया हो। अथवा यह सोचकर यमुना के जल में उतर गया हो कि भगवान श्रीकृष्ण यमुना के किनारे रास रचाने, या स्नान करने के लिए आएँगे, तब वह उनके सौन्दर्य के दर्शन कर सकेगा। ऐसा लगता है कि तरंगों ने अपने हाथ में दर्पण ले लिया हो और यमुना के किनारे रास श्रीकृष्ण के मुकुट की आभा ही चन्द्रबिम्ब के रूप में यमुना-जल में दिखाई पड़ रही है।

कवि कहते हैं कि हवा चलने के कारण यमुना नदी के जल में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब कभी सैकड़ों की संख्या में दिखाई देता है और कभी छिप जाता है। हवा के कारण चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब ऐसा लग रहा है जैसे प्रेम से परिपूर्ण होकर यमुना जल में लोटता हुआ घूम रहा हों अथवा तरंगरूपी रस्सियों के कारण हिंडोले में झूलता लगता है या ऐसा लगता है कि किसी बालक की पतंग आकाश में इधर-उधर दौड़ रही है या ऐसा लगता है कि कोई ब्रजबाला जल-विहार कर रही है।

यमुना के जल पूर्णिमा के चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब पड़ने से ऐसा आभास होता है कि, मानो चन्द्रमा दोनों पक्षों (कृष्ण व शुक्ल पक्ष दोनों) में उदित होकर यमुना के जल में विलीन हो गया है तथा चन्द्रमा तारों के समूहों को ठगने का प्रयास कर रहा है या यमुना अपने जल में जितनी अधिक लहरे उत्पन्न करती है चन्द्रमा उतने ही रूप धरकर उनसे मिलने को दौड़ रहा है अथवा जल में चाँदी की चकई चल रही है अथवा जल की फुहारें उठ रही है अथवा चन्द्रमारूपी पहलवान अनेक प्रकार से कसरत कर रहा है।

यमुना के जल में कहीं राजहंस कूजते हुए विहार कर रहे हैं तो कहीं कबूतरों का समूह स्नान कर रहा है, कहीं पर कारण्डव हंस उड रहे हैं तो कहीं पर जल मुर्गा दौड़ रहा है, कहीं पर चक्रवाकों के जोड़े विहार करते हैं तो कही बगुला ध्यान लगाए खड़ा है, कहीं पर तोते और कोयल जल पी रहे हैं कहीं भ्रमर गूँज रहे है कहीं तट पर मोर नाच रहे हैं। सब पक्षी सब प्रकार का सुख पाते हुए यमुना तट की शोभा को बढ़ा रहे हैं।

काव्य-सौन्दर्य से संबंधित प्रश्न–

1. ''मारग प्रेम .... बिथा है।'' पंक्तियों में निहित रस व उसका स्थायी भाव लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पद में विप्रलम्भ शृंगार है जिसका स्थायी भाव रति है।

2. ''तरनि-तनूजा तट तमाल तरूवर बहु छाए'' पंक्ति में निहित अलंकार का नाम लिखिए।

उ०– इस पंक्ति में अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है।

3. ''आजु लौं जौ.................................... कंठ लगावैं।'' पंक्तियाँ किस छन्द पर आधारित हैं?

उ०– प्रस्तुत पंक्तियाँ सवैया छन्द पर आधारित हैं।

पाठ्येतर सक्रियता–

उ०– छात्र स्वयं करें।

2 उद्धव-प्रसंग, गंगावतरण

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 101 का अवलोकन कीजिए।

कवि पर आधारित प्रश्न–

1. जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का जीवन परिचय देते हुए हिन्दी साहित्य में इनके योगदान पर प्रकाश डालिए।

उ०– **कवि परिचय–** ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का जन्म सन् 1866 ई० में काशी के एक वैश्य परिवार में हुआ था। रत्नाकर जी के पिता पुरुषोत्तमदास; भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के मित्र और फारसी भाषा के साथ ही हिन्दी के अच्छे ज्ञाता थे। रत्नाकर जी की शिक्षा का आरम्भ उर्दू एवं फारसी भाषा के ज्ञान से हुआ। इसके बाद इन्होंने हिन्दी और अंग्रेजी का अध्ययन किया। स्कूल की शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् इन्होंने क्वींस कॉलेज में प्रवेश लिया। सन् 1891 ई० में इन्होंने स्नातक की डिग्री प्राप्त की। सन् 1900 ई० में इनकी नियुक्ति अवागढ़ (एटा) के खजाने के निरीक्षक के पद पर हुई। दो वर्ष पश्चात् ये वहाँ से त्यागपत्र देकर चले आए तथा सन् 1902 ई० में अयोध्या-नरेश प्रतापनारायण सिंह के निजी सचिव नियुक्त हुए। अयोध्या-

नरेश की मृत्यु के बाद ये उनकी महारानी के निजी सचिव के रूप में कार्यरत रहे और सन् 1928 ई० तक इसी पद पर आसीन रहे। हरिद्वार में 21 जून सन् 1932 ई० को इनका स्वर्गवास हो गया।

हिन्दी साहित्य में योगदान– रत्नाकर जी के काव्य में भावुकता एवं आश्रयदाताओं की प्रशस्ति के साथ ही सहृदयता का भाव भी मुखरित हुआ। इन्होंने 'साहित्य-सुधानिधि' और 'सरस्वती' के सम्पादन में योगदान दिया। इन्होंने 'रसिक मण्ड' के संचालन तथा 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना एवं विकास में भी अपना योगदान दिया। इनका काव्य-सौष्ठव एवं काव्य-संगठन नवीन तथा मौलिक है। रत्नाकर जी के काव्य में युगीन प्रभाव तथा आधुनिकता का समन्वय है, जो कि समकालीन कवियों अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' और मैथिलीशरण गुप्त की भाँति उनकी कथा-काव्य रचना में भी दिखाई देता है। रत्नाकर जी द्वारा पौराणिक विषयों के साथ ही देशभक्ति की आधुनिक भावनाओं को भी वाणी प्रदान की गई।

रत्नाकर जी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनकी रचनाओं में हमें प्राचीन और मध्ययुगीन समस्त भारतीय साहित्य का सौष्ठव बड़े स्वस्थ, समुज्ज्वल और मनोरम रूप में उपलब्ध होता है। जिस परिस्थिति और वातावरण में इनका व्यक्तित्व गठित हुआ था, उसकी स्पष्ट छाप इनकी साहित्यिक रचनाओं में झलकती है। निश्चित ही रत्नाकर जी हिन्दी साहित्यकोश के जगमगाते नक्षत्रों में से एक हैं। उनकी आभा चिरकाल तक बनी रहेगी। इनके अमूल्य योगदान के कारण हिन्दी काव्य-साहित्य सदैव इनका ऋणी रहेगा।

2. जगन्नाथ 'रत्नाकर' जी की रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

उ०– **रचनाएँ–** रत्नाकर जी ने काव्य और गद्य दोनों ही विधाओं में साहित्य-रचना की है। ये मूल रूप से कवि थे; अत: इनकी काव्य-कृतियाँ ही अधिक प्रसिद्ध हैं। इनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

समालोचनादर्श– यह अंग्रेजी कवि पोप के समालोचना सम्बन्धी प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ 'एसेज ऑन क्रिटिसिज्म' का हिन्दी अनुवाद है।

हिंडोला– यह सौ रोला छन्दों का अध्यात्मपरक शृंगारिक काव्य है।

उद्धव शतक– घनाक्षरी छन्द में लिखित प्रबन्ध-मुक्तक-दूतकाव्य।

हरिश्चन्द्र– भारतेन्दु जी के 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक पर आधारित खण्डकाव्य है। इसमें चार सर्ग हैं।

कलकाशी– यह काशी से सम्बन्धित है। 142 रोला छन्दों का वर्णनात्मक प्रबन्ध-काव्य है, जो कि अपूर्ण है।

रत्नाष्टक– देवताओं, महापुरुषों और षड्ऋतुओं से सम्बन्धित 16 अष्टकों का संकलन हैं।

शृंगारलहरी– इसमें शृंगारपरक 168 कवित्त-सवैये हैं।

गंगालहरी और विष्णुलहरी– ये दोनों रचनाएँ 52-52 छन्दों के भक्ति-विषयक काव्य हैं।

वीराष्टक– यह ऐतिहासिक वीरों और वीरांगनाओं से सम्बन्धित 14 अष्टको का संग्रह है।

प्रकीर्ण पद्यावली– यह फुटकर छन्दों का संग्रह है।

गंगावतरण– यह 13 सर्गों का आख्यानक प्रबन्ध-काव्य है।

इनके अतिरिक्त रत्नाकर जी ने अनेक ग्रन्थों का सम्पादन भी किया है, जिनके नाम हैं— दीपप्रकाश, सुधाकर, कविकुलकण्ठाभरण, सुन्दर-शृंगार, हिम-तरंगिनी, हम्मीर हठ, नखशिख, रस-विनोद, समस्यापूर्ति, सुजानसागर, बिहारी-रत्नाकर, तथा सूरसागर (अपूर्ण)।

3. जगन्नाथदास 'रत्नाकर' जी की भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।

उ०– **भाषा-शैली–** रत्नाकर जी की भाषा शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा है, जिसमें शब्द-सौन्दर्य और अर्थ-गाम्भीर्य अपने उत्कर्ष पर है। ब्रजभाषा में इन्होंने अरबी-फारसी के शब्दों को भी सहज रूप से प्रयोग किया है। इतना ही नहीं इन्होंने संस्कृत की पदावली के साथ-साथ काशी में बोली जाने वाली भाषा से भी शब्दों को लेकर ब्रजभाषा के साँचे में ढाल दिया है। इनकी भाषा की एक विशेषता उसकी चित्रोपमता भी है। ये अपने भावों को इस प्रकार व्यक्त करते हैं कि आँखों के सम्मुख एक सजीव और गत्यात्मक चित्र उपस्थित हो जाता है। भाषा का बिम्बमय प्रयोग इनके काव्य की विशेषता है। अपनी काव्य-रचनाओं में रत्नाकर जी ने प्रबन्धात्मक और मुक्तक दोनों प्रकार की शैलियों का सफलतापूर्वक निर्वहन किया है। चित्रात्मक, आलंकारिक और चमत्कृत शैली के प्रयोग ने इनके भावों को सहज अभिव्यक्ति प्रदान की है।

रत्नाकर जी भावों के कुशल चितेरे हैं। इन्होंने मानव-हृदय के कोने-कोने में झाँककर भावों के ऐसे चित्र प्रस्तुत किये हैं कि हृदय गद्‌गद हो जाता है। अपनी काव्य-रचनाओं में रत्नाकर जी ने केवल शृंगार रस का ही चित्रण नहीं किया है; वरन् इनके काव्य में करुणा, उत्साह, क्रोध, घृणा, वीर, रौद्र, भयानक, अद्‌भुत आदि रसों का भी यथार्थ चित्रण हुआ है। शृंगार के संयोग पक्ष की अपेक्षा वियोग पक्ष के चित्रण में इनकी मार्मिकता अधिक परिलक्षित होती है। इनका सर्वाधिक प्रिय छन्द कवित्त है। अपने काव्यों में इन्होंने प्राय: दो छन्दों— रोला तथा घनाक्षरी का प्रयोग किया है। इनके अतिरिक्त छप्पय, सवैया, दोहा आदि छन्दों के प्रयोग भी यत्र-तत्र दृष्टिगत होते हैं। रत्नाकर जी ने अनुप्रास के अतिरिक्त यमक, रूपक, वीप्सा, श्लेष, उत्प्रेक्षा, पुनरुक्तिप्रकाश, विभावना आदि अलंकारों के उत्कृष्ट प्रयोग किये है। अलंकार प्रयोग की दृष्टि से ये सांगरूपक के सम्राट हैं।

इनकी मुक्तक रचनाओं के संग्रह शृंगारलहरी, गंगालहरी, विष्णुलहरी, रत्नाष्टक आदि में यह आलंकारिक शोभा और भी स्वच्छन्द रूप से दृष्टिगत होती है। रीतिकालीन अलंकारवादियों से इतर रत्नाकर जी की विशिष्टता यह है कि उनकी भाँति इनका सौन्दर्य-विधान बौद्धिक व्यायाम की सृष्टि नहीं करता, वरन् आन्तरिक प्रेरणा से सहज प्रसूत जान पड़ता है।

व्याख्या संबंधी प्रश्न–

1. **निम्नलिखित पद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–**

(क) भेजे मनभावन .... कहन सबै लगीं।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' के 'जगन्नाथदास 'रत्नाकर'' द्वारा रचित 'उद्धव शतक' से 'उद्धव प्रसंग' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– गोपियों को जब यह ज्ञात हुआ कि उद्धव उनके प्रिय श्रीकृष्ण का कोई सन्देश लाए हैं तो उनके मन में अपने प्रियतम श्रीकृष्ण का सन्देश जानने की उत्कण्ठा इस रूप में जाग उठी—

व्याख्या– मनभावन श्रीकृष्ण के द्वारा भेजे गए उद्धव के आगमन की सूचना ब्रज के गाँवों में जिस समय व्याप्त हुई, उसी समय गोपिकाओं के झुण्ड-के-झुण्ड दौड़-दौड़कर नन्द के द्वार पर आने लगे। अपने कमलरूपी चरणों के पंजों पर उचक-उचककर और श्रीकृष्ण द्वारा भेजे गए पत्र को देखकर गोपियों का हृदय क्षोभ (विकलतामिश्रित उत्कण्ठा) से भर उठा और सभी 'हमको क्या लिखा है? हमारे लिए कृष्ण ने क्या लिखा है? हमारे लिए कृष्ण ने क्या सन्देश दिया है?' कहने लगीं।

काव्य सौन्दर्य– 1. जब व्यक्ति की उत्सुकता चरमसीमा पर पहुँच जाती है तो चुप नहीं रह पाता, वरन् पूछने के लिए विवश हो ही जाता है। इस छन्द में इसी उत्सुकता का अत्यन्त चित्रात्मक वर्णन हुआ है। **2. भाषा–** ब्रजभाषा। **3. अलंकार–** अनुप्रास, रूपक, पुनरुक्तिप्रकाश, वीप्सा एवं पदमैत्री। **4. रस–** विप्रलम्भ शृंगार। **5. शब्दशक्ति–** लक्षणा। **6. गुण–** माधुर्य। **7. छन्द–** मनहरण घनाक्षरी।

(ख) चाहत जो .... बस्यौ रहै।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इन काव्य-पंक्तियों में उद्धव गोपियों को अपने ज्ञान और योग-मार्ग की साधना समझाते हैं।

व्याख्या– उद्धव गोपियों से कहते हैं कि यदि तुम श्यामसुन्दर के साथ इच्छानुसार संयोग चाहती हो तो सदैव योग की साधना में अपने हृदय को लीन रखो। तुम सदैव योग-साधना द्वारा वृत्तियों को अन्तर्मुखी करके अर्थात् सांसारिक विषयों से मन तथा इन्द्रियों को हटाकर हृदय में एकाग्रचित्त होकर ध्यान लगाओ। हृदय-तल में जाग्रत ब्रह्म ज्योति में ध्यान लगाओ; क्योंकि वह ब्रह्म हृदयरूपी सुन्दर कमल में स्थित है। तुम अपनी आत्मा को परमात्मा में इस प्रकार लीन कर दो कि जिससे जड़ और चेतन की क्रीड़ा को (तटस्थ भाव से) देखकर वह निरन्तर आनन्दित होती रहे। तुम पोह के वशीभूत होने से क्षुब्ध होकर अपने हृदय के अन्दर जिसके वियोग की अनुभूति कर रही हो, वह तो निरन्तर सभी के हृदय में निवास करता है।

काव्य सौन्दर्य– 1. उद्धव निर्गुण ब्रह्म के साक्षात्कार के लिए की जाने वाली योग-साधना के उपदेश द्वारा गोपिकाओं का वियोगजनित दु:ख दूर करना चाहते हैं। **2. भाषा–** ब्रज। **3. छन्द–** मनहरण घनाक्षरी। **4. रस–** शान्त। **5. शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **6. गुण–** प्रसाद। **7. अलंकार–** 'हिय-कंज' में रूपक है। अनुप्रास की मंजुल छटा दर्शनीय है।

(ग) कान्ह-दूत .... बिचारी की।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– उद्धव ने अपने उपदेश में ब्रह्मवाद और आत्मा तथा परमात्मा की अभेदता का प्रतिपादन किया। गोपिकाएँ उसका विरोध करती हुई उन्हें अपने अस्तित्व के विनाश का कारण मानती हैं।

व्याख्या– गोपियाँ उद्धव से पूछती हैं कि ''हे उद्धव! आप ब्रजबालाओं की बुद्धि को बदलने का प्रण लेकर तथा श्रीकृष्ण के दूत बनकर यहाँ आए हैं अथवा ब्रह्म के दूत के रूप में आए हैं? कहने को तो आप श्रीकृष्ण के दूत बनकर यहाँ आए हैं, फिर भी आप ब्रह्म की ही चर्चा कर रहे हैं। हे उद्धव! आप प्रेम की रीति को नहीं जानते, इसीलिए आप अनाड़ियों और बुद्धिहीनों जैसा व्यवहार करके अन्याय कर रहे हैं। आपको कहने के अनुसार यदि हमने श्रीकृष्ण और ब्रह्म को एक ही मान भी लिया तो भी हमें यह अभेदता (एकत्व) का विचार अच्छा नहीं लगता। आप तो स्वयं जानते हैं कि समुद्र में बूँद के मिल जाने पर समुद्र की असीमता में तो कोई अन्तर नहीं पड़ेगा, परन्तु अशक्त और अकिंचन बूँद का तो अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। समुद्र में कुछ बूँदे मिल जाएँ अथवा न मिलें, उससे समुद्र के अस्तित्व पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता; किन्तु यदि बूँद समुद्र में मिल जाएगी तो उसका अस्तित्व निश्चय ही समाप्त हो जाएगा। इसी प्रकार यदि हम ब्रह्म की आराधना करती हैं तो उसमें लीन होकर अपना अस्तित्व समाप्त हो जाएगा, जबकि श्रीकृष्ण की आराधना करते हुए हमारा अस्तित्व बना रहेगा।

काव्य-सौन्दर्य– 1. यहाँ गोपियों ने आत्मा तथा परमात्मा की अभेदता को अस्वीकार कर अद्वैतवाद का विरोध किया है। **2.** गोपियों के हृदय की सरलता और कथन की व्यंग्यात्मकता द्रष्टव्य है। **3. भाषा–** ब्रजभाषा। **4. अलंकार–** अनुप्रास, यमक,

श्लेष, पदमैत्री एवं दृष्टान्त। **5. रस–** विप्रलम्भ शृंगार। **6. शब्दशक्ति–** लक्षणा और व्यंजना। **7. गुण–** माधुर्य। **8. छन्द–** मनहरण घनाक्षरी।

(घ) चिंता-मनि मंजुल .... लखिबौ कहौ।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में गोपियों द्वारा अपनी तर्कबुद्धि के आधार पर योग-साधना को निरर्थक सिद्ध किया गया है। वे कृष्णभक्ति को छोड़कर निराकार ब्रह्म की उपासना करने को तैयार नहीं है।

व्याख्या– गोपियाँ कहती हैं– हे उद्धव! आप सुन्दर चिन्तामणि (कृष्ण-भक्ति) को धूल की धाराओं (भस्म रमाने) में फेंककर मनरूपी काँच के दर्पण को सभाँलकर रखने के लिए कहते हैं। आप समस्त कामनाओं की पूर्ति करनेवाली कृष्णभक्ति का त्याग करके हमें भस्म रमाने का उपदेश दे रहे हैं। आप वियोग की अग्नि को बुझाने के लिए हमें वायु-भक्षण (प्राणायाम) करने को कहते हैं। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार वायु के सम्पर्क से अग्नि नहीं बुझती अपितु और भी भड़क उठेगी। उसी प्रकार प्राणायाम करने से वियोग की आग शान्त नहीं होगी वरन् और अधिक भड़क उठेगी। जिस ब्रह्म को आप नितान्त रूपरहित तथा रसरहित सिद्ध कर चुके हैं, उसी के रूप का ध्यान करने तथा उसके रसास्वादन के लिए कहते हैं; अर्थात् एक ओर तो आप यह कहते हैं कि ब्रह्म निराकार तथा रसहीन है और दूसरी ओर आप उसके रूप का ध्यान करने तथा उसका रसास्वादन करने को कहते हैं। इन दोनों बातों में आखिर क्या साम्य है? इतने बड़े विश्व में खोजने पर भी नहीं पाया जा सकता, उसे आप नेत्र बन्द करके त्रिकूट चक्र में देखने के लिए कहते हैं। भाव यह है कि आँखे खोलकर खोजने पर भी जिसे नहीं देखा जा सकता, उसे आँख बन्द करके कैसे कैसा देखा जा सकता है।

काव्य-सौन्दर्य– 1. कृष्णभक्ति के सामने योग-साधना को तुच्छ और निरर्थक सिद्ध किया गया है। **2.** उद्धव की युक्तियों के आधार पर ही उनके कथनों का खण्डन किया गया है। इस खण्डन के माध्यम से गोपियों की तर्कबुद्धि प्रकट हुई है। **3.** मुहावरों का सुन्दर प्रयोग द्रष्टव्य है। **4. भाषा–** ब्रजभाषा। **5. अलंकार–** श्लेष, रूपक, अनुप्रास एवं विरोधाभास। **6. रस–** शृंगार। **7. शब्दशक्ति–** लक्षणा एवं व्यंजना। **8. गुण–** माधुर्य। **9. छन्द–** मनहरण घनाक्षरी।

(ङ) ऊधौ यहै सूधौ .... तिहारी हैं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– गोपियों को कृष्ण के दर्शन के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं सुहाता। इसलिए वे उद्धव के हाथों कृष्ण को सन्देश भेजती हैं। इसी का वर्णन इस पद में हुआ है।

व्याख्या– हे उद्धव! हम ब्रज की भोली-भाली बालाएँ छल-कपट की बनावटी बातें नहीं जानती, इसलिए कृष्ण से हमारा सीधा-सा सन्देश कह देना कि आपकी कृपा तो असीम है (आप तो अपने भक्तों के अपराधों को हृदय में लाते ही नहीं) और हमारी अपराध करने की क्षमता (सामर्थ्य) बहुत अल्प है; अर्थात् हम कितने ही अपराध करें, आप अपनी असीम कृपा के कारण हमें क्षमा कर देंगे, ऐसा हमारा विश्वास है। आप हमें अन्य जो चाहे दण्ड दें, किन्तु अपने दर्शनों के आनन्द से वंचित न करें, यही हम दीन-अबलाओं की प्रार्थना है; क्योंकि चाहे हम भली हैं या बुरी हैं, लज्जाशील है या निपट निर्लज्ज हैं, हमें जो चाहें वह समझें; परन्तु एक बात निश्चित है कि हम जैसी भी हैं आपकी सेविकाएँ हैं, जिसके कारण समस्त अपराधों के बावजूद हम आपकी कृपा की अधिकारिणी है।

काव्य सौन्दर्य– 1. गोपियों का कृष्ण के प्रति अगाध प्रेम समर्पण की भावना के साथ व्यक्त हुआ है। **2.** अभिलाषा और दैन्य संचारी भावों का चित्रण है। **3. भाषा–** ब्रज। **4. रस–** शृंगार। **5. छन्द–** मनहरण घनाक्षरी। **6. गुण–** माधुर्य। **7. शब्द-शक्ति–** लक्षणा और व्यंजना। **8. अलंकार–** अनुप्रास (वर्णो की आवृत्ति होने से), -दरस-रस' में यमक; पदमैत्री।

(च) प्रेम-मद-छाके... राधिका पठाई है।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– जब उद्धव गोकुल से मथुरा के लिए प्रस्थान करते है, तो वे अत्यन्त प्रेम-विह्ल है। प्रेमाधिक्य से उनकी दशा बड़ी विचित्र दिखाई गयी है।

व्याख्या– जिस प्रकार शराबी के पैर ठीक से जमीन पर नहीं पड़ते, उसका शरीर शिथिल हो जाता है तथा नेत्रों में आलस्य-सा दिखाई देता है, उसी प्रकार प्रेम-रस का आकण्ठ पान किये हुए उद्धव के पैर कहीं-के-कहीं पड़ रहे थे। उनके सारे अंग शिथिल हो गये थे तथा नेत्रों में मादकता छा गयी थी। कविवर रत्नाकर कहते हैं कि उद्धव इस प्रकार भौंचक्के-से चले आ रहे थे, मानो किसी भूली बात को याद कर रहे हों। वे आए थे इस अभिमान के साथ कि मैं गोपियों को अपनी वाणी से सन्तुष्ट कर दूँगा, परन्तु गोपियों की बात सुनकर उनका सारा अहंकार दूर हो गया। कहने का आशय यह है कि ब्रज से आते हुए उद्धव की स्थिति बहुत विचित्र हो रही है। उद्धव के एक हाथ में माता यशोदा द्वारा दिया हुआ मक्खन सुशोभित हो रहा था तथा दूसरे हाथ में राधा द्वारा भेजी गयी बाँसुरी। वे इन उपहारों के प्रति अत्यधिक आदर-भाव के कारण उन्हें पृथ्वी पर नहीं रख रहे थे।

प्रेमाधिक्य के कारण उनके नेत्रों से जो आँसू उमड़ रहे थे, उन्हें वे बार-बार अपने कुरते की बाँहों से पोछ रहे थे; क्योंकि हाथ तो घिरे थे और हाथों को खाली करने के लिए वे उपहारों को पृथ्वी पर रखना नहीं चाहते थे।

काव्य सौन्दर्य– 1. व्यक्ति की आस्था दृढ़ न हो तो उसकी पराजय निश्चित है। ज्ञानी उद्धव ब्रज-गोपिकाओं के असीम प्रेम से प्रभावित होकर ज्ञानी से पूर्णत: भक्त बन गये। इसका बड़ा ही सुन्दर चित्रण प्रस्तुत छन्द में मिलता है। **2.** कविवर रत्नाकर अनुभवी-येजना के कौशल के लिए विख्यात हैं। यहाँ अंग-शैथिल्य, पैरों का डगमगालना, अश्रु, भौंचक्कापन आदि से उद्धव का चित्र सजीव हो उठा है। **3. भाषा–** ब्रजभाषा। **4. छन्द–** मनहरण घनाक्षरी। **5. रस–** शान्त। **6. अलंकार–** उत्प्रेक्षा, रूपक तथा अनुप्रास।

(छ) छावते कुटीर .... धरते नहीं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने प्रेमोन्मत्त उद्धव पर गोपियों तथा ब्रजवासियों के प्रभाव एवं उनके प्रति असीम प्रेम का चित्रण किया है।

व्याख्या– उद्धव ब्रजभूमि से लौटकर श्रीकृष्ण से कहते हैं कि हे नाथ! हम तो यमुना नदी के रमणीक किनारे पर ही कहीं अपनी कुटिया बना लेते और उस अनुपम रेतीले किनारे को छोड़कर कभी भी कहीं किसी और स्थान को न जाते। हम उस गम्भीर प्रेम-कथा को छोड़कर न तो अपने कानों से किसी अन्य रसपूर्ण कथा को सुनते और न ही अपनी जिह्वा से किसी अन्य रस-भरी कथा सुनाते। गोपियों तथा ग्वाल-बालों के उमड़ते हुए अश्रुओं को देखकर तो हम प्रलय के आगमन से भी भयभीत नहीं होते। भाव यह है कि गोपियों का अश्रु-प्रवाह प्रलय से भी अधिक भयावह प्रतीत होता था। उद्धव कहते हैं कि हे श्रीकृष्ण! यदि हमारे मन में आपको सजग करने की अभिलाषा न होती तो हम ब्रजभूमि को छोड़कर इधर पैर नहीं रखते; अर्थात् यहाँ कभी लौटकर न आते।

काव्य सौन्दर्य– 1. ब्रजभूमि के प्रति कवि का असीम अनुराग व्यक्त हुआ है। **2.** उद्धव पर ब्रज का अमिट प्रभाव दर्शाया है। **3.** उद्धव ने ज्ञान के स्थान पर प्रेम को अधिक प्रभावी तत्त्व के रूप में स्वीकार लिया है। **4. भाषा–** ब्रजभाषा। **5. अलंकार–** अनुप्रास, प्रतीप एवं लोकोक्ति। **6. शैली–** चित्रोपम। **7. रस–** करुण एवं शान्त। **8. शब्दशक्ति–** अभिधा एवं लक्षणा। **9. गुण–** प्रसाद। **10. छन्द–** मनहरण घनाक्षरी। **11. भावसाम्य–** ब्रज में निवास करने की ऐसी ही कामाना कवि रसखान ने भी व्यक्त की है- 'मनुष्य हौं तो वही रसखान, बसौ ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।'

(ज) निकसि कमंडल .... सब गरजे।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' के 'जगन्नाथ-दास 'रत्नाकर' द्वारा रचित आख्यानक प्रबन्ध काव्य 'गंगावतरण' से 'गंगावतरण' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– इन पंक्तियों में ब्रह्माजी के कमण्डल से पृथ्वी की ओर आती हुई गंगाजी की शोभा का वर्णन हुआ है।

व्याख्या– ब्रह्मा के कमण्डल से निकलकर गंगा की धारा उमड़कर आकाशमण्डल को भेदती तथा वायु को चीरती हुई प्रचण्ड वेग से नीचे को दौड़ पड़ी। उसकी धमक से अर्थात् वेगपूर्वक गिरने के धक्के से अतीव भयंकर शब्द हुआ, जिसने तीनों लोक डर गये। ऐसा लगा मानो प्रलयकालीन मेघ एक साथ मिलकर गरज उठे हों।

काव्य-सौन्दर्य– 1. कवि ने प्रचण्ड वेग से धरती की ओर आती गंगा का चित्र-सा खड़ा कर दिया है, जिसमें तदनुरूप कठोर ध्वनि वाली शब्दावली (खंडति, बिहंडति, तरजे, गरजे आदि(का प्रयोग बड़ा उपयुक्त है। **2. भाषा–** ब्रज। **3. रस–** वीर। **4. शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **5. गुण–** ओज। **6. अलंकार–** अनुप्रास और उत्प्रेक्षा। **7. छन्द–** रोला।

(झ) स्वाति-घटा .... छबि छाई॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– यहाँ कवि ने ब्रह्माजी के कमण्डल से अपार वेग के साथ निकलती गंगा का ओजपूर्ण वर्णन किया है।

व्याख्या– आकाश से धरती पर उतरती हुई गंगा की श्वेत धारा को देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो मोतियों की आभा से परिपूर्ण स्वाति-नक्षत्र के मेघों का समूह घुमड़ रहा हो अथवा सुन्दर श्वेत ज्योति धरती की ओर झुकती हुई चली आ रही हो। गंगा के निर्मल जल में मछलियों, मगरमच्छों और जल-सर्पों की चंचल चमक ऐसे शोभा पा रही थी, मानो चंचलता से परिपूर्ण बिजली चमचमा रही हो।

काव्य सौन्दर्य– 1. गंगा की जलधारा का आलंकारिक चित्रण हुआ है। **2.** कवि ने 'मुक्ति-पानिप' कहकर गंगा की मोक्षदायिनी शक्ति का भी संकेत किया है। **3. भाषा–** ब्रजभाषा। **4. अलंकार–** उत्प्रेक्षा, श्लेष, सन्देह एवं अनुप्रास। **5. रस–** शान्त और वीर। **6. गुण–** ओज। **7. छन्द–** रोला।

(ञ) रुचिर रजतमय .... आनंद-बधाए॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत काव्य-पंक्तियों में आकाश से पृथ्वी पर गिरती गंगा की पवित्र धारा की अनुपम शोभा का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– आकाश से पृथ्वी पर अवतरित होती गंगा की पवित्र धारा ऐसी मनोहर लगती है, जैसे किसी ने आकाश में कोई अत्यन्त विशाल तम्बू तान दिया हो। उस धारा से झरती जल की बूँदे ऐसी शोभा पा रही हैं, जैसे उस तम्बू में लटकी मोतियों की झालरें (मालाएँ) झिलमिला रही हों। लगता है उस तम्बू के नीचे देवताओं की स्त्रियों के समूहों ने आनन्द-मनाने के लिए राग-रंग के सभी साजो-सामान जमाए हैं।

काव्य-सौन्दर्य– 1. चँदावे के रूप में गंगा की धारा के वर्णन की कल्पना में कवि की प्रतिभा दर्शनीय है। **2. भाषा–** ब्रजभाषा। **3. शैली–** प्रबन्धात्मक। **4. अलंकार–** उपमा एवं अनुप्रास। **5. रस–** शान्त। **6. छन्द–** रोला। **7. गुण–** प्रसाद। **8. शब्दशक्ति–** अभिधा।

(ट) कुबहूँ सु-धार .... रासि उसावत्॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– यहाँ कवि ने ब्रह्माजी के कमण्डल से अपार वेग के साथ निकलती गंगा का ओजपूर्ण वर्णन किया है।

व्याख्या– गंगाजी की सुन्दर धारा बड़ी तेजी के साथ धरती की ओर दौड़ी और हर-हर शब्द की ध्वनि करती हुई हजार योवन तक लहराती चली गई। ऐसा प्रतीत हुआ मानो ब्रह्मारूपी चतुर किसान मन के अनुकूल वायु पाकर अपने पुण्य के खेत में उत्पन्न हीरे की फसल को हवा में उड़ाकर उसका कूड़ा-करकट अलग कर रहा हो।

काव्य-सौन्दर्य– 1. 'उसावत' शब्द का प्रयोग बड़ा सार्थक है। किसान अपनी फसल की ओसाई करके हवा में भूसे को उड़ाते हैं, जिससे अनाज नीचे गिर जाता है। यहाँ हीरारूपी अन्न धरती पर गिर रहा है और भूसेरूपी फुहारें इधर-उधर छितरा रही हैं। **2.** ब्रह्मारूपी किसान द्वारा हीरें की फसल उगाने की अपूर्व कल्पना प्रशंसनीय है। **3. भाषा–** ब्रजभाषा। **4. अलंकार–** रूपक, उत्प्रेक्षा एवं शब्दमैत्री। **5. शब्दशक्ति–** लक्षणा। **6. गुण–** ओज। **7. छन्द–** रोला।

(ठ) कृपानिधान .... सिमटि समानी॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– यहाँ शिवजी द्वारा गंगा को पत्नी के रूप में स्वीकार करने तथा गंगा के स्त्री-सुलभ संकोच का सुन्दर वर्णन हुआ है।

व्याख्या– गंगा के हृदय की कोमल प्रेम-भावना को कृपालु शंकरजी तुरन्त जान गये। उन्होंने गंगा को पत्नी के रूप में स्वीकार कर उसे अपने सिर पर स्थान देकर सम्मानित किया। उधर गंगा को नारी-सुलभ संकोच की अनुभूति होती है और वह अपने शरीर को सिकोड़कर, सुख का अनुभव करती हुई लजाती है और शिव के जटा-जूटरूपी हिमालय पर्वत के घने वन में सिमटकर छिप जाती है।

काव्य-सौन्दर्य– 1. गंगा के नारी-सुलभ प्रेम, संकोच और लज्जा का सुन्दर निरूपण हुआ है। **2. भाषा–** ब्रज। **3. शैली–** प्रबन्ध। **4. अलंकार–** मानवीकरण। **5. छन्द–** रोला।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) कान्ह-दूत कैधों ब्रह्म-दूत है पधारे आप।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' में संकलित 'जगन्नाथदास 'रत्नाकर' द्वारा रचित 'उद्धव प्रसंग' शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– इस सूक्ति में उद्धव द्वारा गापियों को ब्रह्मवाद का उपदेश दिए जाने पर गोपियों की प्रतिक्रिया का चित्रण किया गया है।

व्याख्या– गोपियाँ उद्धव से कहती है कि आप प्रेम की रीति को जाने बिना हमें ब्रह्म का उपदेश दिए चले जा रहे हैं। हम तो एकमात्र श्रीकृष्ण के प्रेम में ही अनुरक्त है, वही हमारे सबकुछ हैं। वे उद्धवजी से व्यंग्यपूर्ण भाव में पूछती हैं कि आप ब्रजबालाओं की बुद्धि को बदलने का प्रण लेकर और श्रीकृष्ण के दूत बनकर यहाँ आए हैं अथवा ब्रह्म के दूत के रूप में आए हैं। कहने को तो आप श्रीकृष्ण के दूत बनकर आए हैं, फिर भी आप निरन्तर केवल ब्रह्म की ही चर्चा किए जा रहे हैं।

(ख) जैहें बनि बिगरि न बारिधिता बारिधि कौं
बूदँता बिलैहै बूँद बिबस बिचारी की।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में गोपियों ने अद्वैतवाद का इसलिए खण्डन किया है कि इसे स्वीकार करने पर उनका अपना ही अस्तित्व, खतरे में पड़ जाएगा।

व्याख्या– गोपियाँ कहती हैं कि बूँद और समुद्र के आपस में मिलने से समुद्र के अस्तित्व पर कोई आँच नहीं आएगी, वह ज्यों का त्यों बना रहेगा, किन्तु समुद्र में मिल जाने से बेचारी बूँद का तो अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। गोपियों के कथन का आशय यह है कि ब्रह्म तो विशाल समुद्र की भाँति है और हम हैं मात्र बूँद। ब्रह्म में हमारे मिल जाने से उसकी महत्ता में तो किसी प्रकार का अनतर नहीं पड़ेगा, किन्तु हमारा तो अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा, जो हमें कदापि स्वीकार्य नहीं है। हम अपने अस्तित्व को

बनाए रखना चाहती हैं, क्योंकि हमें अपना अस्तित्व बनाए रखने में ही लाभ है। यदि हमने स्वयं को ब्रह्म में मिला दिया तो हम कृष्ण के प्रेम की अनुभूति कैसे कर सकेंगी।

(ग) एवे बड़े बिस्तमाँहि हेरैं हूँ न पैये जाहि
ताहि त्रिकूटि में नैन मूँदि लखिबौ कहौ।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में गोपियों द्वारा ब्रह्म की निस्सारता और उद्धव को अज्ञानी सिद्ध करने के तर्कपूर्ण प्रयास का अनुपम चित्रण किया गया है।

व्याख्या– गोपियाँ उद्धव की ब्रह्मवादिता और ज्ञानमार्ग पर चलने की सलाह पर व्यंग्य करती हुई कहती हैं कि जो ब्रह्म रूप और रस से रहित है, उसके रूप का उपदेश आप हमें क्यों दे रहे हैं। साथ ही जिस ब्रह्म को इतने विशाल विश्व में खोजने पर भी नहीं पाया जा सकता, उसे त्रिकुटी जैसे छोटे-से स्थान में नेत्र मूँदकर प्राप्त करने का उपदेश देते हो। तुम्हारी ये सभी बातें तुम्हारे अज्ञानी होने का प्रमाण देती हैं।

(घ) भली हैं बुरी हैं और सलज्ज निरलज्ज हूँ हैं
जो कहौ सो हैं पै परिचालिका तिहारी हैं।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– यहाँ 'रत्नाकर' जी ने गोपियों की सरलता और प्रेम की अनन्यता का स्वाभाविक चित्रण किया है।

व्याख्या– प्रेम से वशीभूत गोपियाँ स्वयं को श्रीकृष्ण की दासी बताती हैं और समर्पित भाव से कहती हैं कि हम अच्छी हैं या बुरी, निर्लज्ज है या लज्जाशील; जैसा भी हैं आपकी ही हैं। हम आपकी सेविकाएँ हैं। सेविकाओं से भूल भी हो सकती है, परन्तु स्वामी उनकी भूलों को क्षमा कर ही देते हैं। गोपियाँ कहती हैं कि हमें विश्वास है कि इसी प्रकार आप भी हमारी भूलों को क्षमा कर देंगे।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न

1. 'उद्धव-प्रसंग' कविता का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– 'उद्धव-प्रसंग' कविता जगन्नाथ 'रत्नाकर' जी के काव्य गन्थ 'उद्धव शतक' से लिया गया है, जिसमें कवि ने गोपिकाओं की विरह स्थिति तथा व्याकुलता का वर्णन किया है। कवि कहते हैं कि जब ब्रज में गोपियों ने अपने प्रियतम श्रीकृष्ण द्वारा भेजे गए उद्धव के आने का समाचार सुना तो वे दौड़कर नंद जी के द्वार पर पहुँच गई वे अपने पंजों पर उचक-उचककर कृष्ण द्वारा भेजे गए पत्र को देखकर व्याकुल हो उठी। सभी उत्सुकतावश उद्धव से पूछने लगी कि कृष्ण ने हमारे लिए क्या सन्देश लिखा है?

उद्धव गोपियों से कहते हैं कि यदि तुम श्रीकृष्ण का संयोग (मिलन) चाहती हो तो अपने हृदय में योग की साधना रखो। तुम अपनी आत्मा को ब्रह्म में इस प्रकार मग्न करो, जिससे जड़ और चेतन का आनन्द प्रकट होता रहे। अज्ञानवश तुम क्षुब्ध होकर जिसके वियोग का अनुभव करती हो वह तो सभी के हृदय में सदैव विद्यमान रहता है।

उद्धव द्वारा कृष्ण का योग सम्बन्धी कठोर सन्देश अपने कानों से सुनकर कोई गोपी काँपने लगी, कोई अपने स्थान पर ही जड़वत हो गई। कोई क्रुद्ध हो गई, कोई बड़बड़ाने लगी और कोई विलाप करने लगी, कोई व्याकुल व शिथिल हो गई, कोई पसीने से भीग गई, किसी की आँखों में पानी भर गया, तो कोई अपना कलेजा थामकर खड़ी रह गई। गोपियाँ उद्धव से पूछती हैं कि आप श्रीकृष्ण के दूत बनकर आए हैं या ब्रह्म के, जो आप ब्रजबालाओं की बुद्धि को बदलने का प्रण लिए हैं, परन्तु हे उद्धव! तुम प्रीति की रीति को नहीं जानते, इसलिए आप अनाड़ियों और बुद्धिहीनों जैसा व्यवहार कर रहे हो। यदि हम तुम्हारे कहे अनुसार मान लें कि कृष्ण और ब्रह्म एक ही हैं तो भी हमें यह अभेदता का विचार अच्छा नहीं लगता क्योंकि बूँद और समुद्र के एकत्व से समुद्र की समुद्रता में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा, किन्तु समुद्र में मिलने से बूँद का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा।

गोपियाँ उद्धव से कहती है कि आप हमें सुन्दर चिन्तामणि (कृष्ण) के प्रेम को फेंककर ब्रह्मज्ञानरूपी काँच को मनरूपी दर्पण में संभालकर रखने को कह रहे हो। आप वियोग की अग्नि को बुझाने के लिए हमें वायु-भक्षण (प्राणायाम) करने का कहते हैं, जिस निर्गुण ब्रह्म को आप स्वयं ही रूप और रस विहिन सिद्ध कर चुके हैं, उसी के रूप का ध्यान करने और उसका रस चखने को कहते हैं। इतने बड़े विश्व में खोजने पर भी जिसे नहीं पाया जा सकता, उसे आप नेत्र बंद करके त्रिकूट चक्र में देखने के लिए कह रहे हैं।

गोपियों उद्धव से कहती है कि यदि मथुरा से योग (मिलन) की शिक्षा देने आए हैं तो फिर वियोग की बातें मत कीजिए। यदि आपने हम पर दया करके हमारें दु:खों को दूर करने के लिए दर्शन दिए हैं तो वियोग की बातों से हमारे दु:खों को मत बढ़ाइए। ऐसी बातों से हमारा मन टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा इसलिए ऐसे कठोर वचनरूपी पत्थर मत चलाइए। एक मनमोहन (श्रीकृष्ण) ने तो हमारे मन में बसकर हमें उजाड़ दिया आप अनेक मनमोहनों को हमारे मन में मत बसाओ।

गोपियाँ कहती हैं— हे उद्धव! श्रीकृष्ण को हमारा सीधा सा सन्देश दे देना कि ब्रजबालाएँ छल-कपट की बनावटी बातें नहीं जानती हैं। उनसे कहना उनके अपराध क्षमा करने की सीमा असीम है और हमारे अपराध करने की सीमा अल्प। इसलिए हमें

विश्वास है कि वे हमें क्षमा कर ही देंगे। जो भी ताडनाएँ (सजा) आपके मन को (श्रीकृष्ण) अच्छे लगे वे हमें दे दीजिए परंतु अपने दर्शनों से हमें वंचित न करे क्योंकि हम अच्छी हैं या बुरी, लज्जाशील है, या लज्जाहीन, परन्तु हम तो बस आपकी ही सेविकाएँ (दासी) हैं।

उद्धव को विदा देने के लिए सभी गोपियाँ इधर-उधर दौड़ने लगी। कोई श्रीकृष्ण के लिए मयूर पंख, प्रेम से रोते हुए कोई गुंजों की माला, कोई भावों से भरकर मलाईदार दही, कोई मट्ठा लाई। नंद ने पीताम्बर, यशोदा ने ताजा मक्खन तथा राधा ने बाँसुरी श्रीकृष्ण के लिए लाकर दी।

जब उद्धव ब्रज से मथुरा के लिए चले तो सभी ब्रजवासियों ने उन्हें भावपूर्ण विदाई दी, उनके प्रेम-रस का आकण्ठ पान किए हुए उद्धव के पैर कहीं-के-कहीं पड़ने लगे। उनके सभी अंग शिथिल हो गए। उस समय उद्धव इसी प्रकार चले आ रहे थे कि मानो किसी भूली हुई बात को याद कर रहे हो। उनके एक हाथ यशोदा माता का दिया हुआ मक्खन तथा दूसरे हाथ में राधा जी की बाँसुरी सुशोभित थी, जिसके कारण वे अपने नयनों में आने वाले आँसुओं को अपने कुरते की बाँहों से पोछ रहे थे।

मथुरा पहुँचने पर उद्धव के ब्रज की धूलि से धूसरित पवित्र शरीर को कृष्ण अत्यन्त आतुरता से लिपटाए जा रहे हैं। उद्धव को प्रेम-मद में मत देखकर कृष्ण उनकी काँपती हुई भुजा को पकड़ लेते हैं, और उन्हें स्थिर करते हैं। श्रीराधा के दर्शनरूपी रस का पान करने के कारण आँसुओं से उमड़ते उद्धव के नेत्रों को देखकर श्रीकृष्ण के नेत्र भी पुलकित हो उठते हैं और उन आँसुओं की एक बूँद पृथ्वी पर न पड़ने देकर वे अपने वस्त्र से पोंछ-पोंछकर अपने नेत्रों से लगाए जा रहे हैं।

उद्धव श्रीकृष्ण से कहते है कि यदि गोपियों की प्रेममायी दशा से अवगत कराकर आपको उनकी अपेक्षा न करके शीघ्र दर्शन देने की चेतावनी देने का विचार मेरे मन में न होता तो मैं इधर कभी न आता। वहीं यमुना किनारे कुटिया बनाकर निवास करने लगता।

2. 'रत्नाकर' जी ने 'उद्धव शतक' में ज्ञान और योग पर प्रेम और भक्ति की विजय दिखलाई है।'' अपने पठित अंश के आधार पर इस कथन की पुष्टि कीजिए।

उ०– 'रत्नाकर' जी ने 'उद्धव शतक' काव्य ग्रन्थ में उद्धव के ज्ञान और योग पर गोपियों के प्रेम और भक्ति की विजय दिखलाई है। गोपियों की भक्ति से निर्गुण ब्रह्म के उपासक उद्धव भी सगुण ब्रह्म की उपासना करने लगे और उन्हें भी गोपियों के विरह में विरह की पीड़ा का अनुभव हुआ। इसलिए ही उद्धव कृष्ण से कहते हैं कि वे गोपियों को अपने दर्शन अवश्य दें वरन् उनके अश्रु प्रवाह से प्रलय आ जाएगी।

3. 'गंगावतरण' कविता का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– 'गंगावतरण' कविता कवि जगन्नाथदास 'रत्नाकर' जी के काव्य ग्रन्थ 'गंगावतरण' से संकलित है। इसमें गंगा नदी के पृथ्वी पर पर्दापण का कवि ने सुन्दर चित्रण किया है। कवि कहते हैं कि ब्रह्म जी के कमण्डल से निकलकर गंगा की धारा बड़े उल्लास और वेग के साथ आकाशमण्डल को चीरती हुई, वायु को भेदती हुई तीव्र वेग के साथ दौड़ चली। उसके वेग पूर्ण गिरने की धमक से तीनों लोक डर गए। जैसे महामेघ एक साथ मिलकर गरज उठे हो। गंगा की धारा अपने वेग से पवनरूपी परदे को फाड़ती हुई तथा स्वर्गलोक के बादलों को घिसती हुई, शोर करती हुई राजा सगर के पुत्रों के दाह को शांत करने के लिए पृथ्वी की ओर वेगपूर्वक चली।

आकाश से धरती पर उतरती गंगा ऐसी प्रतीत होती है जैसे स्वाति-नक्षत्र के मेघों का समूह घुमड़ रहा हो। गंगा के निर्मल जल में मछलियों, मगरमच्छों एवं जलसर्पों की चंचल चमक ऐसी लग रही थी जैसे चंचलता से युक्त बिजली चमक रही हो।

आकाश से धरती की ओर आती गंगा चाँदी का तना हुआ तम्बू सा प्रतीत होती है। उस धारा से झरती पानी की बूँदें उस तम्बू की झालर दिखाई पड़ रही है। लगता है उस तम्बू के नीचे देवताओं की स्त्रियों ने आनन्द मनाने के लिए राग-रंग के सभी साजो-सामाना एकत्र किए हो।

गंगा की सुन्दर धारा हर-हर की ध्वनि करती हुई हजारों योजन तक लहराती हुई तीव्र गति से पृथ्वी की ओर दौड़ी। उस समय ऐसा प्रतीत हआ, मानो ब्रह्मारूपी चतुर किसान मन के अनुकूल वायु पाकर अपने पुण्य के खेत में उत्पन्न हीरे की फसल को हवा में उड़ाकर उसका कूड़ा-करकट अलग कर रहा हो।

इस प्रकार दौड़ती, धँसती, ढलती, ढुलकती और सुख प्रदान करती गंगा ऐसी प्रतीत हुई मानो वह पृथ्वी से स्वर्ग के लिए सीढ़ी का निर्माण कर रही हो। उसमें अत्यधिक वेग, शक्ति, पराक्रम तथा ओज की उमंग भरी है। और वह हर-हर करती हुई भगवान् शंकर के सामने पहुँच गई।

शिव के अनुरूप एवं तेजस्वी रूप का वर्णन पाकर गंगा धन्य हो गई। उसके शरीर के प्रण पराए हो गए अब वह शिव की धरोहर ही रह गए। गंगा का सारा क्रोध समाप्त हो गया तथा अब गंगा के मन में रुक्षता के स्थान पर प्रेम की स्निग्धता आ गई थी।

भगवान् शिव ने भी गंगा के हृदय की भावना को पहचान लिया और उसे अपनी प्रियतमा स्वीकार करते हुए उसे अपने सिर पर स्थान दिया। ऐसी दशा में गंगा संकोचवश अपने अंगों को सिकोड़ती हुई-सी सुखपूर्वक प्रवाहित होने लगी तथा सिमटकर सघन हिमालय की चोटी के समान शिव की जटाओं में विलीन हो गई।

काव्य-सौन्दर्य से संबंधित प्रश्न–

1. **''आए हौ सिखावन .... बसावौ ना।'' पंक्तियों में निहित रस व उसका स्थायी भाव लिखिए।**

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में शृंगार रस का प्रयोग हुआ है जिसका स्थायी भाव रति है।

2. **'कीजै न दरस-रस बंचित बिचारी हैं।'' पंक्ति में प्रयुक्त अलंकार का नाम लिखिए।**

उ०– अनुप्रास एवं यमक।

3. **''भेजे मनभावन .... कहन सबै लगीं।'' पंक्तियों में किस छंद का प्रयोग हुआ है?**

उ०– प्रस्तुत पद्यांश में मनहरण घनाक्षरी छंद का प्रयोग हुआ है।

4. **''निकसि कमंडल .... सब गरजै।'' पंक्तियों में किस छंद का प्रयोग हुआ है?**

उ०– प्रस्तुत पद्यांश में रोला छंद का प्रयोग हुआ है।

5. **''कृपानिधान .... सिमटि समानी।'' पद्यांश का काव्य सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए।**

उ०– **काव्य सौन्दर्य– 1.** गंगा के नारी सुलभ-प्रेम, संकोच और लज्जा का सुंदर निरूपण हुआ है। **2. भाषा–** ब्रज, **3. शैली–** प्रबन्ध, **4. अलंकार–** मानवीकरण, **5. छन्द–** रोला।

पाठ्येतर सक्रियता–

उ०– छात्र स्वयं करें।

3 पवन-दूतिका

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या– 107 का अवलोकन कीजिए।

कवि पर आधारित प्रश्न–

1. **अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का जीवन परिचय देते हुए उनकी रचनाओं का उल्लेख कीजिए।**

उ०– **कवि परिचय–** अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जी का जन्म उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले के निजामाबाद नामक स्थान पर 15 अप्रैल, सन् 1865 ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम पंडित भोलानाथ उपाध्याय और माता का नाम रुक्मिणी देवी था। मिडिल परीक्षा पास करने के पश्चात् इन्होंने काशी के क्वींस कॉलेज में प्रवेश लिया किन्तु स्वास्थ्य ठीक न होने के कारण इन्होंने कॉलेज छोड़ दिया। इन्होंने घर पर ही संस्कृत, ऊर्दू, फारसी व अंग्रेजी भाषाओं का अध्ययन किया। आनंद कुमारी के साथ सत्रह वर्ष की अवस्था में इनका विवाह हुआ। प्रारम्भ में ये निजामाबाद के तहसील स्कूल में अध्यापक, उसके बाद कानूनगों तथा कानूनगो पद से अवकाश लेने के पश्चात् हरिऔध जी ने 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी' में अवैतनिक रूप से शिक्षण कार्य किया।

16 मार्च, सन् 1947 ई० में हरिऔध जी परलोकवासी हो गए।

रचनाएँ– हरिऔध जी की प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं–

उपन्यास– प्रेमकान्ता (यह हरिऔध जी द्वारा रचित प्रथम उपन्यास है।) ठेठ हिन्दी का ठाठ, अधखिला फूल।

नाटक– प्रद्युम्न-विजय, रुक्मिणी-परिणय।

प्रियप्रवास– यह हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार 'मंगला प्रसाद पारितोषिक' से सम्मानित, विप्रलम्भ शृंगार पर आधारित खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है। इसके नायक श्रीकृष्ण विश्व-कल्याण की भावना से परिपूर्ण मनुष्य हैं। यह सत्रह सर्गों में विभाजित है।

वैदेही-वनवास– आकार की दृष्टि से यह ग्रन्थ छोटा नहीं है, किन्तु इसमें प्रियप्रवास जैसी काव्यत्मकता का अभाव है। यह संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली में रचित प्रबंध-काव्य है। इसमें 18 सर्ग हैं। यह वाल्मीकि रामायण पर आधारित है।

रसकलश– ब्रजभाषा में रचित ये कविताएँ शृंगार प्रधान है व काव्य-सिद्धान्त-निरूपण के लिए लिखी गई हैं।

पारिजात– 15 सर्गों में रचित वृहत काव्य।

चोखे चौपदे व चुभते चौपदे– कोमलकान्त पदावली युक्त व्यवहारिक खड़ी बोली में रचित है। मुहावरों की सुन्दर झलक इनमें दिखायी देती है।

पद्य-प्रसून, फूल-पत्ते, कल्पलता, ग्राम-गीत, बोलचाल, हरिऔध सतसई, बाल कवितावली, मर्म, स्पर्श, प्रेम-प्रपंच, प्रेमाम्बु-प्रवाह आदि इनकी अन्य कृतियाँ हैं। इन्होंने अंग्रेजी व बंगला की कुछ कृतियों के हिन्दी में अनुवाद भी किए।

2. हरिऔध जी की भाषा-शैली की विशेषताएँ बताइए।

उ०– भाषा-शैली– हरिऔध जी पहले ब्रजभाषा में कविता करते थे, 'रसकलश' इसका सुन्दर उदाहरण है। महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रभाव से ये खड़ी बोली के क्षेत्र में आए और खड़ी बोली काव्य को नया रूप प्रदान किया। भाषा, भाव, छन्द और अभिव्यंजना की घिसी-पिटी परम्पराओं को तोड़कर इन्होंने नई मान्यताएँ स्थापित ही नहीं कीं, अपितु इन्हें मूर्त रूप भी प्रदान किया। इनकी बहुमुखी-प्रतिभा और साहस के कारण ही काव्य के भावपक्ष और कलापक्ष को नवीन आयाम प्राप्त हुए।

इनके काव्य-वृत्त में भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिककाल के उज्ज्वल बिन्दु समाहित हो सके हैं। प्राचीन कथानकों में नवीन उद्भावनाओं के दर्शन 'प्रियप्रवास', वैदेही-वनवास' आदि सभी रचनाओं में होते हैं। ये काव्य के 'शिव' रूप का सदैव ध्यान रखते थे। इसी हेतु इनके राधा-कृष्ण, राम-सीता भक्तों के भगवान मात्र न होकर जननायक और जनसेवक हैं। प्रकृति के विविध रूपों और प्रकारों का सजीव चित्रण हरिऔध जी की अन्यान्य विशेषताओं में से एक महत्वपूर्ण विशेषता है। भावुकता के साथ मौलिकता को भी इनके काव्य की विशेषता कहा जा सकता है। काव्य के क्षेत्र में भाव, भाषा, शैली, छन्द एवं अलंकारों की दृष्टि से हरिऔध जी की काव्य-साधना महान है। हरिऔध जी मूलत: करुण और वात्सल्य रस के कवि थे। करुण रस को ये प्रधान रस मानते थे और उसकी मार्मिक व्यंजना इनके काव्य में सर्वत्र देखने को मिलती है। वात्सल्य और विप्रलम्भ श्रृंगार के हृदयस्पर्शी चित्र 'प्रियप्रवास' में यथेष्ट हैं। अन्य रसों के भी सुन्दर उदाहरण इनके स्फुट काव्य में मिलते हैं।

इन्होंने कोमलकान्त पदावलीयुक्त ब्रजभाषा— 'चोखे चौपदे' और 'चुभते चौपदे' में पूर्ण अधिकार और सफलता के साथ प्रयुक्त की है। आचार्य शुक्ल ने इसीलिए इन्हें 'द्विकलात्मक कला में सिद्धहस्त' कहा है। इन्होंने प्रबन्ध और मुक्तक शैलियों में सफल काव्य-रचनाएँ की हैं। इतिवृत्तात्मक एवं मुहावरेदार, संस्कृत शब्दावली से युक्त चमत्कारपूर्ण सरल हिन्दी शैलियों का अभिव्यंजना-शिल्प की दृष्टि से इन्होंने सफल प्रयोग भी किया है।

अलंकारों के सहज और स्वाभाविक प्रयोग इनके काव्य में देखने को मिलते हैं। इन्होंने हिन्दी के पुराने तथा संस्कृत छन्दों को अपनाया। कवित्त, सवैया, छप्पय, दोहा आदि इनके पुराने प्रिय छन्द हैं।

व्याख्या संबंधी प्रश्न–

1. निम्नलिखित पद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) बैठी खिन्ना .... क्रूरता से।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' के 'अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्वारा रचित महाकाव्य 'प्रियप्रवास' से 'पवन-दूतिका' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– इन पदों में कृष्ण के वियोग से पीड़ित श्रीराधिका का पवन से वार्तालाप वर्णित है।

व्याख्या– एक दिन राधा घर में बहुत दु:खी होकर अकेली बैठी थीं। उनके दोनों नेत्रों से आँसू बहकर पृथ्वी को भिगो रहे थे। इतने में प्राय: कालीन सुखद वायु पुष्पों की सुगन्ध लेकर धीरे से खिड़कियों के रास्ते उस घर में प्रविष्ट हुई। जो वायु संयोग में सुखद लगती थी, वही अब वियोग में दु:ख बढ़ाने वाली सिद्ध हुई, अत: वायु के कारण अपनी व्यथा को और बढ़ता देखकर राधा बहुत दु:खित होकर उससे बोली कि हे प्यारी प्रभातकालीन वायु! तू मुझे इतना क्यों सता रही है? क्या तू भी मेरे भाग्य की कठोरता से प्रभावित होकर दूषित हो गयी है; अर्थात् समय या भाग्य तो मेरे विपरित है ही, पर क्या तू भी उससे प्रभावित होकर मेरा दु:ख बढ़ाने पर तुली है, जब कि सामान्यत: तू लोगों को सुख देने वाली मानी जाती है?''

काव्य-सौन्दर्य– 1. पवन पुंल्लिग है, पर कवि ने अपनी प्रयोजन-सिद्धि के लिए उसे दूतिका बनाकर उसका मानवीकरण कर दिया है। **2.** राधा की मनोदशा का भावपूर्ण चित्रण किया गया है। **3. भाषा–** खड़ी बोली। **4. छन्द–** मन्दाक्रान्ता। **5. रस–** विप्रलम्भ श्रृंगार। **6. शब्द-शक्ति–** अभिधा। **7. गुण–** प्रसाद। **8. अलंकार–** मानवीकरण।

(ख) ज्यों ही मेरा .... मुह्यमाना न होना।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– राधा पवन को श्रीकृष्ण के पास सन्देशा लेकर भेजते हुए उसे समझाती है कि तू मार्ग में पड़ने वाली मनोहारी सुषमा पर मोहित होकर मत रूकना।

व्याख्या– राधा पवन-दूतिका से कहती है कि जैसे ही मेरा घर त्यागकर तू थोड़ा-सा आगे बढ़ेगी, तुझे अत्यन्त सुन्दर तथा सुखद अनेक कुंजें दिखाई देंगी। उनकी छाया बड़ी शीतल तथा आकर्षक है। पक्षियों के चहकने से उनसे अत्यन्त मधुर ध्वनि निकलती है। अपने इन गुणों के कारण वे तुझे मोहित कर लेंगी, लेकिन फिर भी मेरे दु:ख का ध्यान करके तू वहाँ रुकना मत।

राधा ने पवन से कहा कि थोड़ा ही आगे जाने पर तुझे अत्यन्त मनोरम वृन्दावन मिलेगा। उसमें पक्षियों का मधुर संगीत गूँजा करता है, मधुर फूलों से वह लदा रहता है। उसमें बहुत सुन्दर-सुन्दर वृक्ष तथा लताएँ हैं। तू उस वन में इधर-उधर भ्रमण करना; किन्तु मोहित होकर वहाँ रुक मत जाना।

काव्य-सौन्दर्य– 1. राधा ने प्रकृति के माध्यम से अपनी पीड़ा को वाणी दी है। यहाँ राधा का लोक-सेविका का रूप चित्रित

किया गया है। **2. भाषा–** खड़ीबोली। **3. अलंकार–** उपमा, मानवीकरण। **4. रस–** वियोग शृंगार। **5. शब्दशक्ति–** अभिधा। **6. गुण–** प्रसाद। **7. छन्द–** मन्दाक्रान्ता।

(ग) लज्जाशील पथिक .... भूवांगना को।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– पवन को दूतिका के रूप में कृष्ण के पास भेजते हुए, श्रीराधा उसे मार्ग के पथिकों का उपकार करते हुए जाने की प्रेरणा देती हुई उससे कहती हैं—

व्याख्या– हे पवन! यदि तुझे मार्ग में कोई लाजवन्ती स्त्री दिखाई पड़े तो इतने वेग से न बहना कि उसके वस्त्र उड़कर अस्त-व्यस्त हो जाएँ और उसका शरीर उघड़ जाए। यदि वह थोड़ी-सी भी थकी दिखाई दे तो उसे गोद में लेकर अर्थात् उसे चारों ओर से घेरकर उसकी थकान मिटा देना, जिससे कि (थकान के कारण) उसके सूखे होंठ और मुरझाया हुआ कमल-सदृश मुख प्रफुलिल्त हो उठे।

यदि तुमने खेत में काम करने से थकी हुई कृषक-स्त्री दिखाई पड़े तो धीरे-धीरे उसे छूकर उसकी थकान को मिटा देना और यदि आकाश में कोई मेघ जाता दिखाई पड़े तो उसे अपने प्रवाह से लाकर गर्मी से तपी उस स्त्री पर छाया करा देना, जिससे वह सुखी हो जाए।

काव्य-सौन्दर्य– 1. राधा पवन द्वारा अपना सन्देश शीघ्रातिशीघ्र कृष्ण तक पहुँचाना चाहती थीं, पर फिर भी वे पवन को बीच-बीच में रुककर दूसरों का उपकार करते जाने की प्रेरणा देती हैं। यह अतिशय सहृदयता का सूचक है। **2. भाषा–** खड़ीबोली। **3. छन्द–** मन्दाक्रान्ता। **4. रस–** शृंगार। **5. शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **6. गुण–** प्रसाद। **7. अलंकार–** रूपक (कमल-मुख)।

(घ) तू देखेगी जलद-तन .... फूटती सी प्रभा है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– राधिका पवन-दूतिका को मथुरा में स्थित अपने प्राण-प्यारे श्रीकृष्ण की पहचान बताती हुई कहती हैं।

व्याख्या– हे पवन! मथुरा के वातावरण में स्वयं को ढालकर स्वयं भी वैसी ही होकर तू वहाँ बादलों के समान काले वर्णवाले श्रीकृष्ण को देखेगी। उनके सुन्दर नेत्र तुझे प्रकाश बिखरते दिखाई देंगे। उनके श्रेष्ठ मुख की भाव-भंगिमा तुझे किसी भव्य-मूर्ति की सौम्य मुख-मुद्रा के समान दिखाई देगी और जब तू उनके वचनों को सुनेगी तो उनके सीधे-सादे वचन तुझे प्रेम के अमृत से सींचे हुए लगेंगे।

हे पवन! नीले खिले कमल-पुष्पों के समूह की श्यामलता के समान ही उनके शरीर की श्यामल कवि है अर्थात् उनका साँवला रंग ऐसा मनोरम है, जैसे नीले कमल-पुष्पों के समूह की श्यामलता अत्यन्त मनोरम होती है। वे श्रीकृष्ण अपने शरीर पर अत्यन्त आकर्षक पीला सुन्दर वस्त्र अपनी कमर में धारण किए रहते हैं। उनके माथे पर लटकती बालों की एक लट उनके मुख की शोभा में वृद्धि करती रहती है। उनके सुन्दर वस्त्रों से उनके रमणीय शरीर की कान्ति उत्कीर्ण होकर वहाँ के वातावरण को मनोहर बना रही होगी।

काव्य-सौन्दर्य– 1. श्रीकृष्ण की आकर्षक छवि का मनोमुग्धकारी वर्णन दर्शनीय है। **2. भाषा–** खड़ीबोली। **3. शैली–** प्रबन्धात्मक। **4. अलंकार–** उपमा एवं अनुप्रास। **5. रस–** विप्रलम्भ शृंगार। **6. छन्द–** मन्दाक्रान्ता। **7. गुण–** प्रसाद। **8. शब्दशक्ति–** अभिधा।

(ङ) तेरे में है न यह .... हो सकेगी हमारी।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– राधिका ने अपना सन्देश अपने प्रियतम श्रीकृष्ण तक भेजने के लिए पवन को दूतिका बनाया है। उन्होंने उसे श्रीकृष्ण तक जाने का मार्ग भी समझा दिया है। अब वे पवन को समझा रही हैं कि तुम्हारे मुख तो है नहीं; तुम मेरे सन्देश को अपने विभिन्न क्रिया-कलापों के द्वारा उन्हें समझा देना। इसी का वर्णन इन काव्य-पंक्तियों में हुआ है।

व्याख्या– हे पवन! तुम्हारा मुख नहीं है; अत: तुम किसी भी बात को बोलकर समझाने में असमर्थ हो। यद्यपि तुम्हारे भीतर बोलने का गुण नहीं है, तथापि तुम अपने क्रिया-कलापों और कुशाग्र बुद्धि के द्वारा अपनी बात समझाने में सक्षम हो। तुम मेरी व्यथा और सन्देश मेरे प्रियतम को देने में अपने क्रिया-कलापों और अपनी कुशाग्र बुद्धि का ही प्रयोग करना। यदि बादल की कान्ति के समान सुन्दर वर्णवाले मेरे प्रियतम अपने घर में बैठे हों तो तू सबसे पहले घर में टँगे सभी चित्रों को ध्यानपूर्वक देखना।

उन चित्रों में अगर विरह से दु:खी किसी स्त्री का चित्र हो तो उस चित्र के पास जाकर तू उसे इस भाव से हिलाना कि मेरे प्रियतम आश्चर्यचकित होकर उसे देखने लगें। मुझे पूर्ण आशा ही नहीं, बल्कि विश्वास है कि उस विरहिणी के चित्र को देखकर उन्हें मेरी याद अवश्य ही आएगी कि मेरी प्रियतम राधा भी मेरे विरह में इसी प्रकार व्यथित होगी।

काव्य-सौन्दर्य– 1. अमुखी पवन द्वारा राधिका के सन्देशों को श्रीकृष्ण को प्रदान करने की क्रिया-चातुरी में कवि की अद्भुत

कल्पना-शक्ति दर्शनीय है। **2. भाषा–** खड़ीबोली। **3. शैली–** प्रबन्धात्मक। **4. अलंकार–** उपमा एवं अनुप्रास। **5. रस–** विप्रलम्भ शृंगार। **6. छन्द–** मन्दाक्रान्ता। **7. गुण–** प्रसाद। **8. शब्दशक्ति–** अभिधा एवं लक्षणा।

(च) कोई प्यारा कुसुम .... उत्कण्ठ होती।।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– राधा अपनी पवन-दूतिका को यह समझ रही है कि वह श्रीकृष्ण के पास जाकर वियोगिनी बाला (राधा) के दु:ख और सन्ताप को चतुरता के साथ व्यक्त करे।

व्याख्या– राधा पवन से कहती हैं— यदि घर में कोई सुन्दर फूल कुम्हलाया हुआ पड़ा हो तो उसे उठाकर प्रेम के साथ प्रियतम के चरणों में डाल देना। इस प्रकार तू उन्हें बता देना कि फूल जैसी एक सुकोमल बाला दु:खित होकर आपके चरणों को चूमना चाहती है।

हे पवन! यदि प्रियतम सुन्दर उपवन या बगीचे में हों तो बाँसों के छेदों में जाकर उन्हें बाँसुरी के समान बजाना। इस प्रकार से उन्हें गोपियों का स्मरण होगा, जो प्रिय की बाँसुरी सुनने की इच्छा से व्याकुल हो जाया करती थीं।

काव्य-सौन्दर्य– 1. राधा ने संकेतों के माध्यम से श्रीकृष्ण को सन्देश पहुँचाने का उपक्रम किया है। **2. भाषा–** खड़ीबोली। **3. अलंकार–** उपमा। **4. रस–** शृंगार का वियोग पक्ष। **5. शब्दशक्ति–** अभिधा और लक्षणा। **6. गुण–** प्रसाद। **7. छन्द–** मन्दाक्रान्ता।

(छ) धीरे लाना वहन .... हो काँप जाना।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत काव्य-पंक्तियों में राधिका पवन को बताती हैं कि उसे किस प्रकार उनकी याद उनके प्रियतम को दिलानी है।

व्याख्या– हे पवन! तू धीरे से कदम्ब का कोई पुष्प उठाकर लाना और उसे मेरे प्राण-प्यारे के चंचल नेत्रों के सामने डाल देना। इस प्रकार तू उन्हें यह बात भली-भाँति समझा सकेगी मैं किस प्रकार से उनके विरह के वशीभूत होकर हर समय डरी हुई-सी रहती हूँ और नित्य-प्रति पुनर्मिलन की कल्पना से पुन: पुन: कदम्ब पुष्प के समान रोमांचित होती रहती हूँ।

मेरे प्राण-प्रिय श्याम जिस वृक्ष के नीचे बैठे हों, तू उसी वृक्ष का कोई पत्ता उनके नेत्रों के पास जाकर हिलाना। इस प्रकार तू अपनी क्रिया-चातुरी से मेरे प्रियतम को यह ज्ञात करा सकती है कि किस प्रकार से चिन्ता ने मेरे हृदय को जीतकर उसे थका दिया है। चिन्ता ने मेरे हृदय का संबल मुझसे छीन लिया है, जिसके अभाव में मेरा हृदय पत्ते की भाँति काँपता रहता है।

काव्य-सौन्दर्य– 1. राधिका की दशा को दिखाने के वर्णन में कवि ने बड़े ही सटीक उपमानों का चयन करके अपनी परिपुष्ट कवि-प्रतिभा का परिचय दिया है। **2. भाषा–** खड़ीबोली। **3. शैली–** प्रबन्धात्मक। **4. अलंकार–** उपमा एवं अनुप्रास। **5.रस–** विप्रलम्भ शृंगार। **6. छन्द–** मन्दाक्रान्ता। **7. गुण–** प्रसाद। **8. शब्दशक्ति–** अभिधा एवं लक्षणा।

(ज) सूखी जाती मलिन .... प्रोषिता-सा हमारा।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– राधाजी अपनी पवनदूतिका को निर्देश दे रही है।

व्याख्या– राधा कहती हैं कि हे पवन! यदि मेरे प्रिय कृष्ण उपवन में हो तो तुम पृथ्वी पर पड़ी मुरझाकर सूखती किसी सुकोमल लता को उनके चरणों के पास लाकर गिरा देना। इस बहाने तुम उन्हें यह स्पष्ट कर देना कि इस लता के समान ही राधा भी तुम्हारा प्रेमरूपी जल न प्राप्त होने के कारण प्रतिदिन सूखती जा रही है।

यदि किसी नये वृक्ष का कोई पत्ता पीला पड़ गया हो तो उसे प्रिय के नेत्रों के सामने धीरे से रख दिया। ऐसा करके उन्हें यह दर्शा देना कि राधा भी आपके वियोग में इसी प्रकार प्रोषित-पतिका नायिका के समान पीली पड़ती जा रही है।

काव्य-सौन्दर्य– 1. मूलत: प्राकृतिक उपादानों को सन्देशवाहक बनाने की यह परम्परा कालिदास के 'मेघदूत' से नि:सृत हुई है। **2. भाषा–** खड़ीबोली। **3. छन्द–** मन्दाक्रान्ता। **4. रस–** वियोग शृंगार। **5. शब्द-शक्ति–** अभिधा और लक्षणा। **6.** गुण–प्रसाद। **7. अलंकार–** उपमा।

(झ) यों प्यारे को .... तुझी को लगाके।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में राधिका ने कृष्ण के प्रति अपने सच्चे प्रेम की भावना को व्यक्त करते हुए कहा है कि यदि तू कुछ भी न कर पाए तो तू केवल उनके चरणों का स्पर्श करके आ जाना। मैं तुझी को अपने हृदय से लगाकर सन्तोष कर लूँगी।

व्याख्या– राधिका कहती हैं कि हे पवन! जैसा मैंने बताया है, तू वैसे ही मेरी समस्त व्यथाएँ प्रियतम कृष्ण के सम्मुख व्यक्त कर देना। जब तू वापस आए तो एक कार्य और करना, तू धीरे से उनके पाँवों की धूलि को उठाकर ले आना। यदि तू मुझे उनकी थोड़ी-सी चरण धूलि ला देगी तो मैं उसे अपने माथे पर चढ़ाकर अपने दु:खी मन को समझाकर उसे धैर्य बँधा लूँगी।

हे पवन! अब तक मैंने जितनी बातें बताई, यदि तुझसे ये बातें पूरी न हो सकें तो मेरी इतनी-सी विनती स्वीकार करके तुरन्त ही

मेरे प्रियतम के पास चली जा और मेरे प्राणप्रिय के कमलरूपी पैरों को प्यार के साथ छूकर आ जा। तब विरह में मृतप्राय मैं तुझे अपने हृदय से लगाकर फिर से जीवन धारण कर लूँगी।

काव्य-सौन्दर्य– 1. राधिका की पवित्र और सच्ची प्रेम-भावना की सफल अभिव्यक्ति हुई है। **2.** राधिका ने यहाँ यह प्रमाणित किया है कि उसका कृष्ण के प्रति प्रेम कामजन्य न होकर भावजन्य है। **3. भाषा–** खड़ीबोली। **4. शैली–** प्रबन्धात्मक। **5. अलंकार–** पुनरुक्तिप्रकाश, मानवीकरण एवं अनुप्रास। **6. रस–** विप्रलम्भ शृंगार। **7. छन्द–** मन्दाक्रान्ता। **8. गुण–** प्रसाद। **9. शब्दशक्ति–** अभिधा।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) आना जाना इस विपिन से मुह्यमान न होना।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' में संकलित अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्वारा रचित 'पवन-दूतिका' शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में राधा जी पवन को समझाती हुई कहती है कि मार्ग की सुन्दरता देखकर मोहित मत हो जाना, तू आगे श्रीकृष्ण के पास मथुरा जाना।

व्याख्या– राधा जी पवन को समझाती है कि थोड़ा आगे जाने पर तुझे सुन्दर वृन्दावन मिलेगा। जिसमें सदैव पक्षियों का मधुर संगीत तथा फूलों की सुगंध तैरती रहती है। हे पवन तू उस वन में भ्रमण तो अवश्य कर लेना परन्तु तू उस मनोरम वन की सुन्दरता को देखकर मोहित उसमें वास मत करना अर्थात तू वहाँ न रुककर आगे बढ़ना और मेरा संदेशा श्रीकृष्ण तक पहुँचा देना।

(ख) होने देना विकृत-वसना तो न तू सुन्दरी को।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– राधिका पवन का मार्ग से सम्बन्धित आवश्यक दिशा-निर्देश देती हुई प्रस्तुत सूक्ति कहती हैं।

व्याख्या– राधिका पवन को समझाती हैं कि तुझे मार्ग में ब्रजभूमि की अत्यन्त लज्जशील महिलाएँ दिखाई देंगी; अत: तुझे उनका मान-सम्मान करते हुए ही आगे बढ़ना है। तू कहीं अपनी चंचलता का प्रदर्शन करते हुए उनके वस्त्रों को उड़ाकर उनके कोमलांगों को अनावृत्त मत कर देना। ऐसी चंचलता किसी भी दृष्टि से न तो उचित है और न ही क्षम्य।

(ग) होठों की और कमल-मुख की म्लनताएँ मिटाना।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– राधिका पवन का मार्ग में मिलनेवाली ब्रजबालाओं का उपकार करने के लिए प्रेरित करती हैं।

व्याख्या– हे पवन! तुझे मार्ग में अनेक भोली-भाली ब्रजबालाएँ मिलेंगी, यदि वे अत्यधिक परिश्रम करने के कारण थक गई हों और उनका मुख-कमल मुरझा गया हो तो तू उन्हें अपनी गोद में बैठाकर उनकी थकान मिटाकर उनके होठों पर मुस्कान बिखेर देना। इस प्रकार तू उनका मुरझाया कमल-मुख फिर से खिला देना।

(घ) छू के प्यारे कमल-पग को प्यार के साथ आ जा।
जी जाऊँगी हृदयतल मे मैं तुझी को लगाके।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– राधिका पवन को समझाती हैं कि उसे उसका कार्य किस प्रकार से पूर्ण करना है।

व्याख्या– अन्तत: राधिका पवन से निवेदन करती हैं कि यदि तू मेरे सन्देश को किसी भी रूप में श्रीकृष्ण तक न पहुँचा सके तो मेरे उस प्राणप्रिय श्रीकृष्ण के कमल-चरणों का स्पर्श करके मेरे पास लौट आना। मैं तुझे अपने हृदय से लगाकर अपने प्रियतम के स्पर्श-सुख का अनुभव करके प्राणशक्ति से भर उठूँगी।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न

1. 'पवन-दूतिका' कविता का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– 'पवन-दूतिका' कविता 'हरिऔध' जी के महाकाव्य 'प्रियप्रवास' से ली गई है जिसमें कवि ने श्रीराधा की विरह वेदना का वर्णन किया है। कवि कहते हैं कि एक दिन राधा उदासी से घर में अकेली बैठी रो रही थी। तभी प्रात: कालीन सुगन्धित पवन रोशनदानों से घर के अंदर आई।

पवन के आने से राधा जी का 'दु:ख बढ़ गया इसलिए उन्होंने पवन से कहा हे पवन मुझे क्यों सता रही है? क्या तू भी काल की कठोरता से दूषित हो गई? क्या तुझ पर भी क्रूरता का प्रभाव पड़ गया।

राधा पवन से कहती है नवीन मेघ जैसी शोभावाले और कमल जैसे नेत्रों वाले मेरे प्रिय श्रीकृष्ण मथुरा से वापस नहीं लौटे। उनके विरह में मैं रो-रोकर बावली हो गई हूँ। तू मेरी बेदना तथा दु:ख उन्हें जाकर सुना दे। राधा पवन से कहती है जैसे ही तू मेरे भवन से थोड़ा आगे बढ़ेगी तुझे सुन्दर तथा सुखद अनेक कुंजें दिखाई देगी। उनकी छाया बहुत शीतल व आकर्षक है जो तुझे अपनी ओर जरूर आकर्षित करेंगी परन्तु मेरे दु:ख का ध्यान करके तू वहाँ न रूकना तथा आगे बढ़ जाना।

राधा पवन से कहती है कि आगे जाने पर तुझे अत्यन्त मनोरम वन मिलेगा। जिसमें सुन्दर-सुन्दर वृक्ष और लताएँ हैं जो तुम्हारे मन को अपनी ओर मुग्ध करेगा परन्तु तुम उस वन में बस भ्रमण करना उस सुन्दर विपिन पर मोहित मत होना। राधा पवन से कहती है कि हे पवन! यदि तुझे मार्ग मे कोई थका हुआ मिले, तो तू उसके निकट जाकर उसकी थकान को मिटा देना। धीरे-धीरे उसके शरीर का स्पर्श करके उसकी गर्मी को दूर करना और उस थके व्यक्ति को प्रसन्न कर देना।

यदि तुझे मार्ग में कोई लज्जाशील स्त्री दिखाई दे तो तू उसके वस्त्रों को अस्त-व्यस्त मत करना। यदि वह तुझे थकी हुई दिखाई दे तो तू उसे अपनी गोद में लेकर उसकी थकान मिटाना तथा उसके होंठों तथा मुख की मलिनता को अपनी शीतलता से दूर कर देना।

राधा कहती है कि यदि तुझे खेत पर कार्य करती हुई कोई किसान स्त्री दिखाई दे तो उसके पास जाकर उसकी थकान को दूर कर देना, यदि आकाश से कोई मेघ खण्ड जा रहा हो तो उसकी छाया उस स्त्री पर कर देना, जिससे वह शीतलता प्राप्त कर सके।

राधा पवन-दूतिका को समझती है कि जब तू मथुरा नगरी पहुँचेगी तो वहाँ की भव्यता तुझे वहाँ की शोभा देखने के लिए उत्सुक बना देगी। तब तू नगरी देखने की उत्सुकता मत दबाना, बल्कि उस नगरी की सर्वोत्तम और मुग्धकारी शोभा पर मुग्ध हो जाना। जब तू वहाँ के समेरु पर्वत जैसे ऊँचे और विशाल मन्दिर देखेगी तो, तेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहेगा।

हे पवन-दूतिका! तू पूजा-अर्चना के समय मन्दिरों में जाना और विभिन्न वाद्य यन्त्रों के सुरों को बढ़ा देना। तू मन्दिर के विभिन्न वृक्षों में से किसी वृक्ष का चयन करके अपना मनपसन्द राग अवश्य बजाना।

वह पवन-दूतिका से कहती हैं जब तू मेघ जैसे शरीर वाले श्रीकृष्ण को देखेगी तो उनके नेत्रों से तुझे प्रकाश बिखरता दिखाई देगा और जब तू उनके वचनों को सुनेगी वे तुझे प्रेम के अमृत से सींचे हुए प्रतीत होंगे। नीलकमल के पुष्प के समान ही उनके शरीर की छवि है। वे अपने शरीर पर सुन्दर पीला वस्त्र धारण करते हैं। उनके माथे पर लटकती बालों की लटें उनके मुख की शोभा बढ़ाती हैं तथा उनके सुन्दर वस्त्रों से उत्पन्न कान्ति वातावरण को मनोहर बना रही होगी।

श्रीकृष्ण का शरीर सुन्दर सुडौल है, उनके शरीर की सुगन्ध पुष्पों की सुगन्ध के समान प्राणों की पोषक है उनके दोनों कन्धे बैल की तरह बलिष्ठ तथा भुजाएँ हाथी की सूँड के समान शक्तिशाली है। उनके सिर पर राजाओं जैसा मुकुट होगा, उनके कानों में सुन्दर कुण्डल सुशोभित होंगे, उनकी भुजाओं पर अनेक रत्नों से जड़ित भुजबन्ध होगे और उनके गले में मोतियों की माला सुशोभित होगी।

राधा पवन से कहती है कि परन्तु तेरे में ये गुण ही नहीं है कि तू अपने मुख से कोई बात कह सके इसलिए तू अपने क्रिया-कलापों तथा तीव्र बुद्धि के द्वारा मेरा संदेशा उन्हें दे देना। यदि श्रीकृष्ण किसी भवन में बैठे हो तुम वहाँ पर चित्रों को ध्यान से देखना। जिस चित्र में विरह से दु:खी स्त्री का चित्र हो तो तू उसके पास जाकर उसे ऐसे हिलाना, जिससे मेरे प्रियतम उसे देखने लगे और उन्हें मेरी स्मृति हो जाए।

यदि तुझे वहाँ किसी बाग का चित्र दिखाई दे, जिसमें सभी प्राणी व्याकुल होकर घूमते हों, तो तू उस चित्र को इस प्रकार हिलाना कि श्रीकृष्ण को विरह में व्याकुल ब्रज के प्राणियों की याद आ जाए।

यदि घर में कोई फूल कुम्हलाया हुआ पड़ा हो तो तू उसे उठाकर प्रियतम के चरणों पर डाल देना। तू उन्हें बतला देना कि फूल जैसे एक बाला को आपके चरणों को चूमने की अभिलाषा है। हे पवन! यदि मेरे प्रियतम किसी उपवन में खड़े हो तो तुम बाँसों के छेदों को जाकर उन्हें बाँसुरी की तरह बजाना, जिससे उन्हें उन गोपियों की याद आ जाए जो उनकी बाँसुरी सुनने को व्याकुल रहती थीं। तुम कमल के फूल को व्याकुल होकर पानी में डुबाना, जिससे तुम उन्हें बतला सको कि कमल जैसे नयनों वाली राधा आपके वियोग में दु:खी होकर अश्रु बहाती है। हे पवन! तुम धीरे-धीरे चलकर कोई कदंब का पुष्प उनके नेत्रों के सामने डाल देना। इस प्रकार तू उन्हें बतला सकेगी कि मैं किस प्रकार विरह के कारण डरी हुई रहती हूँ तथा उनके मिलन की आशा में रोमांचित होती हूँ। जिस पेड़ के नीचे मेरे श्याम बैठे हो तू उस पेड़ के पत्ते को हिला देना, तुम उन्हें चतुराई से बताना कि मेरा मन चिंता के कारण पत्ते की तरह ही काँपता है।

हे पवन! किसी सूखी लता को तू श्याम के पाँव के पास डाल देना और उन्हें बताना कि उनके बिना मैं भी ऐसी ही नित्य सूखती व मलिन होती जा रही हूँ। यदि कोई पत्ता पीला हो रहा हो तो तू उसे श्रीकृष्ण के नयनों के पास ले जाना और उन्हें बताना कि मैं (राधा) भी इसी प्रकार पीली पड़ती जा रही हूँ।

हे पवन! मेरी सभी व्यथाएँ मेरे प्रियतम श्रीकृष्ण को बताने के बाद तू धीरे से उनके पाँवों की धूलि ले आना। यदि तुम मुझे यह धूलि ला दोगी तो मैं उसे अपने माथे पर चढ़ा कर संतोष प्राप्त कर लूँगी। यदि तुझसे ये बाते पूरी न हो पाएँ तो तू मेरी इतनी प्रार्थना स्वीकार कर ले, तू तुरंत मेरे प्रियतम के पास चली जा और उनके कमलरूपी पैरों को छूकर आ जा। मैं विरह से व्याकुल तुझको अपने हृदय से लगाकर फिर से नया जीवन प्राप्त कर लूँगी।

2. राधा ने कृष्ण का ध्यान अपने प्रति आकर्षित करने के लिए पवन को कौन-कौन सी युक्तियाँ बताईं?

उ०– कृष्ण का ध्यान अपने प्रति आकर्षित करने के लिए राधा ने पवन को युक्तियाँ बताई कि जिस भवन में श्रीकृष्ण बैठे हों उस

भवन में लगे चित्रों में से तू विरह से दु:खी स्त्री का चित्र हिला देना, यदि चित्रों में तुझे बगीचे का चित्र दिखे जिसमें सभी प्राणी व्याकुल होकर पागलों के समान घूम रहे हो, उस चित्र को हिलाकर तुम उन्हें ब्रज के प्राणियों की याद दिलाना। घर में पड़े कुम्हलाए हुए फूल को उनके सामने डाल देना, बाँसों के छेदों में जाकर उसे बाँसुरी के समान बजाना, कमल-पत्र को व्याकुलता से जल में डुबाना, कदंब के पुष्प तथा सूखी हुई लता तथा नए वृक्ष के पीले पत्ते को उनके नेत्रों के सामने डाल देना, जिससे उन्हें हमारी स्मृति हो जाए।

3. 'पवन-दूतिका' कविता में राधा ने पवन को दूती बनाते हुए कृष्ण का जो स्वरूप चित्रित किया है, उसे अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– राधा पवन को दूती बनाते हुए उससे कहती है कि मेरे प्रियतम श्रीकृष्ण जो बादलों के समान काले वर्ण वाले है, को जब तू देखेगी तो तुझे उनके नेत्रों से प्रकाश बिखरता दिखाई देगा। उनके वचन तुझे प्रेम के अमृत से सींचे हुए लगेंगे। उनके शरीर पर अत्यन्त आकर्षक पीला वस्त्र होता है, उनके माथे पर लटकती बालों की लटें उनके मुख की शोभा बढ़ाती है। उनका शरीर साँचे में ढली मूर्ति के समान सुडौल एवं देवताओं जैसी कान्ति वाला है, उनके दोनों कन्धे बैल के समान विशाल और बलिष्ठ तथा भुजाएँ हाथी की सूँड के समान शक्तिशाली है। उनके सिर पर राजाओं जैसा मुकुट होगा। उनके कानों में सुन्दर कुण्डल तथा भुजाओं में रत्नों से जड़ित भुजबन्ध सुशोभित होंगे तथा उनकी शंख जैसी सुडौल-सुन्दर गर्दन में मोतियों की माला शोभित होती दिखेगी।

4. कविता में हरिऔध जी ने मथुरा नगर की सुन्दरता का वर्णन किया है, उसका वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।

उ०– 'पवन-दूतिका' में राधा जब पवन को समझाती है तो उससे कहती है कि जब तू मथुरा नगरी में पहुँचेगी, तो उस नगर की भव्यता तुझे उस भव्यता को देखने के लिए उत्सुक बनाएगी क्योंकि वहाँ सूर्य के समान चमकती आभा वाले कलशों से युक्त सुमेरु पर्वत जैसे विशाल और ऊँचें पर्वत जैसे मन्दिर हैं। इन मन्दिरों में पूजा के समय तरह-तरह के वाद्य यन्त्र बजते हैं, यहाँ विविध प्रकार के वृक्ष है।

काव्य-सौन्दर्य से सम्बन्धित प्रश्न–

1. ''बैठी खिन्ना .... क्रूरता से।'' पंक्तियों में प्रयुक्त रस का नाम, तथा स्थायी भाव लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में विप्रलम्भ शृंगार रस है जिसका स्थायी भाव रति है।

2. ''मेरे प्यारे .... विश्राम लेना।'' पंक्तियों में प्रयुक्त अलंकार का नाम लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में उपमा अलंकार है।

3. ''साँचे ढाला .... पेटिका हैं।'' पंक्तियों में प्रयुक्त अलंकार का नाम लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में अनुप्रास तथा उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है।

4. ''सूखी जाती .... नित्य जाना।'' पंक्तियों का काव्य सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए।

उ०– **काव्य सौन्दर्य– 1.** यहाँ श्रीराधा ने प्रकृति के माध्यम से अपनी पीड़ा को वाणी दी है। **2. भाषा–** खड़ी बोली, **3. अलंकार–** उपमा, **4. रस–** विप्रलम्भ शृंगार, **5. शब्दशक्ति–** अभिधा और लक्षणा, **6. छन्द–** मन्दाक्रान्ता, **7. गुण–** प्रसाद।

पाठ्येतर सक्रियता–

उ०– छात्र स्वयं करें।

4 कैकेयी का अनुताप, गीत

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 114-115 का अवलोकन कीजिए।

कवि पर आधारित प्रश्न–

1. मैथिलीशरण गुप्त का जीवन परिचय देते हुए हिन्दी साहित्य में इनका योगदान बताइए।

उ०– **कवि परिचय–** राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का जन्म उत्तर प्रदेश के झाँसी जिले के चिरगाँव नामक स्थान पर 3 अगस्त, सन् 1886 ई० में हुआ था। इनके पिता श्री रामचरण गुप्त को हिन्दी-साहित्य से विशेष प्रेम था और वे स्वयं हिन्दी के एक अच्छे कवि भी थे। गुप्त जी पर अपने पिता का पूर्ण प्रभाव पड़ा। बाल्यावस्था में ही एक छप्पय की रचना कर इन्होंने अपने पिता को चकित कर दिया था। प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही विधिवत् ग्रहण करने के बाद इन्हें अंग्रेजी पढ़ने के लिए झाँसी भेजा गया। वहाँ

इनका मन पढ़ाई में न लगा और ये वापस लौट आये। बाद में पुन: घर पर ही इनकी शिक्षा का प्रबन्ध किया गया, जहाँ इन्होंने अंग्रेजी, संस्कृत और हिन्दी का अध्ययन किया। इनकी आरम्भिक रचनाएँ कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले 'वैश्योपकारक' नामक पत्र में छपती थीं। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पर्क में आने के बाद इनकी प्रतिभा प्रस्फुटित हुई और इनकी रचनाएँ 'सरस्वती' में भी छपने लगीं। द्विवेदी जी के आदेश, उपदेश और स्नेहमय परामर्श के परिणामस्वरूप इनकी काव्य-कला में पर्याप्त निखार आया। इनकी लगभग सभी रचनाओं में भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय जन-जागरण के स्वर प्रमुख रूप से मुखरित होते हैं। राष्ट्रीय विशेषताओं से परिपूर्ण रचनाओं का सृजन करने के कारण ही महात्मा गाँधी ने इनको 'राष्ट्रकवि' की उपाधि प्रदान की थी। सन् 1912 ई० में इनकी पुस्तक 'भारत-भारती' के प्रकाशन के बाद इनको ख्याति मिलनी आरम्भ हुई। 'साकेत' महाकाव्य के सृजन पर 'हिन्दी-साहित्य सम्मेलन' द्वारा इनको 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' से सम्मानित किया गया था। इनकी अनवरत साहित्य-सेवा के कारण ही भारत सरकार ने इन्हें 'पद्मभूषण' से सम्मानित किया और राज्यसभा का सदस्य भी मनोनीत किया। जीवन के अन्तिम समय तक ये अनवरत साहित्य-सृजन करते रहे। माँ भारती के इस महान साधक का 12 दिसम्बर, सन् 1964 ई० को देहावसान हो गया।

हिन्दी साहित्य में योगदान– कहा जा सकता है कि गुप्त जी युगीन चेतना और इसके विकसित होते हुए रूप के प्रति अत्यधिक सजग थे और इसकी स्पष्ट झलक इनके काव्य में भी मिलती है। राष्ट्र की आत्मा को वाणी देने के कारण ही ये राष्ट्रकवि कहलाये और आधुनिक हिन्दी काव्य की धारा के साथ विकास-पथ पर चलते हुए युग-प्रतिनिधि कवि स्वीकार किये गये।

2. मैथिलीशरण गुप्त की कृतियों पर प्रकाश डालिए।

उ०– **रचनाएँ–** गुप्त जी की रचना-सम्पदा बहुत विशाल है और उनका विषय-क्षेत्र भी बहुत विस्तृत है। इनकी समस्त रचनाओं को— अनूदित और मौलिक; दो रूपों में विभाजित किया जा सकता है। इनकी अनूदित रचनाओं में दो प्रकार के साहित्य— काव्य और नाटक उपलब्ध हैं।

अनूदित ग्रन्थ– इनके अनूदित ग्रन्थों में संस्कृत के यशस्वी नाटककार भास के 'स्वप्नवासवदत्तम्' का अनुवाद उल्लेखनीय है। 'वीरांगना', 'मेघनाद वध', 'वृत्र-संहार', 'प्लासी का युद्ध' आदि इनकी अन्य अनूदित रचनाएँ हैं।

मौलिक ग्रन्थ– अनूदित रचनाओं के अतिरिक्त इन्होंने लगभग 40 मौलिक काव्य-ग्रन्थों की रचना की है, जिनमें से प्रमुख के नाम हैं— रंग में भंग, जयद्रथ वध, शकुन्तला, भारत-भारती, किसान, पंचवटी, हिन्दू, त्रिपथगा, शक्ति, गुरुकुल, विकट भट, साकेत, यशोधरा, नहुष, द्वापर, सिद्धराज, कुणाल गीत, काबा और कर्बला, पृथिवी पुत्र, प्रदक्षिणा, जयभारत, विष्णुप्रिया, सैरिन्ध्री, वक-संहार, पत्रावली, वन-वैभव, हिडिम्बा, अंजलि और अर्घ्य, वैतालिक, अजित, झंकार, मंगल घट। इनके अतिरिक्त गुप्त जी ने तिलोत्तमा, अनघ, चन्द्रहास नामक तीन छोटे-छोटे पद्यबद्ध रूपक भी लिखे हैं।

3. मैथिलीशरण गुप्त की भाषा-शैली की विशेषताएँ बताइए।

उ०– **भाषा-शैली–** गुप्त जी का खड़ी बोली को हिन्दी कविता के क्षेत्र में प्रतिष्ठित करने वाले समर्थ कवि के रूप में अपना विशेष महत्व हैं। सरल, शुद्ध, परिष्कृत खड़ी बोली में कविता करके इन्होंने ब्रजभाषा के स्थान पर उसे समर्थ काव्य-भाषा सिद्ध कर दिखाया। स्थान-स्थान पर लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग से इनकी काव्य-भाषा और भी जीवन्त हो उठी है। गुप्त जी ने अपने समय में प्रचलित प्राय: सभी काव्य-शैलियों में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। यद्यपि मूलत: ये प्रबन्धकार थे तथापि इन्होंने मुक्तक, गीति, गीति-नाट्य, नाटक आदि के क्षेत्रों में भी सफलतापूर्वक अनेक प्रयोग किये हैं। इनकी शैली में गेयता, सहज प्रवहमयता, सरसता और संगीतात्मकता की अजस्र धारा प्रवाहित होती दीख पड़ती है।

मैथिलीशरण गुप्त जी की रचनाओं में अनेक रसों का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है। वियोग शृंगार के रूप में कवि की सफलता की प्रतीक 'यशोधरा' में यशोधरा और 'साकेत' में उर्मिला के उदाहरण हैं। शृंगार के अतिरिक्त रौद्र, शान्त आदि रसों का आयोजन करने में भी गुप्त जी अत्यधिक सफल रहे हैं। इन्होंने मन्दाक्रान्ता, वसन्ततिलका, द्रुतविलम्बित, हरिगीतिका, बरवै आदि छन्दों में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। तुकान्त, अतुकान्त और गीति—तीनों प्रकार के छन्दों का इन्होंने समान अधिकार से प्रयोग किया है। प्राचीन एवं नवीन सभी प्रकार के अलंकारों को गुप्त जी के काव्य में भाव-सौन्दर्यवर्द्धक और स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। एक ओर उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, यमक, श्लेष जैसे प्रचलित अलंकार आपकी रचनाओं में है तो दूसरी ओर ध्वन्यर्थ-व्यंजना, मानवीकरण जैसे आधुनिक अलंकार भी। अन्त्यानुप्रासों की योजना में तो इनका कोई जोड़ ही नहीं है।

व्याख्या संबंधी प्रश्न

1. निम्नलिखित पद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) तदन्तर बैठी .... नीरनिधि जैसी।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' के 'मैथिलीशरण गुप्त' द्वारा रचित महाकाव्य 'साकेत' आठवें सर्ग से 'कैकेयी का अनुताप' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– भ्रातृ-प्रेम से ओत-प्रोत भरतजी श्रीराम से भेंट करने के लिए उनके पंचवटी स्थित आश्रम में पहुँचे। रात्रि में सभा बैठी। उसी सभा का प्रस्तुत पद्य-पंक्तियों में मनोहारी वर्णन किया गया है।

व्याख्या– तदन्तर श्रीराम की पर्णकुटी के सामने सभा बैठ गई। आकाशरूपी नीले चँदोवे के नीचे बड़ी संख्या में तारोंरूपी

दीपक जल उठे थे। सभी देवतागण भी आसमान में आ विराजे और वे एकाटक-दृष्टि से सभा को देखने लगे। देवगणों को क्योंकि भरतजी भी परमप्रिय थे; अत: सभी देवता सभा के परिणामों को लेकर व्याकुल और भयभीत थे। उन्हें भय था कि कहीं भरतजी के आगमन को अन्यथा समझकर श्रीराम कोई कठोर निर्णय न ले लें। यदि ऐसा हो गया तो वह भरतजी के साथ-साथ मानवता एवं निश्छल प्रेम के साथ भी बड़ा भारी अन्याय होगा। यही सोचकर देवता भयभीत भी थे और व्याकुल भी कि कहीं गलतफहमी में कोई अन्यापूर्ण निर्णय न हो जाए।

पास में स्थित करौंदे के बगीचे में पुष्प खिले थे, मानो करौंदी-कुंज सभा के आयोजन पर आनन्द मना रहा है। उस करौंदी-कुंज से आती शीतल-मन्द-सुगन्धित वायु वहाँ उपस्थित सभी लोगों को पुलकित कर रही थी अर्थात् उन्हें आनन्द और सुख प्रदान कर रही थी। वहाँ सभा-स्थल पर चारों ओर ऐसी स्वच्छ-धवल चाँदनी बिखरी थी कि चन्द्रलोक में भी वैसी चाँदनी कहाँ छिटकती है। कहने का आशय यह है कि वहाँ प्रकृति ने चन्द्रलोक से भी सुन्दर वातावरण सृजित किया था। ऐसे आनन्दपूर्ण अलौकिक शान्त वातावरण के बीच भगवान श्रीराम ने समुद्र के समान अत्यन्त गम्भीर वाणी में इस प्रकार बोलना आरम्भ किया।

काव्य-सौन्दर्य– 1. गुप्तजी के प्रकृति-चित्रण की कुशलता की पुष्टि यहाँ सफलतापूर्वक हो जाती है। **2. भाषा–** साहित्यिक खड़ीबोली। **3. शैली–** प्रबन्धात्मक। **4. अलंकार–** रूपक, उपमा, पुनरुक्तिप्रकाश एवं अनुप्रास। **5. रस–** शान्त। **6. छन्द–** सवैया। **7. गुण–** प्रसाद। **8. शब्दशक्ति–** अभिधा।

(ख) यह सच है तो .... गोमुखी गंगा-।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– कैकेयी चित्रकूट की सभा में अपना पक्ष प्रस्तुत करती हुई कहती है—

व्याख्या– हे राम! जो कुछ तुमने अभी कहा, यदि वह सच है तो तुम अब अयोध्या को लौट चलो; अर्थात् अगर तुम यह जानते हो कि भरत को जन्म देकर भी मैं उसको न समझ सकी और इस कारण उसका हित समझकर जो कुछ मैंने किया, वह इसी अज्ञान का फल था, तो मेरी भूल के लिए मुझे क्षमा करते हुए अब वापस अयोध्या लौट चले।

कैकेयी बोलेगी इसकी कल्पना भी किसी ने न सोची थी। इसलिए उसे बोलते सुनकर सब लोग चौंक पड़े। कैकेयी का स्वर बड़ा दृढ़ था। वह बिना किसी संकोच या द्विविधा के राम से लौट चलने का आग्रह कर रही थी। सबने अचानक रानी की ओर देखा। वह ऐसी प्रतीत होती थी, मानो विधवापनरूपी पाले से ढकी हुई चन्द्रमा की कोई किरण हो; अर्थात् कैकेयी चन्द्रकला के समान सुन्दर थी और उसने पाले के समान सफेद वस्त्र धारण कर रखे थे। वे सफेद वस्त्र उसकी उदासी के प्रतीक थे। यद्यपि वह बाहर से शान्त दिखती थी, पर उसके मन में अनेकानेक भाव आ-जा रहे थे। किसी समय शेरनी के सदृश तेजस्विनी दिखाई पड़ने वाली कैकेयी आज समय के चक्र से गोमुखी गंगा के समान द्रवित हो रही थी। आशय यह है कि उसके आँसू पश्चात्ताप के थे और पश्चात्ताप की अग्नि समस्त पापों को नष्ट कर व्यक्ति को निर्मल बना देती है।

काव्य-सौन्दर्य– 1. गुप्त जी पहले कवि हैं, जिन्होंने कैकेयी का बड़ा सहानुभूतिपूर्ण चित्रण किया है। यहाँ पाषाण हृदया कैकेयी की आन्तरिक पीड़ा मुखरित हुई है। **2.** कवि ने कैकेयी के वात्सल्य भाव पर बल देकर उसके दोषों का मार्जन करा दिया है। **3. रस–** करुण और शान्त। **4. भाषा–** साहित्यिक खड़ीबोली। **5. शब्द-शक्ति–** अभिधा और लक्षणा। **6. गुण–** प्रसाद। **7. अलंकार–** उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक। **8. शैली–** प्रबन्ध। **9. छन्द–** सवैया।

(ग) दुर्बलता का ही चिह्न .... न निज विश्वासी।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– राम और भरत के परिसंवाद को सुनकर कैकेयी ने अपनी भूल स्वीकार करते हुए स्पष्ट किया—

व्याख्या– शपथ (सौगन्ध) खाना यद्यपि व्यक्ति की कमजोरी का प्रमाण है, तथापि मुझ अबला के लिए सौगन्ध खाकर अपनी बात को प्रमाणित करने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। इस प्रकार सौगन्ध खाते हुए कैकेयी ने कहा कि वास्तविकता यह है कि इस कार्य के लिए भरत ने मुझे नहीं उकसाया है। यदि कोई इस बात को सिद्ध कर दे कि मुझे भारत ने इस कार्य के लिए प्रेरित किया है तो मैं पति के समान ही अपने पुत्र को भी खो दूँ। कैकेयी ने उपस्थित जन-समुदाय से कहा कि मुझे मन की बात कह लेने दीजिए और मेरी बात सुन लीजिए। यदि मेरी बात में कोई सार हो तो उसे आप ग्रहण कर लें, अन्यथा नहीं। अब मेरे लिए यह सम्भव नहीं है कि मैं पहाड़ से बड़ा पाप करके भी चुप रह जाऊँ और राई जैसा छोटा पश्चात्ताप भी न कर सकूँ।

जिस क्षण कैकेयी अपने द्वारा किए गए दुष्टतापूर्ण कृत्य पर पश्चात्ताप कर रही थी, उस समय तारों से जड़ी हुई चाँदनी रात ओस-कणों के रूप में आँसुओं की वर्षा कर रही थी और नीचे मौन सभा अपने हृदय को थपथपाते हुए रुदनन कर रही थी।

जिस रानी ने उल्कापात करके अयोध्या के समाज को नष्ट कर दिया था, वही रानी आज अन्धकार में सर्वत्र प्रकाश बिखेर रही थी। उसने अपने अनुताप में उपस्थित जन-समुदाय में भय, विस्मय और खेद के भाव एक-साथ भर दिए थे। कैकेयी ने स्पष्ट रूप से कहा कि बेचारी मन्थरा तो एक साधारण दासी थी। उसके पास इतना बल कहाँ था कि वह उसके मन को बदल सकती? वास्तव में उसका मन ही अविश्वासी हो गया था।

काव्य-सौन्दर्य– 1. यहाँ पर कैकेयी के पश्चात्ताप को अपूर्व ढंग से अभिव्यंजित किया गया है। **2.** कैकेयी के इस पश्चात्ताप के माध्यम से गुप्तजी ने उसे एक सीमा तक दोषमुक्त करने का सफल प्रयास किया है। **3. भाषा–** साहित्यिक खड़ीबोली। **4. शैली–** प्रबन्ध। **5. अलंकार–** उपमा एवं अनुप्रास। **6. रस–** शान्त। **7. शब्दाशक्ति–** लक्षणा। **8. गुण–** प्रसाद।

(घ) कहते आते थे .... कुमाता माता।'

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत काव्य-पंक्तियों में भरत की माता कैकेयी अपने किए हुए पश्चात्ताप करती हुई स्वयं को धिक्कारती हुई कहती है—

व्याख्या– हे पुत्र राम! अभी तक लोग कहावत के रूप में यही कहते आए हैं कि पुत्र माता के प्रति चाहे कितने ही अपराध कर ले, किन्तु माता कभी भी उस पर क्रोध नहीं करती और न ही वह क्रोध में भरकर पुत्र का कोई अहित करती है। इसीलिए कहा जाता है कि पुत्र भरत और तुम्हारा दोनों का ही अहित किया है; अत: मैं वास्तव में लोगों की दृष्टि में एक बुरी माता हूँ। मगर मैंने यह सब दुष्कृत्य कोई अपना आप जान-बूझकर नहीं किया है, बल्कि मेरा भाग्य मेरे विपरीत था, जिसने मुझसे यह सब कार्य कराया; फिर मैं अपने दुर्भाग्य के आगे क्या कर सकती थी? अब तो मेरे दुष्कृत्य को देखकर लोग यही कहेंगे कि पुत्र ने तो माता के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पूर्ण निर्वाह करते हुए स्वयं को सच्चा पुत्र सिद्ध कर दिया, किन्तु माता कुमाता हो गई। इस प्रकार अब लोग पुरानी कहावत के स्थान पर यह नई कहावत कहा करेंगे कि पुत्र तो सदैव पुत्र ही रहता है, भले ही माता कुमाता बन जाए।

काव्य-सौन्दर्य– 1. माता और पुत्र के वास्तविक स्वरूप को परिभाषितत करने का सफल प्रयास गुप्तजी ने किया है। **2. भाषा–** साहित्यिक खड़ीबोली। **3. शैली–** प्रबन्धात्मक। **4. अलंकार–** अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश। **5. रस–** करुण एवं शान्त। **6. छन्द–** सवैया। **7. गुण–** प्रसाद। **8. शब्दशक्ति–** अभिधा।

(ङ) मुझको यह प्यारा .... पद्म-कोष है मेरा।''

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत अंश में कैकेयी के हृदय की आत्म-ग्लानि वर्णित हुई है।

व्याख्या– कैकेयी श्रीराम से कहती है कि हे राम! मुझे यह भरत प्रिय है और भरत को तुम प्रिय हो। इस प्रकार तो तुम मुझे दुगुने प्रिय हो। इसलिए तुम मुझसे अलग न रहो। मैं उस भरत के विषय में कुछ जानूँ या न जानूँ, किन्तु तुमतो इसे अच्छी तरह जानते हो और अपने से ज्यादा इसे चाहते हो। तुम दोनों भाईयों के बीच जिस प्रकार का प्रेम सब लोगों के सामने प्रकट हुआ है, उससे तो मेरे पाप का दोष भी पुण्य के सन्तोष में बदल गया है। मुझे तो यह सन्तोष है कि मैं स्वयं कीचड़ के समान निन्दनीय हूँ, किन्तु मेरी कोख से कमल के समान निर्मल भरत का जन्म हुआ।

काव्य-सौन्दर्य– 1. आत्मशुद्धि का एक विधान पश्चात्ताप भी है। कैकेयी ने यहाँ वही अपनाया है। **2.** इन पंक्तियों में कवि ने कैकेयी के वात्सल्य भाव को सहज अभिव्यक्ति हुई है। **3. रस–** वात्सल्य। **4. भाषा–** साहित्यिक खड़ीबोली। **5. शब्द-शक्ति–** अभिधा और लक्षणा। **6. गुण–** प्रसाद। **7. अलंकार–** रूपक, अनुप्रास। **8. शैली–** प्रबन्ध।

(च) निरख सखी, ये .... अर्घ्य भर लाए।''

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' के 'मैथिलीशरण गुप्त' द्वारा रचित महाकाव्य 'साकेत' नवम् सर्ग से गीत' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– प्रस्तुत गीत में शरद् ऋतु के आगमन पर उर्मिला की मन:स्थिति का चित्रण हुआ है। विरहिणी उर्मिला शरद् ऋतु का स्वागत करती हुई अपनी सखी से कह रही है कि—

व्याख्या– हे सखी! इन खंजन पक्षियों को देखकर मैं अनुमान लगाती हूँ कि मेरे प्रिय ने अवश्य ही इधर अपने नेत्र घुमाये हैं, जिनका आभास इन खंजनों में मिल जाता है। मेरे पति के नेत्र खंजन के समान ही सुन्दर हैं। जान पड़ता है कि यह धूप, जिससे सरोवर स्वच्छ हो गये हैं, प्रिय के द्वारा अर्जित ताप का ही मूर्त रूप है, जो चारों ओर फैल गया है और जिसे देखकर मेरा मन हर्षित हो उठा है। प्रियतम की गति और उनके हास्य का आभास मुझे इन हंसो में मिल जाता है। प्रियतम इस ओर घूमे होंगे अथवा निश्चय ही मेरा ध्यान करके मुस्कुराये होंगे, तभी ये हंस दिखलाई पड़ने लगे हैं। इन हंसों को देखकर ही ज्ञात हो रहा है कि मेरे पति मेरी ओर उन्मुख होकर हँस रहे हैं। कमल खिल उठे हैं और प्रियतम के लाल-लाल होंठों के समान ये दुपहिया के फूल भी खिल उठे हैं। हे शरत! तुम्हारा स्वागत है; क्योंकि तुम्हारे आगमन पर मैंने खंजन पक्षियों में प्रिय के नेत्रों का, धूप में प्रिय के तप का, हंसों में उनकी गति और हास्य का तथा बन्धूक पुष्पों में उनके अधरों का आभास पाया है। आकाश ने ओस की बूँदों के रूप में मोती न्यौछावर कर तुम्हारा स्वागत किया है और मैं अपने आँसुओं का अर्घ्य देकर तुम्हारी अभ्यर्थना करती हूँ।

काव्य-सौन्दर्य– 1. किसी अतिथि के आने पर चन्दन आदि द्वारा जो उसका सत्कार किया जाता है वह अर्घ्य कहलाता है। उर्मिला अपने अश्रुओं से शरत् को अर्घ्य दे रही है। **2. भाषा–** शुद्ध परिष्कृत खड़ीबोली। **3. रस–** विप्रलम्भ शृंगार। **4. छन्द–**

गेयपद। **5. शब्द-शक्ति–** लक्षणा और व्यंजना। **6. गुण–** माधुर्य। **7. अलंकार–** अपहुति और रूपक (अश्रु अर्घ्य)। **8. शैली–** मुक्तक। **9. भावसाम्य–** जायसी ने भी कहा है—

नयन जो देखा कँवल था, निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हंस भा, दसन जाति नग हीर।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए-

(क) प्रभु बोले गिरा गंभीर नीरनिधि जैसे।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' में संकलित 'मैथिलीशरण गुप्त' द्वारा रचित 'कैकेयी का अनुताप' शीर्षक से अवतरित हैं।

प्रसंग– भरत अपनी माताओंसहित राम से मिलने पंचवटी आते हैं। वहाँ राम उनसे कुशलता पूछते हैं। इस सूक्ति में उसी का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– प्रभु राम अत्यन्त धीर-गम्भीर वाणी में भरत से उनका कुशलक्षेम पूछने के साथ ही उनसे वन में आने का कारण पूछते हैं। उस समय उनके पूछने में पूरी गम्भीरता थी, न कोई ईर्ष्या-द्वेष की भावना और न ही कोई व्यंग्यबाण। जिस प्रकार समुद्र की लहरों की ध्वनि एक गम्भीरता होती है, वैसी ही गम्भीरता उस समय श्रीराम की वाणी में थी।

(ख) जनकर जननी ही जान न पाई जिसको?

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– पंचवटी आश्रम में अपने दु:ख को व्यक्त करते हुए जब भरत व्यथित हो गए तो श्रीराम ने भरत से जो कहा, उसी का विवेचन इस सूक्ति में निहित है।

व्याख्या– भरत के वचनों को सुनकर श्रीराम ने खींचकर उन्हें अपने हृदय से लगा लिया। भरत पर अपने आँसू बरसाते हुए श्रीराम ने कहा कि जिस (पुत्र) के उच्च भावों की गहराई का अनुमान स्वयं उसे जन्म देनेवाली माता तक न कर पाई, उसके हृदय की थाह किसी दूसरे को कैसे मिल सकती है; अर्थात् कोई भी ऐसे महान् व्यक्ति (भरत) की मन: स्थिति का अनुमान नहीं लगा सकता।

(ग) वह सिंहि अब थी हहा! गोमुखी गंगा–।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में कैकेयी की विनम्रता, उसके अनुताप और पश्चात्ताप की भावना को देखकर, चित्रकूट में उपस्थित सभी लोग उसके परिवर्तित स्वभाव पर मन-ही-मन विचार कर रहे हैं।

व्याख्या– रात्रि के समय चित्रकूट में हो रही एक सभा में कैकेयी श्रीराम और सभा में उपस्थित लोगों के समक्ष अपनी मनोव्यथा की व्यक्त कर रही है। उसकी पश्चात्तापयुक्त मर्मस्पर्शी वाणी को सुनकर सभा में उपस्थित लोग मन-ही-मन सोचते हैं कि शेरनी के समान केवल अपनी ही प्रभुता हेतु चेष्टारत तथा सब पर हावी हो जानेवाली कैकेयी आज गोमुखी गंगा के समान पवित्र एवं निर्मल हो गई है। आशय यह है कि घोर पश्चात्ताप की भावना से व्यथित होने के कारण कैकेयी का हृदय अत्यधिक कोमल, निर्मल एवं पवित्र हो गया है।

(घ) कहते आते थे यही अभी नरदेही,
'माता न कुमाता, पुत्र कुपुत्र भले ही।'

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में कैकेयी ने श्रीराम के समक्ष दु:ख व्यक्त करते हुए कहा है उसकी दुर्जनता के कारण, संसार में प्रचलित इस उक्ति पर से भी लोगों का विश्वास उठ जाएगा कि माता कभी भी कुमाता सिद्ध नहीं हो सकती।

व्याख्या– कैकेयी श्रीराम से कहती है कि आज तक मनुष्य यही कहते आए थे कि पुत्र कितना ही दुष्ट क्यों न हो, परन्तु माता उसके प्रति कभी भी दुर्भाव नहीं रखती है। अब तो मेरे कुटिल चरित्र के कारण लोगों का इस उक्ति पर से विश्वास हट जाएगा और संसार के लोग यही कहा करेंगे कि माता भले ही दुष्टतापूर्ण व्यवहार करने लगे, परन्तु पुत्र कभी कुपुत्र सिद्ध नहीं होता है।

(ङ) 'सौ बार धन्य वह एक लाल की माई,
जिस जननी ने है जना भरत-सा भाई।''

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– पंचवटी में उपस्थित सभा में और श्रीराम के समक्ष पश्चात्ताप व ग्लानि से व्यथित कैकेयी जब स्वयं को एक अभागिन रानी कहते हुए धिक्कारने लगी तो राम के साथ सारी सभा ने एक स्वर में यह सूक्ति कही—

व्याख्या– भरत जैसे पुत्र को जन्म देनेवाली माता कैकेयी सौ बार धन्य है। श्रीराम कहते हैं कि वह माता, जिसने मेरे भरत जैसे भाई को जन्म दिया है, वह निश्चय ही सौ बार धन्य है। इस प्रकार पश्चात्ताप की ज्वाला में जलती हुई और फूट-फूटकर रोती हुई कैकेयी को श्रीराम ने अपनी विलक्षण मानवतावादी भावना का परिचय देते हुए सांत्वना देने का यत्न किया।

(च) नभ ने मोती वारे, लो ये अश्रु अर्घ्य भर लाए।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' में संकलित 'मैथिलीशरण गुप्त' द्वारा रचित 'गीत' शीर्षक से अवतरित हैं।

प्रसंग– इस सूक्ति पंक्ति में लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला को अपने पति का स्मरण हो आया है, इसलिए वे प्रकृति के विभिन्न कार्य-व्यापारों को देखकर कल्पना करती हैं कि मेरी ही भाँति वन में निवास करते पति लक्ष्मण को मेरी याद अवश्य आई होगी।

व्याख्या– उर्मिला ने खंजन पक्षी को देखा तो उसे लगा कि आज निश्चय ही वन में पति-लक्ष्मण को मेरी याद आई होगी और उसी याद में उन्होंने अयोध्या की ओर देखा होगा, तभी तो उनके समान सुन्दर नेत्रोंवाला यह खंजन पक्षी मुझे दर्शन देने यहाँ चला आया। मैंने इस पक्षी के नेत्रों में तुम्हारे नेत्रों के दर्शन कर लिए हैं। भले ही तुम प्रतीक रूप में इस खंजन के माध्यम से मुझे दर्शन यहाँ चले आए हो, इसीलिए तुम्हारे स्वागत में आकाश ने ओस की बूँदों के रूप में सर्वत्र मोतियों की वर्षा की है। फिर ऐसे में मैं कैसे पीछे रह सकती हूँ; अत: तुम्हारे स्वागत के लिए अर्घ्य के रूप में मेरे नेत्र आँसूरूपी जल लेकर उपस्थित हैं।

(छ) धन के पीछे जन, जगती में उचित नहीं उत्पात।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में प्रेम के समक्ष धन की निस्सारता का उल्लेख किया गया है।

व्याख्या– उर्मिला अपने पति लक्ष्मण के पास वन में जाने के लिए उत्सुक है। वन में जाने से पूर्व उसकी स्मृति में वह सब घटनाक्रम आ जाता है, जिसके कारण कैकेयी ने श्रीराम को चौदह वर्ष का वनवास दिलाया था। इस स्मृति से आहत होकर ही वह कहती है कि सारा संसार धन के लिए भाँति-भाँति के उत्पात करता रहता है और धन के लिए सम्बन्धों और भावनाओं की महत्ता को भी भुला देता है, लेकिन ऐसा करना उचित नहीं है। संसार में सदैव प्रेम की ही जीत होती है।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न

1. 'कैकेयी का अनुताप' का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– 'कैकेयी का अनुताप' कविता में कवि ने कैकेयी के पश्चात्ताप का वर्णन किया है। कवि कहते हैं कि जब चित्रकूट में राम की पर्णकुटी के सामने सब बैठ गई। देवता भी टकटकी लगाए सभा को देख रहे थे। वे सभा के परिणामों को लेकर व्याकुल और भयभीत थे कि कही भरत के आगमन को अन्यथा समझकर श्रीराम कोई कठोर निर्णय ले लें। वही पास के बगीचे में करौंदे के पुष्प खिले थे, मानो यह कुंज सभा के आयोजन पर प्रसन्न हो। उससे आने वाली शीतल सुगंधित वायु सभी को पुलकित कर रही थी। चन्द्रलोक में भी ऐसी चाँदनी नहीं होती जैसे वहाँ बिखरी थी। तब श्रीराम के समुद्र के समान गंभीर वाणी में बोलना आरम्भ किया।

वे भारत से बोले, हे भरत! अपनी मनोकामना बताओ, यह सुनकर वहाँ उपस्थित सभी लोग सजग हो गए। भरत ने दु:खी हृदय से कहा हे श्रेष्ठ राम! मेरी कोई भी मनोकामना शेष नहीं, अब तो मुझे अकण्टक राज्य भी प्राप्त हो गया है। आपने अपना वासस्थान (कुटिया) वृक्ष के नीचे बनाकर जंगलों में वास कर लिया है अब मेरी कौन-सी मनोकामना शेष रह गई है। पिता ने तडप-तपड़कर अपना शरीर त्याग दिया। क्या फिर भी मेरी कोई अभागी मनोकामना शेष रह गई है। भरत विलाप करते हुए कहते हैं कि इसी अपयश के लिए क्या मेरा जन्म हुआ था? मेरी मानसिक और चारित्रिक हत्या स्वयं मेरी जननी ने ही कर दी। हे भाई! जिस व्यक्ति का संसार एवं घर नष्ट हो गया हो, तब उसकी कौन-सी इच्छा शेष रह सकती है?

मुझे तो स्वयं से ही विरक्ति हो गई है, और जिसे विरक्ति हो जाए, उसकी इच्छा और क्या हो सकती है।

भरत के वचनों को सुनकर श्रीराम ने उन्हें खींचकर अपने हृदय से लगा लिया और आँसू बरसाते हुए कहा कि जिसके उच्च विचारों को जन्म देनेवाली माता ही नहीं समझ सकी, उसके हृदय की थाह किसी दूसरे को कैसे मिल सकती है?

श्रीराम की यह बात सुनकर अचानक कैकेयी राम से कहती है कि अगर यह सच है कि मैं भरत को नहीं समझ पाई तो तुम अब घर को वापस लौट चलो। जिसे सुनकर सभा के लोग चौंक गए। उन्होंने रानी को देखा, जो सफेद वस्त्र धारण किए ऐसी लग रही थी, मानो कुहरे से ढकी चाँदनी हो। यद्यपि कैकेयी निश्छल व शांत बैठी थी परन्तु उसके मन में विभिन्न विचार उठ रहे थे। जो पहले सिंहनी की भाँति थी, वह अब गोमुखी गंगा के समान शांत, शीतल और पवित्र हो उठी थी। कैकेयी ने राम से कहा कि यह सत्य है कि मैं भरत को जन्म देने के बाद भी नहीं पहचान पाई। सभी व्यक्ति मेरी इस बात को सुन ले। राम ने भी अभी इसी बात को स्वीकार किया है। इसलिए तुम्हें वन भेजने में उसका कोई हाथ नही है, तुम मेरे अपराधों की सजा भरत को क्यों देते हो, इसलिए तुम मुझे जो चाहे दण्ड दे दो, क्योंकि मैं ही वास्तविक अपराधी हूँ, परन्तु घर लौट चलो।

यद्यपि शपथ (सौगन्ध) खाना दुर्बलता का प्रतीक है, परन्तु मेरे पास इसके अलावा दूसरा उपाय नहीं हैं। मैं शपथ खाकर कहती हूँ कि मुझे भरत ने नहीं उकसाया था। यदि कोई यह प्रमाणित कर दे तो मैं अपने पति के समान ही अपने पुत्र को भी खो दूँ।

कैकेयी सभा से कहती है कि मुझे अपने मन के भावों को व्यक्त कर लेने दो। यदि मेरी बात में कोई सार हो तो आप ग्रहण कर लें, अन्यथा नही। अब यह संभव नहीं है कि पहाड़ जितना अपराध करने के बाद, मैं राई जितना तुच्छ पश्चात्ताप भी न करूँ। उस समय तारों से जड़ी हुई चाँदनी रात ओस-कणों के रूप में आँसुओं की वर्षा कर रही थी और नीचे मौन सभा अपने हृदय को थपथपाते हुए रो रही थी।

जिस रानी ने उल्कापात करके अयोध्या के समाज को नष्ट कर दिया था, वही आज रात्रि के अन्धकार में प्रकाश बिखेर रही थी। उसने अपने पश्चात्ताप से सबके मन में खेद के भाव भर दिए थे। कैकेयी कहती है मन्थरा दासी का इतना साहस नहीं था कि वह मेरा मन बदल सके। वास्तव में मेरा मन ही अविश्वासी हो गया था।

कैकेयी अपने मन से कहती है कि तेरे अंदर ही घर में आग लगाने वाले भाव जागृत हुए थे, इसलिए तू ही उसमें जल। परन्तु क्या मेरे मन में ईर्ष्या के अतिरिक्त दूसरा कोई भाव नहीं था? क्या मेरे वात्सल्य का कोई मूल्य नहीं?

जो मेरा पुत्र भी पराया हो गया है। भले ही तीनों लोक मुझपे थूकें, या मेरी निंदा करें परंतु हे राम! मेरी तुमसे विनती है कि भारत की माता होने का गौरव मुझसे न छीना जाए।

अभी तक यह कहावत प्रसिद्ध थी कि भले ही पुत्र कुपुत्र हो सकता है, परन्तु माता कुमाता नहीं होती। परन्तु मेरे दुष्कृत्यों को देखकर अब सब यही कहेंगे कि पुत्र तो पुत्र ही रहा परन्तु माता कुमाता हो गई।

मैंने तो बस भरत का ऊपरी रूप ही देखा, उसके दृढ़ हृदय को नहीं देख पाई बस कोमल शरीर ही देख पाई। मैंने इसके पारमार्थिक स्वरूप को नहीं देखा और अपना स्वार्थ साधना चाहा। जिस कारण आज मेरा जीवन बाधाग्रस्त है। युगों-युगों तक यह कहानी चलती रहेगी कि रघुकुल मैं भी एक रानी अभागिन थी। जन्म-जन्मांतर तक अब मेरी आत्मा यही सुनेगी कि धिक्कार है उस रानी कैकेयी को, जिसे महास्वार्थ ने घेर लिया था।

राम कैकेयी की बात का खण्डन करते हुए राम कहते हैं कि वह माता धन्य है जिसने भरत जैसे भाई को जन्म दिया। राम के वचन सुनकर सभा में उपस्थित जनसमुदाय भी पागलों की तरह चिल्लाने लगा। कैकेयी कहती है कि मैंने जिस पुत्र के लिए अपयश कमाया मैंने तो उसे भी खो दिया। मैंने अपने स्वर्ग-सुखों को भी उस पर वार दिया और तुमसे भी तुम्हारा अधिकार (राज्य) ले लिया परन्तु हे राम! आज वही पुत्र दीन-हीन होकर रुदन कर रहा है। वह पकड़े हिरन की तरह भयभीत है। चन्दन के समान शांत स्वभाव वाला मेरा पुत्र आज अंगारे के समान प्रचण्ड हो रहा है। मेरे लिए इससे बड़ा क्या दण्ड हो सकता है?

कैकेयी कहती है मैंने तो अपने हाथ-पैर मोहरूपी नदी में डाल दिए थे मेरा यह कार्य ऐसा है जैसे कोई व्यक्ति स्वप्न या पागलपन में करता है। मैं अपने अपराध के लिए किसी दण्ड से भयभीत नहीं हूँ। आज गंगा और वरुणा भी मेरे लिए नरक की वैतरणी के समान है। मैं चिरकाल तक नरक की पीड़ा सह सकती हूँ, परन्तु स्वर्ग की दया मेरे लिए नरक के दण्ड से भी कठोर होगी। हे राम! मैंने तुम्हें अपने हृदय को वज्र से भी कठोर बनाकर वन भेजा।

अब मेरे हृदय की भावनाओं का विचार करते हुए अधिक मत रूठो और घर वापस चलो। इसके अलावा यदि मैं कुछ कहूँगी तो कोई विश्वास नहीं करेगा।

हे राम! मुझे यह (भरत) प्यारा है और तुम भरत को प्रिय हो इसलिए मुझे तुम दुगने प्रिय हो इसलिए तुम मुझसे अलग रहने का विचार न करो। भले ही मैं भरत के गुण अवगुण न जान पाऊँ परन्तु तुम इसे अपने से भी अधिक प्रेम करते हो। तुम दोनों भाइयों का जैसा प्रेम सभी के सामने प्रकट हुआ है उससे मेरा पाप भी पुण्य के सन्तोष में बदल गया है। मैं तो स्वयं कीचड़ के समान हूँ किन्तु मेरी कोख से भरत जैसा कमल उत्पन्न हुआ है। आगे आनेवाली ज्ञानीजन तुम्हारे और भरत के प्रेम का उदाहरण देकर तुम्हारी और भरत की श्रेष्ठता सिद्ध करेंगे और मुझे अपराधिनी सिद्ध करके गर्व से स्वयं का मस्तक ऊँचा करेंगे। मैं तो बस इतना जानती हूँ कि मैं एक माता हूँ और माँ के अधीर हृदय में तर्क के लिए कोई स्थान नहीं है इसलिए मैं चाहती हूँ कि तुम मेरी गोद अर्थात् स्नेह से दूर न होओ, अत: बिना कोई तर्क दिए तुम अब अयोध्या लौट चलो।

2. स्वपठित अंश के आधार पर कैकेयी का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उ०– कैकेयी अयोध्या के राजा दशरथ की पत्नी थी। उन्होंने राजा दशरथ से पूर्व में प्राप्त दो वर माँगे जिसमें उसने राम को 14 वर्ष का वनवास तथा भरत के लिए राज्य माँगा परन्तु भरत राज्य स्वीकार नहीं करते। कैकेयी के चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

(i) वात्सल्यमयी माता– कैकेयी भरत की वात्सल्यमयी माता थी। वह भरत के प्रेम के कारण ही राम के लिए वनवास माँगती है जो राज्य को उत्तराधिकारी थे। वह भरत को अयोध्या का राजा बनाना चाहती थी।

(ii) आदर्श व्यक्तित्व– कैकेयी चित्रकूट में सभा के बीच में अपनी गलतियों का पश्चात्ताप करते हुए एक आदर्श प्रस्तुत करती है। कैकेयी सभा में कहती है कि मैंने स्वार्थ के वशीभूत होकर ही यह अपराध किया था।

(iii) समाज-भीरू– कैकेयी एक सामाजिक स्त्री है। अपने अपराध का बोध होने पर वह राम से कहती है कि आने वाले युगों में मुझे लोग कुमाता कहकर पुकारेंगे। तथा मेरे स्वार्थ के कारण मुझे कलंकिनी सिद्ध करके गर्वित होंगे।

(iv) दृढ़निश्चयी– कैकेयी एक दृढ़ निश्चयी नारी है। वह अपने अपराध को सभा के बीच में दृढ़ता के साथ स्वीकार करती है। वह राम से कहती है कि वह अब वापस अयोध्या लौट चले।

(v) **स्पष्टवक्ता–** कैकेयी एक स्पष्टवक्ता महिला है। वह चित्रकूट की सभा में स्पष्ट रूप से कहती है कि मैं भरत को केवल ऊपरी मात्र ही जान पाई, उसके परमार्थिक स्वरूप को नहीं जान सकी। वह कहती है कि उसने जो अपराध किया है उसकी दोषी वह स्वयं है। मंथरा दासी का इतना साहस नहीं था कि वह उसको बहला (उकसा) सके।

3. 'गीत' का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– 'गीत' कविता में लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला शरद्-ऋतु का स्वागत करते हुए अपनी सखी से कहती है कि हे सखी! देख खंजन पक्षी आ गए हैं। मेरे प्रियतम ने अपने नेत्र इस ओर किए हैं। चारों ओर धूप के रूप में प्रियतम के तन की गर्मी फैली हुई है। उनके मन की सरसता के कारण सरोवर कमल के फूलों से खिल उठे हैं। वहाँ वन में प्रियतम घूम रहे होंगे और उनकी मन्द गति का स्मरण कराने के लिए ये हंस उठकर यहाँ आ गए हैं। प्रियतम वन में मुझे याद करके मुस्कुराए होंगे तभी तो कमल खिल उठे हैं। और लाल रंग के बन्धूक के फूल प्रियतम के अधरों के समान लगते हैं। उर्मिला शरद् का स्वागत करती हुई कहती है कि मैंने बड़े भाग्य से तुम्हारे दर्शन पाए हैं। आकाश ने भी तुम्हारे स्वागत में ओस रूपी मोती न्योछावर किए हैं और मैं तुम्हें आँसूरूपी अर्घ्य प्रस्तुत करती हूँ।

उर्मिला शिशिर ऋतु से कहती है कि तू पर्वतों और वनों में मत जाना। तुझे जितना पतझड़ चाहिए, वह मैं तुम्हें अपने नन्दवन रूपी शरीर से दे दूँगी। यदि तुझे दूसरों को कँपाना प्रिय है तो तुझे जितनी भी कँपकँपी चाहिए तू मेरे शरीर से ले ले। वह कहती है कि हे शिशिर! यदि तुझे पीलापन चाहिए तो मेरे मुख से ले ले। यदि तू मेरे मनरूपी बर्तन में आँसू भी जमा दे तो मुझे स्वीकार हैं मैं उसे मोती समझकर सँभाल कर रख लूँगी। मेरी हँसी तो चली गई है, क्या मैं अपने इस जीवन में रो भी न सकूँ। मैं यह जानने को आतुर हूँ कि हँसना और रोना दोनों छिन जाने के बाद मेरे इस भावरूपी संसार में फिर क्या हलचल शेष रह जाएँगी।

उर्मिला कामदेव से प्रार्थना करती है कि हे कामदेव! तुम मुझे अपने पुष्प बाणों से मत घायल करो। तुम वसन्त के मित्र हो, इसलिए मुझ पर विष की वर्षा मत करो। तुम्हारे प्रहार से मुझे व्याकुलता मिलती है, और तुम विफल होते हो इसलिए अब अधिक श्रम मत करो और अपनी थकान दूर कर लो। मैं कोई भोग-विलास की इच्छा करने वाली नारी नहीं हूँ जो तुम अपना जाल फैला रहे हो। यदि तुममें शक्ति है तो शिव-नेत्र के समान बाधाओं को भस्म करने वाले मेरे सिंदूर बिन्दु की ओर देखो। उर्मिला कहती है कि यदि तुम्हें रूप-सौन्दर्य पर घमंड है तो तुम इसे मेरे पति लक्ष्मण पर वार दो क्योंकि तुम उनके चरणों की धूल के बराबर भी नहीं हो। यदि तुम्हे अपनी पत्नी रति पर घमंड है तो मेरे चरणों की धूल को उसके सर पर रख दो।

उर्मिला कहती है कि मेरे मन में बार-बार यही विचार आता है कि मैं यह सब धन-धाम छोड़कर उसी प्रकार वन मे रहूँ जैसे मेरे प्रियतम रहते हैं। मैं अपने प्रिय के व्रत में बाधा नहीं बनना चाहती, इसलिए मैं उनके निकट रहकर भी दूर रहूँगी। मैं चाहती हूँ कि मेरी विरह-व्यथा यों ही बनी रहे, परन्तु उसका समाधान भी होता रहे। मेरे मन में यही आता है कि प्रियतम के दर्शन करके मैं आनंदित भी होती रहूँ और विरह के कारण विलाप भी करूँ। मैं अपने प्रिय के समीप रहते हुए उन्हें थोड़ी-थोड़ी देर में झुरमुट में से देख लूँ। जिस मार्ग से वह चले जाए उस मार्ग की धूल में लेटकर आनंद प्राप्त करूँ। इस प्रकार प्रियतम अपनी साधना में लगे रहें। उर्मिला संसार को सन्देश देती हुई कहती हैं कि हे मनुष्यों! इस संसार में धन और वैभव के लिए उत्पात और संघर्ष करना उचित नहीं। जीवन में प्रेम की ही विजय होती है, धन की नहीं।

काव्य-सौन्दर्य से सम्बन्धित प्रश्न

1. ''पाया तुमने .... तथापि अभागा?'' पंक्तियों में प्रयुक्त अलंकार का नाम लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार का प्रयोग हुआ है।

2. ''यह सच है .... तुम्हारी मैया।'' पंक्तियों में प्रयुक्त अलंकार का नाम लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में उत्प्रेक्षा, उपमा एवं रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

3. ''सौ बार धन्य .... लाल की माई।'' पंक्ति में निहित रस व उसका स्थायी भाव बताइए।

उ०– प्रस्तुत पंक्ति में वीर रस है जिसका स्थायी भाव उत्साह है।

4. ''शिशिर, न .... भाव-भुवन में।'' पंक्तियों का काव्य-सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए।

उ०– **काव्य-सौन्दर्य– 1.** उर्मिला का सात्विक प्रेम अति कोमल मनोभावों के साथ त्यागोन्मुख है; अत: आदरणीय है, **2. भाषा–** शुद्ध परिष्कृत खड़ीबोली, **3. रस–** विप्रलम्भ श्रृंगार, **4. छन्द–** गेयपद, **5. शब्द-शक्ति–** लक्षणा और व्यंजना, **6. गुण–** माधुर्य, **7. अलंकार–** रूपक, उपमा तथा श्लेष, **8. शैली–** मुक्तक।

पाठ्येतर सक्रियता

उ०– छात्र स्वयं करें।

5 गीत, श्रद्धा-मनु

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 122-123 का अवलोकन कीजिए।

कवि पर आधारित प्रश्न–

1. जयशंकर प्रसाद का जीवन परिचय देते हुए हिन्दी साहित्य में इनका योगदान बताइए।

उ०– कवि परिचय– छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद का जन्म काशी के प्रसिद्ध वैश्य परिवार में 30 जनवरी, सन् 1889 ई० को हुआ था। उनका परिवार 'सुँघनी साहू' के नाम से प्रसिद्ध था। इनके यहाँ तम्बाकू का व्यापार होता था। 'प्रसाद' जी के पिता का नाम देवीप्रसाद तथा पितामह का नाम 'शिवरत्न साहू' था। 'प्रसाद' जी का बाल्यकाल सुखपूर्वक व्यतीत हुआ, लेकिन अल्पवय में ही ये माता-पिता की छत्र-छाया से वंचित हो गए। 'प्रसाद' जी की शिक्षा की व्यवस्था उनके बड़े भाई शम्भूरत्न ने की। प्रारम्भ में इनका प्रवेश क्वीन्स कॉलेज में हुआ लेकिन वहाँ इनका मन नहीं लगा। इसके बाद इन्होंने घर पर ही संस्कृत व अंग्रेजी भाषा का अध्ययन किया।

प्रसाद जी की साहित्य में अभिरुचि आरम्भ से ही थी। ये कभी-कभी कविता स्वयं लिखते थे। इनके भाई ने जब देखा कि इनका मन कविता लिखने में लगता है, तब उन्होंने इन्हें इस क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया। 'प्रसाद' जी द्वारा रचित 'कामायनी' महाकाव्य पर 'हिन्दी-साहित्य सम्मेलन' द्वारा इन्हें 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' प्रदान किया गया। कुछ समय के उपरान्त इनके भाई शम्भूरत्न का देहान्त हो गया, जिसका प्रसाद जी के हृदय पर गहन आघात हुआ। अब व्यापार का उत्तरदायित्व इन्हीं पर आ गया। पिता के सामने से ही व्यापार घाटे में चल रहा था, जिससे वे ऋणग्रस्त थे। उस ऋण को अदा करने के लिए प्रसाद जी ने सारी सम्पत्ति बेच दी लेकिन उसके बाद भी ये सुखमय जीवन व्यतीत नहीं कर सके। चिन्ताओं के कारण इनका स्वास्थ्य भी बिगड़ गया। ये क्षय-रोग से ग्रस्त हो गए। क्षय रोग के कारण ही 15 नवम्बर सन् 1937 ई० में बहुमुखी प्रतिभा के धनी इस साहित्यकार का स्वर्गवास हो गया।

हिन्दी साहित्य में योगदान– महाकवि जयशंकर प्रसाद छायावादी काव्य के जन्मदाता एवं छायावादी युग के प्रवर्त्तक समझे जाते हैं। इनकी रचना 'कामायनी' एक कालजयी कृति है, जिसमें छायावादी प्रवृत्तियों एवं विशेषताओं का समावेश हुआ है। अन्तर्मुखी कल्पना एवं सूक्ष्म अनुभूतियों की अभिव्यक्ति प्रसाद जी के काव्य की मुख्य विशेषता रही है। प्रेम और सौन्दर्य इनके काव्य का प्रमुख विषय रहा है, किन्तु इनका दृष्टिकोण इसमें भी विशुद्ध मानवतावादी रहा है। इन्होंने अपने काव्य में आध्यात्मिक आनन्दवाद की प्रतिष्ठा की है। ये जीवन की चिरन्तन समस्याओं का मानवीय दृष्टिकोण पर आधारित समाधान ढूँढने के लिए प्रयत्नशील रहे। ये किसी सीमित अथवा संकुचित राष्ट्रीयता पर आधारित भावना से आबद्ध होने के स्थान पर सम्पूर्ण विश्व से प्रेम करते थे।

प्रसाद जी की आरम्भिक रचनाओं में संकोच और झिझक होते हुए भी कुछ कहने को आकुल चेतना के दर्शन होते हैं। 'चित्राधार' में ये प्रकृति की रमणीयता और माधुर्य पर मुग्ध हैं। 'प्रेम पथिक' में प्रकृति की पृष्ठभूमि में कवि-हृदय में मानव-सौन्दर्य के प्रति जिज्ञासा का भाव जागता है। 'आँसू' प्रसाद जी का उत्कृष्ट, गम्भीर, विशुद्ध मानवीय विरह-काव्य है, जो प्रेम के स्वर्गिक रूप का प्रभाव छोड़ता है। इसलिए कुछ लोग इसे आध्यात्मिक विरह का काव्य मानने का आग्रह करते हैं। 'कामायनी' प्रसाद के काव्य की सिद्धवस्था है और इनकी काव्य-साधना का पूर्ण परिपाक है। कवि ने मनु और श्रद्धा के बहाने पुरुष और नारी के शाश्वत स्वरूप एवं मानव के मूल मनोभावों का काव्यमय चित्र अंकित किया है। प्रसाद जी ने नारी को दया, माया, ममता, त्याग, सेवा, समर्पण, विश्वास आदि से युक्त बताकर उसे साकार श्रद्धा का रूप प्रदान किया है। काव्य, दर्शन और मनोविज्ञान की त्रिवेणी 'कामायनी' निश्चय ही आधुनिककाल की सर्वोत्कृष्ट सांस्कृतिक रचना है। प्रकृति को सचेतन अनुभव करते हुए उसके पीछे परम सत्ता का आभास कवि ने सर्वत्र किया है। यही इनका रहस्यवाद है। इनका रहस्यवाद साधनात्मक नहीं है, वह भाव-सौन्दर्य से संचालित प्रकृति का रहस्यवाद है। अनुभूति की तीव्रता, वेदना, कल्पना-प्रवणता आदि प्रसाद-काव्य की कतिपय अन्य विशेषताएँ हैं।

2. जयशंकर प्रसाद की कृतियों का उल्लेख कीजिए।

उ०– रचनाएँ– इन्होंने कुल 67 रचनाएँ प्रस्तुत कीं। इनमें से प्रमुख काव्य-रचनाओं का उल्लेख इस प्रकार है—

कामायनी– यह महाकाव्य छायावादी काव्य का कीर्ति-स्तम्भ है। इस महाकाव्य में मनु और श्रद्धा के माध्यम से हृदय (श्रद्धा) और बुद्धि (इड़ा) के समन्वय का सन्देश दिया गया है।

आँसू– यह वियोग पर आधारित काव्य है। इसके एक-एक छन्द में दु:ख और पीड़ा साकार हो उठी है।

चित्राधार– यह ब्रजभाषा में रचित काव्य-संग्रह है।

झरना– यह प्रसाद जी की छायावादी कविताओं का संग्रह है। इस संग्रह में सौन्दर्य और प्रेम की अनुभूतियों को मनोहारी रूप में वर्णित किया गया है।

लहर– इसमें प्रसाद जी की भावात्मक कविताएँ संगृहीत हैं।

'कानन-कुसुम' तथा 'प्रेम पथिक' भी इनकी महत्वपूर्ण काव्य-रचनाएँ हैं।

इसके अतिरिक्त प्रसाद जी ने अन्य विधाओं में भी साहित्य-रचना की है। उनका विवरण इस प्रकार है—

नाटक– नाटककार के रूप में इन्होंने स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, जनमेजय का नागयज्ञ, एक घूँट, कामना, विशाख, राज्यश्री, कल्याणी, अजातशत्रु और प्रायश्चित्त नाटकों की रचना की है।

उपन्यास– 'कंकाल', 'तितली' और 'इरावती' (अपूर्ण)।

कहानी-संग्रह– प्रतिध्वनि, छाया, आकाशदीप, आँधी, इन्द्रजाल, ममता, मछुवा आदि।

निबन्ध– 'काव्य और कला' तथा अन्य निबन्ध।

3. जयशंकर प्रसाद की भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।

उ०– **भाषा शैली–** प्रसाद जी ने काव्य-भाषा के क्षेत्र में भी युगान्तर उपस्थित किया है। द्विवेदी युग की अभिधाप्रधान भाषा और इतिवृत्तात्मक शैली के स्थान पर प्रसाद जी ने भावानुकूल चित्रोपम शब्दों का प्रयोग किया है। लाक्षणिकता और प्रतीकात्मकता से युक्त प्रसाद जी की भाषा में अद्‌भुत नाद-सौन्दर्य और ध्वन्यात्मकता है। चित्रात्मक भाषा में संगीतमय चित्र अंकित किए हैं। प्रसाद जी ने प्रबन्ध तथा गीति दोनों काव्य-रूपों में समान अधिकार से श्रेष्ठ काव्य-रचना की है। 'लहर', 'झरना' आदि इनकी मुक्तक काव्य-रचनाएँ हैं। प्रबन्ध-काव्यों में 'कामायनी' जैसा रत्न इन्होंने दिया है।

प्रसाद जी का काव्य अलंकारों की दृष्टि से भी अत्यन्त समृद्ध है। सादृश्यमूलक अर्थालंकारों में ही प्रसाद जी की वृत्ति अधिक रमी है। परम्परागत अलंकारों को ग्रहण करते हुए भी प्रसाद जी ने नवीन उपमानों का प्रयोग करके उन्हें नई भंगिमा प्रदान की है। अमूर्त उपमान-विधान इनकी विशेषता है। मानवीकरण, ध्वन्यर्थ-व्यंजना, विशेषण-विपर्यय जैसे पाश्चात्य प्रभाव से गृहीत आधुनिक अलंकारों के भी सुन्दर प्रयोग प्रसाद जी की रचनाओं में मिलते हैं। विविध छन्दों का प्रयोग और नवीन छन्दों की उद्‌भावना भी इन्होंने की है। 'आँसू' के छन्द हिन्दी-साहित्य की अनुपम निधि हैं। वस्तुत: प्रसाद जी का साहित्य अनन्त वैभवसम्पन्न है।

प्रसाद जी भाव और शिल्प दोनों दृष्टियों से हिन्दी के युग-प्रवर्त्तक कवि के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं। इन्होंने एक नवीन काव्यधारा के रूप में छायावाद को पुष्ट किया। भाव और कला, अनुभूति और अभिव्यक्ति, वस्तु और शिल्प सभी क्षेत्रों में प्रसाद जी ने युगान्तरकारी परिवर्तन किए। साहित्य के क्षेत्र में इनके महत्वपूर्ण योगदान को कभी भी विस्मृत नहीं किया जा सकता। हिन्दी-साहित्य सदैव इनका ऋणी रहेगा।

व्याख्या सम्बन्धी प्रश्न

1. निम्नलिखित पद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) बीती विभावरी .... भरे विहाग री।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य-पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'जयशंकर प्रसाद' द्वारा रचित काव्य ग्रन्थ 'लहर' से 'गीत' नामक शीर्षक से उद्‌धृत है।

प्रसंग– इस गीत में कवि ने प्रात: कालीन सौन्दर्य के माध्यम से प्रकृति के जागरण का आह्वान किया है।

व्याख्या– एक सखी दूसरी सखी से कहती है कि हे सखी! रात्रि व्यतीत हो गई; अत: अब तेरा जागना ही उचित है। गगनरूपी पनघट में ऊषारूपी नायिका तारा (नक्षत्र) रूपी घड़े को डुबो रही है; अर्थात् समस्त नक्षत्र प्रभात के आगमन के कारण आकाश में लीन हो गए हैं। प्रात:काल के आगमन पर पक्षी-समूह कलरव कर रहा है तथा पल्लवों का आँचल हिलने लगा है। शीतल-मन्द-सुगन्धित समीर प्रवाहित हो रहा है। लो, यह लता भी नवीन परागरूपी रस से युक्त गागर (घड़े) को भर लाई है। (समस्त कलियाँ पुष्पों में परिवर्तित होकर पराग से युक्त हो गई हैं, परन्तु) हे सखी! तू अपने अधरों में प्रेम की मदिरा को पीए हुए, अपने बालों में सुगन्ध को समाए हुए तथा आँखों में आलस्य भरे हुए सो रही है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रात: काल होने पर सर्वत्र जागरण हो गया है, परन्तु हे सखी! तू अब तक सो रही है, जबकि यह सोने का समय नहीं है।

काव्य-सौन्दर्य– 1. प्रस्तुत गीत 'जागरण-गीत' की कोटि में आता है। **2.** यह गीत प्रसादजी के संगीत-ज्ञान का परिचायक है। **3. विहाग–** रात्रि के अन्तिम पहर में गाए-बजाए जानेवाले राग को 'विहाग' कहते हैं। **4. भाषा–** शुद्ध संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली। **5. शैली–** गीति-शैली का सुन्दर प्रयोग। **6. अलंकार–** सागंरूपक, 'कुल-कुल' में पुनरुक्तिप्रकाश, मानवीकरण, उपमा, श्लेष एवं ध्वन्यर्थ-व्यंजना। **7. रस–** संयोग शृंगार। **8. शब्दशक्ति–** लक्षणा एवं व्यंजना। **9. गुण–** माधुर्य।

(ख) ''कौन तुम?.................................... मन का आलस्य!''

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक 'काव्यांजलि' के 'जयशंकर प्रसाद' द्वारा रचित महाकाव्य 'कामायनी' के 'श्रद्धा-सर्ग' से 'श्रद्धा-मनु' शीर्षक से उद्‌धृत है।

प्रसंग– प्रस्तुत पद्यांश में श्रद्धा मनु से उनका परिचय पूछ रही है।

व्याख्या– संसाररूपी सागर के तट पर तरंगों (लहरों) द्वारा फेंकी गयी किसी मणि के सदृश तुम कौन हो, जो चुपचाप बैठे अपनी शोभा की किरणों से इस निर्जन प्रदेश को स्नान करा रहे हो; अर्थात् जिस प्रकार लहरें समुद्र के तल से किसी मणि को उठाकर तट पर पटक देती हैं, उसी प्रकार सांसारिक आघातों से ठुकराये हुए हे भव्य पुरुष! तुम कौन हो? जिस प्रकार मणि अपने किरणों की कान्ति से सूनेपन को जगमगा देती है, उसी प्रकार तुम भी चुपचाप बैठे इस वीराने को अपने सौन्दर्य की छटा से शोभाशाली बना रहे हो।

हे अपरिचित! मधुरता, थकावट और नीरवता से परिपूर्ण तुम कुछ ऐसे शान्त भाव से एकान्त में बैठे हो, जैसे तुमने संसार के रहस्य को भली-भाँति समझ लिया हो। इसी कारण तुम्हारे मन की सारी चंचलता दूर हो गयी है और तुम मौन बैठे हो। तुम्हारे इस मौन से जहाँ एक ओर तुम्हारी बाह्य सुन्दरता प्रकट हो रही है, वहीं दूसरी ओर तुम्हारे हृदय की कोमलता भी व्यक्त हो रही है। भाव यह है कि संसार के रहस्य को जानने की उत्सुकता के कारण ही मानव-मन चंचल और अस्थिर रहता है, यदि वह रहस्य मनुष्य को पता चल जाए, तो उसका मन पूर्णत: शान्त हो जाता है। योगीजन तप द्वारा इस रहस्य को जान लेते हैं, इसी कारण उनके मौन से उनका तेज एवं उनके हृदय की करुणा दोनों प्रकट होते हैं। मनु भी उसी योगी के सदृश मौन हैं।

काव्य-सौन्दर्य– 1. मानव-व्यक्तित्व के दो पक्ष होते हैं— बाह्य और आन्तरिक। सुन्दरता या कुरूपता बाह्य पक्ष है तो सद्‌गुण या दुर्गुण आन्तरिक पक्ष। इसे शील भी कहते हैं। सुन्दरता और शील दोनों के सम्मिलन से ही व्यक्तित्व पूर्ण बनता है। श्रद्धा ने मनु के व्यक्तित्व को पूर्ण पाया। उनकी आकृति से उनकी सुन्दरता और उनके हृदय की करुणा अर्थात् सौन्दर्य और शील दोनों प्रकट हो रहे थे; अत: मनु पूर्ण मानव थे। **2.** सागर की लहरों द्वारा फेंकी हुई मणि से मनु की तुलना करके प्रसाद जी ने उनके एकाकी जीवन की निराशा का सुन्दर चित्रण किया है। **3. भाषा–** खड़ीबोली। **4. रस–** शृंगार। **5. शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **6. गुण–** माधुर्य। **7. अलंकार–** रूपक और अनुप्रास। **8. शैली–** प्रबन्ध। **9. छन्द–** शृंगार छन्द। (इसके प्रत्येक चरण में 16 मात्राएँ होती हैं)।

(ग) और देखा वह .... सौरभ संयुक्त।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत छन्द में श्रद्धा के आन्तरिक और बाह्य गुणों का सुन्दर एवं मनोहारी चित्रण हुआ है।

व्याख्या– जब मनु ने कुतूहलवश ऊपर की ओर देखा तो उन्हें सौन्दर्य से परिपूर्ण श्रद्धा अपने निकट खड़ी हुई दिखाई दी। यह एक अभूतपूर्व और सुन्दर दृश्य था। यह दृश्य उनके नेत्रों का जादू के समान अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। मनु ने श्रद्धा को देखा तो उन्हें लगा कि वह फूलों से लदी हुई सौन्दर्यमयी लता के समान है। उन्होंने अनुभव किया कि जैसे चन्द्रमा की शीतल चाँदनी से लिपटा हुआ बादल का कोई टुकड़ा उनके सामने खड़ा है।

श्रद्धा के शरीर का अधिकांश भाग खुला हुआ था और उसकी देहयष्टि (शरीर) पर्याप्त लम्बी थी। उसे देखकर ऐसा आभास हो रहा था, मानो वह उदार और विस्तृत हृदय की प्रतिमूर्ति हो; अर्थात् विस्तृत और उदार हृदय के समान ही उसका शरीर भी विशाल और लम्बा था। मधुर वार्त्तालाप के समय श्रद्धा का वह लम्बा और सुन्दर शरीर वसन्त की सुगन्धित और मन्द-मन्द बहनेवाली पवन के साथ अठखेलियाँ करता हुआ साल के छोटे वृक्ष के समान सुगन्ध से परिपूर्ण होकर वहाँ शोभामान् था।

काव्य-सौन्दर्य– 1. श्रद्धा में हृदय के सभी उदात्त गुण— उदारता, विशालता, गम्भीरता, मधुरिमा आदि दर्शाए गए हैं। **2.** 'शिशु साल' से श्रद्धा की लम्बाई, स्वाभाविक सुगन्ध, मस्ती और युवावस्था की ओर संकेत हुआ है। **3. भाषा–** संस्कृत खड़ीबोला। **4. अलंकार–** उपमा, रूपकातिशयोर्क्ति एवं अनुप्रास। **5. रस–** शृंगार। **6. शब्दशक्ति–** लक्षणा। **7. गुण–** माधुर्य। **8. छन्द–**शृंगार छन्द।

(घ) नील परिधान .... हो छविधाम!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इन पंक्तियों में कवि ने श्रद्धा की वेशभूषा का चित्रात्मक वर्णन किया है।

व्याख्या– श्रद्धा अपने शरीर पर नीले रंग का मेष-चर्म (भेड़ की खाल) धारण किए है। उसकी वेशभूषा में से कहीं-कहीं उसके कोमल और सुकुमार अंग दिखाई दे रहे हैं। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो नीले बादलों के वन में गुलाबी रंग का सुन्दर बिजली का फूल खिला हुआ हो।

श्रद्धा का वह कान्तिमय और ललितायुक्त मुख काले रंग के बादलों से घिरा हुआ प्रतीत हो रहा था, मानो सन्ध्या के समय पश्चिम की ओर आकाश में काले बादल घिर आए हों और लालिमायुक्त सूर्य उन काले बादलों को भेदकर आकाश में सुशोभित हो।

काव्य-सौन्दर्य– 1. यहाँ कवि ने श्रद्धा के अलौकिक और असीम सौन्दर्य का चित्र प्रस्तुत किया है। **2.** कवि ने श्रद्धा के रूप-सौन्दर्य का चित्रण करते हुए उसके गौर वर्ण पर नीले रंग के परिधान का उल्लेख किया है। **3. भाषा–** खड़ीबोली। **4. अलंकार–** उत्प्रेक्षा, रूपक एवं विरोधाभास। **5. रस–** शृंगार। **6. शब्दाशक्ति–** अभिधा और लक्षणा। **7. गुण–** माधुर्य। **8. छन्द–** शृंगार छन्द।

(ङ) घिर रहे थे .... हो अभिराम।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इन पंक्तियों में श्रद्धा की छवि का मनोहारी चित्रण किया गया है। मनु जब उसे देखते हैं तो वे उस पर मुग्ध होकर ठगे-से रह जाते हैं।

व्याख्या– श्रद्धा के कन्धे पर लटकी हुई घुँघराले बालों की लट उसके मुख के पास झूल रही थी, मानो कोई नन्हा-सा बादल का टुकड़ा अमृत पीने के लिए चन्द्रमा के तल को छूने का प्रयत्न कर रहे हो।

उसके मुख पर मोहक मुस्कान ऐसी लग रह थी, मानो लाल नयी कोपल पर सूर्य की स्निग्ध किरण अलसायी-सी विश्राम कर रही हो।

काव्य-सौन्दर्य– 1. कवि ने श्रद्धा के सौन्दर्य का अत्यन्त सूक्ष्म और मनोहारी चित्रण किया है। **2.** श्रद्धा का सौन्दर्य-चित्रण उदात्त भाव से परिपूर्ण है। **3.** इस पद में प्रकृति ने चेतन स्वरूप की कल्पना करके उसे नायिका पर आरोपित किया गया है। **4. भाषा–** संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली। **5. शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **6. रस–** शृंगार। **7. अलंकार–** रूपक, उपमा एवं उत्प्रेक्षा। **8. शैली–** प्रबन्ध। **9. छन्द–** शृंगार छन्द।

(च) कहा मनु ने .... मंद बयार!'

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– श्रद्धा मनु से उनका परिचय पूछती है। इस पर मनु उसे अपनी दयनीय स्थिति का परिचय देते हैं।

व्याख्या– मनु अपना परिचय श्रद्धा को देते हुए कहते हैं कि पृथ्वी और आकाश के बीच में इस नीरव स्थान पर मेरा एकाकी जीवन एक पहेली बना हुआ है। उसे सुलझाने को मेरे पास कोई उपाय भी नहीं है। मैं इस निर्जन स्थान में असहाय (बेसहारा) होकर अपनी वेदना से जलता हुआ उसी प्रकार इधर-उधर भटक रहा हूँ, जिस प्रकार एक जलता हुआ तारा टूटकर बिना किसी आश्रय के आकाश में इधर-उधर भटकता रहता है।

अपना परिचय देने के बाद मनु श्रद्धा से प्रश्न करते हैं कि हे सुकुमार अंगोवाली, तुम कौन हो? अचानक इस निर्जन स्थान में आकर तुमने मेरे इस अभावयुक्त और निराश जीवन को उसी प्रकार आशा का सन्देश दिया है, जिस प्रकार पतझड़ के समय कोयल अपने मीठे स्वर से वसन्त के आगमन की सूचना देती है। मेरे इस अतिशय निराशापूर्ण जीवन में तुम आशा की किरण जैसी दिखाई दे रही हो। साथ ही वेदना और व्यथा से तप्त मेरे जीवन में शीतल और मन्द पवन की भाँति नवीन चेतना उत्पन्न कर रही हो।

काव्य-सौन्दर्य– 1. टूटे हुए उस तारे से मनु की स्थिति की तुलना करके कवि ने उनकी निराश्रित और उद्देश्यहीन स्थिति का चित्रण किया है। **2.** श्रद्धा को वसन्त का दूत बताकर कवि ने यह संकेत किया है कि वह मनु के जीवन में आशाओं का संचार करने के लिए उपस्थित हुई है। **3. भाषा–** साहित्यिक खड़ीबोली। **4. शैली–** प्रतीकात्मक और लाक्षणिक। **5. अलंकार–** श्लेष, उपमा, रूपक एवं रूपकातिशयोक्ति। **6. रस–** शृंगार। **7. शब्दशक्ति–** लक्षणा। **8. गुण–** प्रसाद एवं माधुर्य। **9. छन्द–** शृंगार छन्द।

(छ) यहाँ देखा कुछ .... यह कैसा उद्वेग?

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में श्रद्धा मनु को अपना परिचय देती हुई बताती है कि वह किस प्रकार उनके समीप तक पहुँची है? इसके साथ ही वह उन्हें हताशा-निराशा से उबरने के लिए प्रेरित भी करती है।

व्याख्या– श्रद्धा कहती हैं कि वे हिमालय की शोभा देखते-देखते जब यहाँ तक पहुँची, तब मैंने यहाँ संसार के सभी प्राणियों के भरण-पोषण के लिए गृहस्थी द्वारा प्रतिदिन अपने भोजन में से निकाले जानेवाले अन्न के अंश को बिखरे देखा। उस अन्न को देखकर मैं चौंक उठी कि बलि के रूप में दान किया गया यह अन्न यहाँ निर्जन प्रान्त में कहाँ से आया? तब मैंने अनुमान लगाया कि यहाँ आस-पास में कोई जीवित व्यक्ति अवश्य रहता है, उसी ने यह बलि का अन्न यहाँ बिखराया होगा और मैं उस व्यक्ति को ढूँढते-ढूँढते आप तक आ पहुँची हूँ।

मगर हे तपस्वी! तुम्हें देखकर मेरी समझ में यह नहीं आता कि तुम इतने थके हुए, उदास और मुरझाए हुए-से क्यों हो? तुम्हारे मन में यह वेदना क्यों इतनी तीव्रता से उमड़ रही है? ओह! तुम जीवन से इतने निराश क्यों हुए हो, जबकि तुम सब प्रकार से सक्षम एक दृढ़ पुरुष हो। आप मुझे समझाएँ कि आपका मन क्षोभ से क्यों भरा है?

काव्य-सौन्दर्य– 1. श्रद्धा के बौद्धिक एवं वाक्चातुर्य को बड़ी कुशलता से स्पष्ट किया गया है। **2.** गृहस्थों द्वारा प्रतिदिन किए जानेवाले पाँच यज्ञों मे ंसे एक भूतयज्ञ का यहाँ उल्लेख किया गया है। **3. भाषा–** शुद्ध साहित्यिक खड़ीबोली। **4. शैली–** प्रबन्धात्मक। **5. अलंकार–** प्रश्न तथा अनुप्रास। **6. रस–** शान्त। **7. छन्द–** शृंगार छन्द। **8. गुण–** प्रसाद। **9. शब्दशक्ति–** अभिधा।

(ज) जिसे तुम समझे .... कल्पित गेह!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– श्रद्धा मनु को निराशा से निकालने के लिए विभिन्न तर्क देकर उसे उत्साहित करती है, तब मनु उसके कथन के प्रत्युत्तर में जो कुछ कहते हैं, उसी का वर्णन इन पंक्तियों में किया गया है।

व्याख्या– श्रद्धा मनु को सांत्वना देते हुए कहती है जिस दु:ख को तुम शाप समझते हो और यह समझते है कि वह संसार की पीड़ा का कारण है, वह ईश्वर का रहस्यमय वरदान है; क्योंकि यही पीड़ा मनुष्य को सुख प्राप्ति के लिए प्रेरित करती है। इसे तुम कभी न भूलना।

श्रद्धा की बातें सुनकर मनु दु:ख से भरकर उससे कहना आरम्भ करते हैं कि तुमने तन-मन को आह्लदित करनेवाली शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु के समान प्रदान करनेवाले उच्छ्वासों के द्वारा जो विलासपूर्ण बातें कही हैं, वे निरन्तर मन में उत्साह की अत्यधिक ऊँची तरंगें उमगानेवाली हैं, किन्तु इस बात में भी कोई सन्देह नहीं है कि मनुष्य का जीवन बहुत विवश है, उसके अपने हाथ में कुछ भी नहीं है, यह सब मैंने अपने जीवन में अनुभव करके देख लिया है। उन अनुभवों के द्वारा मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि मनुष्य अपने जीवन में नित नई सफलताओं की कल्पना करता रहता है या यह भी कह सकते हैं कि जीवन सफलता की कल्पनाओं का घर है, किन्तु वास्तव में यदि विचार करके देखा जाए तो अन्तत: इस जीवन का परिणाम निराशाजनक ही है; क्योंकि मृत्यु अवश्यंभावी और अनिश्चित है तथा कोई भी मनुष्य सहर्ष मृत्यु का वरण नहीं करना चाहता।

काव्य-सौन्दर्य– 1. श्रद्धा की बातों को सविलास बताकर कवि प्रसाद ने श्रद्धा को मुग्धा नायिका के रूप में प्रस्तुत किया है। **2. भाषा–** संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली। **3. शैली–** प्रबन्धात्मक। **4. अलंकार–** उपमा तथा अनुप्रास। **5. रस–** शान्त। **6. छन्द–** शृंगार छन्द। **7. गुण–** प्रासाद। **8. शब्दाशक्ति–** अभिधा एवं व्यंजना।

(झ) प्रकृति के यौवन .... चेतन आनंद।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में प्रसाद ने श्रद्धा के द्वारा मनु के निराश मन को प्ररणा दी है।

व्याख्या– जिस प्रकार युवतियों का शृंगार बासी फूलों से नहीं वरन् नित्य नवीन (ताजे) फूलों से होता है, उसी प्रकार प्रकृतिरूपी युवती भी अपना शृंगार नित्य नूतन प्रसाधनों से करती है। बासी फूलों का उपयुक्त स्थान तो धूल है, जो उन्हें अपने में मिलाने के लिए लालायित रहती है। आशय यह है कि जीवन में जो हताश हो जाता है, निरुत्साहित होकर पिछड़ जाता है, वह कभी सुखों से अपने जीवन का शृंगार नहीं कर सकता और जो नित्य जीवन उत्साह से भरकर आशापूर्वक आगे बढ़ने का प्रयास करता है, वह निरन्तर प्रगति करता जाता है। क्योंकि प्रकृति या संसार ऐसे कर्मशील व्यक्तियों से ही अपना रूप सँवारता है; अत: तुम भी मन में नवीन आशा सँजोकर सोत्साह आगे बढ़ो।

श्रद्धा कहती है कि इस संसार में सभी जड़-चेतन आनन्द से परिपूर्ण हैं और एक तुम हो कि निराशा का लवादा ओढ़कर बैठे हो। देखो, विभिन्न प्राकृतिक सम्पदाओं से परिपूर्ण यह विशाल पृथ्वी तुम्हारे उपभोग के लिए ही तो है, तुम अपने कर्म और कठोर परिश्रम के द्वारा इस सम्पूर्ण प्रकृति का उपभोग कर सकते हो हम इस जीवन में अपने पूर्वजन्मों में संचित पुण्यकर्मों के परिणामस्वरूप इस धरती पर उपस्थित प्राकृतिक विभवों का उपभोग करते हैं और आगामी जन्मों के उपभोग के लिए इस जीवन में सद्कर्मों का संचय करते हैं। हमारी पुण्य भारतीय संस्कृति का सन्देश भी यही है कि फल की चिन्ता किए बिना ही मनुष्य को निरन्तर सद्कर्म करते रहना चाहिए। यह प्रकृति भी यही सब कर रही है, तभी तो जड़ वृक्ष भी चेतन मनुष्य की भाँति बिना किसी स्वार्थ के फलते-फूलते हुए आनन्द का अनुभव करते हैं। यही तो जड़ प्रकृति का चेतन आनन्द है।

काव्य-सौन्दर्य– 1. जीवन के उल्लास और नवोत्साह के लिए ताजे फूलों का उपमान अत्यधिक उपयुक्त है। फूल ताजगी, आशा और जीवन में अनुरक्ति के प्रतीक हैं। **2. भाषा–** खड़ीबोली। **3. रस–** शांत। **4. शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **5. गुण–** प्रसाद। **6. अलंकार–** मानवीकरण व प्रतीकात्मक ('बासी फूल निराशा, हतात्सोह एवं अकर्मण्यता के प्रतीक है।) **7. शैली–** प्रबन्ध। **8. छन्द–** शृंगार छन्द।

(ञ) समर्पण लो सेवा .... सुन्दर खेल।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– श्रद्धा मानवता को समृद्ध बनाने तथा उसके अस्तित्व को बचाए रखने के लिए मनु के सम्मुख आत्मसमर्पण करती है और उनसे सृष्टि का प्रवर्त्तक बनने का आग्रह करती है।

व्याख्या– श्रद्धा मनु से कहती है कि मानवता के कल्याण हेतु मैं स्वयं को तुम्हें समर्पित करके तुम्हारी सेवा करना चाहती हूँ। अर्थात् मैं तुम्हारी जीवनसंगिनी बनकर तुम्हारे साथ-साथ मानवता की भी सेवा करना चाहती हूँ, तुम इसे स्वीकार करो। मेरी इस सेवा-भावना का सारत्तत्व यह है कि मेरी यह सेवा भावना जलमग्न संसार के लिए पतवार का कार्य करेगी और इससे खोती मानवता को एक नई दिशा मिल जाएगी। आज से मेरा यह जीवन तुम्हारे चरणों की सेवा में समर्पित रहेगा। मेरा यह

नि:स्वार्थ जीवन-त्याग का निर्णय कभी नहीं बदलेगा और आपके जीवन की पिछली बुराइयों अथवा दोषों को भी इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। श्रद्धा के कहने का आशय यही है कि आज से पहले आपमें चाहे जितनी बुराइयाँ अथवा दोष हों, मुझे उनसे कोई लेना-देना नहीं है। मैंने आपके सम्मुख आत्मसमर्पण करके आपको जो अपना जीवन-साथी बनाने का निर्णय किया है, उसमें कभी भी कोई बदलाव अथवा परिवर्तन नहीं होगा।

श्रद्धा मनु को अपना समर्पण स्वीकार करने के लिए प्रेरित करती हुई कहती है कि आप मेरे इस समर्पण को स्वीकार करके सृष्टि के क्रम को अनवरत जारी रखते हुए जीवन-मरण के मूल-रहस्यों को जाननेवाले बनो। यदि तुम अब भी जीवन से तटस्थ बने रहे तो इस सृष्टि का यहीं अन्त हो जाएगा। इसलिए मेरा समर्पण स्वीकार करके अर्थात् मुझे अपनी जीवन-संगिनी बनाकर इस मानव-सृष्टि की बेल को आगे बढ़ाओ। तुम मेरे संयोग से मानवरूपी सुमनों की रचना करके जीवन के सुन्दर खेल को जीभरकर खेलो, जिससे सारा संसार उन सुमनों की किलकारियोंरूपी सुगन्ध से महक उठे।

काव्य-सौन्दर्य– 1. 'इसी पद ताल में विगत विकार' के द्वारा कवि ने भारतीय नारी के जीवन-विधान के आदर्श को प्रस्तुत किया है कि भारतीय नारी जिसे एक बार अपना जीवन साथी चुन लेती है, वह जीवनभर उसका साथी निभाती है, भले ही उसमें कितने भी दोष क्यों न हों। **2.** श्रद्धा ने यह कहकर मनु को अपने सच्चे समर्पण का प्रमाण दिया है कि तुम्हारे विगत दोषों को हमारी जीवन-यात्रा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। **3.** सृष्टि-क्रम को बनाए रखने के लिए श्रद्धा मनु को अपने साथ रमण करने के लिए प्रेरित करती है। **4. भाषा–** परिष्कृत साहित्यिक खड़ीबोली। **5. शैली–** प्रबन्धात्मक। **6. अलंकार–** रूपक तथा अनुप्रास। **7. रस–** संयोग शृंगार। **8. छन्द–** शृंगार छन्द। **9. गुण–** माधुर्य। **10. शब्दशक्ति–** अभिधा।

(ट) और यह क्या .... गूँज रहा, जय गान।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– मनु के एकान्तत और निराश जीवन में आशा का संचार करती हुई श्रद्धा मनु को नवीन-मानव सृष्टि का प्रवर्तक बनने की प्रेरणा देती है।

व्याख्या– और क्या तुम सृष्टिकर्त्ता (भगवान्) की यह मंगलमय वरदान-वाणी नहीं सुन रहे हो कि शक्तिशाली बनकर विजय प्राप्त करो। यह ध्वनि तो सारे संसार में फैल रही है। तुम भी इससे कुछ शिक्षा ग्रहण करो।

काव्य-सौन्दर्य– 1. शक्ति-संचय के द्वारा ही विजयश्री एवं सफलता प्राप्त की जा सकती हैं जो लोग दुर्बल है, उन्हें सभी दबाते और सताते हैं। संसार सबल के सामने झुकता है। प्रसाद जी इसी सन्देश को अपने राष्ट्र को सुनकर उसे शक्तिशाली बनने की प्रेरणा देते हैं। **2. भावसाम्य–** कहा भी गया है— **'वीरभोग्या वसुन्धरा'**; अर्थात् यह पृथ्वी केवल वीरों द्वारा ही भोगी जाती है। **3. भाषा–** खड़ीबोली। **4. रस–** शान्त। **5. शब्द-शक्ति–** अभिधा। **6. गुण–** प्रसाद। **7. शैली–** प्रबन्ध। **8. छन्द–** शृंगार छन्द।

(ठ) डरो मत अरे .... सकल समृद्धि!

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रसाद जी के 'कामायनी' महाकाव्य की नायिका श्रद्धा निवृत्ति पथ पर अग्रसर मनु को प्रवृत्ति पथ पर लाने का प्रयास करती है। मनु ने संसार को निराशा से भरा और जीवन का उपायहीन मान लिया था। श्रद्धा उनमें जीवन के प्रति उत्साह भरती हुई कहती है कि—

व्याख्या– तुम कभी न मरने वाले देवताओं की सन्तान हो; अत: भयभीत क्यों होते हो? तुम्हारे सामने मंगलों की भरपूर समृद्धि है। तुम उसे पाने का साहस तो करके देखो। तब तुम्हारा जीवन आकर्षण का केन्द्र बन जाएगा और सारी सम्पन्नता स्वयं ही तुम्हारे पास खिंचकर चली आएगी। इसलिए विरक्ति त्यागकर जीवन की ओर प्रवृत्त हो जाओ।

काव्य-सौन्दर्य– 1. प्रसाद जी के नारी-पात्र शक्ति और चेतना के साक्षात् अवतार हैं। यहाँ पर श्रद्धा की वाणी में तेज, ओज एवं चैतन्य भरा हुआ है। **2. भाषा–** संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली। **3. शैली–** प्रबन्ध। **4. अलंकार–** अनुप्रास। **5. रस–**शान्त। **6. गुण–** प्रसाद। **7. छन्द–** शृंगार छन्द। **8. भाव-साम्य–** मानवता के विकास के लिए श्रद्धा ने यहाँ कर्मण्यता का सन्देश दिया है। सन्त तुलसीदास ने कहा है—

सकल पदारथ एहि जग माहीं। करमहीन नर पावत नाहीं।।

(ड) शक्ति के विद्युत्कण .... मानवता हो जाय!''

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इन पंक्तियों में श्रद्धा ने मानवता की विजय का उपाय बताया है।

व्याख्या– इस सृष्टि की रचना शक्तिशाली विद्युत्कणों (मनुष्यों) से हुई है; किन्तु जब तक ये विद्युत्कण अलग-अलग होकर भटकते रहते हैं, तब तक ये शक्तिहीन बने रहते हैं; अर्थात् किसी भी प्रकार के निर्माण में असमर्थ रहते हैं; पर जिस क्षण ये परस्पर मिल जाते हैं, तब इनमें से अपार शक्ति का स्त्रोत प्रस्फुटित होता है।

ठीक इसी प्रकार जब तक मानव अपनी शक्ति को संचित न करके उसे बिखेरता रहता है, तब तक वह शक्तिहीन बना रहता है; किन्तु यदि वह समन्वित हो जाए तो उसमें विश्वभर को जीत लेने की अपार शक्ति प्रकट होगी और मानवता अपने पूर्ण विकसित रूप में प्रतिष्ठित हो जाएगी।

काव्य-सौन्दर्य– 1. श्रद्धा के माध्यम से कर्मण्यता का सन्देश दिया गया है। **2.** विश्व-कल्याण और विश्व-निर्माण के लिए समन्वय की व्यापक भावना अपेक्षित है। **3. भाषा–** संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली। **4. रस–** शान्त। **5. शब्दशक्ति–** लक्षणा। **6. गुण–** प्रसाद। **7. छन्द–** शृंगार छन्द।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) कुसुम-वैभव में लता समान
चन्द्रिका से लिपटा घनश्याम!

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' में संकलित 'जयशंकर प्रसाद' द्वारा रचित 'श्रद्धा-मनु' शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में कवि ने श्रद्धा के रूप और सौन्दर्य का वर्णन किया है।

व्याख्या– जीवन से निराश मनु पर्वत की चोटी पर चिन्तामग्न बैठे हैं। उसी समय अनिन्द्य सुन्दरी श्रद्धा वहाँ पहुँचती है। मनु श्रद्धा के रूप-माधुर्य से सम्मोहित-से हो जाते हैं। श्रद्धा का कुसुम के सदृश कोमल मुख मनु को उस समय ऐसा लगता है मानो वह चाँदनी में लिपटा हुआ बादल का कोई टुकड़ा हो। इस पंक्ति में कवि ने श्रद्धा के मुख की तुलना चन्द्रमा से, मुख-दीप्ति की तुलना चन्द्रमा की चाँदनी से की है। श्रद्धा के केशों को मेघ (बादल) के सदृश बताया है, जो कि चन्द्रमा की चाँदनी को आवृत्त किये रहता है।

(ख) नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में श्रद्धा के अनुपम सौन्दर्य का चित्रण किया गया है।

व्याख्या– श्रद्धा की मधुर वाणी सुनकर समाधि में लीन मनु का ध्यान भंग हो गया। उनकी आँखें खुली तो उन्होंने सौन्दर्य की अद्‌भुत प्रतिमा, श्रद्धा को अपने समक्ष खड़े पाया। उस समय श्रद्धा ने नीले रंग के सुन्दर वस्त्र पहन रखे थे, जिनमें से अति कोमल, उसके शरीर के अधखुले अंग दिख रहे थे।

(ग) दु:ख की पिछली रजनी बीत
विकसता सुख का नवल प्रभात।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्तिपरक वाक्य में कवि ने दु:ख और सुख के चक्र का प्रतीकात्मक वर्णन किया है।

व्याख्या– कामायनी महाकाव्य की श्रद्धा मनु से कहती है कि जिस प्रकार रात के बाद नया सवेरा आता है, उसी प्रकार दु:ख के बाद सुख प्राप्त होता है। इसलिए दु:ख को अभिशाप न समझकर ईश्वर का वरदान समझना चाहिए। इस प्रकार श्रद्धा ने निराश मनु में आशा का संचार किया है। महर्षि वेदव्यास ने 'महाभारत' में सुख-दु:ख की व्याख्या करते हुए कहा है कि मनुष्य के सुख-दु:ख रथ के पहिये की भाँति घूमते रहते हैं। सुख के बाद दु:ख आता है और दु:ख के बाद सुख। इसलिए मनुष्य को निराश न होकर उचित समय आने की प्रतिक्षा करनी चाहिए।

(घ) निराशा है जिसका परिणाम
सफलता का वह कल्पित गेह।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– जब मनु जीवन से निराश हो जाते हैं और श्रद्धा उन्हें जीवन के सार के बारे में बताती है तो वे कहते हैं कि—

व्याख्या– किन्तु यह जीवन कितना अशक्त है। मैंने भली-भाँति देख लिया है, इसमें कोई सन्देह भी नहीं है। जीवन में कर्मरत रहने के पश्चात् भी मनुष्य को निराशा ही हाथ लगती है। कर्म के फल व्यक्ति के अधीन नहीं है। जीवन में कर्म के प्रतिफल के रूप में सफलता मिलेगी केवल यह हम कल्पना ही कर सकते हैं। इसकी कोई अनिर्वायता नहीं है।

(ङ) हार बैठे जीवन का दाँव
जीतते मर कर जिसको वीर

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में श्रद्धा ने निराश मनु को जीवन के प्रति उत्साहित करने का प्रयास किया है।

व्याख्या– मनु के हताश मन को प्रेरित करती हुई श्रद्धा कहती है कि ऐसा प्रतीत होता है कि तुम अपने जीवन की बाजी हार

चुके हो, अपना धैर्य खो बैठे हो और अपने जीवन में उस सफलता को प्राप्त करने के लिए निराश हो चुके हो, जिसे कर्मठ एवं साहसी पुरुष, अपने कठिन परिश्रम के आधार पर प्राप्त करते हैं। लेकिन तुम्हारा हताश होना उचित नहीं है। कर्मठ पुरुष तो सफलता प्राप्त करने के लिए जीवन की अन्तिम साँस तक संघर्ष करते रहते हैं।

(च) प्रकृति के यौवन का शृंगार
करेंगे कभी न बासी फूल

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– श्रद्धा द्वारा निराश मनु को प्रेरणा देने के प्रसंग में इस सूक्ति का प्रयोग हुआ है।

व्याख्या– श्रद्धा कहती है कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है। प्रकृति अपने यौवन का शृंगार मुरझाए हुए बासी फूलों से नहीं करती, वरन् नव-विकसित पुष्पों को ही अपने शृंगार हेतु उपयोग में लाती है।

विशेष– पुराने दु:खों को याद करके अपने जीवन को निराशा के गर्त में ढकेल देना उचित नहीं है। जिस प्रकार से प्रकृति नवीनता पसन्द करती है, उसी प्रकार हमें नवीन उत्साह और ताजगी के साथ कर्म-पथ पर आगे बढ़ना चाहिए।

(छ) शक्तिशाली हो, विजयी बनो
विश्व में गूँज रहा, जय गान

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में श्रद्धा, मनु को जीवन में प्रवृत्त होने के लिए उत्साहित करती है।

व्याख्या– मानवता को जीवित और समृद्ध रखने के लिए श्रद्धा, मनु के समक्ष आत्मसमर्पण करती है और जीवन के प्रति आशा और उत्साह जगाती हुई शक्तिशाली बनने की प्रेरणा देती है। श्रद्धा चाहती है कि मानवता विजयिनी बने और सदैव फलती-फूलती रहे। विश्व में विजय उसी को प्राप्त होती है, जो शक्तिशाली होता है; अत: तुम स्वयं को इतना शक्तिशाली बनाओ कि समस्त सुख मंगल तुम्हारी ओर खिंचे चले आयें।

(ज) समन्वय उसका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में श्रद्धा मनु को लोक-मंगल के कार्य में लगने के लिए प्रेरित कर रही है।

व्याख्या– श्रद्धा मनु से कहती है कि जीवन के प्रति हताशा और निराशा को त्यागकर आपको लोक-मंगल के कार्यों में लगना चाहिए। इसके लिए सबसे महत्वपूर्ण और मुख्य कार्य संसार की विभिन्न शक्तियों में पारस्परिक समन्वय स्थापित करना है। विश्व की विद्युत्-कणों के समान जो भी करोड़ों-करोड़ शक्तियाँ हैं, वे सब बिखरी पड़ी हैं, जिस कारण जीवन में उसका कोई भी उपयोग नहीं हो पा रहा है। उन सब शक्तियों को एकत्रित कीजिए और उनमें आया समन्वय स्थापित कीजिए, जिससे उन शक्तियों का अधिक-से-अधिक उपयोग हो सके। इसी में मानवता का कल्याण निहित है। यदि आप यह समन्वय स्थापित करने में सफल हो गए तो सर्वत्र मानवता का साम्राज्य स्थापित हो जाएगा।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न

1. गीत 'बीती विभावरी जाग री' का मूलभाव अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– प्रस्तुत गीत में कवि ने प्रात: कालीन सौन्दर्य के माध्यम से प्रकृति के जागरण का आह्वान किया है। एक सखी अपनी दूसरी सखी से कहती है कि रात्रि बीत गई है अब तेरा जागना ही उचित है। समस्त नक्षत्र प्रभात के आगमन के कारण आकाश में लीन हो गए है। पक्षियों के समूह कलरव कर रहे हैं। सुगन्धित पवन प्रवाहित हो रही है। प्रात: काल होने पर सर्वत्र जागरण हो गया है, इसलिए हे सखी! तू अब मत सो, तू अब झटपट उठ बैठा। अर्थात् प्रात:काल होने पर सृष्टि में अनेकों लक्षणों के द्वारा प्रात: काल होने का पता चल जाता है। इसलिए तू आलस्य न त्यागकर झटपट उठ जा।

2. 'श्रद्धा-मनु' प्रसंग का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– 'श्रद्धा-मनु' प्रसंग में मनु को निर्जन स्थान पर बैठे देखकर श्रद्धा उससे प्रश्न करती है कि वे कौन हैं और इस निर्जन स्थान में क्यों बैठे हैं? श्रद्धा कहती है कि हे अपरिचित! तुम मुझे मधुरता, थकावट और नीरवता से परिपूर्ण इस संसार में सुलझे हुए रहस्य की भाँति प्रतीत हो रहे हो। तुम्हारा सुन्दर और मौन रूप करूणा से परिपूर्ण है और तुम्हारे चंचल मन ने आलस्य धारण कर लिया है। जब मनु ने श्रद्धा का स्वर सुना तो उसे वह स्वर उस निर्जन प्रान्त में भौंरों की मधुर गुन-गुन के समान आनन्द प्रदान करने वाला लगा।

अनजान व्यक्ति से मिलने के कारण श्रद्धा ने लज्जावश अपना मुख नीचे झुका रखा था और पृथ्वी को देख रही थी। उसके मुख से निकले मधुर शब्द मनु को किसी कवि की सुन्दर कविता को समान मधुर लगे। मनु ने जब अचानक प्रकट हुई श्रद्धा को देखा तो उन्हें खुशी का झटका-सा लगा और श्रद्धा की मोहक छवि पर सर्वस्व लुटाकर तथा सुध-बुध खोकर मनु उसे देखने

लगे कि इस निर्जन वन में कौन यह मधुर गीत गा रहा है? उनके मन में श्रद्धा के विषय में सब कुछ जानने की जिज्ञासा जाग उठी। जब मनु में जिज्ञासा वश ऊपर देखा तो उसे श्रद्धा खड़ी हुई दिखाई दी। यह दृश्य उनके नेत्रों को जादू के समान अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। उन्हें श्रद्धा फूलों से लदी लता के समान प्रतीत हुई। उन्होंने अनुभव किया कि जैसे चन्द्रमा की शीतल चाँदनी से लिपटा हुआ बादल का कोई टुकड़ा उनके सामने खड़ा है। श्रद्धा के शरीर का अधिकांश भाग खुला था और उसका शरीर पर्याप्त लम्बा था। मधुर वार्त्तालाप के समय श्रद्धा का वह लम्बा और सुन्दर शरीर वसन्त की सुगन्धित और मन्द-मन्द बहने वाली पवन के साथ अठखेलियाँ करता हुआ साल के वृक्ष के समान सुगन्ध से परिपूर्ण होकर वहाँ शोभायमान था।

श्रद्धा ने गान्धार देश में पाई जाने वाली नीले बालों वाली भेड़ों की खाल से बने अत्यन्त कोमल, सुन्दर वस्त्र धारण कर रखे थे। वे कोमल वस्त्र न केवल श्रद्धा के कोमल शरीर को ढके थे, अपितु कोमल हुए भी उसे सुरक्षा-कवच प्रदान कर रहे थे। नीले वस्त्रों के बीच में से कहीं-कहीं उसके कोमल और सुकुमार अंग दिखाई पड़ रहे थे। जो ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो नीले बादलों के तन में गुलाबी रंग का फूल खिला हो। श्रद्धा का कान्तिमय मुख काले बादलों से घिरा लग रहा था, मानों सन्ध्या के समय पश्चिम की ओर आकाश में काले बादल घिर आए हों और ललिमायुक्त सूर्य उनको भेदकर आकाश में सुशोभित हो।

उसके कन्धों पर लटकी हुई घुँघराले बालों की लट उसके मुखड़े पर ऐसे झूल रही थी जैसे कोई नन्हा बादल का टुकड़ा अमृत पीने के लिए सागर के तल को छूने का प्रयत्न कर रहा हो। उसके मुख पर मुस्कान ऐसी लग रही थी, जैसे लाल रक्तिम नवीन कोपल पर सूर्य की एक अलसायी-सी स्निग्ध किरण विश्राम कर रही हो।

मनु अपना परिचय देते हुए कहते हैं कि पृथ्वी और आकाश के बीच में इस नीरव स्थान पर मेरा एकाकी जीवन एक पहेली बना हुआ है। मैं असहाय होकर अपनी वेदन में जलता हुआ इधर-उधर भटक रहा हूँ। मनु श्रद्धा से प्रश्न करते हैं कि तुम कौन हो? जिस प्रकार पतझड़ के समय कोयल अपने मीठे स्वर में वसन्त के आगमन की सूचना देती है, उसी प्रकार मेरे निराशापूर्ण जीवन में तुम आशा की किरण जैसी दिख रही हो। वेदना और व्यथा से तप्त मेरे जीवन में शीतल पवन की भाँति नवीन चेतना उत्पन्न कर रही हो। कुछ समय पहले आने वाली श्रद्धा ने अपने विषय में मनु की उत्कंठ जिज्ञासा शांत करने के लिए अपना परिचय देना प्रारम्भ किया। उसकी वाणी ऐसी लग रही थी, मानो कोयल आनंद में भरकर फलों को मधुमय वसन्त के आने का सन्देश सुना रही हो। श्रद्धा कहती है मेरा मन नवीन उत्साह से परिपूर्ण है, इस कारण मेरे मन में ललितकलाओं को सीखने की इच्छा जागृत हुई इसलिए मैं उन्हें (गायन, वादन, नृत्य) को सीखने के लिए गन्धर्वों के देश में निवास करती हूँ। मैं अपने पिता की प्रिय सन्तान हूँ। वह कहती हैं कि जब मेरी दृष्टि इस उच्च हिमालय पर पड़ती है, तब इसके सन्दर्भ में विस्तार से जानने के लिए मेरे मन में उठने वाले अनेकों प्रश्न मुझे व्यथित कर देते हैं। पृथ्वी की सिकुड़न के समान मन को भयभीत कर देने वाले विशाल हिमालय का स्वरूप क्या है और इसमें रहने वाले लोगों की पीड़ा क्या है? अपने इन प्रश्नों का समाधान प्राप्त करने के लिए ही मैंने निश्चय किया कि क्यों न इस क्षेत्र में घूमकर ही इसके विषय में जाना जाए। और इसी उत्साह में मेरे पैर स्वयं ही इन पर्वतमालाओं का सौन्दर्य देखने के लिए बढ़ते चले गए। हिमालय के सौन्दर्य को देखकर मेरी उत्कंठ अब शांत हो गई है।

श्रद्धा कहती हैं कि मैं हिमालय की शोभा देखते-देखते जब यहाँ पहुँची, तब मैंने यहाँ गृहस्थों द्वारा संसार के जीवों के कल्याण के लिए प्रतिदिन घर से बाहर रखा जाने वाला अन्न देखा। तब मैंने सोचा जीवों की भलाई के लिए ये दान किसने किया है? तब मैंने अनुमान लगाया कि यहाँ आस-पास में अवश्य ही कोई जीवित व्यक्ति है। उसी की तलाश करते-करते मैं आप तक पहुँची। वह मनु से कहती है कि हे तपस्वी! तुम इतने थके हुए, उदास और मुरझाए हुए क्यों हो? तुम्हारे मन में यह वेदना क्यों इतनी तीव्रता से उमड़ रही है? तुम जीवन से इतने निराश क्यों हो। आप मुझे बताइए कि आपका मन क्षोभ से क्यों भरा है?

श्रद्धा मनु से कहती है कि दु:ख की पिछली काली रात के बीच जो सुख का नया सवेरा विकसित होता है। वह सुखमय अन्न के प्रकट होने का ही पूर्व संकेत है। जिस दु:ख को तुम शाप समझ रहे हो वह संसार की पीड़ा का कारण है, वह ईश्वर का रहस्यमय वरदान है। इसे तुम कभी मत भूलना। श्रद्धा की बातें सुनकर मनु उससे कहते है कि तुमने तन-मन को आह्लादित करने वाली शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु के समान आनन्द प्रदान करने वाले उच्छवासों के द्वारा जो विलासपूर्ण बाते कहीं हैं वे मन में उत्साह भरने वाली हैं, किन्तु इस बात में संदेह नहीं है कि मनुष्य जीवन बहुत विवश है। यह मैंने अपने जीवन में अनुभव किया है। और उन अनुभवों के द्वारा मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि मनुष्य अपने जीवन में नई सफलताओं की कल्पना करता रहता है या यह भी कह सकते हैं कि जीवन सफलता की कल्पनाओं का घर है।

मनु की बात सुनकर श्रद्धा ने स्नेह भाव से कहा कि ऐसा प्रतीत होता है कि तुम अपना धैर्य खो बैठे हो और जीवन में सफलता प्राप्त करने के प्रति निराश हो चुके हो। जिसे कर्मशील व साहसी पुरुष अपने कठिन परिश्रम से प्राप्त करते हैं। केवल तपस्या करना जीवन का सत्य नहीं है। दीनता और करुणा के भावों से ओत-प्रोत तुम्हारी यह मन: स्थिति क्षणिक है। अत: तुम अपनी अभिलाषाओं एवं इच्छाओं को जगाओ तथा उत्साहपूर्वक जीवन व्यतीत करो।

श्रद्धा-मनु के निराश मन को प्रेरणा देते हुए कहती है कि प्रकृति में प्राकृतिक छटा कभी भी बासी और मुरझाए हुए फूल से नहीं आती है। निर्जीव फूल प्रकृति को नया उल्लास नहीं प्रदान कर सकते इन फूलों का हश्र तो धूल में मिलकर काल कवलित होना ही है। इसी प्रकार निस्तेज लोगों का जीवन भी सारहीन होता है। श्रद्धा कहती है कि संसार में सभी जड़-चेतन आनंद से परिपूर्ण हैं केवल तुम ही निराशाग्रस्त हो। तुम अपने कर्म और कठोर परिश्रम से प्रकृति का उपभोग कर सकते हो। यही तो जड़-प्रकृति

का चेतन आनंद है। तुम कहते हो कि मैं अकेला व असहाय हूँ फिर तुम यज्ञ कैसे कर सकते हो। यज्ञ अकेले नहीं किया जाता अपितु पति-पत्नी दोनों मिलकर इसे करते हैं। हे तपस्वी! तुमने इस संसार को सारहीन मानकर स्वयं को जो जीवन से विरत कर लिया है वह ठीक नहीं है। वह मनु से कहती है कि मानवता के कल्याण के लिए मैं स्वयं को तुम्हें समर्पित कर तुम्हारी सेवा करना चाहती हूँ मेरी यह सेवा-भावना जलमग्न संसार के लिए पतवार का कार्य करेगी। इससे अस्तित्व खोती मानवता को नई दिशा मिलेगी। मेरा यह त्याग का निर्णय कभी नहीं बदलेगा और आपके जीवन की बुराइयों का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। श्रद्धा कहती है कि आप मेरे इस समर्पण को स्वीकार करके सृष्टि के क्रम को अनवरत जारी रखते हुए जीवन-मरण के मूल रहस्यों को जानने वाले बनो। तुमसे ही इस सृष्टि का सृजन होगा। तुम मेरे संयोग से मानवरूपी सुमनों की रचना करके जीवन के सुन्दर खेलों को खेलो। जिससे संसार इन सुमनों की सुगंध से महक उठे।

श्रद्धा मनु से कहती है कि तुमने इस सृष्टि की रचना करने वाले विधानता का वरदान नहीं सुना। उन्होंने कहा है ''शक्तिशाली बनकर विजय प्राप्त करो।'' यही विजयगान आज विश्वभर में गूँज रहा है। तब कहती है कि हे देवपुत्र! आप किसी भी आशंका से भयभीत मत होइए, क्योंकि कल्याणकारी उन्नति आपके सम्मुख उपस्थित है। तुम नवीन उत्साह के साथ अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करो। तुम्हारे प्रयासों से उफनते समुद्र पट जाएंगे। ग्रह-नक्षत्र तुम्हारे चारों ओर बिखर जाएँगे और ज्वालामुखी चूर्ण-चूर्ण होकर सदैव के लिए शांत हो जाएँगे इसलिए तुम निराशा त्यागकर दृढ़ निश्चय से अपने कर्मों में लग जाओ। प्राकृतिक आपदाओं को अपने पैरों से कुचलकर मानवता गर्वित हो जाएगी।

श्रद्धा मनु को समझाती है कि इस प्रलयकाल में सम्पूर्ण सृष्टि को निगलने के लिए समुद्र के कितने स्रोत फूट पड़े थे, जिनके कारण द्वीप और कच्छप उसमें डूब गए थे, परन्तु हम दोनों के रूप में यह मानवता आज भी सुदृढ़ मूर्ति के समान खड़ी हुई अपने उत्थान का प्रयास कर रही है। इस सृष्टि की रचना जिन मनुष्यों से हुई है, जब तक ये अलग-अलग भटकते रहेंगे तब तक शक्तिहीन रहेंगे। किन्तु यदि ये समन्वित हो जाएँ तो उसमें विश्वभर को जीत लेने की अपार शक्ति प्रकट होगी और मानवता की विजय होगी।

3. संकलित अंश के आधार पर श्रद्धा के रूप सौन्दर्य का वर्णन कीजिए।

उ०– श्रद्धा के शरीर का अधिकांश भाग खुला था और उसकी देह पर्याप्त लम्बी थी। उसने अपने शरीर पर नीले बालों वाली भेड़ों की खाल से बने अत्यन्त कोमल, सुंदर एवं चमकदार वस्त्र धारण कर रखे थे। उसकी वेशभूषा में से कहीं-कहीं उसके कोमल और सुकुमार अंग दिखाई दे रहे थे। मानो नीले बादलों के वन में गुलाबी रंग का बिजली का फूल खिला हो। श्रद्धा का कान्तिमय और ललितायुक्त मुख काले रंग के बादलों से घिरा हुआ प्रतीत हो रहा था जैसे सन्ध्या के समय पश्चिम की ओर आकाश में काले बादल घिर आए हों। उसके कंधे पर लटकी हुई घुँघराले बालों की लट उसके मुख पर ऐसे झूल रही थी जैसे कोई नन्हा बादल का टुकड़ा अमृत पीने के लिए सागर के तल को छूने का प्रयत्न कर रहा हो। उसके मुख की मोहक मुस्कान ऐसी लग रही थी, जैसे लाल रक्तिम नवीन कोंपलों पर सूर्य की किरण विश्राम कर रही हो।

4. 'श्रद्धा-मनु' के संवाद से जयशंकर प्रसाद जी क्या संदेश देना चाहते हैं?

उ०– श्रद्धा-मनु के संवाद के द्वारा जयशंकर प्रसाद जी निराशा से परिपूर्ण व्यक्ति को कर्मपथ पर आगे बढ़ने का संदेश देना चाहते है। जिस प्रकार श्रद्धा मनु को कर्म पथ पर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करती है तथा मानवता के कल्याण के लिए स्वयं का निस्वार्थ भाव से समर्पण करती है, जिससे मानवता का कल्याण हो तथा इसे एक नई दिशा मिले, उसी प्रकार प्रसाद जी संसार के जीवों को कर्मपथ पर बढ़ने तथा मानवता के कल्याण के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने का संदेश देते हैं।

काव्य-सौन्दर्य से सम्बन्धित प्रश्न

1. ''खग-कुल कुल-कुल सा बोल रहा।'' पंक्ति में प्रयुक्त अलंकार का नाम बताइए।

उ०– प्रस्तुत पंक्ति में यमक, अनुप्रास तथा पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार है।

2. ''सुना यह मनु .... फिर मौन।'' पंक्तियों में किस रस का प्रयोग किया गया है?

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में शृंगार रस का प्रयोग हुआ है।

3. ''नील परिधान .... छविधाम!'' पंक्तियों का काव्य-सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए।

उ०– **काव्य-सौन्दर्य– 1.** यहाँ कवि ने श्रद्धा के अलौकिक एवं असीम सौन्दर्य का चित्र प्रस्तुत किया है। **2.** कवि ने श्रद्धा के रूप-सौन्दर्य का चित्रण करते हुए उसके गौर वर्ण पर नीले रंग के परिधान का उल्लेख किया है। **3. भाषा–** खड़ीबोली, **4. अलंकार–** उत्प्रेक्षा और रूपक, **5. रस–** शृंगार, **6. शब्दशक्ति–** अभिधा और लक्षणा, **7. गुण–** माधुर्य, **8. छन्द–** शृंगार छन्द।

4. ''घिर रहे थे .... विधु के पास।'' पंक्तियों में प्रयुक्त अलंकार का नाम लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में रूपक, उपमा एवं उत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

पाठ्येतर सक्रियता

उ०– छात्र स्वयं करें।

6 बादल-राग, सन्ध्या-सुन्दरी

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 129 का अवलोकन कीजिए।

कवि पर आधारित प्रश्न–

1. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का जीवन परिचय देते हुए हिन्दी साहित्य में इनका योगदान बताइए।

उ०– कवि परिचय– हिन्दी-साहित्य जगत में सन्त कबीर के बाद यदि कोई फक्कड़ व निर्भीक कवि थे तो वे थे— महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'। इनके काव्य में कबीर का फक्कड़पन और निर्भीकता, सूफियों का सादापन, सूर-तुलसी की प्रतिभा और प्रसाद की सौन्दर्य-चेतना साकार हो उठी है। ये एक ऐसे विद्रोही कवि थे, जिन्होंने निर्भीकता के साथ अनेक रूढ़ियों को तोड़ डाला और काव्य के क्षेत्र में अपने नवीन प्रयोगों से युगान्तरकारी परिवर्तन किए।

महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का जन्म बंगाल के मेदिनीपुर जिले में सन् 1896 ई० में वसंत पंचमी के दिन हुआ। इनके पिता का नाम पं० रामसहाय तिवारी था। बाल्यावस्था में इन्हें कुश्ती, घुड़सवारी तथा कृषि कार्य का बड़ा शौक था। प्रारम्भिक शिक्षा के उपरांत 'निराला' जी ने हिन्दी व संस्कृत भाषाओं का अध्ययन किया लेकिन बँगला भाषा का भी इन्हें अच्छा ज्ञान था। साहित्य क्षेत्र में रुचि रखने वाली युवती मनोहरा देवी से इनका विवाह हुआ; लेकिन वह एक पुत्र तथा एक पुत्री का दायित्व इन्हें सौंपकर स्वर्ग सिधार गई।

'निराला' जी जब महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पर्क में आए, तब उनकी प्रेरणा से इन्होंने 'मतवाला' व 'समन्वय' पत्रिका सम्पादित की। इसके उपरान्त 'सुधा' व लखनऊ से प्रकाशित होने वाली'गंगा पुस्तकमाला' का सम्पादन किया। अपने उदार स्वभाव के कारण 'निराला' जी का जीवन संघर्षमय रहा। आर्थिक कठिनाइयों को झेलते हुए ये जीवन-भर संघर्ष करते रहे। ये अनेक चिन्ताओं से घिरे हुए थे, तभी इनकी पुत्री 'सरोज' भी मृत्यु को प्राप्त हो गई। इस घटना से ये और भी अधिक व्यथित हो गए और उनकी करुणा का स्वर 'सरोज-स्मृति' नामक उनकी कृति में मुखरित हो उठा। 15 अक्तूबर, सन् 1961 ई० को सरस्वती के इस साधक का प्रयाग में देहावसान हो गया।

हिन्दी साहित्य में स्थान– 'निराला' जी ने तत्कालीन काव्य-परम्परा पर आधारित छन्द एवं बिम्ब-विधान की उपेक्षा करके स्वच्छन्द एवं छन्दमुक्त कविताओं की रचना आरम्भ की और नवीन बिम्ब-विधान एवं काव्य-चित्रों को प्रस्तुत किया।

सन् 1916 ई० में प्रकाशित इनका काव्य-संग्रह 'जुही की कली' उस युग के साहित्यवेत्ताओं के लिए एक चुनौती बनकर सामने आया। इसमें अपनाई गई छन्दमुक्तता एवं इसके प्रणय-चित्र तत्कालीन मान्यताओं के सर्वथा विपरीत थे। फलस्वरूप 'निराला' को भारी विरोध का सामना करना पड़ा किन्तु इन्होंने सबकी उपेक्षा की और अपनी काव्य-प्रवृत्ति को ही महत्त्व देकर रचनाएँ करते रहे।

'निराला' जी ने देश के सांस्कृतिक पतन की ओर व्यापकता से संकेत किया है। इनका मत है कि देश के भाग्याकाश को विदेशी शासन के राहु ने अपनी कालिमा से ढक रखा है। भारतीय वन्दना, जागो फिर एक बार, तुलसीदास, छत्रपति शिवाजी का पत्र आदि कविताओं में 'निराला' जी ने देशभक्ति पर आधारित भाव प्रकट किए हैं।

'निराला' जी समाज के प्रत्येक प्राणी को सुखी देखना चाहते थे। 'सरस्वती वन्दना' में इन्होंने यही भावना प्रकट की है। इनकी रचना 'तुम और मैं' में इनका रहस्यवादी स्वर मुखरित हुआ है। 'निराला' जी ने प्रकृति पर सर्वत्र चेतनता का आरोपण किया है। इनकी दृष्टि में बादल, प्रपात, यमुना आदि सभी कुछ चेतन है। निराला जी ने वीर, श्रृंगार, रौद्र आदि रसों का सफल प्रयोग किया है। 'जुही की कली' ने तो हिन्दी-साहित्य को श्रृंगार की मधुर अनुभूति से ही झंकृत कर दिया है।

2. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

उ०– रचनाएँ– कविता के अतिरिक्त 'निराला' जी ने उपन्यास, कहानियाँ, निबन्ध, आलोचना और संस्मरण भी लिखे हैं। इनकी प्रमुख कृतियों का विवेचन इस प्रकार है—

गीतिका– इसकी मूलभावना श्रृंगारिक है, फिर भी बहुत-से गीतों में मधुरता के साथ आत्मनिवेदन का भाव भी व्यक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त इस रचना में प्रकृति-वर्णन तथा देश-प्रेम की भावना पर आधारित चित्रण भी हुआ है।

अनामिका– इसमें संगृहित रचनाएँ 'निराला' के कलात्मक स्वभाव की परिचायक हैं।

परिमल– इस रचना में अन्याय और शोषण के प्रति तीव्र विद्रोह तथा निम्नवर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति प्रकट की गई है।

राम की शक्ति-पूजा– इस महाकाव्य में कवि का ओज, पौरुष तथा छन्द-सौष्ठव प्रकट हुआ है।

सरोज-स्मृति– यह हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ शोकगीत है।

अन्य रचनाएँ– कुकुरमुत्ता, बेला, अणिमा, अपरा, तोड़ती पत्थर, नये पत्ते, अर्चना, आराधना, रवीन्द्र कविता कानन, अर्चना आदि भी इनकी अन्य सुन्दर काव्य-रचनाएँ हैं।

गद्य-रचनाएँ– लिली, चतुरी-चमार, अलका, प्रभावती, बिल्लेसुर बकरिहा, निरुपमा आदि इनकी गद्य-रचनाएँ हैं।

3. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की भाषा-शैली की विशेषताएँ बताइए।

उ०– **भाषा-शैली–** 'निराला' जी की भाषा संस्कृतनिष्ठ है। कोमल कल्पना के अनुरूप इनकी भाषा की पदावली भी कोमलकान्त है। भाषा में खड़ी बोली की नीरसता नहीं है, वरन् उसमें संगीत की मधुरिमा विद्यमान है। यत्र-तत्र मुहावरों के प्रयोग ने भाषा को नई व्यञ्जना-शक्ति प्रदान की है। जहाँ दर्शन, चिन्तन अथवा विचार-तत्त्व की प्रधानता है, वहाँ इनकी भाषा दुरूह भी हो गई है। 'निराला' जी ने अलंकारों का प्रयोग आवश्यकता के अनुसार किया है। अलंकारों को इन्होंने काव्य का साधन माना है और इनका प्रयोग चमत्कार-प्रदर्शन के लिए नहीं किया है। अनुप्रास, सांगरूपक, सन्देह, यमक आदि अलंकारों के प्रयोग में निराला जी को विशेष सफलता मिली है। इन्होंने अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए प्राय: मुक्तक छन्द का प्रयोग किया है। 'निराला' जी ने बन्धनयुक्त छन्दों को कभी स्वीकार नहीं किया और अपनी ओजस्वी वाणी से यह सिद्ध कर दिया है कि छन्दों का बन्धन व्यर्थ हैं। इनके मुक्त-छन्दों में भी संगीतात्मकता का गुण विद्यमान है।

व्याख्या सम्बन्धी प्रश्न

1. निम्नलिखित पद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) झूम-झूम मृदु .... भर निज रोर!

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक काव्यांजलि के सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' द्वारा रचित काव्य ग्रन्थ 'परिमल' से 'बादल-राग' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– इन पंक्तियों में कवि ने बादलों को देखकर अपने मन में उमड़ते उल्लास को प्रकट करते हुए उससे क्रान्ति का सन्देश सर्वत्र पहुँचाने का अनुरोध किया है। कवि कहते हैं कि—

व्याख्या– हे बादलो! तुम अपनी मस्ती में झूमते हुए, अपने कोमल स्पर्श तथा घनघोर गर्जन से सम्पूर्ण वातावरण को भर दो। अपनी गम्भीर ध्वनि से तुम आकाश में संगीत भर दो। हे बादलो! धरती पर बरसो, जिससे झरनों की झर-झर की मधुर ध्वनि पर्वतों और सरोवरों में व्याप्त हो जाए। सरिताएँ और सरोवर तुम्हारें जल से परिपूर्ण होकर सरसता का संचार करेंगे। हे बादलो! तुम अपने स्वर के, अमर संगीत से प्रकृति के कण-कण में नवजीवन का संचार कर दो, जिससे प्रत्येक घर उसी स्वर-लहरी से ध्वनित हो उठे। तुम बरसो, जिससे मरुस्थल के वृक्ष हरे-भरे होकर मर्मर ध्वनि के साथ लहराने लगें। समुद्र, नदी आदि में बिजली की-सी गति भर जाए उनके विकास की गति देखकर वायु भी आश्चर्यचकित हो जाए। प्रत्येक व्यक्ति के हृदय की गहराइयों में, वीरान स्थानों में, गहन जंगलों में तुम अपना संगीत भर दो। प्रत्येक व्यक्ति के चेहरे का स्वभाव की सरलता और परिस्थितियों को सहन करने की कठोरता प्रदान करो। तुम ऐसा मधुर और अमर संगीत पैदा करो, जिससे सम्पूर्ण आकाश आच्छादित हो जाए।

काव्य-सौन्दर्य– 1. यहाँ बादल क्रान्ति के सन्देशवाहक हैं। **2.** यह कविता कवि के जीवन के तेज और शैली के ओज को प्रकट करती है। कवि ने बादल के विभिन्न रूपों को शब्द-चित्रों द्वारा तथा ध्वनियों को अनुकरणात्मक शब्दों द्वारा प्रकट किया है। **3. शैली–** शैली की लाक्षणिकता और उससे उत्पन्न मानवीकरण आदि अलंकार दर्शनीय हैं। **4. भाषा–** संस्कृत खड़ीबोली। **5. रस–** वीर। **6. शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **7. गुण–** ओज। **8. अलंकार–** अनुप्रास, पुनरुक्ति, वीप्सा और मानवीकरण।

(ख) अरे वर्ष के हर्ष .... भर निज रोर!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– कवि बादल का आह्वान करके उससे सृष्टि में नयी शक्ति भरने की प्रार्थना करता है। वह भी बादल के समान आकाश में उड़कर विश्व का अवलोकन करना चाहता है।

व्याख्या– हे बादल! तुम्हारे बरसने से खेत-खलिहान लहराने लगता हैं। खेत-खलिहानों से धनधान्य पाकर समस्त समाज वर्ष भर आनन्दमय रहता है। इसलिए तुम अपनी रसधारा बरसाकर पूरी धरती को रसक्कित कर दो। तुम इतना बरसो कि मुझे भी अपने साथ बही ले चलो, जिससे जगत् के उस पार पहुँचकर मैं भी तुम्हारे उस गर्जना भरे भयावह संसार को देख सकूँ। मस्ती में चलने वाले हे बादल! तुम अपने मार्ग पर गम्भीर गर्जना कर उठो।

तुम्हारे चलने (बरसने) से दलदल धँस जाते हैं, समुद्र खिलखिलाकर हँसने लगता है, समस्त झरनों और नदियों की जल धारा कल-कल की ध्वनि में तुम्हारा ही यशोगान करने लगती है। तुम्हारे इस स्वरूप को देखकर मन प्रसन्नता से नाच उठता है। तुम्हारे गर्व-भरे किन्तु मोहक शोर तथा गम्भीर गर्जन से मेरा मन भी तुम्हारे साथ बहने को आतुर हो जाता है। इसीलिए मुझे तो अपने साथ बहाकर आकाश का वह किनारा दिखा दो, जो अत्यन्त सघन है। मेरे हृदय में भी आकाश की भाँति अपना गम्भीर स्वरयुक्त अमर संगीत भर दो।

काव्य-सौन्दर्य– 1. यहाँ कवि ने बादल के जीवनदायी और कल्याणकारी रूप को दर्शाया है। **2.** कवि परतन्त्रता की बेड़ियों से मुक्त होने के लिए बादलों से शक्ति, उत्साह तथा क्रान्ति का संचार कराना चाहता है। **3. भाषा–** संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली। **4. रस–** वीर। **5. शब्द-शक्ति–** लक्षणा और व्यंजना। **6. गुण–** ओज। **7. अलंकार–** अनुप्रास, वीप्सा व मानवीकरण।

(ग) दिवसावसान का .... है अभिषेक।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' के 'सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' द्वारा रचित काव्य ग्रन्थ 'अपरा' से 'सन्ध्या सुन्दरी' नामक शीर्षक से उद्‌धृत है।

प्रसंग– इन पंक्तियों में दिन की समाप्ति पर भूतल पर सन्ध्या के धीरे-धीरे उतरने का सुन्दर चित्रण है।

व्याख्या– सायंकाल का समय है। मेघों से भरे आकाश से सुन्दरीरूपी सन्ध्या किसी परी के समान धीरे-धीरे धरती पर उतर रही है। सन्ध्या-सुन्दरी का अन्धकाररूपी आँचल हिल-डुल नहीं रहा हैं। इसके प्रकाश और अन्धकाररूपी दोनों होंठ बड़े सुन्दर, किन्तु गम्भीरता धारण किये हुए हैं। उनमें हास्य-विनोद की छटा नहीं दिखाई पड़ती, किन्तु इस कमी को एक नक्षत्र पूरा कर रहा है, जो उसके घुँघराले काले बालों में गुँथा हुआ उसको शृंगारिकता करता हुआ चमक रहा है और इस प्रकार वह सबके हृदयों को प्रिय लगने वाली उस सन्ध्या-सुन्दरी को मानो अपनी कान्ति से स्नान कर रहा है; अर्थात् उसकी शोभा बढ़ा रहा है।

काव्य-सौन्दर्य– 1. आशय यह है कि दिन और रात के सन्धिकाल में प्रकृति शान्त और निस्तब्ध हो जाती है। उस समय न प्रकाश अधिक होता है और न अन्धकार। इसी मध्य अवस्था को कवि ने सन्ध्या के दो मधुर अधरों का गम्भीर भाव धारण करना बताया है। सायंकालीन अकेला नक्षत्र आकाश में अपनी ज्योति विकीर्ण करता हुआ सन्ध्या को उसी प्रकार शोभा प्रदान कर रहा है, जिस प्रकार किसी परी के केशों में गुँथा हुआ रत्नाभरण। **2. भाषा–** संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली। **3. रस–**शृंगार। **4. शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **5. गुण–**माधुर्य। **6. अलंकार–** रूपक, मानवीकरण, उपमा व अनुप्रास।

(घ) व्योम-व्योम .... रहा सब कहीं–।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में प्रकृति के कठोर एवं कोमल दोनों रूपों का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि सम्पूर्ण विश्व में 'चुप चुप' का अस्फुट' (धीमा) शब्द व्याप्त हो रहा है। यह धीमा शब्द आकाश में, पृथ्वी में, शान्त सरोवर पर सोती निर्मल कमलिनी की पंखुड़ियों में, अपनी सुन्दरता का अभिमान करने वाली नदी के विस्तृत वक्ष पर, धीर, वीर, गम्भीर और अटल हिमालय के शिखरों पर, ऊँची-ऊँची लहरों के टकराने से उद्वेलित समुद्र में, जो कि प्रलयकाल के गरजते हुए मेघों के समान प्रतीत होता है; जल में, वायु और अग्नि में सर्वत्र गूँज रहा है।

काव्य सौन्दर्य– 1. सायंकाल में सब ओर सहसा छा जाने वाली निस्तब्धता का सुन्दर चित्रण है। ध्वन्यात्मकता का प्रयोग सराहनीय है। **2. भाषा–** संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली। **3. रस–** शृंगार। **4. शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **5. गुण–** माधुर्य।

(ङ) और क्या है? .... तब एक विहाग।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इन पंक्तियों में सांयकाल के आज जाने से उत्पन्न नीरवता, शान्ति-विश्रान्ति आदि का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– इस समय सर्वत्र सन्ध्या का ही राज्य है और ऐसा प्रतीत होता है कि उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। वह अपने आगमन से सारे संसार में एक समान मस्ती की धारा प्रवाहित कर देती है और दिनभर के थके प्राणियों को, उसमें से स्नेहपूर्वक एक-एक प्याला पिलाकर अपनी गोद में सुला लेती है; अर्थात् दिन भर की कार्य-व्यस्तता से थके हुए प्राणी सन्ध्या के समय काम-काज से छुट्टी पाकर शान्ति का अनुभव करते हुए सो जाते है। वह उनके दु:ख को भुलवाकर उन्हें ऐसे अनेक प्रिय सपने दिखाती है, जो उनकी वांछित कल्पनाओं पर आधारित होते हैं— तत्पश्चात् वह स्वयं रात्रि की निस्तब्धता में विलीन हो जाती है। सन्ध्या के सौन्दर्य को देखकर स्मृति का हृदय भी प्रेम में तरंगायित हो उठता है। उसे अपनी प्रिया की स्मृति आन्दोलित कर देती है और अपनी प्रिया के विरह से व्याकुल होकर, उसके मधुर कण्ठ से स्वत: ही विहाग राग के स्वरों में गीत मुखरित हो उठता है।

काव्य सौन्दर्य– 1. कवि ने सन्ध्या के चित्र को साकार कर दिया है। सन्ध्या की व्यापकता दर्शनीय है। **2. भाषा–** संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली। **3. रस–** शृंगार। **4. अलंकार–** मानवीकरण और रूपकातिशयोक्ति।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) तिमिरांचल में चंचलता का नहीं कहीं आभास।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' में संकलित 'सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'' द्वारा रचित 'सन्ध्या सुन्दरी' शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में कवि ने सन्ध्या के सौन्दर्य का वर्णन किया है।

व्याख्या– कवि कहते हैं कि सन्ध्या के समय अन्धकाररूपी सन्ध्या सुन्दरी का आँचल हिल-डुल नहीं है उसमें कहीं भी चंचलता का आभास नहीं है। यह अन्धकाररूपी आँचल संसार को अपनी ओट में ले चुका है इस सन्ध्या सुन्दरी के आँचल से तनिक भी प्रकाश पार नहीं होता है। सम्पूर्ण पृथ्वी पर सिर्फ रात का साम्राज्य स्थापित हो चुका है।

(ख) मदिरा की वह नदी बहाती आती,
थके हुए जीतों को वह सस्नेह प्याला एक पिलाती।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने सन्ध्या के आगमन तथा मनुष्यों पर उसके प्रभाव का वर्णन किया है।

व्याख्या– कवि कहते हैं कि जब सन्ध्या सुन्दरी प्रवेश करती है तो वह सारे संसार में एक समान मस्ती की धारा प्रवाहित कर देती है और दिनभर के थके हुए प्राणियों को, उसमें से स्नेहपूर्वक एक-एक प्याला पिलाकर अपनी गोद में सुला लेती है; अर्थात् दिन भर की कार्य-व्यस्तता से थके प्राणी सन्ध्या के समय काम-काज से छुट्टी पाकर शांति का अनुभव करते हैं और सो जाते हैं। अर्थात सन्ध्या सुन्दरी थके हुए प्राणियों को शांति व विश्राम प्रदान करती है।

(ग) विरहाकुल कमनीय कंठ से
आप निकाल पड़ता तब एक विहाग।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में विरह में व्यथित कवि की मनोदशा का वर्णन हुआ है।

व्याख्या– निराला जी कहते हैं कि सन्ध्या के सौन्दर्य को देखकर कवि के हृदय में भी प्रेम की तरंगे हिलोरे लेने लगती है। उसे अपनी प्रिया की स्मृति आन्दोलित कर देती है और अपनी प्रिया के विरह से व्याकुल होकर, उसके मधुर कण्ठ से स्वत: ही विहाग राग (रात में विशेष रूप से गाया जाने वाला राग) के स्वरों में गीत मुखरित हो उठता है अर्थात् सन्ध्या के समय किसी कवि के हृदय में भी प्रेम के अंकुर प्रस्फुटित होने लगते हैं।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न

1. 'बादल-राग' कविता का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– 'बादल-राग' कविता में कवि ने बादलों को देखकर अपने मत में उमड़ते उल्लास को प्रकट करते हुए उससे क्रान्ति का सन्देश सर्वत्र पहुँचाने का अनुरोध किया है। कवि बादलों से कहता है कि तुम अपनी मस्ती में झूमते हुए, अपने कोमल स्पर्श तथा घनघोर गर्जन से सम्पूर्ण वातावरण को भर दो। अपनी गम्भीर ध्वनि से आकाश में अमर संगीत भर दो। धरती पर बरसो, जिससे झरनों की ध्वनि पर्वतों और सरोवरों में व्याप्त हो जाए। घर, रेगिस्तान, वृक्षों, सागरों, नदियों आदि में तुम अपने संगीत से नवजीवन का संचार कर दो। तथा उनके विकास की गति देखकर वायु भी आश्चर्यचकित हो जाए। प्रत्येक व्यक्ति के हृदय की गहराइयों में, वीरान स्थानों में, गहन जंगलों में अमर संगीत भर दो। तुम ऐसा मधुर संगीत पैदा करो, जिससे सम्पूर्ण आकाश आच्छादित हो जाए।

वह बादल से कहता है कि तुम्हारे बरसने से खेत खलिहान लहराते हैं जिससे, समस्त समाज वर्ष भर आनन्दमय रहता है। इसलिए तुम अपनी रसधारा से धरती को रसासिक्त कर दो तुम मुझे अपने साथ ले चले जिससे जगत के पार पहुँचकर मैं भी तुम्हारे उस गर्जना भरे भयावह संसार को देख सकूँ। हे मस्त बादल! तुम अपने मार्ग पर गम्भीर गर्जना कर उठो।

हे बादल! तुम्हारे कारण दलदल धँस जाते हैं, समुद्र खिलखिलाकर हँसता है। समस्त झरने और नदियाँ तुम्हारा गुणगान करते हैं। तुम्हारे इस स्वरूप को देखकर मन प्रसन्नता से नाचने लगता है। तुम्हारे गर्व-भरे किन्तु मोहक शोर तथा गम्भीर गर्जना से मेरा मन भी तुम्हारे साथ बहने को आतुर हो जाता है। इसलिए मुझे तो अपने साथ बहाकर आकाश का वह कोना दिखा दो, जो अत्यन्त सघन है। मेरे हृदय में भी आकाश की भाँति अपनी गम्भीर स्वरयुक्त अमर संगीत भर दो।

2. क्या आप सहमत हैं कि 'बादल-राग' कविता में 'निराला' जी का देश-प्रेम भली प्रकार प्रकट हुआ है? स्पष्ट कीजिए।

उ०– 'बादल-राग' कविता के माध्यम से कवि ने अपने देश-प्रेम को बादलों के द्वारा व्यक्त किया है। कवि बादलों के द्वारा क्रान्ति का सन्देश सर्वत्र पहुँचाने का प्रयास कर रहा है।

कवि बादलों के द्वारा भारतीय जनता से विनती करता है कि जिस प्रकार बादल नदी, घरों, सागरों को आनंदित करते हैं उसी प्रकार वे भी अपने देश-प्रेम व समर्पण से भारत माता को परतन्त्रता की बेड़ियों से मुक्ति दिलाकर आनंदित करें तथा ब्रिटिश साम्राज्य को उखाड़ फेकें। 'निराला' जी बादलों के साथ सभी जगहों पर जाकर क्रान्ति का बिगुल बजाना चाहते हैं। वे भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए एक नया संचार भरना चाहते है। इस कविता में 'निराला' जी को देश-प्रेम की भावना भली प्रकार से प्रकट हुई है। वह कविता के माध्यम से भारतवासियों को क्रान्ति की राह दिखा रहे हैं।

3. 'सन्ध्या-सुन्दरी' कविता का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– 'सन्ध्या-सुन्दरी' कविता में निराला जी ने सन्ध्या को एक सुन्दरी के रूप में प्रस्तुत किया है। कवि कहता है कि सायंकाल के समय बादलों से भरे आसमान से सुन्दरी रूपी सन्ध्या किसी परी के समान धीरे-धीरे धरती पर उतर रही है। उस सुन्दरी का

आँचल बिलकुल भी हिल नहीं रहा है। इसके प्रकाश और अन्धकार दोनों होंठ बड़े सुन्दर तथा गम्भीरता धारण किए हैं। उनमें हास्य-विनोद की छटा नहीं दिखाई पड़ती है। किन्तु एक तारा(नक्षत्र) इसी कमी को पूरा कर रहा है, जो उसके काले घुँघराले बालों में गुँथा हुआ चमक रहा है। वह सबके हृदय को प्रिय लगने वाली सन्ध्या सुन्दरी की शोभा बढ़ा रहा है।

यह सन्ध्या सुन्दरी आलस्य की लता पर रखी किसी कली के समान है। यह सुन्दरी अपनी सखी नीरवता के कन्धे पर बाँह रखे छाया के सामान आकाश-मार्ग से चली। जिस प्रकार परी वीणा बजाती, प्रेम का राग अलापते हुए आकाश से जाती है सन्ध्या सुन्दरी इस प्रकार से नहीं उतर रही है। वह शांत और धीमी चाल से उतर रही है, पर उसके उतरने के साथ सबको मौन रहने का आदेश देता हुआ एक अस्पष्ट शब्द सर्वत्र व्याप्त होता जा रहा है। यह धीमा शब्द आकाश में, पृथ्वी में, शान्त सरोवर पर सोती निर्मल कमलिनी की पंखुड़ियों में, अपनी सुंदरता का अभिमान करने वाली नदी के विस्तृत वक्ष पर, धीर, वीर, गम्भीर, और अटल हिमालय के शिखरों पर, ऊँची-ऊँची लहरों के टकराने से उद्वेलित समुद्र में जो कि प्रलयकाल के गरजते हुए मेघों के समान प्रतीत होता है; जल में, वायु और अग्नि में सर्वत्र गूँज रहा है।

कवि कहता है कि इस समय सर्वत्र सन्ध्या का ही राज्य है। और उसके अतिरिक्त कुछ नहीं है। अपने आगमन पर वह समस्त संसार में एक मस्ती की धारा प्रवाहित कर देती है। और दिनभर के थके हुए प्राणियों को, उसमें से स्नेहपूर्वक एक-एक प्याला पिलाकर अपनी गोद में सुला लेती है। वह उनके दु:ख दर्द भुलाकर उन्हें ऐसे प्रिय सपने दिखाती है, जो अपनी वांछित कल्पनाओं पर आधारित होते हैं। सन्ध्या के सौन्दर्य को देखकर कवि का हृदय भी प्रेम से वरंगायित हो उठता है। उसे अपनी प्रिय की स्मृति हो जाती है और अपनी प्रिया के विरह से व्याकुल होकर, उसके मधुर कंठ से स्वत: ही विहाग राग के स्वरों में गीत मुखरित हो उठता है।

4. 'सन्ध्या-सुन्दरी' कविता में कवि ने सन्ध्या का मानवीकरण किस रूप में किया है?

उ०– सन्ध्या-सुन्दरी कविता में कवि ने सन्ध्या को एक सुन्दरी तथा परी के रूप में प्रस्तुत करकर सन्ध्या का मानवीकरण किया है। कवि कहते हैं कि, सन्ध्या एक परी की भाँति धीरे-धीरे भूतल पर उतरती है। जिसका आँचल बिल्कुल नहीं हिलता है। कवि ने सुन्दरी की भाँति प्रकाश और अंधकारमय को सन्ध्या सुन्दरी के होंठ बताया है तथा अंधकार तथा तारों को उसके बाल तथा पुरुष के समान बताया है। कवि ने कहा है कि सन्ध्या रूपी परी (सुन्दरी) हाथों में वीणा लेकर नहीं बजाती तथा प्रेम-गीत नहीं गाती उसके नुपुर झंकार उत्पन्न नहीं करते। इस प्रकार कवि ने सन्ध्या को एक सुन्दरी के रूप में प्रस्तुत किया है।

काव्य-सौन्दर्य से संबंधित प्रश्न

1. ''झूम-झूम मृदु .... भर निज रोर।'' पंक्तियों में निहित अलंकार का नाम लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश, वीप्सा और मानवीकरण अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

2. ''व्योम-मण्डल में .... सब कहीं-'' पंक्तियों में निहित रस का नाम बताइए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में श्रृंगार रस का प्रयोग हुआ है।

3. ''मदिरा की .... एक विहाग।'' पंक्तियों का काव्य-सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए।

उ०– **काव्य सौन्दर्य– 1.** कवि ने सन्ध्या के चित्र को साकार कर दिया है। सन्ध्या की व्यापकता दर्शनीय है। **2. भाषा–** संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली। **3. रस–** श्रृंगार, **4. अलंकार–** मानवीकरण एवं रूपकातिशयोक्ति।

4. ''मेघमय आसमान .... परी-सी'' पंक्तियों में प्रयुक्त अलंकार कौन-सा है।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में मानवीकरण, तथा उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है।

पाठ्येतर सक्रियता

उ०– छात्र स्वयं करें।

7 नौका-विहार, परिवर्तन, बापू के प्रति

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 140 का अवलोकन कीजिए।

कवि पर आधारित प्रश्न–

1. सुमित्रानन्दन पन्त का जीवन परिचय दीजिए। इनकी कृतियों का भी उल्लेख कीजिए।

उ०– **कवि परिचय–** प्रकृति के अनुपम चितेरे सुमित्रानन्दन पन्त का जन्म 20 मई, सन् 1900 ई० में अल्मोड़ा के समीप कौसानी नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम गंगादत्त पन्त था। जन्म के छह घंटे बाद ही इनकी माता का निधन हो गया था।

अपनी दादी के वात्सल्य की छत्रछाया मे इनकी बाल्यावस्था व्यतीत हुई। सात वर्ष की अवस्था से ही इनमें काव्यात्मकता प्रतिभा के दर्शन होने लगे। इनकी शिक्षा का पहला चरण अल्मोड़ा में पूरा हुआ। पहले इनका नाम गुसाईंदत्त था लेकिन बाद में इन्होंने उसे बदलकर अपना नाम सुमित्रानन्दन पन्त रखा। बनारस के क्वीन्स कॉलेज से इन्होंने शिक्षा प्राप्त की। कुछ समय ये ऑल इण्डिया रेडियो के परामर्शदाता भी रहे।

छायावादी युग के आधार-स्तम्भ सुमित्रानन्दन पन्त सात वर्ष की अल्पायु से ही कविताओं की रचना करने लगे थे। इनकी प्रथम रचना सन् 1916 ई० में सामने आई। 'गिरजे का घण्टा' नामक इस रचना के पश्चात् ये निरन्तर काव्य-साधना में तल्लीन रहे। सन् 1920 ई० में इनकी रचनाएँ 'उच्छ्वास' एवं 'ग्रन्थि' प्रकाशित हुईं। सन् 1921 ई० में इन्होंने महात्मा गाँधी के आह्वान पर कॉलेज छोड़ दिया और राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन में सम्मिलित हो गए परन्तु अपनी कोमल प्रकृति के कारण सत्याग्रह में सक्रिय रूप से सहयोग नहीं कर पाए और पुन: काव्य-साधना में तल्लीन हो गए।

सन् 1927 ई० में पन्त जी के 'वीणा' एवं सन् 1928 ई० में 'पल्लव' नामक काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए। इसके पश्चात् सन् 1939 ई० में कालाकाँकर आकर इन्होंने मार्क्सवाद का अध्ययन किया और प्रयाग आकर 'रूपाभा' नामक एक प्रगतिशील विचारों वाली पत्रिका का सम्पादन-प्रकाशन प्रारम्भ किया। सन् 1942 ई० के पश्चात् ये महर्षि अरविन्द घोष से मिले और उनसे प्रभावित होकर अपने काव्य में उनके दर्शन को मुखरित किया। इन्हें इनकी रचना 'कला और बूढ़ा चाँद पर 'साहित्य अकादमी पुरस्कार', 'लोकायतन'पर 'सोवियत पुरस्कार' और 'चिदम्बरा' पर 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' मिले हैं। भारत सरकार ने सन् 1961 ई० में इन्हें 'पद्मभूषण' की उपाधि से भी सम्मानित किया।

सरस्वती के इस पुजारी ने 28 दिसम्बर, सन् 1977 ई० को इलाहाबाद में इस भौतिक संसार से सदैव के लिए विदा ले ली।

रचनाएँ– अपने विस्तृत साहित्यिक जीवन में पन्त जी ने विविध विधाओं में साहित्य-रचना की। इनकी प्रमुख रचनाओं का विवरण इस प्रकार है—

लोकायतन– इस महाकाव्य में कवि की सांस्कृतिक और दार्शनिक विचारधारा व्यक्त हुई है। इस रचना में पन्त जी ने ग्राम्य-जीवन और जन-भावना को छन्दोबद्ध किया है।

वीणा– इस रचना में पन्त जी के प्रारम्भिक गीत संगृहीत हैं। इसमें प्रकृति के अलौकिक सौन्दर्य के दर्शन मिलते हैं।

गुंजन– इसमें प्रकृति-प्रेम और सौन्दर्य से सम्बन्धित कवि की गम्भीर एवं प्रौढ़ रचनाएँ संकलित हैं।

पल्लव– इस संग्रह में प्रेम, प्रकृति और सौन्दर्य के व्यापक चित्र प्रस्तुत किए गए हैं।

ग्रन्थि– इस काव्य-संग्रह में वियोग का स्वर प्रमुख रूप से मुखरित हुआ है। प्रकृति यहाँ भी पन्त जी की सहचरी रही है।

अन्य रचनाएँ– स्वर्ण-किरण, स्वर्णधूलि, युगपंथ, उत्तरा, अतिमा, कला और बूढ़ा चाँद, चिदम्बरा आदि में पन्त जी महर्षि अरविन्द के नवचेतनावाद से प्रभावित हैं। 'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में पन्त जी समाजवाद और भौतिक दर्शन की ओर उन्मुख हुए हैं। इन रचनाओं में उन्होंने दीन-हीन और शोषित वर्ग को अपने काव्य का आधार बनाया है।

2. सुमित्रानन्दन पन्त की भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।

उ०– भाषा शैली– पन्त जी के काव्य में कल्पना कविता का आधार है। पन्त जी का प्रिय रस शृंगार है परन्तु इनके काव्य में शान्त, करुण, अद्भुत, रौद्र आदि रसों का भी सुन्दर परिपाक हुआ है।

कविवर पन्त कविता की भाषा में दो गुणों को आवश्यक मानते हैं— चित्रात्मकता और संगीतात्मकता। इन्होंने कविता की भाषा और भावों में पूर्ण सामंजस्य पर बल दिया है।

चित्रात्मकता तो पन्त जी की कविता का प्राण है। दृश्यों का साकार चित्र खड़ा कर देने में ये अत्यन्त कुशल हैं।

पन्त जी ने अलंकारों को भाषा की सजावट का मात्र माध्यम ही नहीं माना, वरन् इन्होंने अलंकारों को भावों की अभिव्यक्ति का द्वार भी माना है। छायावाद ने अभिव्यक्ति की नई शैली को अपनाया। इस नई शैली के कारण अलंकारों में भी नवीनता आई। पन्त जी के काव्य में भी कितने ही नवीन अलंकारों के दर्शन होते हैं। ऐसी उपमाएँ अन्य कवियों की रचनाओं में बहुत कम मिलती हैं। ये एक के बाद दूसरी सुन्दर उपमाओं की लड़ी-सी बाँधते हैं। कहीं सूक्ष्म की स्थूल से तथा कहीं स्थूल की सूक्ष्म वस्तुओं से उपमा देने में पन्त जी अत्यन्त निपुण हैं।

पन्त जी का मत है कि मुक्तक छन्दों की अपेक्षा तुकान्त छन्दों के आधार पर ही काव्य-संगीत की रचना हो सकती है। इसी कारण इन्होंने 'पल्लव' की भूमिका में निराला के मुक्त-छन्द का विरोध किया था। पन्त ने काव्य में वर्णिक छन्दों की अपेक्षा मात्रिक छन्दों को अधिक महत्व दिया है परन्तु प्रगतिवादी विचारधारा में प्रवृत्त होने पर पन्त जी अलंकारों के समान छन्दों के बन्धन का भी विरोध करने लगे थे।

3. पन्त जी को 'प्रकृति का सुकुमार कवि' क्यों कहा जाता है?

उ०– सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य में कल्पना एवं भावों की सुकुमार कोमलता देखने को मिलती है। इन्होंने प्रकृति एवं मानवीय भावों के चित्रण में विकृत तथा कठोर भावों को स्थान नहीं दिया है। इनकी छायावादी कविताएँ अत्यन्त कोमल एवं मृदुल भावों की अभिव्यक्ति करती हैं। इन्हीं कारणों से पन्त जी को 'प्रकृति का सुकुमार कवि' कहा जाता है।

पन्त जी सौन्दर्य के उपासक थे। इनकी सौन्दर्यानुभूति के तीन मुख्य केन्द्र रहे हैं— प्रकृति, नारी तथा कला-सौन्दर्य। इनके काव्य-जीवन का आरम्भ ही प्रकृति-चित्रण से हुआ। वीणा, ग्रन्थि, पल्लव आदि इनकी आरम्भिक कृतियों में प्रकृति का कोमल रूप परिलक्षित हुआ है। इनका सौन्दर्य-प्रेमी मन प्रकृति को देखकर भाव-विभोर हो उठता है। 'वीणा' में ये स्वयं को एक बालिका के रूप में अत्यधिक सहजता एवं कोमलता से चित्रित करते हैं। ऐसा वर्णन हिन्दी-साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। आगे चलकर 'गुंजन' आदि काव्य-रचनाओं में पन्त जी का प्रकृति-प्रेम मांसल बन जाता है और नारी-सौन्दर्य का चित्रण करने लगता है। वस्तुत: 'पल्लव' और 'गुंजन' में प्रकृति और नारी मिलकर एक हो गए हैं और युवा कवि प्रकृति में ही नारी-सौन्दर्य का दर्शन करने लगता है, लेकिन प्रकृति के इस नारी-चित्रण में कवि सदैव पावनता ही देखना चाहता है।

व्याख्या सम्बन्धी प्रश्न

1. निम्नलिखित पद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) शान्त, स्निग्ध ज्योत्स्ना .... मृदुल लहर!

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' के 'सुमित्रानन्दन पन्त' द्वारा रचित काव्य ग्रन्थ 'गुंजन' से 'नौका विहार' शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– प्रस्तुत कविता में पन्त जी ने चाँदनी रात में अपनी मित्र-मण्डली के साथ गंगा में किए गए नौका-विहार का चित्रण किया है। क्षीण धारवाली गंगा की कल्पना पन्त ने पतली कमरवाली नायिका के रूप में की है।

व्याख्या– चारों ओर शान्त, स्निग्ध और उज्जवल चाँदनी छिटकी हुई है। आकाश टकटकी बाँधे हुए पृथ्वी को देख रहा है। पृथ्वी शान्त और शब्दरहित है। ऐसे मनोहर और नि:स्तब्ध वातावरण में ग्रीष्म के कारण मन्द और क्षीण धारवाली गंगा बालू के बीच मन्द-मन्द बहती हुई ऐसी प्रतीत हो रही है, मानो कोई छरहरे, दुबले-पतले शरीरवाली सुन्दर युवती दूध जैसी सफेद शय्या पर गर्मी से व्याकुल होकर थकी, मुरझाई और शान्त लेटी हुई हो। गंगा-जल में झलकता चन्द्र बिम्ब प्रतीत हो रहा है, मानो गंगारूपी कोई तपस्विनी अपने चन्द्रमुख को, उसी के प्रकाश से प्रकाशित कोमल हथेली पर रखे लेटी हो और छोटी-छोटी लहरें उसके वक्षस्थल पर लहराते कोमल केश हों।

तारों-भरें आकाश की चंचल परछाई गंगा के जल में पड़ती हुई ऐसी प्रतीत होती है, मानो उस गंगारूपी तपस्विनी बाला के गोरे-गोरे अंगों के स्पर्श से बार-बार काँपता, तारों-जड़ा उसका नीला आँचल लहरा रही हो। उस आकाशरूपी नीले आँचल पर चन्द्रमा की कोमल चाँदनी में प्रकाशित छोटी-छोटी कोमल, टेढ़ी, बलखाती लहरें ऐसा प्रतीत होती हैं, मानो लेटने के कारण उसकी रोशमी साड़ी में सिलवटें पड़ गई हों।

काव्य-सौन्दर्य– 1. यहाँ कवि ने गंगा का मानवीकरण करके उसे तपस्विनी बाला के रूप में प्रस्तुत किया है। **2.** पन्तजी की कल्पना के विविध रूप और उनकी वर्णन-योजना विशेष द्रष्टव्य है। **3. भाषा–** शुद्ध संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली। **4. अलंकार–** मानवीकरण, सांगरूपक, उपमा, अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश एवं स्वभावोक्ति। **5. रस–** शृंगार। **6. शब्दशक्ति–** लक्षणा। **7. गुण–** माधुर्य। **8. छन्द–** स्वच्छन्द।

(ख) नौका से उठती जल .... सा रुक-रुक!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में गंगा में नौका-विहार के समय गंगा के मनमोहक सौन्दर्य का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– जब गंगा में नौका चलती है तो उससे उठनेवाली लहरों के कारण गंगा में प्रतिबिम्बित सारा आकाश हिल उठता है। गंगा का जल शान्त हो जाने पर, उसमें प्रतिबिम्बित तारों की परछाई ऐसी प्रतीत होती है, मानो तारे जल के अन्दर के भाग को आलोकित करके उसमें अपनी आँखें फाड़-फाड़कर कुछ खोज रहे हों। इन तारोंरूपी लघु दीपों को छिपाए हुए गंगा की चपल लहरें इधर-उधर छिपती हुई-सी प्रतीत हो रही हों। सामने ही शुक्र तारा झिलमिला रहा है और उसकी शोभा जल में प्रतिबिम्बित होकर परी-सी तैर रही है, जो कभी-कभी चाँदी जैसे रुपहले बालों अर्थात् गंगा की लहरों में छिप जाती है। अपने यौवन से अनभिज्ञ नायिका जिस प्रकार कभी अपना सुन्दर मुख घूँघट में छिपा लेती है और कभी घूँघट उघाड़ देती है, उसी प्रकार गंगा में प्रतिबिम्बित दशमी का चन्द्र भी अपना तिरछा मुख दिखा देता है और कभी लहरों में चंचलता के कारण छिप जाता है।

काव्य सौन्दर्य– 1. गंगा के जल में मानवीकरण पर आधारित आकाश, तारों और चन्द्रमा की छटा का मनोहारी चित्रण हुआ है। **2. भाषा–** संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली। **3. अलंकार–** रूपक, उपमा और मानवीकरण। **4. रस–** शृंगार। **5. शब्दशक्ति–** लक्षणा। **6. गुण–** प्रसाद और माधुर्य।

(ग) पतवार घुमा, अब .... को सहोत्साह!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– पन्त जी ने चाँदनी रात में गंगा नदी के बीच की धारा में नौका-विहार के समय की प्राकृतिक सुषमा का सुन्दर चित्रण किया है।

व्याख्या– जब नौका गंगा के बीच धारा में पहुँचती तो हमने देखा कि चाँदनी में चाँद-सा चमकता हुआ रेतीला कगार हमारी दृष्टि से ओझल हो गया। गंगा के दूर-दूर स्थित दोनों तट फैली हुई दो बाँहों के समान लग रहे थे, जो गंगा-धारा के दुबले-पतले कोमल नारी शरीर का आलिंगन करने के लिए अधीर थे; अर्थात् अपने में कस लेना चाहते थे। उधर, अत्यधिक दूर क्षितिज पर वृक्षों की पंक्ति थी जो धरती के सौन्दर्य को बिना पलक झपकाये निहारते हुए आकाश को नीले-नीले विशाल नयन की तिरछी भौंह के समान लग रही थी। निकट ही धारा के बीच एक छोटा सा द्वीप था, जो लहरों के प्रवाह को रोककर उलट देता था। धारा में स्थित वह शान्त द्वीप ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे माँ की छाती पर चिपककर कोई नन्हा-सा बालक सोया हुआ हो। वह उड़ता हुआ पक्षी कौन है? क्या वह अपनी प्रिया चकवी से रात्रि में बिछड़ा हुआ व्याकुल चकवा तो नहीं है? शायद वही है, जो जल में पड़े हुए प्रतिबिम्ब को देखकर उसे चकवी समझ बैठा है और विरह-वेदना मिटाने के लिए उससे मिलन हेतु उड़ रहा है।

काव्य-सौन्दर्य– 1. सम्पूर्ण वर्णन प्राकृतिक दृश्यावलियों की गतिशीलता मनोरम झाँकी को नेत्र पटल पर साकार कर देता है। **2.** तटों के बीच की दुबली-पतली धारा, दूर क्षितिज पर स्थित वृक्षों की पंक्ति, धारा के बीच स्थित द्वीप तथा उड़ते हुए पक्षियों को दर्शाकर कवि ने प्रकृति का सजीव चित्र प्रस्तुत कर दिया है। **3. भाषा–** संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली। **4. रस–** शृंगार। **5. अलंकार–** उपमा, रूपक, भ्रान्तिमान व मानवीकरण। **6. छन्द–** स्वच्छन्द। **7. गुण–** प्रसाद। **8. शब्दशक्ति–** अभिधा, लक्षणा।

(घ) ज्यों ज्यों लगती है .... अमरत्व दान!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– कवि ने यहाँ पर नौका-विहार के अनुभव का वर्णन किया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि जैसे-जैसे हमारी नौका दूसरे किनारे की ओर बढ़ती जाती है, वैसे ही हमारे हृदय में सैकड़ों विचार उठने लगते हैं और हम सोचते हैं कि इस संसार का क्रम भी इस जलधारा के समान ही है। जिस प्रकार धारा निरन्तर बहती चली आ रही है, कभी समाप्त नहीं होती और जो जल आगे बह जाता है, उसका स्थान पीछे से आ रहा जल ले लेता है, इसी प्रकार जीवन का उद्गम भी शाश्वत है। जलधारा के समान ही जीवन की गति तथा मिलन भी शाश्वत है। चन्द्रमा की चाँदी जैसी हँसी अर्थात् चाँदनी भी चिरस्थायी है। इसी प्रकार लहरों का ऐश्वर्य भी निरन्तर बना रहता है। कवि भावनाओं के सागर में डूब गया और सोचने लगा। कि हे संसार की जीवनरूपी नौका को चलानेवाले भगवान्! जन्म के पश्चात् सदैव मृत्यु और मृत्यु के पश्चात् सदैव जन्म है। इसी प्रकार यह जीवनरूपी नौका का विहार निरन्तर चलता रहता है। भावनाओं में डूबा कवि कह उठता है कि मैं चिन्तनशील होकर भी अपनी सत्ता का ज्ञान भूल गया। जीवन की शाश्वता का जलधारारूपी यह प्रमाण ही मुझे अमरत्व प्रदान करता है।

काव्य-सौन्दर्य– 1. नौका विहार के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि ने जीवन का शाश्वता को स्पष्ट किया है। **2.** कवि ने प्रकृति से उपदेश ग्रहण किया है। **3. भाषा–** संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली। **4. अलंकार–** उपमा एवं रूपक। **5. रस–** शृंगार। **6. शब्दशक्ति–** लक्षणा। **7. गुण–** माधुर्य। **8. छन्द–** स्वच्छन्द।

(ङ) कहाँ आज वह .... भ्रू-पात।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' के 'सुमित्रानन्दन पन्त' द्वारा रचित काव्य-ग्रन्थ 'पल्लव' से 'परिवर्तन' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– इन पंक्तियों में कवि ने देश के वैभव और समृद्धि से परिपूर्ण प्राचीन युग का स्मरण और वर्णन किया है। परिवर्तन की निरन्तर गतिशीलता की ओर संकेत करते हुए कवि ने बताया है कि समय के अनुसार देश के भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक क्षेत्र में क्रान्ति और परिवर्तन होते रहते हैं।

व्याख्या– समृद्धि और वैभव से परिपूर्ण हमारा वह प्राचीन युग, हमारे इतिहास का स्वर्ण-काल कहाँ विलीन हो गया? उस समय चारों दिशाओं में ऐश्वर्य और समृद्धि व्याप्त थी। चारों ओर ज्ञान का आलोक छाया रहता था तथा भारत का मस्तक ज्ञान की ज्योति से जगमगाता रहता था। चारों ओर लहलहाती खेती और हरियाली के रूप में मानो धरती का यौवन विकसित होता रहता था। उस युग की सुषमा को देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो स्वर्ग की सुन्दरता ही धरती का आभार स्वीकार कर प्रेम-क्रीड़ा करने के लिए धरती पर उतर आई हो। निरन्तर खिलते रहनेवाले अनेक प्रकार के पुष्प धरती का शृंगार करते थे, जिनकी गन्ध से मतवाले सुनहले भौरें उन पर मँडराते और गूँजते रहते थे। भौरों की गुंजार ऐसी प्रतीत होती थी, मानो सृष्टि अपने हृदय के प्रथम उद्गारों को व्यक्त कर रही हो। उस समय चारों ओर छाया हुआ उन्मुक्त सौन्दर्य सुकुमार था। उस सुकुमार सौन्दर्य को छिपाने की भावना भी नहीं थी। चारों ओर अपाव वैभव और समृद्धि छाई रहती थी। ऐसा वह युग विश्व के स्वर्णिम स्वप्न के समान मनोरम ओर सृष्टि का प्रथम प्रभात था। जिस प्रकार प्रभात जागृति, नवजीवन, उल्लास, सौन्दर्य तथा उत्साह का प्रतीक होता है, उसी प्रकार वह प्राचीन युग भी इन्हीं समस्त गुणों और विशेषताओं से परिपूर्ण था।

कवि उस स्वर्ण-युग को याद करते हुए पूछता है आज जीवन का वह सत्य, जीवन को सहजता के साथ स्वीकार करने का उपदेश देनेवाले ये विश्वविख्यात वेद कहाँ लुप्त हो गए हैं? यह वह युग था जब मानव को पाप, दु:ख, दीनता एवं गरीबी का सामना नहीं करना पड़ता था। उस युग में मानव वृद्धावस्था और मृत्यु की विभीषिकाओं से पूर्णत: अपरिचित था।

काव्य-सौन्दर्य– 1. अतीत के वैभव की कल्पना और भावना से अनुरंजित मनोरम चित्र प्रस्तुत हुए हैं। **2.** जगत् का सबसे बड़ा सत्य परिवर्तन है। **3.** कवि ने यहाँ भारत के प्राचीन स्वर्णिम युग को सृष्टि तथा मानव सभ्यता का 'प्रथम-प्रभात' कहा है। **3.भाषा–** संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली। **5. अलंकार–** रूपक, मानवीकरण, पुनरुक्तिप्रकाश एवं अनुप्रास। **6. रस–** भयानक। **7. शब्दशक्ति–** लक्षणा। **8. गुण–** ओज। **9. छन्द–** स्वच्छन्द।

(च) आज बचपन का .... काँटो-से हाय!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– कालचक्र द्वारा उत्पन्न किए गए परिवर्तनों के अन्य उदाहरण प्रस्तुत करते हुए पन्तजी कहते हैं—

व्याख्या– आज बचपन का जो कोमल, सुन्दर शरीर है, वृद्धावस्था आ जाने पर वही शरीर पीले, सूखे, खुरदरे पत्ते के समान हो जाएगा। जीवन में सुख देनेवाली चाँदनी रातें और सुख के क्षण बहुत थोड़े समय तक ही रहते हैं, शेष जीवन में तो अज्ञात अन्धकार से परिपूर्ण रात्रि भर जाती है और सारे सुख नष्ट हो जाते हैं। दु:ख के क्षणों में आसूँ, पुष्पों के समान गालों को इस प्रकार झुलसा देते हैं, जैसे शिशिर की ओस फूल और पत्तों को झुलसा देती है। उस समय प्रेमी के अधर प्रणय के चुम्बनों को भूलकर अपने प्रिय के अधरों को भूल जाते हैं।

आज दिन होंठों पर ओस की बूँद के समान निर्मल और मोहक हँसी छाई रहती है, वृद्धावस्था आ जाने पर उठती गहरी साँसें उन होंठों की हँसी को उड़ा ले जाती हैं। तात्पर्य यह है कि मानव निर्मल एवं मुक्त हँसी हँसना भूल जाता है। चिन्ताहीन जो भौंहें शरद्-ऋतु के स्वच्छ, मेघहीन आकाश के समान अपने स्वाभाविक, सरल रूप में स्थित रहती हैं, समय बीतने पर चिन्ता के सघन मेघ घिरकर उन्हें गम्भीर और कुंचित बना देते हैं; अर्थात् भौहे चिन्ताओं के कारण सिकुड़ी बनी रहती है। उनकी सरलता नष्ट हो जाती है। संयोग के समय, प्रिय-प्रियतमा के जो अधर आपस में जुड़ जाते हैं अथवा चुंबन के आबद्ध हो जाते हैं, बिछोह हो जाने पर वही अधर वियोग के दु:ख से कातर हो गहरी साँसें भरते रहते हैं। इस संसार में मिलन के क्षण केवल दो-चार होते हैं, परन्तु विरह असंख्य कल्पों के समान लम्बा होता है; अर्थात् जीवन में सुख के क्षण बहुत कम होते हैं, अधिकांश जीवन तो दु:ख भोगते हुए ही रहना पड़ता है।

पन्त जी कहते हैं कि प्रिय-विरह के कारण उत्पन्न दु:ख से व्यक्ति की आँखें पथरा जाती हैं। वह बिना पलक झपकाए अपने प्रिय की यादों में खोया फूट-फूटकर रोता रहता है; उस समय वह पूरी तरह असहाय होता है, उसे अपने दु:ख से पार पाने का कोई उपाय दृष्टिगत नहीं होता। अपनी विवशता, असहायता और एकाकीपन के कारण जीवन में आगे आनेवाले दु:खों की कल्पना करके व्यक्ति सिहर उठता है और भय से उसके शरीर का एक-एक रोम ऐसे उठ खड़े होता है, मानो वे रोम एक-दूसरे का आलिंगन करने के लिए उठ खड़े हुए हैं। भय से खड़े वे रोम उसके मन में पीड़ा की ऐसी कसक उत्पन्न करते हैं, मानो उसके शरीर में काँटों को चुभो दिया जाता है।

काव्य-सौन्दर्य– 1. परिवर्तन की शक्ति का वर्णन हुआ है। **2.** सांसारिक दु:ख का ऐसा कारण चित्र उपस्थित किया गया है कि उसको देखकर प्रत्येक सहृदय के मन में शूल-सा उभरकर उसको चीरने लगता है। **3. भाषा–** शुद्ध साहित्यिक मुहावरेदार खड़ीबोली। **4.** 'आठ-आठ आसूँ रोना' मुहावरे का सार्थक प्रयोग द्रष्टव्य है। **5. अलंकार–** रूपक, उपमा, अनुप्रास और लोकोक्ति। **6. रस–** भयानक। **7. शब्दशक्ति–** लक्षणा; व्यंजना। **8. छन्द–** स्वच्छन्द।

(छ) खोलता इधर .... उठते उडुगन!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इसमें कवि ने संसार की परिवर्तनशीलता का करुणापूर्ण चित्र अंकित किया है।

व्याख्या– यह संसार परिवर्तनशील है। एक ओर जन्म की कोमल अँगुलियाँ जीवन की पलक उघाड़कर उसकी आँखें खोल देती हैं तो दूसरी ओर मृत्यु का हाथ आगे बढ़कर अगले ही पल उन्हें मूँद देता है। जहाँ अभी कुछ समय पहले ही उत्सव हो रहा था, लोग हँस-हँसकर उल्लास जता रहे थे, वहीं अब मौत के ताण्डव का दु:ख आँसू और आहें शेष रह गयी हैं। विधाता का यह कैसा खेल है कि जहाँ हर्ष और उल्लास का सागर हिलोरें ले रहा होता है, वहीं अगले ही क्षण दु:ख का विशाल पहाड़ टूट पड़ता है। संसार की इस अस्थिरता को देखकर पवन भी दु:खी है। वह दु:ख से आहें भरता हुआ सारे शून्यांक को भर देता है। उधर आकाश के नयन भी इस परिवर्तनशीलता को देखकर करुणावश गीले हो गये हैं और वह चोट खाया हुआ (नीला) आकाश ओस की बूँदों के रूप में अपने आसूँ वृक्ष के पत्तों पर चुपचाप टपका देता है। गहन गम्भीर सागर भी सिसकने लगता है और असंख्य तारे इस कारुणिक दृश्य को देखकर सिहर उठते है।

काव्य-सौन्दर्य– 1. भाषा– संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली। **2. रस–** भयानक। **3 छन्द–** स्वच्छन्द। **4. गुण–** प्रसाद। **5. अलंकार–** अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश व मानवीकरण। **6.** यहाँ पर कवि ने संसार में निष्ठुर परिवर्तन के दु:खद प्रभाव का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। **7.** प्रकृति के विविध उपादानों को व्यथित दिखाकर प्रकृति का संवेदनात्मक रूप प्रस्तुत किया गया है।

(ज) अहे निष्ठुर .... दिङ्मंडल!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– यहाँ कवि ने परिवर्तन के भयंकर रूप का चित्रण किया है।

व्याख्या– हे हृदयहीन परिवर्तन! तुम्हारे ही प्रलंयकारी नृत्य के फलस्वरूप विश्व में करुणोत्पादक उलट-फेर होते रहते हैं। एक क्षण में किसी भी स्थिति का कायापलट हो जाता है। तुम्हारे आँख खोलते ही संसार में उथल-पुथल मच जाती है। सारी उन्नति और अवनति का कारण तुम ही हो। तात्पर्य यह है कि विश्व में परिवर्तन का चक्र निरन्तर घूमता रहता है और उसी के फलस्वरूप सम्पूर्ण विश्व में उलट-फेर तथा उत्थान-पतन होता है। हजारों फन वाले वासुकि नाग के सदृश हे परिवर्तन! तुम्हारे दिखाई न पड़ने वाले किन्तु हर क्षण गतिमान लाखों चरण इस विश्व की घायल छाती पर दिन-रात अपने चिह्न छोड़ते चलते हैं। आशय यह है कि विश्व में नित्यप्रति असंख्य परिवर्तन हो रहे हैं, पर वे सामान्यत: दृष्टिगोचर नहीं होते (साँप के चरण दिखाई नहीं पड़ते, पर जब वह रेंगता है तो उसके रेंगने से एक लकीर-सी खींच जाती है।) जहरीले फेन (झाग) से युक्त तुम्हारी श्वासोच्छ्वासरूपी भयंकर फुंकारे सारे संसार में उथल-पुथल मचाती रहती हैं। मृत्यु ही तुम्हारा विषैला दाँत है, अर्थात् सर्प के विषैले दाँत के दंश से कोई जीवित नहीं बच सकता। भाव यह है कि संसार के प्राणियों की मृत्यु अवश्यम्भावी है। प्रलय के बाद नवीन सृष्टि का उद्‌भव ही तुम्हारा केंचुली बदलना है। सम्पूर्ण विश्व ही तुम्हारी बाँबी है। दिशाओं का घेरा ही तुम्हारी मण्डलाकार कुण्डली है: अर्थात् दिशाओं तक विस्तृत समस्त विश्व तुम्हारी जकड़ में है।

काव्य-सौन्दर्य– 1. कवि पन्त अपनी सुकुमार कल्पना के लिए प्रसिद्ध हैं, परन्तु यहाँ उन्होंने परिवर्तन का अतीव भयंकर एव विराट् रूप बड़ी कुशलतापूर्वक अंकित किया है। **2. भाषा–** संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली। **3. रस–** शान्त। **4. शब्द-शक्ति–** अभिधा और लक्षणा। **5. गुण–** प्रसाद। **6. अलंकार–** मानवीकरण, रूपक और ध्वन्यर्थव्यंजना। **7. छन्द–** मुक्त। **8. भावसाम्य–** इसी भाव को जगदीश गुप्त जी कुछ इन शब्दों में कहते हैं—

जब तक बँधी है चेतना
तब तक हृदय दु:ख से घना।

(झ) तुम मांसहीन .... से मानवपन!

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' के 'सुमित्रानन्दन पन्त' के द्वारा रचित काव्य ग्रन्थ 'युगान्त' से 'बापू के प्रति' नामक शीर्षक से उद्‌धृत है।

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में कविवर पन्त ने युगपुरुष महात्मा गाँधी की स्तुति की है।

व्याख्या– युगपुरुष महात्मा गाँधी की स्तुति करते हुए कविवर पन्त कहते हैं कि हे बापू! तुम शरीर से दुर्बल तथा मांस और रक्त से हीन हो एवं तुम्हारा शरीर हड्डियों का ढाँचामात्र है। उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हारा शरीर में अस्थियाँ भी शेष नहीं हैं। तुम पवित्र ज्ञान से युक्त आत्मावाले हो। तुममें प्राचीन और नवीन आदर्शों का समन्वय है; अर्थात् तुम प्राचीन आदर्शों के साथ-साथ नवीन आदर्शों को भी स्वीकार करते हो। हे बापू! तुममें जीवन की पूर्णता है, जिसमें विश्व की समस्त असारता लीन हो जाएगी। हे बापू! तुम्हारे ही जीवन के आदर्शों पर भविष्य की संस्कृति और सभ्यता उचित प्रकार से प्रतिष्ठित होगी।

जिस प्रकार मांस, रक्त तथा हड्डियों से शरीर का निर्माण होता है, उसी प्रकार तुम्हारे सद्-आदर्शों से नवयुग का निर्माण होगा। तुम और तुम्हारा स्वार्थरहित त्याग भी धन्य है। तुम्हारा नि:स्वार्थ भावना से किया गया त्याग ही मानव-जाति के कल्याण का कारण बनेगा। तात्पर्य यह है कि तुमने अपनी समस्त कामनाओं को त्यागकर भारत को स्वतन्त्र कराकर भारतवासियों को स्वतन्त्रता प्रदान की। यह नवीन जगत् अब अपनी इच्छाओं और भावनाओं को भस्म करके उसकी धूलि से सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त को प्राप्त करेगा। जिस प्रकार ताने-बानों के योग से सुन्दर वस्त्र बनकर तैयार हो जाता है, उसी प्रकार आपके द्वारा निर्धारित सत्य और अहिंसारूपी ताने-बानों से मानव-जीवन सुखी और समृद्ध बन सकेगा।

काव्य-सौन्दर्य– 1. कवि ने गाँधीजी के आदर्शों को श्रेष्ठ मानकर उन्हें विश्व-एकता में सहायक बताया है। **2. भाषा–** संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली। **3. अलंकार–** उल्लेख, विरोधाभास, यमक एवं रूपक। **4. रस–** भक्ति। **5. शब्दशक्ति–** अभिधा एवं लक्षणा। **6. गुण–** प्रसाद।

(ञ) सुख भोग खोजने .... मानवता का सरोज!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने बताया है कि गाँधी जी की आत्मा एवं मन दोनों ही पवित्र, कोमल एवं सुन्दर थे। वे सत्य और अहिंसा के अनन्य पुजारी थे तथा उनका जीवन त्यागमय था।

व्याख्या– संसार में जन्म लेकर अधिकांश मनुष्य सुख-भोग की खोज में लग जाते है; अर्थात् सासांरिक सुख को जुटाने मे सारा जीवन खपा देते हैं, किन्तु तुम तो साधारण मानव नहीं थे। तुमने यहाँ जीवन की सच्ची सार्थकता को पाने का उपाय खोजा। संसार के अधिकांश लोग शुद्ध भौतिकवादी हैं। वे किसी उच्चतर आदर्श की कल्पना नहीं करते, केवल शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति में ही लगे रहते हैं, किन्तु तुम शरीर से बँधकर रहने वाले न थे। तुम तो आत्मस्वरूप थे, आत्मिक विकास के कामदेव के समान सुन्दरतम रूप थे। तुमको इस भौतिक शरीर में सुख के दर्शन ही नहीं होते थे, वरन् आत्मा के सुख में ही तुमने वास्तविक सुख देखा। समस्त भारतवासियों के लिए भोजन और वस्त्र देने में ही आपको सुख मिलता था, वही आपका आत्मिक सुख सन्तोष था।

संसार में व्याप्त जड़ता (भौतिकता) में तुमने चेतनता (आत्मिक शक्ति) का संचार किया, हिंसा के स्थान पर अहिंसा का प्रचार किया और अन्धी प्रतिस्पर्धा के स्थान पर नम्रतापूर्ण तेजस्विता का सन्देश दिया; अर्थात् दूसरों के प्रति विनम्र और सहनशील रहते हुए भी अपनी उन्नति करना, न कि दूसरे को गिराकर स्वयं उठने का प्रयास करना। सासांरिक मनुष्य घोर स्वार्थपरायणता के कारण पशुवत् बन गया था। वह पशुता की कीचड़ से उत्पन्न कमलवत् था। तुमने उसे मानवीयतारूपी निर्मल जल वाले सरोवर से उत्पन्न कमल बना दिया; अर्थात् तुमने भौतिकवादी मनुष्य को अध्यात्मवादी बना दिया।

काव्य-सौन्दर्य– 1. गाँधी जी का आचरण बौद्ध मत के इस सिद्धान्त के अनुरूप था कि क्रोधी को अक्रोध (शान्ति) से, दुर्जन व्यक्ति को सज्जनता से, कृपण (कंजूस) को दान से और मिथ्याभाषी को सत्य से जीते। **2. भाषा–** संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली। **3. रस–** शान्त। **4. शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **5. गुण–** प्रसाद। **6. अलंकार–** परिकरांकुर (मनोज, सरोज) व रूपक। **7. छन्द–** स्वच्छन्द।

(ट) उर के चरखे में .... कौशल प्रवाद!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– यहाँ गाँधी जी के आत्मिक विकास और नवयुग-निर्माण में उनकी भूमिका का उल्लेख किया गया है।

व्याख्या– कवि गाँधी जी को सम्बोधित करते हुए कहता है कि आपके द्वारा संचालित चरखा आन्दोलन केवल भौतिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए ही नहीं था, वह केवल आर्थिक हितों को ध्यान में रखकर ही नहीं चलाया गया था, बल्कि उस आन्दोलन का उद्देश्य अपनी आध्यात्मिक शुद्धि करना भी था। आपने उस चरखे के समान ही अपने हृदय के चरखे पर कितने ही युगों से छिपी हुई वेदना को कातकर, उसका रूप परिवर्तित कर दिया। भौतिक वासनाओं का परित्याग करके, आपने चरखे की गूँज के साथ, आत्मा के आनन्दमीय संगीत को गगन में गुंजायमान् कर दिया। चरखे से काती गई सूत से बनी खादी को रँगने के साथ ही, आपने उस खादी में जीवन की नवीन आशा और उल्लास को भर दिया तथा मानव जीवन के लिए नवीन युग और एक नवीन कला का सूत्रपात किया। हे नव आदर्शों के निर्माता! जहाँ आपने एक ओर युग-युग की वासना से उत्पन्न वेदना का अन्त किया, वहीं आपने यन्त्रीकरण से उत्पन्न संघर्ष एवं दु:ख को भी दूर किया और आत्मिक ज्योति से प्रकाशमान् एक नवीन सभ्यता को प्रारम्भ किया।

काव्य-सौन्दर्य– 1. चरखा आन्दोलन के माध्यम से गाँधी जी द्वारा किए गए आत्मिक शुद्धि के प्रयास और नवयुग के सूत्राधार के रूप में उनके कार्यों की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। **2. भाषा–** परिष्कृत खड़ीबोली। **3. अलंकार–** रूपक। **4. रस–** शान्त। **5. शब्दशक्ति–** लक्षणा। **6. गुण–** ओज।

(ठ) साम्राज्यवाद था कंस .... पद-प्रणत शान्त!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– यहाँ पन्त जी ने स्पष्ट किया कि गाँधी जी ने कैसे विदेशियों को भगाकर भारतवर्ष को मुक्त कराया।

व्याख्या– अंग्रेजी साम्राज्यवाद भारतवासियों के लिए कंस के समान था। भारतवासी जेल की कैदी देवकी के समान पीड़ित थे तथा मानवता अंग्रेजी साम्राज्यवाद पर आधारित अत्याचारों से पीड़ित थी। उसके पैर परतन्त्रारूपी बेड़ियों से जकड़े हुए थे। पद और शक्ति के कारण भ्रमित शासन के उच्चपदों पर कार्य करनेवाले निर्दयी अधिकारी ही जेल के पहरेदार थे। जिस प्रकार देवकी ने श्रीकृष्ण को जेल में जन्म देकर कंस के अत्याचारों का दमन कराया, उसी प्रकार हे बापू! तुमने भी देश के कल्याण के लिए अनेक बार जेल जाकर मानव-जाति को मुक्त कराया। भाव यह है कि जिस प्रकार बढ़ती हुई यमुना बालक श्रीकृष्ण के चरणों का स्पर्श करके, अपनी चंचलता छोड़कर समान गति से प्रवाहित होने लगी थी; उसी प्रकार अत्याचारी, अन्यायी और शोषणकारी विदेशी राज्य-सत्ता बापू के समक्ष झुक गई और भारत देश कंस जैसे आततायी शासक से मुक्त हो गया।

काव्य-सौन्दर्य– 1. प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने विदेशी शासन के अत्याचार और शोषण-वृत्ति का चित्रण किया है। **2.** कवि ने बापू को ईश्वर का अवतार मानकर उन्हें युगपुरुष के रूप में चित्रित किया है। **3. भाषा–** संस्कृतमिश्रित खड़ीबोली। **4. अलंकार–** रूपक, दृष्टान्त और अनुप्रास। **5. रस–** वीर। **6. शब्दशक्ति–** लक्षणा। **7. गुण–** ओज।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) हे जग-जीवन के कर्णधार! चिर जन्म-मरण के आरपार,
शाश्वत जीवन नौका-विहार।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' मे संकलित 'सुमित्रानन्दन पन्त' द्वारा रचित 'नौका-विहार' शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– इस सूक्ति में जीवन और जगत् का उद्गम एवं क्रम, गंगा की धारा के समान बताया गया है।

व्याख्या– जिस प्रकार गंगा की धारा अनादिकाल से प्रवाहित हो रही है, उसी प्रकार यह जगत् भी अनादिकाल से चला आ रहा है। जैसे गंगा का उद्गम स्थल चिरन्तन (सदा से) है वैसे ही इस जीवन का उद्गम भी शाश्वत है। जिस प्रकार गंगा में नाव कभी इस ओर से उस ओर जाती है तथा उस ओर से इस ओर आती है, वैसे ही मनुष्य का जीवन भी है। मनुष्य जीवनरूपी नौका में बैठकर उस लोक (परलोक) में चला जाता है और फिर इस लोक में जन्म लेता है। उसकी यह आवाजाही नौका-विहार की भाँति निर्बाध रूप से चलती रहती है।

(ख) कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन, वह सुवर्ण काल?

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' मे संकलित 'सुमित्रानन्दन पन्त' द्वारा रचित 'परिवर्तन' नामक शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– इसमें कवि भारत के गौरवशाली अतीत की याद दिलाते हुए सतत गतिमान परिवर्तन की ओर संकेत करता है।

व्याख्या– भारत का प्राचीन अतीत बहुत समृद्ध था। यहाँ अपार धन-सम्पत्ति तथा ज्ञान का प्रकाश था, किन्तु आज वह स्वर्ण युग कहीं नहीं दिखाई पड़ रहा हैं। परिवर्तन के चक्र ने सब कुछ परिवर्तित कर दिया है, अर्थात् परिवर्तन बड़ा बलवान है। परिवर्तन की यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है और बार-बार उस पुरातन की मधुर स्मृति याद आती रहती है।

(ग) गूँजते है सबके दिन चार,
सभी फिर हाहाकार!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में कवि ने बताया है कि जीवन में सुखद क्षणों की तुलना में दु:खद क्षण अधिक समय तक रहते हैं।

व्याख्या– पन्त जी कहते हैं कि प्रत्येक प्राणी के जीवन में सुखद समय केवल कुछ ही दिनों के लिए आता है। इसके उपरान्त पुन: वही दु:खद समय लौट आता है। इस दु:ख के कारण सर्वत्र हाहाकार मचा रहता है। आशय यह है कि सुख तो चार दिन के लिए अर्थात् क्षणिक होता है, जब कि दु:खद अनन्त समय के ए अर्थात् दीर्घकालिक होता है।

(घ) चार दिन सुखद चाँदनी रात
और फिर अंधकार, अज्ञात!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में कवि परिवर्तन की विश्वव्यापी विनाशकारी शक्ति का चित्रण कर रहा है।

व्याख्या– संसार में दु:ख-दैन्य ही शाश्वत है, स्थायी है। यदि दो-चार दिनों के लिए किसी की उन्नति हो भी जाए, उसकी सुख-समृद्धि की भी चर्चा होने लगे तो शीघ्र ही उसका अवसान (अन्त) दु:ख, दैन्य और क्रन्दन में होता है। जिस प्रकार चाँदनी रात चार दिन रहती है और उसके बाद अँधेरा छा जाता है, ऐसे ही जीवन में सुख कम है और उस क्षणिक सुख के बाद चिरकालीन दु:ख आ जाता है। जैसे शहनाई के स्वर थोड़ी देर उठकर और सर्वत्र हर्षोल्लास का संचार करके अन्त में मौन में, निस्तब्धता में विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार व्यक्ति का सुख-सौभाग्य भी दो-चार दिन उत्कर्ष को प्राप्त होकर अन्त में विनष्ट हो जाता है।

(ङ) मिलन के पल केवल दो चार,
विरह के कल्प अपार!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में सुख की क्षणभंगुरता और दु:ख की चिरन्तनता बताकर कवि ने जीवन का निराशावादी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।

व्याख्या– मनुष्य को इस संसार में प्रियजनों से मिलने का सुख बहुधा कुछ ही पल मिल पाता है। अभी वह उन क्षणों का पूर्ण आनन्द भी नहीं ले पाता कि वियोग का क्षण आ पहुँचता है, जो अनन्त काल तक खिंचता चला जाता है। वस्तुत: समय की गति संयोग में अत्यधिक अल्पकालिक और वियोग में अत्यन्त दीर्घकालिक हो जाती है। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं होता। मिलन-विरह समकालिक है। मिलन के क्षण आनन्द की अनुभूति कराते है इसलिए वे शीघ्र बीत गये प्रतीत होते हैं, जबकि विरह के क्षण दु:खपूर्ण होते हैं। कष्ट से व्यतीत होने के कारण स्थायी रूप से रुक गये प्रतीत होते हैं।

(च) चुका लेता दु:ख कल की ब्याज
काल को नहीं किसी की लाज!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में यह स्पष्ट किया गया है कि समय अथवा काल किसी का भी सगा नहीं होता है तथा वह क्षणभर में ही व्यक्ति के सुख को दु:ख में परिवर्तित कर सकता है।

व्याख्या– लेखक श्री सुमित्रानन्दन पन्त का कहना है कि इस संसार में सुखी लोग बहुत कम हैं और दु:खी अधिक। सुख का समय कम होता है और उसे दु:ख में परिवर्तित होते देर नहीं लगती। यदि किसी को कुछ समय के लिए सुख प्राप्त हो भी जाता है तो दु:ख उसे शीघ्र ही ब्याजसहित चुकता कर लेता है। एक महाजन तो लोक-लज्जावश किसी को ऋणमुक्त कर सकता है, अथवा उसकी वसूली कुछ समय के लिए टाल भी सकता है परन्तु समय को किसी की लज्जा नहीं होती, वह तो तत्काल की अपने सुखरूपी ऋण को ब्याजसहित वसूल लेता है। जिस प्रकार वैभव की चमक बिजली की कौंध के समान क्षणिक और अति-अल्पकालिक होती है, उसी प्रकार संसार के सम्मुख सुख-वैभव भी हैं, जो क्षणमात्र के लिए दिखाई पड़ते हैं और तुरन्त ही नष्ट हो जाते हैं।

(छ) मोतियों जड़ी ओस की डार
हिला जाता चुपचाप बयार!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में परिवर्तन की भयंकरता को बताया गया है।

व्याख्या– पन्त जी का कहना है कि इस संसार में परिवर्तन के कारण सुख क्षणिक है। व्यक्ति की सुख-समृद्धिरूपी फूल-पत्तियों से युक्त जीवनरूपी शाखा पर छितराये ओसरूपी हर्ष के मोतियों को परिवर्तन और समयरूपी हवा का झोंका कब धीरे से हिलाकर धूल-धूसरित कर देता है, किसी को मालूम ही नहीं पड़ता। यहाँ ओसरूपी मोतियों से जड़ी ड़ाली, क्षणिक समृद्धि का प्रतीक है। हवा का एक ही झोंका उन मोतियों जैसी ओस की बूँदों को गिराकर उस डाली का अकिंचनता की स्थिति में ला देता है। आशय यह है कि अपनी सुख-समृद्धि पर घमण्ड करने वाले व्यक्तियों को यह ज्ञात रहना चाहिए कि सब कुछ परिवर्तनशील है।

(ज) खोलता इधर जन्म लोचन
मूँदती उधर मृत्यु क्षण-क्षण;

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इसमें कवि ने संसार की परिवर्तनशीलता का करुणापूर्ण चित्र अंकित किया है।

व्याख्या– यह संसार परिवर्तनशील है। एक ओर जन्म की कोमल अंगुलियाँ जीवन की पलक उघाड़कर उसकी आँखें खोल देती हैं तो दूसरी ओर मृत्यु का हाथ आगे बढ़कर अगले ही पल उन्हें मूँद देता है। जहाँ अभी कुछ समय पहले ही उत्सव हो रहा था तथा लोग हँस-हँस कर उल्लास जता रहे थे, वहीं अब मौत के ताण्डव का दु:ख, आँसू और आहें शेष रह गई हैं।

(झ) तुम्हारा ही ताडंव नर्तन
विश्व का करुण विवर्तन!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में परिवर्तन की विनाशकारिता का चित्रण किया गया है।

व्याख्या– कवि परिवर्तन को सम्बोधित करता हुआ कहता है कि हे परिवर्तन! तुम बड़े कठोर हो। तुम समय-असमय कुछ भी नहीं देखते, निरन्तर गतिमान रहते हो। तुम पर न किसी के आँसुओं का असर होता है, न किसी के अनुनय-विनय का। तुम देखते-ही-देखते जीवन को मृत्यु में, उत्सव को शोक और अश्रुओं में एवं उत्थान को पतन में परिवर्तित कर डालते हो। इस सुन्दर संसार को तुम्हारे ही कारण क्षणभंगुर कहा जाता है। कवि के कहने का आशय यही है कि संसार में हमें जो गति दिखाई देती है, उसका एकमात्र कारण परिवर्तन है। यदि प्रकृति के परिवर्तन का यह चक्र रुक गया तो संसार निर्जीव और मूर्तिवत् हो जाएगा। परिवर्तन पर भावनाओं और समय-असमय का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, इसलिए उसे 'निष्ठुर' उचित ही कहा गया है।

(ञ) सुख भोग खोजने आते सब,
आए तुम करने सत्य खोज।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' के 'सुमित्रानन्दन पन्त' द्वारा रचित 'बापू के प्रति' नामक शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– इस सूक्ति में गाँधी जी के व्यक्तित्व की उल्लेखनीय विशेषता को स्पष्ट किया गया है।

व्याख्या– कविवर पन्त महात्मा गाँधी को सम्बोधित करते हुए कहते है कि इस संसार में लोग सुख-सुविधाओं को भोगने के

लिए आते हैं। उन्हें दूसरों के सुख-दु:ख में कोई मतलब नहीं होता। वे तो अपने लिए अधिकतम सुख सुविधा जुटाकर उसका उपयोग करते हुए अधिकतम आनन्द उठाना चाहते हैं। किन्तु महात्मा गाँधी ने इस सब के विपरीत न्यूनतम सुख-सुविधाओं का उपयोग करते हुए मानव-मात्र के दु:ख-दर्द को समझा और उस सत्य को खोजने का प्रयत्न किया, जिसके कारण मनुष्य दारुण दु:ख अर्थात् घोर कष्ट उठाता है।

(ट) पशुता का पंकज बना दिया
तुमने मानवता का सरोज!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में गाँधी जी के द्वारा पशुता को मानवता में परिवर्तित करने की बात कही गयी है।

व्याख्या– कविवर सुमित्रानन्दन पन्त जी का कहना है कि राष्ट्रपति महात्मा गाँधी ने पाशविक प्रवृत्ति वालों को मानवीय गुणों के आधार पर जीवन जीना सिखाया। गाँधी जी ने अंग्रेजों पर यह स्पष्ट कर दिया कि उन्होंने भारतीयों का रक्तपात करके जो सफलता प्राप्त की, वह उनकी हिसंक प्रवृत्ति की विजय थी। लेकिन गाँधी जी ने अंग्रेजों के खिलाप जो जंग जीती, वह सत्य-अहिंसार-प्रेम के बल पर जीती। अत: गाँधी जी के द्वारा जीती गयी जंग मानवता की विजय प्रतीत होती है।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न

1. 'नौका-विहार' कविता का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– प्रस्तुत कविता में पन्त जी ने चाँदनी रात में अपनी मित्र-मण्डली के साथ गंगा में किए गए नौका-विहार का चित्रण किया है। पन्त ने गंगा की कल्पना पतली कमरवाली नायिका के रूप में की है। कवि कहते हैं कि चारों ओर शांत, स्निग्ध चाँदनी छिटकी हुई है। आकाश टकटकी बाँधे पृथ्वी को देख रहा है। ग्रीष्म के कारण मन्द और क्षीण धारा वाली गंगा बालू के बीच बहती ऐसी प्रतीत हो रही है, जैसे कोई छरहरे शरीर वाली सुन्दर युवती दूध जैसी सफेद शैय्या पर गर्मी से व्याकुल होकर थकी, मुरझाई और शांत लेटी हो। गंगा-जल में झलकता चन्द्र बिम्ब ऐसा लग रहा है जैसे, कोई तपस्विनी अपने चन्द्रमुख को उसी के प्रकाश से प्रकाशित कोमल हथेली पर रखे हो। छोटी-छोटी लहरें उसके वक्षस्थल पर लहराते कोमल केश हों। तारों से भरे आकाश की परछाईं गंगा के जल में ऐस लग रही है जैसे तपस्विनी का तारों जड़ा नीला आँचल लहरा रहा हो। गंगा की लहरें ऐसी प्रतीत हो रही है जैसे तपस्विनी के लेटने के कारण उसकी रेशमी साड़ी में सिलवटे पड़ गई हो।

कवि कहते हैं कि चाँदनी रात के प्रथम पहर में हम नौका लेकर निकल पड़े हैं। गंगा का तट ऐसा रम्य लग रहा है, जैसे मुस्काती अर्थात् खुली पड़ी रेतीली सीपी पर चन्द्रमा रूपी मोती की चमक (चाँदनी) विचरण कर रही हो। गंगा में खड़ी नावों की पालें विहार के लिए ऊपर चढ़ गई है और उन्होंने लंगर उठा लिए है। इन लंगरों के उठते ही छोटी-छोटी नावें अपने पालरूपी पंख खोलकर सुंदर हंसनियों की तरह धीरे-धीरे गंगा में तैरने लगी। गंगा का जल शांत और निश्छल है, जो दर्पण के समान सुशोभित है। गंगा तट पर सुशोभित कालाकाँकर के राजभवन का प्रतिबिम्ब गंगा जल में ऐसा लगता है जैसे वह गंगाजलरूपी शैय्या पर निश्चिन्त होकर सो रहा है और उसकी झुकी पलकों में वैभवरूप स्वप्न तैर रहे हो। कवि कहते हैं कि गंगा में नौका चलने से उठने वाली लहरों से उसमें प्रतिबिम्बित सारा आकाश हिल उठता है। उसमें प्रतिबिम्बित तारों की परछाई ऐसी लगती है जैसे तारे जल के अंदर अपनी आँखे फाड़-फाड़कर कुछ खोज रहे हो।

इन तारों रूपी लघु दीपों को छिपाए हुए गंगा की लहरें इधर-उधर छिपती दिख रही हैं। सामने ही शुक्र तारा झिलमिला रहा है और उसकी शोभा परी के समान जल में तैर रही है, जो कभी-कभी चाँदी जैसे रूपहलें बालों अर्थात् गंगा की लहरों में छिप जाती है। दशमी का चन्द्र भी यौवन से परिपूर्ण नायिका के समान लहरों रूपी घूँघट में अपना मुख कभी छिपा लेता है और कभी उघाड़ लेता है।

कवि कहते हैं कि जब नौका गंगा की धारा के बीच में पहुँची तब हमारी दृष्टि से रेतीला कगार ओझल हो गया। उस समय गंगा के दोनों तट पर फैली हुई दो बाँहें प्रतीत हो रहे थे जो गंगा की धारा के क्षीणकाय कोमल नारी शरीर को आलिंगन करने के लिए आतुर थे। इन क्षितिज पर पेड़ों की पंक्तियाँ तिरछी भौंह के समान लग रही थी। गंगा की धारा के पास में ही एक छोटा-सा द्वीप था, जो लहरों के प्रवाह को रोककर उलट देता था। वह द्वीप ऐसा लग रहा था जैसे कोई शिशु अपनी माँ की छाती से लिपटकर सो रहा हो। गंगा के ऊपर उड़ता हुआ पक्षी कौन है? क्या वह कोई चकवा है जो प्रतिबिम्ब को अपनी चकवी समझकर अपनी विरह-वेदना शांत करने को उससे मिलने के लिए उड़ा जा रहा है।

कवि कहते हैं कि गंगा के अथाह जल में पहुँचकर नौका का भार कम हो गया और हमने पतवार घुमाकर नौका को धारा की विपरित दिशा से मोड़ दिया। डाँडों के चलने से जल में अत्यधिक झाग उठ रहे थे। पतवारों के कारण शांत जल में लहरें उठ रही थी जो चाँदी के साँपों के समान रेंगती लगती थी। उन लहरों और झागों से झिलमिलाता चन्द्रमा सौ-सौ चन्द्रमा बनकर एक-एक तारा सौ-सौ तारे बनकर सुशोभित हो रहे थे। कवि कहते हैं कि फिर वे नौका को धारा के बीच से निकालकर किनारे पर स्थित घाट की ओर चल पड़ते हैं।

जैसे-जैसे नाव किनारे की ओर बढ़ती जाती है कवि के मन में विचार उठते हैं कि संसार का क्रम भी जलधारा के समान ही है।

इसकी लहरें शाश्वत है इसी प्रकार जीवन का उद्‌गम भी शाश्वत है। जलधारा के समान ही जीवन की गति तथा मिलन भी शाश्वत है। कवि सोचता है कि हे संसार की नौका को चलाने वाले ईश्वर! जन्म के बाद मृत्यु और मृत्यु के बाद जन्म है। इसी प्रकार यह जीवनरूपी नौका का विहार चलता रहता है। मैं चिन्तनशील होकर भी अपनी सत्ता का ज्ञान भूल गया। जीवन की शाश्वता का जलधारारूपी यह प्रमाण ही मुझे अमरत्व प्रदान करता है।

2. पन्त जी ने 'परिवर्तन' शीर्षक के माध्यम से क्या सन्देश दिया है?

उ०– 'परिवर्तन' शीर्षक के माध्यम से पन्त जी ने परिवर्तन को सृष्टि का शाश्वत नियम बताया है। परिवर्तन की निरन्तर गतिशीलता की ओर संकेत करते हुए पन्त जी कहते हैं कि समय के अनुसार देश के भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक क्षेत्र में क्रान्ति और परिवर्तन होते रहते हैं। पन्त जी ने इस कविता के माध्यम से संदेश दिया है कि परिवर्तन सदैव सुखों को दु:खों में बदलता रहता है। परिवर्तन होने पर ही आज का कोमल, सुन्दर शरीर वृद्धावस्था आ जाने पर पीले, सूखे, खुरदरे पत्ते के समान हो जाता है। जीवन में सुख देनेवाले क्षण बहुत कम समय तक ही रहते हैं, शेष जीवन में तो अज्ञात अन्धकार रहता है और सारे सुख नष्ट हो जाते हैं। यह संसार सतत परिवर्तनशील है। यह परिवर्तन बहुत निष्ठुर होता है। अत: मनुष्य को इन परिवर्तनों के लिए तैयार रहना चाहिए और परिवर्तनों से घबरा कर निराश नहीं होना चाहिए।

3. सुमित्रानन्दन पन्त जी ने महात्मा गाँधी के प्रति क्या विचार व्यक्त किए हैं?

उ०– सुमित्रानन्दन पन्त जी ने महात्मा गाँधी को युगपुरुष कहा है, महात्मा गाँधी का शरीर दुर्बल और हड्डियों का ढाँचा मात्र था परन्तु वे प्राचीन व नवीन आदर्शों का समन्वय थे। पन्त जी के अनुसार बापू के जीवन के आदर्शों पर चलकर ही भविष्य की संस्कृति और सभ्यता प्रतिष्ठित होगी। महात्मा गाँधी ने जिस प्रकार अपने स्वार्थ को त्यागकर भारत को अंग्रेजों से स्वतंत्र कराकर भारतवासियों को स्वतन्त्रता प्रदान की है, यह संसार भी उनके सिद्धान्त सत्य और अहिंसा का पालन करेगा। गाँधी जी मानवता के सच्चे सेवक थे। पन्त जी कहते हैं कि गाँधी जी ने मानव समाज में व्याप्त वर्गभेद, जातिभेद, हिंसा आदि की कीचड़ में उत्पन्न कमल को सत्य, अहिंसा, त्याग और मानवतारूपी स्वच्छ सरोवर में उत्पन्न कमल बना दिया है। कवि पन्त कहते हैं कि गाँधी जी ने ही द्वेष, ईर्ष्या एवं घृणा का भाव रखनेवालों को प्रेम का व्यवहार सिखलाया। गाँधी जी ने केवल भौतिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए ही चरखा नहीं चलाया अपितु अपने हृदय में छुपी वेदना को कातकर उसका रूप परिवर्तित कर दिया। गाँधी जी ने अपने कर्मों के द्वारा विदेशी साम्राज्य की नींव हिला दी तथा भारत को उनसे मुक्त कराया। गाँधी जी ने भारत में व्याप्त क्षेत्रीयता, भाषावाद, धर्म-जाति, ऊँच-नीच, गोरे-काले की दीवारों को तोड़कर समाज में सामंजस्य स्थापित कर भारत देश को महान बना दिया। पन्त जी ने गाँधी जी को 'मुक्त पुरुष' और 'ज्ञान ज्योति' कहकर सम्मानित किया है।

4. 'नौका विहार' कविता के अन्त में कवि के मन में क्या भाव जागृत होते हैं?

उ०– 'नौका विहार' कविता के अन्त में जैसे-जैसे नौका किनारे की ओर बढ़ती जा रही थी, वैसे ही कवि के मन में भाव जागृत हुए कि इस संसार का क्रम भी इस जलधारा के समान ही है। जिस प्रकार धारा निरन्तर बहती चली आ रही है, कभी समाप्त नहीं होती और जो जल आगे बह जाता है, उसका स्थान पीछे से आने वाला जल ले लेता है, इसी प्रकार जीवन का उद्‌गम भी शाश्वत है। जलधारा के समान ही जीवन की गति तथा मिलन भी शाश्वत है। आकाश का विस्तार शाश्वत है। चन्द्रमा की चाँदनी चिरस्थायी है। इसी प्रकार लहरों का अस्तित्व भी निरन्तर बना रहता है। कवि से कहता हे ईश्वर! जन्म के बाद मृत्यु और मृत्यु के बाद सदैव जन्म है यह जीवनरूपी नौका का विहार सदैव चलता रहता है। मैं चिन्तनशील होकर भी अपनी सत्ता का ज्ञान भूल गया। जीवन की शाश्वता का जलधारारूपी यह प्रमाण ही मुझे अमरत्मव प्रदान करता है।

काव्य-सौन्दर्य से सम्बन्धित प्रश्न

1. ''शान्त, स्निग्ध .... मृदुल लहर!'' पंक्तियों में प्रयुक्त अलंकार का नाम लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में मानवीकरण, सांगरूपक, उपमा, अनुप्रास एवं पुनरुक्तिप्रकाश आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

2. ''चाँदनी रात .... सघन!'' पंक्तियों का काव्य-सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए।

उ०– **काव्य-सौन्दर्य– 1.** गंगा-तट की शोभा का स्वाभाविक, वैज्ञानिक एवं मनोरम चित्रण किया गया है। **2.** दर्पण के आगे की भूमि का उतना ही बड़ा वैसा ही बिम्ब दर्पण में बनता है। तब दर्पण में देखने पर वह वस्तु दुगुनी बड़ी दिखाई देती है। ठीक वैसा ही गंगाजल में हो रहा है। गंगा-तट का बिम्ब जल में पड़ रहा है, जिससे उसका परिणाम दुगुना हो गया है। **3. भाषा–** संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली। **4. अलंकार–** उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा तथा अनुप्रास। **5. रस–** शान्त। **6. छन्द–** स्वच्छन्द। **7. गुण–** प्रसाद। **8. शब्दशक्ति–** अभिधा।

3. ''आज बचपन का .... कल्प अपार!'' पंक्तियों में निहित रस व उसका स्थायी भाव लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में भयानक रस है, जिसका स्थायी भाव भय है।

4. ''साम्राज्यवाद था .... शान्त!'' पंक्तियों में निहित रस व उसका स्थायी भाव लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में वीर रस है, जिसका स्थायी भाव उत्साह है।

5. ''उर के .... कौशल प्रवाद'' पंक्तियों का काव्य-सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए।

उ०– काव्य-सौन्दर्य– 1. चरखा आन्दोलन के माध्यम से गाँधी जी द्वारा किए गए आत्मिक शुद्धि के प्रयास और नवयुग के सूत्रधार के रूप में उनके कार्यों की प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। **2. भाषा–** परिष्कृत खड़ीबोली। **3. अलंकार–** रूपक। **4. रस–** शान्त। **5. शब्दशक्ति–** लक्षणा। **6. गुण–** ओज।

पाठ्येतर सक्रियता

उ०– छात्र स्वयं करें।

8 गीत

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 146-147 का अवलोकन कीजिए।

कवि पर आधारित प्रश्न–

1. महादेवी वर्मा जी का जीवन परिचय दीजिए। इनकी रचनाओं का भी उल्लेख कीजिए।

उ०– कवयित्री परिचय– श्रीमती महादेवी वर्मा का जन्म 26 मार्च सन् 1907 ई० को होलिका दहन के पवित्र पर्व पर फर्रुखाबाद (उ०प्र०) में एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। इनकी माता हेमरानी देवी धार्मिक विचारों वाली महिला थीं। श्री कृष्ण के प्रति उनकी अटूट श्रद्धा थी। इन्हें कविता लिखने का शौक था। महोदवी वर्मा के पिता का नाम गोविन्द सहाय वर्मा था। इनके नानाजी भी ब्रजभाषा में कविता लिखते थे, उन्हीं से इन्हें काव्य-सृजन की प्रेरणा प्राप्त हुई। इन्दौर के मिशन स्कूल में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद इलाहाबाद के 'क्रास्थवेट गर्ल्स कॉलेज' में इन्होंने शिक्षा प्राप्त की। मात्र नौ वर्ष की अवस्था में ही इनका विवाह 'स्वरूप नारायण वर्मा' के साथ हुआ। तत्काल ही इनकी माता का निधन हो गया। इनका वैवाहिक जीवन भी सुखमय नहीं रहा परन्तु इन्होंने अपना अध्ययन का क्रम बनाए रखा। प्रयाग विश्वविद्यालय से संस्कृत विषय में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करने के बाद इन्होंने 'प्रयाग महिला विद्यापीठ' में प्रधानाचार्या के पद को सुशोभित किया। कुछ वर्षों तक ये उत्तर प्रदेश विधान-परिषद की सदस्य भी रहीं। संगीत, दर्शन व चित्रकला में इनकी विशेष रूचि रही है। नारियों की स्वतन्त्रता के लिए संघर्षरत रहते हुए उनके अधिकार की रक्षा के लिए इन्होंने स्त्री शिक्षा की अनिवार्यता पर बल दिया। इनकी रचनाएँ सबसे पहले 'चाँद' पत्रिका में छपीं। इसके बाद इन्होंने 'चाँद' पत्रिका सम्पादित भी की। इन्हें 'यामा' काव्य-कृति पर 'ज्ञानपीठ' पुरस्कार प्राप्त हुआ। इनकी काव्य प्रतिभा के लिए इन्हें 'मंगलाप्रसाद' पारितोषिक तथा 'सेकसरिया पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। कुमायूँ विश्वविद्यालय द्वारा इन्हें 'डी.लिट्' की उपाधि से अलंकृत किया गया तथा उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा साहित्य की साधिका महोदेवी वर्मा को 'भारत-भारती' पुरस्कार से तथा भारत सरकार द्वारा 'पद्मभूषण' उपाधि से सम्मानित किया गया। महोदेवी जी का स्वर्गवास 11 सितम्बर, सन् 1987 ई० को हो गया।

रचनाएँ– महोदवी जी की प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं—

नीहार– इस काव्य-संकलन में भावमय गीत संकलित हैं। इनमें वेदना का स्वर मुखरित हुआ है।

रश्मि– इस संग्रह में आत्मा-परमात्मा के मधुर सम्बन्धों पर आधारित गीतों का संकलन है।

नीरजा– इसमें प्रकृति-प्रधान गीत संकलित हैं। इन गीतों में सुख-दु:ख की अनुभूतियों को वाणी मिली है।

सान्ध्यगीत– इसमें संकलित गीतों में परमात्मा से मिलन का आनन्दमय चित्रण है।

दीपशिखा– इसमें रहस्य-भावनाप्रधान गीतों का संकलन है।

इनके अतिरिक्त स्मृति की रेखाएँ, अतीत के चलचित्र, श्रृंखला की कड़ियाँ, मेरा परिवार, पथ के साथी आदि इनकी गद्य-रचनाएँ हैं। 'यामा' इनके विशिष्ट गीतों का संग्रह है। 'सन्धिनी' और 'आधुनिक कवि' भी इनके गीतों के संग्रह हैं।

2. महादेवी वर्मा की भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।

उ०– भाषा-शैली– अपने विषय को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए कवि उपमानों का सहारा लेते हैं। ये उपमान दो प्रकार के होते हैं— सूक्ष्म और स्थूल। महादेवी जी ने अपने काव्य में सूक्ष्म उपमानों का प्रयोग किया है। लाक्षणिकता की दृष्टि से महादेवी जी का काव्य भव्य है। इन्होंने अपने अनेक गीतों में भावों के सुन्दर चित्र अंकित किए हैं। जिस प्रकार थोड़ी-सी रेखाओं और रंगों के माध्यम से कुशल चित्रकार किसी भी चित्र को उभार देता है, उसी प्रकार महादेवी जी ने भी थोड़े-से शब्दों के द्वारा से ही अनेक सुन्दर चित्र चित्रित किए हैं।

महादेवी जी के काव्य में प्रतीकों का बाहुल्य है। दीप, बदली, सान्ध्य-गगन, सरिता, सजल नयन, रात्रि, गगन, जलधारा, अन्धकार, किरण, ज्वाला, पंकज, विद्युत, प्रकाश आदि इनके प्रमुख प्रतीक हैं। इनके प्रतीकों के अर्थ भी अपने ही हैं; जैसे—'मैं नीर-भरी दु:ख की बदली' में 'बदली' का अर्थ 'करुणा' से परिपूर्ण हृदय वाली है। इसी प्रकार कुछ गिने-गिने प्रतीकों को अपनाकर तथा उनमें नवीन अर्थ भरकर महादेवी जी ने अपनी प्रतीक-योजना को समृद्ध और भावों को प्रभावशाली बना दिया है। महादेवी जी अपने शब्द-चयन के प्रति अत्यन्त जागरूक रही हैं। इन्होंने उन्हीं शब्दों का प्रयोग किया है, जो इनके भावों को प्रस्तुत करने में पूरी तरह समर्थ और सक्षम हैं। तत्सम शब्दों के साथ-साथ इन्होंने आवश्यकतानुसार तद्भव शब्दों को भी अपनाया। वर्णमैत्री भी इनकी शब्द-योजना की प्रमुख विशेषता है। महादेवी जी का काव्य गीतिकाव्य है। अपने गीतिकाव्य में महादेवी जी ने लोकगीत की शैली को भी स्वीकार किया। लोकगीतों का लयात्मक संगीत इनके गीतों में मिल जाता है।

महादेवी वर्मा को छायावादी युग का प्रमुख आधार-स्तम्भ माना जाता है। सरस कल्पना, भावुकता एवं वेदनापूर्ण भावों को अभिव्यक्त करने की दृष्टि से इन्हें अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई हैं। वेदना को हृदयस्पर्शी रूप में व्यक्त करने के कारण ही इन्हें 'आधुनिक युग की मीरा' कहा जाता है। अपनी साहित्य-साधना के लिए महादेवी जी सदैव स्मरणीय रहेंगी।

व्याख्या सम्बन्धी प्रश्न

1. निम्नलिखित पद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) चिर सजग .... अपने छोड़ आना!

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' के 'महादेवी वर्मा' द्वारा रचित काव्यग्रन्थ 'सान्ध्यगीत' से 'गीत-1' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– श्रीमती महादेवी वर्मा अपने साधना-पथ में तनिक भी आलस्य नहीं आने देना चाहतीं; अत: वे अपने प्राणों को सम्बोधित करते हुए कहती हैं—

व्याख्या– हे प्राण! निरन्तर जागरूक रहनेवाली आँखें आज आलस्ययुक्त क्यों हैं और तुम्हारा वेश आज अस्त-व्यस्त क्यों है? आज अलसाने का समय नहीं। आलस्य और प्रमाद को छोड़कर अब तुम जाग जाओ; क्योंकि तुम्हें बहुत दूर जाना है। तुम्हें अभी बहुत बड़ी साधना करनी है। चाहे आज स्थिर हिमालय कम्पित हो जाए या फिर आकाश से प्रलयकाल की वर्षा होने लगे अथवा घोर अन्धकार प्रकाश को निगल जाए और चाहे चमकती और कड़कती हुई बिजली में से तूफान बोलने लगे तो भी तुम्हें उस विनाश-वेला में अपने चिह्नों को छोड़ते चलना है और साधना-पथ से विचलित नहीं होना है।

महादेवी जी पुन: अपने प्राणों को उद्बोधित करती हुई कहती हैं कि हे प्राण! तू अब जाग जा; क्योंकि तुझे बहुत दूर जाना है।

काव्य-सौन्दर्य– 1. इन पंक्तियों में महादेवी जी ने एक सच्ची साधिका के रूप में साधना के मार्ग में आनेवाली विविध बाधाओं को प्रतीकात्मक शब्दावली में उल्लेख किया है। **2. भाषा–** शुद्ध खड़ीबोली। **3. अलंकार–** इन पंक्तियों में 'हिमगिरि के हृदय में कम्प', 'व्योम का रोना', 'तिमिर का डोलना' और 'तूफान के बोलने' आदि के माध्यम से प्रकृति का मानवीकृत रूप में वर्णन किया गया है, अत: यहाँ मानवीकरण अलंकार का प्रयोग हुआ है। **4. रस–** वीर। **5. शब्दशक्ति–** लक्षणा। **6. गुण–** ओज एवं प्रसाद। **7. छन्द–** मुक्तक।

(ख) बाँध लेंगे .... लिए कारा बनाना!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– यहाँ मनुष्य-मात्र के लिए साधना-पथ की बाधाओं को लाँघकर अपने लक्ष्य तक पहुँचने का आह्वान किया गया है।

व्याख्या– महादेवी जी कहती है कि सासांरिक बन्धन हैं तो बहुत आकर्षक, किन्तु वे मोम की भाँति कोमल और बलहीन हैं। हमें इन बन्धनों को तोड़कर अपने चिरन्तन लक्ष्य की ओर आगे बढ़ना है। इसी प्रकार तितलियों के रंगीन पंखों की तरह संसार के बाह्य, किन्तु क्षणिक सौन्दर्य भी तुम्हारे मार्ग की बाधा बनकर खड़े होंगे, किन्तु हमें उन पर मुग्ध नहीं होना है। भौरों के मधुर गुंजन की तरह सांसारिक जनों की दिखावटी मीठी-मीठी बातों से भ्रमित भी नहीं होना है। इतना ही नहीं, नमी व आर्द्रता से भर-भर आने वाले सुन्दर फूलों की तरह सुन्दर आँखों में आँसू देखकर भी द्रवित नहीं होना है, अपितु सिद्धार्थ की भाँति इन सब का मोह त्यागकर अज्ञात प्रियतम के समीप पहुँचना है। कहीं ऐसा न हो कि हम अपनी ही छाया से भ्रमित हो जाएँ। इसलिए हमें अपनी आत्मा के सत्, चित्, आनन्द स्वरूप को भली-भाँति पहचानकर उसका परमात्मा से मिलन कराना है। हे जीवात्मारूपी पथिक तू जाग जा; क्योंकि तुझे बहुत दूर जाना है।

काव्य-सौन्दर्य– 1. रूपक अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है। **2.** जगत् नश्वर है और परम ब्रह्म ही शाश्वत है। **3.** भाषा का प्रतीकात्मक रूप स्पष्टतया परिलक्षित हो रहा है। **4.** ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग किया गया है। **5. भाषा–** संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली। **6. शैली–** गीति। **7. शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **8. रस–** शृंगार एवं शान्त। **9. गुण–** माधुर्य। **10. छन्द–** मुक्तक।

(ग) पंथ होने दो .... विपुतों में दीप खेला।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' के 'महादेवी वर्मा' द्वारा रचित काव्यग्रन्थ 'दीपशिखा' से 'गीत-2' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– साधना के अपरिचित पथ की कठिनाइयों का विवरण प्रस्तुत करते हुए महादेवी कहती हैं—

व्याख्या– साधना-पथ को अपरिचित होने दो और उस मार्ग के पथिक प्राण को भी अकेला रहने दो। मेरी छाया आज मुझे भले ही अमावस्या की रात्रि के गहन अन्धकार के समान घेर ले और मेरी काजल लगी आँखें भले ही बादल के समान आँसुओं की वर्षा करने लगें, फिर भी चिन्ता की कोई आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार की कठिनाइयों को देखकर जो आँखें सूख जाती हैं, जिन आँखों के तिल बुझ जाते हैं और जिन आँखों की पलकें रूखी-रूखी-सी हो जाती है, वे कोई और आँखें होंगी। इस प्रकार के कष्टों के आने पर भी मेरी चिन्तन आर्द्र बनी रहेगी; क्योंकि मेरे जीवन-दीप ने सैकड़ों विद्युतों में भी खेलना सीखा है; अर्थात् कष्टों से घबराकर पीछे हटा जाना मेरे जीवन-दीप का स्वभाव नहीं है।

काव्य-सौन्दर्य– 1. महादेवीजी का वेदना-भाव भी अभिव्यक्त हुआ है। **2. भाषा–** शुद्ध परिष्कृत खड़ीबोली। **3. शैली–** लाक्षणिक प्रतीकात्मक पदावली और छायावादी शैली। **4. अलंकार–** अनुप्रास और भेदकातिशयोक्ति। **5. रस–** करुण तथा शृंगार। **6. शब्दशक्ति–** लक्षणा। **7. गुण–** प्रसाद। **8. छन्द–** मुक्तक।

(घ) हास का मधु ....रहने दो अकेला!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– अज्ञात प्रियतम की प्रसन्नता एवं रुष्टता दोनों को ही स्वीकार करके महादेवी जी के मन में सदैव उनके प्रति दृढ़ भक्ति-भावना एवं तल्लीनता रहती है।

व्याख्या– हे प्रियतम! चाहे तुम अपनी प्रसन्नता का व्यंजक उल्लासमय वसन्त भेजो, चाहे भौंहे टेढ़ी करके अपनी प्रसन्नता (क्रोध) का सूचक पतझड़ मेरे पथ में सहेज दो। मेरे लिए इससे कोई अन्तर नहीं पड़ेगा; क्योंकि तुम्हारे प्रति गहन एवं अडिग प्रेम से पूरित मेरा यह हृदय अपनी विरह-व्यथा के आँसुओं(का पाद्य) और सुन्दर स्वप्नों (विविध अभिलाषाओं) का शतदल पंखुड़ियों वाले कमल का अर्घ्य) लेकर तुमसे मिलकर ही रहेगा।

यह समझ लो कि मिलन में प्रेमी अकेला, किन्तु विरह में दुकेला हो जाता है। भाव यह है कि मिलन के काल में प्रेमी और प्रेमिका दोनों अपने-अपने में खोये (अकेले) रहते हैं; क्योंकि उन्हें विश्वास रहता है कि जब चाहे एक-दूसरे से मिल सकते हैं, पर विरह में प्रिय के पास न रहने से हर समय उसी का ध्यान रहता है, इसलिए प्रेमी हर समय अपने प्रिय के साथ रहता है (इसी कारण विरह को मिलन से श्रेष्ठ बताया गया है)।

कवयित्री कहती है कि तुमसे भौतिक तल पर मिलन का पथ चाहे मेरा अपरिचित हो, किन्तु मुझे इसलिए चिन्ता नहीं है कि मैं उस पर अकेली चलती हुई भी मानसिक रूप से दुकेली हूँ; क्योंकि भावात्मक रूप में तुम हर समय मेरे पास जो बने रहते हो। तब फिर चिन्ता ही किस बात की हो सकती है।

काव्य-सौन्दर्य– 1. यहाँ प्रिय से मिलन की तन्मयता का सुन्दर चित्रण हुआ है । **2.** शैली की प्रतीकात्मकता और लाक्षणिकता द्रष्टव्य है। **3. भाषा–** शुद्ध खड़ीबोली। **4. शैली–** गीतात्मक। **5. शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **6. गुण–** प्रसाद। **7. अलंकार–** रूपक (स्वप्नशतदल), विरोधाभास (जान लो वह मिलन एकाकी, विरह में हे दुकेला)। **8. रस–** संयोग शृंगार। **9. छन्द–** मुक्तक।

(ङ) मैं नीर भरी .... मलय-बयार पली!

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' के 'महादेवी वर्मा' द्वारा रचित काव्यग्रन्थ 'सान्ध्यगीत' से 'गीत-3' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– इस गीत में कवयित्री स्वयं को दु:ख के अश्रुओं से परिपूरित बदली बताती हुई कहती हैं—

व्याख्या– मैं अश्रुजल से भरी हुई दु:ख की बदली हूँ। जिस प्रकार गर्मी पाकर मेघों का निर्माण हुआ होता है, जो जल से भरे होते हैं, उसी प्रकार मैं भी विरह-वेदना के ताप से उठने वाली बदली हूँ, जिसमें खरा अश्रुजल भरा है।

मेरे हृदय की प्रत्येक धड़कन में मेरा अविनाशी प्रियतम बसा है। रुदन में ही मेरे घायल हृदय को सुख-शान्ति मिलती है। मेरा हृदय प्रियतम से मिलने के लिए व्याकुल है, यही उसके निरन्तर रुदन का कारण है। परमात्मारूपी प्रियतम से मिलने के लिए वेदना सहन करने में भी प्रसन्नता है। जिस प्रकार मेघ में विद्युत् के दीप जलते हैं, उसी प्रकार मेरे नेत्रों में व्यथा के दीप जलते हैं। जिस प्रकार वर्षा के कारण निर्झरिणी वेग से झरने लगती है, उसी प्रकार मेरे पलकरूपी दो तटों के मध्य प्रवाहित अश्रुओं के निर्झरिणी भी वेग से झरती है।

जिस प्रकार वर्षा की बरसती बूँदों में रिमझिम-रिमझिम की संगीत भरा रहता है, उसी प्रकार मेरी भी प्रत्येक चरण-गीत में संगीत भरा है। जिस प्रकार वर्षा-काल में हवा के तेज झकारों से पुष्पों का पराग झड़ पड़ता है, उसी प्रकार मेरे प्रत्येक उच्छ्वास (दु:ख के कारण वेगपूर्वक चलती साँस) से मेरे स्वप्नों का पराग झड़ता है; अर्थात् प्रियमिलन के जो मधुर सपने मैंने सँजोये हैं, वे बिखर जाते हैं, झड़ पड़ते हैं। जिस प्रकार आकाश इन्द्रधनुषी बहुरंगी मेघरूपी दुकूल (दुपट्टा) से सुशोभित है, उसी प्रकार मेरा हृदय भी प्रिय-विषयक बहुरंगी नाना अभिलाषाओं से रंजित (रँगा हुआ) है। जैसे मेघ की छाया में शीतल वायु

बहने से ग्रीष्म के ताप से सन्तप्त प्राणियों को बड़ी सुख-शान्ति का अनुभव होता है, उसी प्रकार मेरी विरह-व्यथा में अपने-अपने दु:ख की समान अभिव्यक्ति पाकर कितने ही दु:खी और पीड़ित प्राणी शान्ति का अनुभव करते हैं।

काव्य-सौन्दर्य– 1. यहाँ महादेवी जी की विरह-वेदना मुखर हुई है। **2.** यहाँ लाक्षणिकता और प्रतीकात्मकता दर्शनीय है। **3. भाषा–** परिष्कृत खड़ीबोली। **4. शैली–** गीति। **5. रस–** वियोग श्रृंगार। **6. शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **7. गुण–** माधुर्य। **8. अलंकार–** सांगरूपक, विरोभास (क्रन्दन में आहत विश्व हँसा), उपमा (दीपक-से जलते), रूपक (स्वप्न-राग), पुनरुक्तिप्रकाश (पग-पग)। **9. छन्द–** मुक्तक। **10. भावसाम्य–** कबीर कहते हैं—

पिंजर प्रेम प्रकासिया, अंतर भया उजास।
मुख कस्तूरी महमही, बाणी फूटी बास॥

(च) विस्तृत नथ का .... मिट आज चली!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– बदली के माध्यम से अपने जीवन की व्याख्या प्रस्तुत करती हुई महादेवी वर्मा कहती हैं—

व्याख्या– बदली आकाश में रहती है; किन्तु विस्तीर्ण आकाश का कोई भी कोना उसका अपना नहीं होता है, वह तो मात्र इधर-उधर भ्रमण करती रहती है। उसका परिचय और उसका इतिहास तो केवल इतना ही है कि वह अभी-अभी उमड़ी थी और देखते-ही-देखते मिट गई। इस प्रकार महादेवी जी अपने जीवन के विषय में कहती हैं कि इस विस्तृत संसार का कोई भी भाग मेरा अपना नहीं है। मेरा ता केवल इतना ही परिचय और यही इतिहास है कि मैं कल आई थी और आज जा रही हूँ।

काव्य-सौन्दर्य– 1. इन पंक्तियों में महादेवी जी ने मानव-जीवन की वस्तुस्थिति का चित्रण किया है वस्तुत: मानव-जीवन क्षणिक है। जो आज है, वह कल नहीं होगा। **2.** निराशावादी दृष्टिकोण और जीवन के प्रति अनास्था का स्वर इन पंक्तियों में मुखरित हो उठा है। **3. भाषा–** सहज, सरल किन्तु शुद्ध खड़ीबोली। **4. अलंकार–** अनुप्रास और मानवीकरण। **5. रस–** वियोग श्रृंगार। **6. शब्दशक्ति–** लक्षणा। **7. गुण–** माधुर्य। **8. छन्द–** मुक्तक।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना!

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' में संकलित 'महादेवी वर्मा' द्वारा रचित 'सान्ध्यगीत' काव्य संग्रह से 'गीत-1' नामक शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में पथिक को सम्बोधित करके कुछ प्रेरणा दी जा रही है।

व्याख्या– कवयित्री महादेवी वर्मा कहती हैं कि हे पथिक! तुम्हारी सदा सचेत रहने वाली आँखों में यह खुमारी कैसी है और तुम्हारी वेशभूषा इतनी अस्त-व्यस्त क्यों हो रही है? ऐसा प्रतीत हो रहा है कि तुम अपने घर पर ही विश्राम कर रहे हो। सम्भवत: तुम यह भूल गये हो कि तुम्हें लम्बी यात्रा पर जाना है। इसीलिए तुम जाग जाओ, क्योंकि तुम्हारा प्राप्य या लक्ष्य बहुत दूर है। इसीलिए तुम्हें आलस्य में पड़े न रहकर तुरन्त निकल जाना चाहिए। आशय यह है कि साधक को साधना-मार्ग में अनेक कठिनाईयों-बाधाओं का सामना करना पड़ता है। जो साधक इनसे घबराकर या हताश होकर बैठ जाता है, वह अपने लक्ष्य तक कभी नहीं पहुँच पाता। इसलिए साधक को आगे बढ़ते रहने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए।

(ख) अमरता-सुत चाहता क्यों मृत्यु को उर में बसाना?

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में आत्मा की अमरता के विषय में बताया गया है।

व्याख्या– जीवात्मा परमात्मा का एक अंश होने के कारण अमरता का उत्तराधिकारी है। उसे माया-मोह का आवरण हटाकर और ज्ञान प्राप्त कर परमात्मा से मिल जाना चाहिए। फिर वह सांसारिक मोह-माया में लिप्त रहकर मिथ्या मृत्यु का वरण क्यों करना चाहता है? उसे अमरत्व के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए यत्नशील होना चाहिए।

(ग) हार भी तेरी बनेगी मानिनी जय की पताका।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में एकनिष्ठ एवं सच्चे प्रेम के परिणाम के सन्दर्भ में महादेवी कहती हैं—

व्याख्या– यदि किसी के हृदय में अज्ञात प्रियतम के प्रति सच्चा प्रेम है तथा उसके हृदय में अपने प्रियतम से मिलने की एकनिष्ठ छटपटाहट विद्यमान है तो इस स्थिति में व्यक्ति की हार भी जीत ही मानी जाएगी, भाव यह है कि प्रेम की असफलता इसी में है कि हम एकनिष्ठ भाव से अपने प्रेम को प्रदर्शित करते रहें, चाहे हमारा अपने प्रियतम से मिलन हो या न हो।

(घ) पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' में संकलित 'महादेवी वर्मा' द्वारा रचित 'दीपशिखा' काव्य संग्रह से 'गीत-2' नामक शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– इस सूक्ति में हर परिस्थिति में निरन्तर लक्ष्य की ओर बढ़ते रहने का संकेत दिया गया है।

व्याख्या– महोदवी जी का उद्देश्य अज्ञात प्रियतम से मिलन हेतु निरन्तर अपने लक्ष्य-पथ पर चलते रहना है। इसी सन्दर्भ में वे कहती हैं कि यदि कोई भी लक्ष्य-पथ पर उनके साथ न चले और उसकी बाधाएँ भी उन्हें अकेले ही पार करनी पड़ें, तो भी वे निरन्तर अपने लक्ष्य-पथ पर अग्रसर होती रहेंगी।

(ङ) जान लो वह मिलन एकाकी
विरह में है दुकेला!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में कवयित्री ने मिलन एवं विरह की स्थितियों का वर्णन किया है।

व्याख्या– कवयित्री महादेवी वर्मा कहती हैं कि यह समझ लीजिए कि मिलन के समय में प्रेमी-प्रेमिका अकेला होता है, वह विरह के क्षणों में दुकेला हो जाता है। आशय यह है कि मिलन के समय में प्रेमी-प्रेमिका दोनों अपने-अपने में खोये रहते हैं, क्योंकि उन्हें इस बात का विश्वास रहता है कि वे जब चाहें एक-दूसरे से मिल सकते हैं। लेकिन विरह के क्षणों में प्रिय के पास न रहने से हर समय उसी का ध्यान रहता है, इसलिए वह दुकेला हो जाता है। विरह के समय प्रेमी हर समय अपने प्रिय के साथ रहता है, इसी कारण विरह को मिलन से श्रेष्ठ बताया गया है।

(च) मैं नीर भरी दु:ख की बदली!

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' में संकलित 'महादेवी वर्मा' द्वारा रचित 'सान्ध्यगीत' काव्य संग्रह से 'गीत-3' नामक शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में कवयित्री बदली के माध्यम से अपने जीवन की व्याख्या प्रस्तुत कर रही हैं।

व्याख्या– कवयित्री महादेवी वर्मा का कहना है कि मैं नीर-भरी दु:ख की बदली हूँ; अर्थात् मेरा जीवन दु:ख की बदलियों से घिरा हुआ है। जिस प्रकार बदली आकाश में रहती है: किन्तु दूर-दूर तक फैले हुए आकाश का कोई भी कोना उसका स्थायी निवास नहीं होता, वह तो इधर-उधर भ्रमण करती रहती है। उसी प्रकार इस विस्तृत संसार में भी 'मेरा' कहने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं है। मेरा तो इतना ही परिचय और इतना ही इतिहास है कि मैं कल आयी थी और आज जा रही हूँ। कवयित्री का आशय यह है कि मानव-जीवन क्षणिक है; अर्थात् जो आज है,वह कल नहीं होगा, समग्र मानव-जीवन का मात्र इतना ही परिचय है और इतना ही इतिहास है।

(छ) विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में महादेवी वर्मा ने संसार की निस्सारता की ओर संकेत किया है।

व्याख्या– महादेवी वर्मा अपनी तुलना जल (आँसुओं) से परिपूर्ण बदली से करती हुई कहती हैं कि यद्यपि मैं इस संसार में कहीं भी आने-जाने और इसका उपभोग अपनी इच्छा से करने के लिए उसी प्रकार स्वतन्त्र हूँ, जिस प्रकार कोई बदली सुविस्तृत आकाश में कहीं भी आने-जाने के लिए स्वतन्त्र होती है, लेकिन संसार में कणमात्र भी ऐसा नहीं है, जिसे मैं अपना कह सकूँ, जो मेरे महाप्रयाण के समय भी मेरा रहकर मेरे साथ जाए और मेरे उद्धार में कुछ सहायता पहुँचा सके। जैसे आकाश का कोई कोना ऐसा नहीं होता, जहाँ कोई बदली सदैव के लिए स्थायी रूप से रह सके। उसे हर हाल में आकाश को छोड़ना ही पड़ता है, उसी प्रकार मेरे लिए भी यह संसार निस्सार अर्थात् व्यर्थ है। मुझे एक-न-एक दिन इसे छोड़कर सदैव के लिए चले जाना है। तात्पर्य यही है कि व्यक्ति के लिए यह संसार व्यर्थ ही है; क्योंकि अन्त समय में उसे सबकुछ त्यागकर खाली हाथ ही यहाँ से जाना होता है।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न

1. महादेवी जी अपने गीत 'चिर सजग आँखें उनींदी' के माध्यम से हमें क्या सन्देश देना चाहती हैं?

उ०– 'चिर सजग आँखे उनीदी' के माध्यम से महादेवी जी हमें सन्देश देती हैं कि हमें अपने साधना-पथ में तनिक भी आलस्य नहीं आने देना चाहिए। महादेवी जी मानव जाति को प्रेरित करती हुई कहती हैं कि आलस्य और प्रमोद को छोड़कर अब तुम जाग जाओ, क्योंकि तुम्हें दूर जाना है। चाहे तुम्हारे मार्ग में कितनी ही बाधाएँ क्यों न आए तुम्हें अपने साधना-पथ से विचलित नहीं होना है। महादेवी जी कहती है कि संसार के आकर्षण तो तुम्हारी छायामात्र हैं; अत: उन आकर्षणों के माया-जाल में बँधकर तुम अपने वास्तविक लक्ष्य को कहीं भूल न जाना। वह कहती है कि मानवों! तुम्हारा आलस्य तुम्हारे साधना जीवन के लिए अभिशाप बनकर उसे नष्ट-भ्रष्ट कर देगा। तू अविनाशी परमात्मा का अंश है, इसलिए तू इस सांसारिकता के जन्म-मरण के चक्र में स्वयं को मत फँसा। अपने पतन के निमित्त इस संसार को त्यागकर अपने उत्थान के निमित्त साधना-पथ पर आगे बढ़ने के लिए अज्ञान की नींद से जाग क्योंकि अभी तुझे साधना (आध्यात्मिकता) का लम्बा मार्ग तय करना है।

2. महादेवी जी के 'दीपशिखा' काव्य संग्रह से अवतरित गीत 'पथ होने दो अपरिचित' का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– प्रस्तुत गीत में महादेवी जी साधना के अपरिचित पथ की कठिनाइयों का विवरण प्रस्तुत करती है। महादेवी जी कहती हैं कि साधना-पथ को अपरिचित होने दो और उस मार्ग के पथिक प्राण को भी अकेला रहने दो। भले ही मेरी छाया आज मुझे अमावस्या के अंधकार के तरह घेर ले और मेरी काजल लगी आँखें बादल के समान बरसने लगे, फिर भी चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। कठिनाइयों को देखकर जो आँखें सूख जाती है, या जिन आँखों के तिल बुझ जाते हैं या जिनकी पलकें रूखी-सी हो जाती हैं, वे कोई ओर आँखें होंगी। इस प्रकार की कठिनाइयों के आने पर भी मेरे मन शांत बना रहेगा क्योंकि कष्टों से घबराकर पीछे हट जाना मेरे जीवन का स्वभाव नहीं है।

वे कोई ओर चरण होंगे अर्थात कोई ओर साधक होंगे जो मार्ग में आने वाले कष्टों से घबराकर वापस लौट आते हैं। मेरे चरण ऐसे नहीं है। मेरे चरणों ने तो दु:ख सहने का संकल्प लिया हुआ है। मेरे चरण नव-निर्माण की इच्छा के कारण उत्साह से भरे हुए हैं। ये स्वयं को अमर मानकर निरन्तर पथ पर चल रहे हैं मेरे चरण ऐसे हैं। कि वे अपनी दृढ़ता से संसार की गोदी में छाए अंधकार को प्रकाश में बदल देंगे।

महोदवी जी कहती हैं कि वो कहानी दूसरी होंगी, जिसमें लक्ष्य को प्राप्त किए बिना ही नायक के स्वर शान्त हो जाते हैं। और उसके पगों के चिह्नों को समय की धूलि मिटा देती हैं। मेरी कहानी उसके विपरित है। अपने प्रियतम परमात्मा पर मर-मिटने के मेरे पवित्र दृढ़-निश्चय को देखकर आज प्रलय भी आश्चर्यचकित हो रही है कि इस साधक को विचलित करना सम्भव नहीं है। मैं अपने उस प्रियतम को प्राप्त करने के लिए मेरे आँसूरूपी मोतियो की चमक दूसरे साधकों के मनों में मेरे जैसे दृढ़ निश्चय की चिंगारिया भड़का देगी।

वह परमात्मा से कहती है कि हे प्रियतम! चाहे तुम मुझसे प्रसन्न हो जाओ अथवा अप्रसन्न, किन्तु मेरा अडिग हृदय वेदना का जल और स्वप्नों का कमल पुष्प लिए तुम्हारी सेवा में अवश्य उपस्थित होगा। मैं तुमसे अवश्य मिलूंगी। यद्यपि मेरा साधना-पथ अपरिचित है और मेरे प्राणों का पथिक अकेला हैं, फिर भी चिन्ता की कोई बात नहीं; क्योंकि मुझे यह दृढ विश्वास है कि एक-न-एक दिन मैं अपने प्रियतम को अवश्य पा लूँगी।

3. महादेवी जी ने स्वयं की तुलना बदली से क्यों की है?

उ०– महादेवी जी ने अपने दु:खों के तथा विरह के कारण स्वयं की तुलना बदली से की हैं, जिस प्रकार बदली पानी से भरी रहती है, उसी प्रकार उनकी आँखें भी अश्रुओं से भरी रहती हैं। जिस प्रकार बदली में उसके कम्पन का स्थायित्व रहता है; उसी तरह उनके प्राणों में विरह के कारण दु:ख का कम्पन स्थायी रूप से व्याप्त है। जिस प्रकार बदली की गर्जना सुनकर ताप से ग्रस्त विश्व प्रसन्न होता है, उसी प्रकार उनके रुदन से भी घायल संसार को प्रसन्नता मिलती है। जिस प्रकार बदली में बिजली चमकती है और उसके जल से नदियाँ बहती हैं उसी प्रकार उनके नेत्र भी विरह वेदना के समान जलते हैं और उनके पलकों से नदी के जल के समान विरह के अश्रु निरन्तर बहते रहते हैं। बदली के बरसने से जिस प्रकार आकाश इन्द्रधनुष की रंगीन आभा से विभूषित हो जाता है और मलयगिरि से आने वाली शीतल-मन्द-सुगन्धित वायु चलने लगती है, उसी प्रकार वे भी अपने प्रियतम की आभा से मण्डित रहती है और उनकी स्मृति की छाया उन्हें मलय पवन के समान लगती है। महादेवी कहती हैं जिस प्रकार बदली के छाने से न तो आकाश मलिन होता है और न उसके मिट जाने पर कोई चिह्न शेष रहता है, फिर भी मेरे आने की स्मृति से संसार में उल्लास उत्पन्न हो जाएगा।

महादेवी जी कहती हैं कि जिस प्रकार बदली आकाश में इधर-उधर भ्रमण करती रहती है किन्तु आकाश का कोई भी कोना उसका अपना नहीं है कवयित्री भी अपने जीवन की तुलना उससे करती हैं कि बदली की भाँति इस संसार में 'मेरा' कहने को कुछ भी नहीं है। मेरा तो परिचय और इतना है कि मैं कल आयी थी और आज जा रही हूँ।

4. कवयित्री दृढ़तापूर्वक साधना-मार्ग पर क्यों बढ़ना चाहती है?

उ०– कवयित्री दृढ़तापूर्वक साधना के मार्ग पर इसलिए बढ़ना चाहती है क्योंकि वह साधना-मार्ग के अनेक सोपानों को पार कर अपने लक्ष्य (परमात्मा) को प्राप्त करना चाहती है। वह संसार की मोह-माह का त्याग कर देना चाहती है। वह सांसारिकता के जन्म-मरण के चक्र से स्वयं को छुड़ाना चाहती है।

काव्य-सौन्दर्य से संबंधित प्रश्न

1. ''चिर सजग .... चिह्न अपने छोड़ आना!'' पंक्तियों में प्रयुक्त रस तथा छन्द का नाम लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में वीर रस तथा मुक्तक छन्द का प्रयोग हुआ है।

2. ''पंथ होने दो .... दीप खेला!'' पंक्तियों का काव्य-सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए।

उ०– **काव्य-सौन्दर्य– 1.** महादेवी जी का वेदना-भाव अभिव्यक्त हुआ है। **2. भाषा–** शुद्ध परिष्कृत खड़ीबोली। **3. शैली–** लाक्षणिक प्रतीकात्मक पदावली और छायावादी शैली। **4. अलंकार–** अनुप्रास और भेदका विशयोक्ति। **5. रस–** करुण तथा श्रृंगार। **6. शब्दाशक्ति–** लक्षणा। **7. गुण–** प्रसाद, **8. छन्द–** मुक्तक।

3. ''हास का मधु .... दो अकेला!'' पंक्तियों में निहित अलंकारों का नाम बताइए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में रूपक तथा विरोधाभास, मानवीकरण आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

4. ''मैं नीर-भरी .... मलय बयार पली।'' पंक्तियों में निहित रस व अलंकार का नाम लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में वियोग श्रृंगार रस व सांगरूपक, विरोधाभास, उपमा, रूपक, एवं पुनरुक्तिप्रकाश अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

पाठ्येतर सक्रियता

उ०– छात्र स्वयं करें।

9 पुरूवा, उर्वशी, अभिनव मनुष्य

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 156 का अवलोकन कीजिए।

कवि पर आधारित प्रश्न–

1. रामधारी सिंह 'दिनकर' जी का जीवन परिचय देते हुए इनकी रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

उ०– **कवि परिचय–** महान साहित्यकार रामधारी सिंह 'दिनकर' का जन्म 23 सितम्बर, सन् 1908 ई० में बिहार के जिला बेगुसराय (पुराना जिला मुंगेर) के सिमरिया नामक ग्राम में हुआ था। रामधारी सिंह 'दिनकर' की माता का नाम श्रीमति मनरूप देवी तथा पिता का नाम श्री रवि सिंह था। स्नातक की शिक्षा प्राप्त करके इन्होंने एक माध्यमिक विद्यालय में प्रधानाचार्य के पद को सुशोभित किया। बिहार सरकार की सेवा में 'सब रजिस्ट्रार', 'भागलपुर विश्वविद्यालय' के 'कुलपति', मुजफ्फरपुर में महाविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद को सुशोभित किया। ये राज्यसभा के सदस्य भी रहे। इन्हें सन् 1964 ई० में केन्द्र सरकार द्वारा 'हिन्दी समिति' का परामर्शदाता नियुक्त किया गया। 'मिडिल' कक्षा में पढ़ते हुए ही इन्होंने 'वीरबाला' नामक काव्य-कृति का सृजन किया था। अपने युवा पुत्र के निधन के कारण ये अत्यधिक व्यथित हो गए। 24 अप्रैल, सन् 1974 ई० में रामधारी सिंह 'दिनकर' का मद्रास में स्वर्गवास हो गया।

सन् 1972 ई० में इन्हें इनकी बहुचर्चित कृति 'उर्वशी' के लिए 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' प्राप्त हुआ।

इनकी साहित्य प्रतिभा के सम्मान में भारत सरकार द्वारा इन्हें सन् 1959 ई० में 'पदम्भूषण' उपाधि से अलंकृत किया गया। इन्होंने आलोचक, श्रेष्ठ विचारक व सफल निबन्धकार होने के साथ ही काव्य-सृजन के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। दर्शन, इतिहास, साहित्य व राजनीति आदि क्षेत्रों में इनकी विशेष रुचि रही।

रचनाएँ– 'दिनकर' जी मूलत: सामाजिक चेतना के कवि थे। इनके व्यक्तित्व की छाप इनकी प्रत्येक रचना में दिखाई देती है। इनकी प्रमुख काव्य-रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

रेणुका– इस कृति में अतीत के गौरव के प्रति 'दिनकर' जी का आदर-भाव तथा वर्तमान की नीरसता से दु:खी मन की वेदना का परिचय मिलता है।

हुंकार– इस काव्य-रचना में कवि ने समाज की वर्तमान दशा के प्रति आक्रोश व्यक्त किया है।

रसवन्ती– इस रचना में सौन्दर्य का काव्यमय वर्णन दृष्टिगोचर होता है।

सामधेना– इसमें सामाजिक चेतना, स्वदेश-प्रेम तथा विश्व-वेदना सम्बन्धी कविताएँ संकलित हैं।

कुरुक्षेत्र– इसमें 'महाभारत' के 'शान्ति-पर्व' के कथानाक को आधार बनाकर वर्तमान परिस्थितियों का चित्रण किया गया है।

उर्वशी और रश्मिरथी– इन दोनों काव्य-कृतियों में विचार-तत्त्व की प्रधानता है। ये 'दिनकर' के प्रसिद्ध प्रबन्ध-काव्य हैं।

परशुराम की प्रतीक्षा– चीनी आक्रमण के समय देशवासियों को ललकारने के लिए 'दिनकर' जी ने इस काव्य की रचना की।

आत्मा की आँखें– इसमें अंग्रेजी की कुछ नई प्रयोगशील कविताओं के अनुवाद हैं।

नीम के पत्ते– इसमें आज के राजनेताओं पर तीखे व्यंग्य किए गए हैं।

हारे को हरिनाम– यह 'दिनकर' जी का अन्तिम काव्य है और यह करुण, निराश, दीन, आतुर आत्मा की विनयपत्रिका है।

'दिनकर' जी की गद्य-रचनाओं में इनका ग्रन्थ 'संस्कृति के चार अध्याय' उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त इन्होंने कई समीक्षात्मक ग्रन्थ भी लिखे हैं।

2. रामधारी सिंह 'दिनकर' जी की भाषा-शैली पर प्रकाश डालते हुए इनका साहित्यिक योगदान बताइए।

उ०– **भाषा-शैली–** 'दिनकर' जी भाषा के मर्मज्ञ हैं। इनकी भाषा परिष्कृत खड़ी बोली है, जो बोलचाल की भाषा से थोड़ी-सी

अलग है। इनकी भाषा में चित्रात्मकता, ध्वन्यात्मकता एवं मनोहारिता है। 'दिनकर' जी के काव्य में मुख्यत: उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त आदि अलंकारों के प्रयोग के साथ-साथ विविध प्रकार के छन्दों का प्रयोग भी हुआ है।

'दिनकर' जी ने अपनी रचनाओं में अपनी विद्रोहशील मनोवृत्ति और सौन्दर्यचेतना को वाणी देने के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रवृत्तियों को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है। 'अर्द्धनारीश्वर' भी इनकी एक महत्वपूर्ण रचना है।

साहित्यिक योगदान– 'दिनकर' जी आरम्भ से ही संसार के प्रति निष्ठावान, सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति सजग और जनसाधारण के प्रति समर्पित कवि रहे है; तभी तो इन्होंने छायावादी कवियों की भाँति काव्य-रचना न करके 'रेणुका' का आलोक छिटकाया। फिर 'रसवन्ती' के प्रणयी गायक के रूप में इनका कुसुम कोमल व्यक्तित्व प्रकट हुआ। लेकिन देश की विषम परिस्थितियों की पुकार ने इनको भावुकता, कल्पना और स्वप्न के रंगीन लोक से खींचकर ऊबड़-खाबड़ धरती पर लाकर खड़ा कर दिया तथा शोषण की चक्की में पिसते हुए जनसाधारण और उनके भूखे-नंगे बच्चों का प्रबल समर्थक बना दिया। फिर देश के मुक्तिराग के ओजस्वी गायक के रूप में इनका व्यक्तित्व निखर उठा।

'दिनकर' के विद्रोहशील व्यक्तित्व को अपने देश के पौराणिक आख्यानों में जो असंगतियाँ दिखाई दीं, उन्हें मिटाने के लिए इन्होंने 'कुरुक्षेत्र', 'रश्मिरथी' जैसे कथाकाव्यों की रचना की। पहली रचना कुरुक्षेत्र तो वस्तुत: कथाकाव्य नहीं, वरन् विचार-काव्य है; क्योंकि इसमें हिंसा और अहिंसा की विचारधाराओं का द्वन्द्व प्रदर्शित किया गया है। 'रश्मिरथी' में वीर कर्ण का आख्यान है।

जाग्रत पुरुषार्थ के कवि 'दिनकर' शान्तिप्रियता और अहिंसा की आड़ में फैलने वाली निर्बलता और अकर्मण्यता को व्यक्ति और राष्ट्र दोनों के लिए घातक मानते हैं। इनके व्यक्तित्व का यही प्रखर स्वरूप चीनी आक्रमण के समय प्रज्वलित हो उठा था और इन्होंने देशवासियों को ललकारते हुए 'परशुराम की प्रतीक्षा' शीर्षक से रचना प्रस्तुत की थी।

'दिनकर' की काव्य-प्रतिभा का चरमोत्कर्ष इनके नाटकीय कथाकाव्य 'उर्वशी' में दृष्टिगत होता है। इनका इस रचना का कथा-प्रसंग तो कालिदास के नाटक 'विक्रमोर्वशीयम्' से लिया है, लेकिन इसका प्रस्तुतीकरण आधुनिक-बोध से अनुप्रमाणित है।

व्याख्या सम्बन्धी प्रश्न

1. निम्नलिखित पद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) कौन है अंकुश .... उच्छल है।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' के 'रामधारी सिंह दिनकर' द्वारा रचित काव्यग्रन्थ 'उर्वशी' से 'पुरूरवा' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– उर्वशी नामक एक अप्सरा स्वर्ग से आकर एक सरोवर पर उतरती है। उसकी भेंट पुरूरवा से होती है। पुरूरवा उस पर मोहित हो जाते हैं। वे उर्वशी के समक्ष अपनी शक्ति का परिचय देते हैं।

व्याख्या– पुरूरवा कहते हैं कि मैं उस अंकुश या प्रतिबन्ध के विषय से नहीं जानता हूँ, जो बार-बार मुझे रोक रहा है; किन्तु मैं उस प्यास की असीम व्यथा और घोर यन्त्रणा को अच्छी प्रकार पहचानता हूँ, जो इसी सरोवर के किनारे पर मीठी कसक बनकर मेरे कण्ठ में जल रही है।

सिन्धु के समान प्रबल और उद्दण्ड तथा ऊँची-ऊँची हिलोरें लेता हुआ मेरा बल इस समय मेरा साथ छोड़कर कहाँ चला गया है? मेरी जिस सामर्थ्य और शक्ति की जय-जयकार दसों दिशाओं में होती थी, उस अटल और धुव्र-निश्चय का सहारा इस समय कहाँ चला गया है?

मेरा वक्षस्थल शिला के समान दृढ़ है तथा मेरी भुजाएँ चट्टानों के समान मजबूत हैं। मेरा उन्नत मस्तक सूर्य के प्रकाश के समान आलोकित और प्रकाशित हो रहा है। मेरे प्राण अथाह एवं उछलती तरंगोंवाले सागर के समान हैं, जिसमें ऊँची-नीची लहरें उठती रहती हैं; अर्थात् मेरे प्राणों की गहराई नापना सरल नहीं हैं।

काव्य-सौन्दर्य– 1. इन पंक्तियों में पुरूरवा के उदात्त चरित्र का निर्माण हुआ है। **2.** 'दिनकर' जी के 'उर्वशी' महाकाव्य का आधार कालिदास का 'विक्रमोर्वशीय' नाटक है। **3. भाषा–** परिष्कृत खड़ीबोली। **4. अलंकार–** विशेषाक्ति, उपमा, रूपक और अनुप्रास। **5. रस–** वीर। **6. शब्दशक्ति–** लक्षणा। **7. गुण–** ओज। **8. छन्द–** मुक्त।

(ख) सामने टिकते नहीं .... स्यन्दन चलाता हूँ।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– पुरूरवा उर्वशी के समक्ष अपनी सामर्थ्य का बखान करते हुए कहते हैं—

व्याख्या– हे उर्वशी! मेरी शक्ति के समक्ष वनराज सिंह भी नहीं ठहर सकता। मेरे भय से पर्वत तक काँप जाते हैं तथा समयरूपी सर्प कुण्डली मारकर काँपता रहता है। मेरी भुजाओं में वायु, गरुड़ और हाथी का बल है। हे उर्वशी! मैं नश्वर मनुष्य की विजय का शंखनाद हूँ; अर्थात् मेरी शक्ति इस संसार में मानव की वीरता का परिचय देनेवाली है। मैं समय को आलोकित करने वाला सूर्य हूँ। मैं अन्धकार के मस्तक पर अग्निशिखा प्रज्वलित कर उसका विनाश करने में सक्षम हूँ। मैं बादलों के ऊपर अपना रथ चलाता हूँ, अर्थात् मेरी जाति सर्वत्र है; बाधारहित है।

काव्य-सौन्दर्य– 1. इन पंक्तियों में पुरूरवा की शारीरिक शक्ति का अतिशयोक्तिपूर्ण चित्रण हुआ है। **2. भाषा–** परिष्कृत खड़ीबोली। **3. अलंकार–** विशेषोक्ति, उपमा, रूपक और अनुप्रास। **4. रस–** वीर। **5. शब्दाशक्ति–** लक्षणा। **6. गुण–** ओज। **7.छन्द–** मुक्त।

(ग) पर, क्या बोलूँ .... महातल से निकली।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' के 'रामधारी सिंह दिनकर' द्वारा रचित काव्यग्रन्थ 'उर्वशी' से 'उर्वशी' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– पुरूरवा के यह पूछने पर कि 'तुम कौन हो', उर्वशी परिचय दे रही है।

व्याख्या– उर्वशी कहती है कि मैं अपने विषय में क्या बताऊँ कि मैं कौन हूँ? बस इतना समझ लो कि मैं जो तुम्हें नारी देह धारण किये दिख रही हूँ, वह एक सम्मोहक भ्रम है, छलावा है। वस्तुत: अप्सरा दिव्य नारी होती है, जिसका शरीर मानव के समान स्थूल न होकर सूक्ष्म तेजोमय होता है। इसलिए उर्वशी कहती है कि मुझे जो तुम स्थूल देह धारण किये हुए देख रहे हो, यह एक भ्रम है; क्योंकि यह मेरा वास्तविक स्वरूप नहीं। मेरा वास्तविक स्वरूप तो यह है मन में उठने वाली एक व्याकुल, चंचल और निरन्तर अस्थिर रहने वाली वायु की तरंग हूँ या इस चेतन मन के पीछे जो एक अवचेतन है, उसका प्रकाश अर्थात् प्रकट रूप हूँ। यदि चेतना के स्तर पर अर्थात् प्रत्यक्ष रूप से मुझे जानना चाहो तो यह समझ लो कि मानव अपनी स्थूल ज्ञानेन्द्रियों— आँख, नाक, जिह्वा आदि— द्वारा जिन सूक्ष्म विषयों के रूप, रंग, गन्ध, स्वाद आदि को ग्रहण करता है, वे सूक्ष्म विषय ही यदि एक सुन्दर कमल का रूप धारण करके साकार हो जाएँ तो वह मैं हूँ। सभी इन्द्रियों द्वारा भोगे जाने की रसास्वादिनी शान्ति मैं स्वयं हूँ।

उर्वशी कहती है कि मैं क्षीरसागर से उत्पन्न हुई लक्ष्मी नहीं हूँ, जो तलातल, अतल, पाताल जैसे नीचे के लोकों को छोड़क, नील-सागर के जल को चीरती हुई श्वेत झलमलाते फेन (झाग) के बारीक रेशमी वस्त्रों में सुसज्जित होकर अपनी कान्ति छिटकाती तथा समुद्र की लहरों के मस्तक पर नाचती हुई निकली हो। मैं महातल से भी नहीं निकली हूँ।

काव्य-सौन्दर्य– 1. उर्वशी अपना परिचय लाक्षणिक शैली में देती है, जो पुरूरवा सहित सबके मन में जिज्ञासा भर देता है। **2.** वह यह बताना चाहती है कि वह स्थूल पंचतत्वों से बनी हुई नहीं है, अपितु सूक्ष्म प्रकाशमय देहधारिणी है। **3. भाषा–** खड़ीबोली। **4. रस–** श्रृंगार। **5. शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **6. गुण–** प्रसाद। **7. अलंकार–** रूपक और अनुप्रास। **8. छन्द–** मुक्त। **9.** पृथ्वी के नीचे सात अधोलोक इस प्रकार है— अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल और पाताल।

(घ) मैं नहीं गगन .... सागर मे समुद्रभूत।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इन पद्य-पंक्तियों में उर्वशी पुरूरवा को अपना परिचय दे रही है।

व्याख्या– मैं नक्षत्रों के बीच में रहकर प्रसन्नतापूर्वक फलने-फूलने वाली आकाश की लता नहीं हूँ, न मैं आकाश में स्थित किसी नगर से उतरी युवती हूँ, न ही मैं चन्द्रमा की पुत्री हूँ, जो चाँदनी के साथ चन्द्रकिरणरूपी तारों पर लटककर पृथ्वी पर उतरी हो और न ही मैं पूर्णिमा के चन्द्रमा के उज्जवल प्रकाशरूपी सागर की हिलोरें लेती लहर हूँ।

मैं एक ऐसा पुष्प हूँ, जिसका न कोई नाम है और न ही कोई वेश। मैं आकाश में उड़ती हुई स्वच्छन्द आनन्द की शिखा (लौ) हूँ। मैं स्वयं आनन्द का स्वरूप हूँ, जिसका कोई पिछला इतिहास (या जीवन-वृत्तान्त) नहीं। मानव ने जिस सौन्दर्य की ऊँची-से-ऊँची कल्पनाएँ की हैं, मैं उस सौन्दर्य-चेतना की एक लहर हूँ। मैं देवता, किन्नर, गन्धर्व या मनुष्य भी नहीं हूँ। मैं तो मानव के हृदय में सुखोपभोग की अतृप्त इच्छाओं का जो सागर लहरा रहा है, उसी से उत्पन्न हुई केवल एक अप्सरा हूँ।

काव्य-सौन्दर्य– 1. उर्वशी के परिचय में कवि द्वारा उच्च कोटि के कलात्मक बिम्ब सँजोये गये हैं। **2.** उर्वशी का अभिप्राय यह है कि मनुष्य की सुखोपभोग की अतृप्त इच्छाओं ने सौन्दर्य की जो चरम कल्पना की है, मैं वह हूँ, जिसे पाकर मानव पूर्णत: तृप्त हो सकता है। **3. भाषा–** साहित्यिक खड़ीबोली। **4. रस–** श्रृंगार। **5. शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **6. गुण–** प्रसाद। **7. अलंकार–** रूपक। **8. छन्द–** मुक्त।

(ङ) कामना-वह्नि .... यह मेरा उर।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत पद्यांश में उर्वशी अपने प्रभाव का वर्णन कर रही है।

व्याख्या– मैं मानव की इच्छारूपी अग्नि की लपट हूँ, जो पूर्णत: स्वच्छन्द है, अवरोधहीन है। मुझे न कोई रोक सकता है, न मेरे पथ से मुझे हटा सकता है। मैं वायु के झकारों से प्रेरित मेघरूपी लहरों पर बैठकर कुहरे की चादर में लिपटी आकाश के आर-पार सदा उन्मुक्त भाव से विचरण करती रहती हूँ। मैं उड़ते बादलों को अपनी बाहों में भर लेती हूँ और स्वप्नों (कल्पनाओं) की मूर्तियाँ का आलिंगन करती हूँ; अर्थात् मनुष्य अपने मन में जो-जो कल्पनाएँ सँजोता है, उन्हें मैं साकार रूप देती हूँ।

मेरा हृदय उस निर्जन द्वीप के समान है, जो विस्तृत सागर में किसी एकान्त स्थान पर स्थित हो; अर्थात् जैसे उस द्वीप तक कोई असीम साहसी व्यक्ति ही पहुँच सकता है, वैसे ही मेरे हृदय में भी कोई विशिष्ट व्यक्ति ही स्थान पा सकता है।

काव्य-सौन्दर्य– 1. उर्वशी के कहने का आशय यह है कि अप्सरा की गति अवरोधहीन होती है। उसे कोई रोककर नहीं रख सकता; क्योंकि वह किसी से बँधी नहीं है। हाँ, उसे तो वही पा सकता है, जो उसके हृदय को जीत ले; ऐसा कोई विरला ही कर पाता है। **2.** उर्वशी के रूप में अप्सरा का यह वर्णन पुराणों द्वारा अनुमोदित है। **3. भाषा–** साहित्यिक खड़ीबोली। **4. रस–** श्रृंगार। **5. शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **6. गुण–** प्रसाद। **7. अलंकार–** रूपक। **8.छन्द–** मुक्त।

(च) देवालय में .... विजय का है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– उर्वशी नारी-सौन्दर्य की विश्वव्यापिनी शक्ति का वर्णन करती हुई कहती है कि मानव विभिन्न रूपों में केवल नारी की ही पूजा करता आ रहा है।

व्याख्या– मन्दिरों में देवताओं का नहीं, प्रत्युत मेरा ही वास है। तात्पर्य यह है कि देव-प्रतिमाएँ मानव की सौन्दर्य चेतना का परिणाम हैं और इस सौन्दर्य-चेतना का मूल आधार है— नारी। इस प्रकार मन्दिरों में देव-प्रतिमाओं के बहाने मानव वस्तुत: सौन्दर्य की साकार रूप नारी को ही श्रद्धा-सुमन अर्पित करता है। देव-प्रतिमाओं के रूप में मेरी ही प्रतिमा को अगरु का सुगन्धित धूम अर्पित किया जाता है। मेरी पूजा में मेरे ही घुँघरू बजते हैं; अर्थात् मन्दिरों में देवदासियों द्वारा प्रतिमाओं के सम्मुख नृत्य वस्तुत: नारी की नारी द्वारा ही पूजा है। आशय यह है कि संगीत, नृत्य आदि समस्त कलाओं की प्रेरक शक्ति नारी है और नारी को ही वे अर्पित भी होती हैं। इस प्रकार पृथ्वी से लेकर आकाश तक संगीत की जो ध्वनि व्याप्त है, वह सब मेरे ही असीम प्रेम से प्रेरित है (अर्थात् नारी के प्रेम की प्रेरणा ही विश्व में संगीत, नृत्य आदि समस्त ललित-कलाओं की सृष्टि का कारण बनी)। संसार का समस्त काव्य वस्तुत: मेरे ही त्रैलोक्य-विजय का जयगान है (अर्थात् सारा काव्य नारी की ही दिग्विजय की अमर गाथा है, जयघोष है। उसका मुख्य विषय नारी का सौन्दर्य और प्रेम ही है)।

काव्य-सौन्दर्य– 1. नारी को इतने आत्मविश्वास से पूरित दर्शाना दिनकर जी का नारी के प्रति निजी सम्मान भाव है। पूर्ववर्ती कवि तो नारी को या तो विलास या फिर दया की पात्र ही मानते आये हैं। **2.** दिनकर जी ने अपने अद्‌भुत काव्य-कौशल से संसार के समस्त साहित्य, कला और संस्कृति की मूल प्रेरक शक्ति नारी को ही बताया है। **3. भाषा–** साहित्यिक खड़ीबोली। **4. रस–** श्रृंगार। **5. शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **6. गुण–** प्रसाद। **7. अलंकार–** विरोधाभास (बज रहा अर्चना मे मेरा नुपूर)। **8. छन्द–** मुक्त।

(छ) है बहुत बरसी .... भी पुरानी राह।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' के 'रामधारी सिंह 'दिनकर' द्वारा रचित काव्यग्रन्थ 'कुरुक्षेत्र' के छठे सर्ग से 'अभिनव मनुष्य' नामक शीर्षक से उद्‌धृत है।

प्रसंग– प्रस्तुत पद्यांश में आज के मानव की निस्समी आवश्यकताओं और लालसाओं का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– दिनकर जी कहते हैं कि इस संसार में अनेक महात्माओं ने समय-समय पर जन्म लेकर अपने उपदेशों की अमृत वर्षा की है, किन्तु उससे आज तक भी इस संसार में शान्ति स्थापित न हो सकी। आज प्रत्येक मनुष्य ईर्ष्या, द्वेष, कपट, छल, धोखा और घृणा की अग्नि में निरन्तर जल रहा है। उन अवतारी पुरुषों और ज्ञानी महात्माओं के अमृतवचन मनुष्य के हृदय में स्थित राग-द्वेष और भोग-लिप्सा की लपलपाती प्रचण्ड अग्नि को शीतल न कर सके अर्थात् मनुष्य को भोग-लिप्सा से मुक्त न कर सके। महापुरुषों ने सदैव ही इस संसार को समता का उपदेश दिया है, किन्तु कहीं भी उनका उपदेश फलीभूत होता दृष्टिगत नहीं होता। यहाँ सब जगह एक ओर तो धनी-मानी साधनसम्पन्न लोग निरन्तर भोग-विलास में डूबे मिलेंगे, जिनकी नए-नए भोगों को भोगने की लिप्सा निरन्तर बलवती होती जाती है; वहीं दूसरी ओर ऐसे असहाय, साधनहीन, विवश मनुष्य भी मिलते हैं, जिनकी कोई भी कामना फलीभूत नहीं होती; जो भोग-विलास तो दूर, दो जून की रोटी के लिए भी तरसते हैं। दिन-रात जीतोड़ परिश्रम करने पर भी उनके मनोरथ निष्फल रहते हैं। इस प्रकार अवतारी, सिद्ध, ज्ञानी-ध्येय, महापुरुषों के समानता, सहयोग, त्याग तथा सहानुभूति के अमृत सदृश उपदेश निष्फल ही रहे।

इस पृथ्वी पर समय-समय पर अनेक महापुरुषों ने जन्म लेकर अपने पवित्र, शुद्ध-बुद्ध, श्रेष्ठ आचरण के द्वारा लोगों को यह समझाया कि परोपकार, दया, अहिंसा, प्रेम और कर्मनिष्ठा ही श्रेष्ठ जीवन के मूलतत्त्व हैं, इन्हीं को अंगीकार करके जीवन को सार्थक बनाया जा सकता है। दृढ़-निश्चयी भीष्म, सत्यनिष्ठ युधिष्ठिर, निष्काम कर्मनिष्ठा के प्रवर्तक भगवान् कृष्ण, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आदर्श का श्रेष्ठ प्रतिमान प्रस्तुत करने वाले भगवान् श्रीराम; सत्य, अहिंसा एवं प्रेम का सन्देश देनेवाले महात्मा गौतम बुद्ध, सम्राट् अशोक और प्रभु यीशु ऐसे ही पुरुष हैं; जिन्होंने समय-समय पर अपने जन्म से इस धरा को पुण्य बनाकर संसार का पथ-प्रदर्शन किया। मनुष्य ने सिर झुकाकर अत्यधिक सम्मान और श्रद्धा के साथ इन सभी महापुरुषों की श्रेष्ठता को स्वीकार किया, किन्तु विडम्बना यह है कि इन्होंने उनकी श्रेष्ठता को केवल मौखिक रूप में अंगीकार किया, उसका लेशमात्र भी अपने आचरण में नहीं उतारा। अपनी कथनी-करनी के इसी अन्तर के कारण वह दूसरे लोगों का शोषण करके उन्हें पीड़ा

पहुँचाया है। दूसरों को दु:खों की आग में झोककर वह स्वयं भी उस आग में जलता है। वह आज भी अपने आदिम-युग के क्रूर, निर्मम एवं पशुत्व-मार्ग पर चल रहा है।

काव्य-सौन्दर्य– 1. मानव अपने दु:खों का निर्मित्त स्वयं है और उनका एकमात्र निदान आचरण की शुद्धता और पवित्रता है। **2. भाषा–** साहित्यिक खड़ीबोली। **3. शैली–** प्रबन्धात्मक। **4. अलंकार–** रूपक, दृष्टान्त एवं अनुप्रास। **5. रस–** वीर एवं शान्त। **6. छन्द–** मुक्त। **7. गुण–** ओज एवं प्रसाद। **8. शब्दशक्ति–** अभिधा एवं लक्षणा।

(ज) शीश पर आदेश .... गुह्यतम इतिहास।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत पद्यांश में आधुनिक मानव की अतुलित शक्तियों का ओजपूर्ण भाषा में वर्णन किया गया है।

व्याख्या– 'दिनकर' जी कहते हैं कि आधुनिक मनुष्य इतना शक्तिसम्पन्न है कि उससे घबराकर प्रकृति के सभी तत्व उसके आदेश को अपने सिर पर धारण करते हैं अर्थात् उसका आदेश मानते हैं और उसकी इच्छा के अनुरूप उसके सभी कार्य करते हैं। आज महान् जलदेवता मनुष्य का हुक्म मानते हैं अर्थात् वह जहाँ चाहता है, वहाँ जल को उपस्थित कर देता है और जहाँ जल का अथाह सागर लहराता है, वहाँ नदियों आदि पर बाँध बनाकर वह विस्तृत सूखे मैदान बनाने में सक्षम है। यहाँ तक कि अपनी इच्छानुसार जल बरसाने तक की विद्या को उसने प्राप्त कर लिया है। शब्द को ग्रहण करने के गुणों से सम्पन्न आकाश रेडियो एवं दूरभाष आदि के द्वारा उसके सन्देशों को उसकी इच्छानुसार वहन करके उसके इच्छित स्थान तक पहुँचा देता है। इस आधुनिक मनुष्य की विशाल मुट्ठी में सभी दिशाएँ एवं समय प्रतिक्षण सिमटते जा रहे हैं। आज इस मनुष्य के अगाध समुद्र में ही नहीं, वरन् निस्सीम आकाश में भी यान (वायुयान) विचरण करते हैं अर्थात् वह पक्षी की भाँति आकाश में स्वच्छन्द विचरण करता है। वह आज इतना शक्तिसम्पन्न है कि उसके हाथों को देखकर परमशक्तिसम्पन्न परमाणु भी भय से थर-थर काँपने लगता है। आज मनुष्य की बुद्धि, शोधपरक प्रवृत्ति एवं साहसपूर्ण कार्यों को फलस्वरूप पर्वत, सागर एवं आकाश भी हृदय खोलकर अपना गुप्त इतिहास बता चुके हैं।

काव्य-सौन्दर्य– 1. मनुष्य द्वारा की गई वैज्ञानिक प्रगति का उल्लेख किया गया है। यहाँ नदियों पर बनाए गए बाँध, रेडियो, दूरभाष आदि के क्षेत्रों में की गई प्रगति, हवाई जहाज आदि परिवहन के क्षेत्र में हुई प्रगति और परमाणु शक्ति के क्षेत्र में हुई क्रान्ति का विशेष रूप से संकेत किया गया है। **2. भाषा–** साहित्यिक खड़ीबोली। **3. शैली–** प्रबन्धात्मक। **4. अलंकार–** अनुप्रास मानवीकरण। **5. रस–** वीर। **6. छन्द–** मुक्त। **7. गुण–** ओज। **8. शब्दशक्ति–** अभिधा एवं लक्षणा।

(झ) पर, धरा सुपरीक्षिता .... पृष्ठ जिसके खोल।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत पद्यांश में मनुष्य द्वारा पृथ्वी के सम्पूर्ण रहस्यों को जान लेने का उद्घाटन किया गया है।

व्याख्या– 'दिनकर जी' कहते हैं कि मनुष्य की प्रवृत्ति प्रगति के नित नए क्षेत्र खोजने की रही है, इसी के परिणामस्वरूप उसने सम्पूर्ण पृथ्वी की जाँच-परख करके देख ली है, उसका विश्लेषण कर लिया है, किन्तु अब पृथ्वी पर ऐसा कोई तथ्य नहीं रहा है, जिसे मनुष्य ने जान नहीं लिया, इसीलिए अब पृथ्वी उसे स्वादहीन खाद्य वस्तु जैसी लगती है। कहने का आशय यह है कि मनुष्य ने क्योंकि पृथ्वी के सभी रहस्य जान लिये हैं; अत: वैज्ञानिक प्रगति की दृष्टि से उनके लिए पृथ्वी में कोई आकर्षण नहीं बचा सका है। उसने इस पृथ्वी के रहस्यों सम्बन्धी सारी जानकारियाँ उसी प्रकार प्राप्त कर ली हैं, जिस प्रकार पुस्तक पढ़कर सभी उसका ज्ञान आसानी से प्राप्त कर लेते हैं। पृथ्वी पर क्योंकि कुछ भी अज्ञेय नहीं रहा है; अत: नवीन वैज्ञानिक प्रगति हेतु शोध के सन्दर्भ में अब कोई क्षेत्र नहीं बचा है। अब मनुष्य के लिए पृथ्वी की जानकारियाँ ऐसी सुलभ हो गई हैं; जैसे वह हथेली पर रखा गोल-मटोर छोटा-सा आँवला हो। निष्कर्ष यही है कि मनुष्य ने पृथ्वीरूपी पुस्तक का एक-एक पृष्ठ पढ़कर उसको कण्ठस्थ रख लिया है।

काव्य-सौन्दर्य– 1. पृथ्वी सम्बन्धी हुई विपुल वैज्ञानिक खोजों के द्वारा पृथ्वी के सभी रहस्यों को जान लेने की तुलना पुस्तक पढ़ने से की गई है जो कि अत्यन्त सटीक बन रही है। **2. भाषा–** साहित्यिक खड़ीबोली। **3. शैली–** प्रबन्धात्मक। **4. अलंकार–** उपमा, रूपक। **5. रस–** वीर। **6. छन्द–** मुक्त। **7. गुण–** ओज। **8. शब्दशक्ति–** अभिधा एवं लक्षणा।

(ञ) सावधान, मनुष्य .... बड़ी यह धार।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– कविवर दिनकर ने इन पंक्तियों में बढ़ते वैज्ञानिक प्रयोगों के प्रति मानव को सचेत किया है।

व्याख्या– विज्ञान ने व्यक्ति को नए-नए उपकरण दिए हैं, नवीन अस्त्र-शस्त्र तथा सुविधाएँ उपलब्ध कराई हैं। साथ ही विज्ञान ने विनाश की परिस्थितियाँ भी उत्पन्न की हैं। यदि मानव विज्ञान के साधनों का दुरुपयोग करेगा तो वे ही कल्याणकारी साधन मानव के विनाश का कारण बन जाएँगे। इसीलिए अभिनव मानव को सावधान करते हुए दिनकर जी कहते हैं कि हे मानव! तू विज्ञानरूपी तीक्ष्ण धारवाली तलवार से खेल रहा है। इस विज्ञानरूपी तलवार का मोह त्यागकर तू इसे अपनी स्मृति से भी परे

फेंक दे; अर्थात् इसे अपने से इतना दूर कर दे कि इसकी यादें भी शेष न रह जाएँ; क्योंकि यह किसी भी समय तेरे लिए हिंसक (विनाशकारी) हो सकती है।

दिनकर जी कहते हैं कि हे मानव! तेरी क्रियाओं और विज्ञान के उपयोग की पद्धति देखकर यह स्पष्ट हो चुका है कि इसके समक्ष तू अभी अबोध शिशु की भाँति है। तू फूल और काँटों के मध्य अन्तर करना भी नहीं जानता और काँटों को फूल समझकर उनकी ओर आकर्षित हो रहा है। इस विज्ञानरूपी तलवार की धार बहुत पैनी (तेज) है। अज्ञानी होने के कारण तू विज्ञान की इस तलवार को हाथ में लेकर खेलने में सक्षम नहीं है। तेरी तनिक-सी असावधानी से, इससे तेरे ही अंग कट सकते हैं।

काव्य-सौन्दर्य– 1. कवि ने विज्ञान के विध्वंसात्मक रूप की निन्दा की है। **2.** कवि का मानना है कि विज्ञान का प्रयोग पूर्ण विवेक के साथ होना चाहिए, क्योंकि यदि विज्ञान हमारे लिए वरदान है तो उसके गलत प्रयोग से वह अभिशाप भी बन सकता है। **3. भाषा–** साहित्यिक खड़ीबोली। **4. शैली–** प्रतीकात्मक। **5. अलंकार–** रूपक। **6. शब्दशक्ति–** लक्षणा और व्यंजना। **7. गुण–** ओज। **8. छन्द–** मुक्त।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) जीत लेती रुपसी नारी उसे मुस्कान से।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' में संकलित 'रामधारी सिंह दिनकर' द्वारा रचित 'पुरूरवा' नामक शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– राजा पुरूरवा इस बात पर आश्चर्य व्यक्त करते हैं कि पुरुष शक्तिशाली होने पर भी कोमल नारी से क्यों हार जाता है।

व्याख्या– राजा पुरूरवा का कहना है कि जो पुरुष सूर्य के समान तेजस्वी है, जो सिंहों के साथ खेल सकता है और यहाँ तक कि इन्द्र के वज्र-प्रहार को भी झेल सकता है, वह शक्तिशाली पुरुष फूल जैसी कोमल नारी के सामने असहाय क्यों हो जाता है? नारी उस शक्तिशाली पुरुष को अपने नयन-बाणों से मर्माहत कर देती है और एक हल्की मुस्कान से ही जीत लेती है, इसका कारण क्या है? क्या यह, पुरुष के भीतर स्वाभाविक रूप से निहित नारी के प्रति चिरन्तन प्राकृतिक आकर्षण तो नहीं।

(ख) देवालय में देवता नहीं, केवल मैं हूँ।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' में संकलित 'रामधारी सिंह दिनकर' द्वारा रचित 'उर्वशी' नामक शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में उर्वशी के शब्दों में दिनकर जी नारी-सौन्दर्य की विश्वव्यापी शक्ति का वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्या– उर्वशी कह रही है कि मन्दिरों में देवताओं का नहीं, अपितु मेरा ही वास है। आशय यह है कि देव-प्रतिमाएँ मनुष्य की सौन्दर्य चेतना का परिणाम है और इस सौन्दर्य चेतना का मूल आधार नारी है। इस प्रकार मन्दिरों में देव-प्रतिमाओं के विभिन्न रूपों में मनुष्य वस्तुत: सौन्दर्य की साकार प्रतिमा नारी को ही अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करता है। अत: स्पष्ट है कि देवालयों में देव-प्रतिमाओं के स्थान पर मुख्यत: नारी ही अधिष्ठित है।

(ग) प्रकृति पर सर्वत्र है विजयी पुरुष आसीन।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' में संकलित 'रामधारी सिंह दिनकर' द्वारा रचित 'अभिनव मनुष्य' नामक शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में मनुष्य की प्रकृति पर विजय-प्राप्ति और उसकी वैज्ञानिक प्रगति की ओर संकेत किया गया है।

व्याख्या– दिनकर जी कहते हैं कि आज का युग विज्ञान का युग है। वैज्ञानिक प्रगति के परिणामस्वरूप आज मनुष्य ने प्रकृति पर सब प्रकार से विजय प्राप्त कर ली है। मनुष्य ने सम्पूर्ण प्रकृति—पृथ्वी, जल, आकाश, पहाड़ इत्यादि सभी पर अपना अधिकार कर लिया है। आज मनुष्य इतनी प्रगति कर चुका है कि वह गर्मी और सर्दी के मौसम को भी अपने अनुकूल बना लेता है। दूरसंचार के माध्यमों से वह देश-विदेश की समसामयिक घटनाओं के बारे में अपने कक्ष में बैठे-बैठे ही सबकुछ जान लेता है। वह विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं— वर्षा, तूफान, सूखा इत्यादि को भी जानकारी समय से पूर्व ही प्राप्त कर उनसे बचने के लिए उपाय भी खोज लेता है। इस प्रकार मनुष्य ने सम्पूर्ण प्रकृति को अपने हाथों की कठपुतली बना लिया है।

(घ) किन्तु, नर-प्रज्ञा सदा गतिशालिनी, उद्दाम।
ले नहीं सकती कहीं रूक एक पल विश्राम।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इन पंक्तियों में मानव-स्वभाव का वर्णन किया गया है।

व्याख्या– कवि श्री दिनकर जी का कहना है कि मनुष्य की बुद्धि स्थिर नहीं रहती। वह सदैव गतिशील और दु:साहसी है। इसलिए नित्य नयी चुनौतियों का आह्वान करके वह नये-नये क्षेत्रों को जीतना चाहती है। विश्राम करना तो वह जानती ही नहीं। आशय यह है कि मानव की इसी बौद्धिक बेचैनी में उसकी उन्नति का रहस्य भी छिपा है। यही बात प्रसाद जी ने इस प्रकार कही है—

इस पथ का उद्देश्य नहीं है, शान्त भवन में टिक रहना।
किन्तु पहुँचना उस सीमा तक, जिसके आगे राह नहीं।।

(ङ) 'व्योम से पाताल तक सब कुछ इसे है ज्ञेय'
पर, न यह परिचय मनुज का, यह न उसका श्रेय।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में कवि ने मनुष्य की वैज्ञानिक प्रगति का उल्लेख करते हुए उसे चेतावनी दी है कि केवल इस प्रगति से उसका कल्याण होनेवाला नहीं है।

व्याख्या– कवि कहता है कि आज मनुष्य ने वैज्ञानिक प्रगति के बल पर इस संसार के विषय में सबकुछ जान लिया है। पृथ्वी के गर्भ से लेकर सुदूर अन्तरिक्ष तक के सभी रहस्यों का उसने उद्‌घाटन कर दिया है। चाँद-तारे, सूरज आदि की स्थिति को स्पष्ट कर दिया है कि आसमान में कहाँ और कैसे टिके हैं? पृथ्वी के गर्भ में जहाँ शीतल जल का अथाह भण्डार है, वहीं दहकता लावा भी विद्यमान है; किन्तु यह ज्ञान-विज्ञान तो मनुष्यता की पहचान नहीं है और न ही इनसे मानवता का कल्याण हो सकता है। संसार का कल्याण तो केवल इस बात में निहित है कि प्रत्येक मनुष्य प्राणिमात्र से स्नेह करे, उसे अपने समान ही समझे, यही मनुष्यता की अथवा मनुष्य होने की पहचान भी है, अन्यथा ज्ञान-विज्ञान की जानकारी तो एक कम्प्यूटर भी रखता है, मगर उसमें मानवीय संवेदनाएँ नहीं होतीं; अत: उसे मनुष्य नहीं कहा जा सकता।

(च) हो चुका है सिद्ध है तू शिशु अभी अज्ञान।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में कवि ने अज्ञानी मनुष्य को विज्ञान के दुरुपयोगों से बचने हेतु सचेत किया है।

व्याख्या– कवि मनुष्य को सचेत करते हुए कहता है कि यह सिद्ध हो चुका है कि तू अभी एक शिशु के समान अज्ञानी है। तू अपने को हाथों अपना सर्वनाश करने पर तुला है। तुझे फूल और काँटों की कुछ भी पहचान नहीं है; अर्थात् तुझे यह पहचान नहीं है कि तेरे लिए क्या लाभदायक है और क्या हानिकारक।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न–

1. पुरूरवा ने उर्वशी को देखकर क्या कहा?

उ०– राजा पुरूरवा की भेंट स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी से होती है, जिसको देखकर पुरूरवा मोहित हो जाते हैं। राजा पुरूरवा उर्वशी से कहते हैं कि मैं उस अंकुश या प्रतिबन्ध के विषय में नहीं जानता है कि वह कौन-सी शक्ति है, जो मुझे अपनी प्यास बुझाने से रोक रही है, मेरी स्थिति तो सरोवर के किनारे बैठे उस व्यक्ति के समान है जो प्यास से पीड़ित होने पर भी अपनी प्यास नहीं बुझा पाता है।

मेरा बल सिन्धु के समान प्रबल और उद्दण्ड है, परंतु इस समय वह बल मेरा साथ छोड़कर चला गया है। मेरा सामर्थ्य और शक्ति का जय-जयकार सर्वत्र होता है, उस अटल और ध्रुव-निश्चय का सहारा इस समय कहाँ है? मेरा वक्षस्थल शिला के समान, भुजाएँ चट्टान की तरह, और मेरा मस्तक सूर्य के प्रकाश के समान है। मेरे प्राण अथाह और ऊँची एवं उछलती हुई तरंगों वाले सागर के समान अदम्य साहस और उत्साह से भरे हैं।

मेरी शक्ति के सामने वनराज सिंह भी नहीं ठहरता। मेरे भय से पर्वत काँप जाते हैं और समयरूपी साँप कुण्डली मारकर काँपता रहता है। मेरी भुजाओं में वायु, गरुड़ और हाथी का बल है। मेरी शक्ति इस संसार में मानव की वीरता का परिचय देती है। मैं समय को आलोकित करने वाला सूर्य हूँ। मैं अंधकार का नाश करने में सक्षम हूँ तथा मेरी गति सर्वत्र है। परंतु हे उर्वशी। आज न जाने क्यों मैं इतना शक्तिहीन हो रहा हूँ। जो व्यक्ति इन्द्र के व्रज को झेल सकता है, सिंह को अपने बल से परास्त कर सकता है, वह पुष्प के समान नारी के सामने असहाय हो जाता है। शक्ति होते हुए भी उसे कोई उपाय नहीं सूझता। व्यक्ति सुन्दरी कह तिरछी दृष्टि के बाण से घायल हो जाता है। और सुन्दरी युवती उसे केवल एक मुस्कान से जीतकर वश में कर लेती है।

2. उर्वशी ने पुरूरवा को जो अपना परिचय दिया है, उसे अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– उर्वशी पुरूरवा से कहती है कि मैं अपने विषय में क्या बताऊँ कि मैं कौन हूँ। शरीर का यह बाह्य सौन्दर्य एक दिखावा, छलावा और धोखा-मात्र है। मैं तो वास्तव में काल्पनिक और मानसिक देश की उत्कण्ठा और व्याकुलता से परिपूर्ण वायु हूँ। मैं अवचेतन प्राणों का प्रकाश हूँ और चेतना के जल में पूरी तरह से विकसित रूप, रस और सुगन्ध से परिपूर्ण कमल हूँ। मैं समुद्र पुत्री लक्ष्मी भी नहीं हूँ, जो पाताल को छोड़कर, समुद्र के नीले रंग को भेदकर, प्रकाशपूर्ण फेन के महीन रेशमी वस्त्र पहनकर, समुद्र की लहरों के मस्तक पर नाचती हुई निकली हूँ। मैं कोई आकाश में फलने वाली लता नहीं हूँ, और न ही मैं आकाश में स्थित किसी नगर की सुन्दरी हूँ, न मैं चन्द्रमा की पुत्री हूँ और न ही मैं पूर्णिमा के चन्द्रमा की किरणों से आकर्षित समुद्र में उठी चंचल लहर हूँ। मेरा न तो कोई नाम है और न ही गोत्र। मैं आकाश में उठती हुई साक्षात ज्वाला हूँ, जिसका कोई इतिहास नहीं है। मैं मन को उद्वेलित करने वाली तरंग हूँ। मेरी गणना देवताओं, मनुष्यों, गन्धर्वों, किन्नरों में नहीं है। हे प्रिय। मैं तो एक साधारण अप्सरा हूँ, जिसका जन्म सांसारिक प्राणियों अथवा वृक्ष की इच्छाओं के समुद्र से घिरा है।

उर्वशी कहती हैं कि मैं प्रत्येक व्यक्ति के मन में जलनेवाली मीठी ज्वाला हूँ और प्रत्येक व्यक्ति के हृदय का प्रकाश हूँ। मैं मानव

के मन में नारी की कल्पना बनकर निवास करती हूँ। मेरे सामने बड़े-बड़े हाथी भी सिर झुकाकर रहते हैं। सिंह, शरभ, और चीता जैसे हिंसक पशु भी अपनी हिंसावृत्ति को त्यागकर मेरे सामने पालतू हिरन के समान बन जाते हैं।

उर्वशी कहती है कि देवालयों में देवताओं के स्थान पर मैं ही विद्यमान हूँ। मेरी प्रतिमा के सामने ही अगर नामक सुगन्धित द्रव्य जलता रहता है। धरती और आकाश में उठने वाले संगीत का स्वर मेरे असीम प्रेम से उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार उर्वशी ने स्वयं को पृथ्वी के कण-कण में व्याप्त बताकर अपना परिचय दिया।

3. अभिनव मनुष्य की उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।

उ०– अभिनव मनुष्य ने आज प्रकृति पर सर्वत्र विजय प्राप्त कर ली है। मनुष्य के हाथों आज जल, बिजली, दूरी, वातावरण का ताप आदि सभी कुछ बँधे हुए हैं। आज मनुष्य इतना साधनसम्पन्न है कि वह गर्मी और सर्दी के मौसम को भी अपने अनुकूल बना लेता है। वह नदी, पर्वत और समुद्र को समान भाव से बिना किसी व्यवधान के लाँघ सकता है। आज महान जलदेवता मनुष्य का हुक्म मानते हैं। शब्द को ग्रहण करने के गुणों से सम्पन्न आकाश रेडियो एवं दूरभाष आदि के द्वारा मनुष्यों के सन्देशों को उसकी इच्छानुसार वहन करके इच्छित स्थान तक पहुँचा देता है। मनुष्य आज इतना शक्ति सम्पन्न है कि उसके हाथों को देखकर परम-शक्तिशाली परमाणु भी भय से थर-थर काँपने लगता है।

4. कवि ने अभिनव मनुष्य को क्यों सावधान किया है? स्पष्ट कीजिए।

उ०– कवि ने अभिनव मनुष्य को इसलिए सावधान किया है; क्योंकि यदि मानव ने विज्ञान के साधनों का दुरुपयोग किया तो वे कल्याणकारी साधन ही मानव के विनाश का कारण बन जाएँगे। दिनकर जी मनुष्य को सावधान करते हैं कि इस विज्ञानरूपी तलवार की धार बहुत तेज है। अज्ञानता के कारण तू इस तलवार को हाथ में लेकर खेलने में सक्षम नहीं है। तेरी तनिक-सी भी असावधानी से, तेरे ही अंग कट सकते हैं।

काव्य-सौन्दर्य से संबंधित प्रश्न–

1. ''कौन है अंकुश .... सबंल कहाँ है?'' पंक्तियों में निहित रस व उसका स्थायी भाव लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में वीर रस है जिसका स्थायी भाव उत्साह है।

2. ''पर, क्या बोलूँ? .... से निकली।'' पंक्तियों में प्रयुक्त अलंकार का नाम लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में रूपक और अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है।

3. ''भीष्म हों अथवा .... पुरानी राह।'' पंक्तियों में प्रयुक्त छन्द बताइए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में मुक्त छन्द का प्रयोग हुआ है।

4. ''किन्तु नर-प्रज्ञा .... जग विस्तीर्ण।'' पंक्तियों का काव्य-सौन्दर्य स्पष्ट कीजिए।

उ०– काव्य-सौन्दर्य– 1. मानव की बुद्धि बहुत विलक्षण है। वह नित्यप्रति नवीनतम ज्ञान का जिज्ञासु है और ज्ञान प्राप्त करके ही उसे सन्तोष प्राप्त होता है। **2. भाषा–** साहित्यिक खड़ीबोली। **3. अलंकार–** रूपक, उपमा और अनुप्रास। **4. शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **5. गुण–** प्रसाद। **6. छन्द–** मुक्त।

पाठ्येतर सक्रियता

उ०– छात्र स्वयं करें।

10 मैंने आहूति बनकर देखा, हिरोशिमा

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 160 का अवलोकन कीजिए।

कवि पर आधारित प्रश्न–

1. सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' का जीवन परिचय देते हुए इनकी रचनाओं का वर्णन कीजिए।

उ०– कवि परिचय– डॉ. सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' का जन्म 7 मार्च, सन् 1911 ई० को उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले के कसया (कुशीनगर) नामक स्थान पर हुआ था। ये बचपन से ही प्रतिभाशाली थे। 'अज्ञेय' इनका उपनाम था तथा वास्तविक नाम था— 'सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन'। इनके पिता का नाम हीरानन्द शास्त्री था, जो मूल रूप से भणोत सारस्वत ब्राह्मण थे। इनके पिता भारत के प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता थे; अत: बचपन से ही अज्ञेय जी पर्वतों व वनों में निहित पुरातत्व अवशेषों के बीच रहे; जिस कारण परिवार से इन्हें अलग रहना पड़ा और इन्हें एकान्त ही प्रिय लगने लगा। इसी सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है ''अकेले रहने का आरम्भ से ही कुछ अधिक अभ्यास है, प्राय: लोगों के बीच में भी अकेला रह जाता हूँ, जिसे कृपालु लोग गम्भीरता समझते हैं और शेष लोग अहंकार।''

इनकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। घर पर ही इन्होंने संस्कृत हिन्दी अंग्रेजी व फारसी आदि भाषाओं का अध्ययन किया। सन् 1929 ई० में विज्ञान विषय से स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण करके ये अंग्रेजी साहित्य से स्नातकोत्तर उपाधि के लिए अध्ययन कर रहे थे कि क्रान्तिकारी आन्दोलन में भाग लेने के कारण इन्हें सन् 1930 ई० से 1934 ई० तक जेल में रहना पड़ा। तत्पश्चात् एक वर्ष तक घर पर ही नजर-बन्दी में समय व्यतीत करना पड़ा लेकिन इन्होंने अपना साहित्य-सृजन का क्रम जारी रखा। जेल में ही इनका नाम 'अज्ञेय' रखा गया। सन् 1943 ई० में प्रथम 'तार सप्तक' का सम्पादन करके काव्य-जगत में एक नया कीर्तिमान स्थापित किया।

सन् 1943 ई० से 1946 ई० तक इन्होंने सैनिक के रूप में देश की सेवा की। इन्होंने सन् 1955 ई० में यूरोप तथा 1957 ई० में जापान और पूर्वी एशिया का भ्रमण किया। ये कुछ समय तक अमेरिका में 'भारतीय साहित्य और संस्कृति' के प्राध्यापक रहे। जोधपुर विश्वविद्यालय में 'तुलनात्मक साहित्य तथा भाषा अनुशीलन विभाग' के निदेशक रहे। ये साप्ताहिक समाचार-पत्र 'दिनमान' के प्रथम सम्पादक भी रहे। इन्होंने दिल्ली से 'नया प्रतीक' पत्र भी निकाला। 4 अप्रैल सन् 1987 ई० को यह महान् व्यक्तित्व पंचतत्त्वों में विलीन हो गया। मरणोपरान्त 'अज्ञेय' जी को 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' से सम्मानित किया गया।

रचनाएँ– अज्ञेय जी की रचनाएँ इस प्रकार हैं—

काव्य-कृतियाँ– अरी ओ करुणा प्रभामय, आँगन के पार द्वार, बावरा अहेरी, कितनी नावों में कितनी बार, हरी घास पर क्षण भर, इत्यलम, इन्द्रधनु रौंदे हुए ये, पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ, चिन्ता, पूर्वा, सुनहले शैवाल, भग्नदूत आदि। 'प्रिज़न डेज़ एण्ड अदर पोयम्स' नाम से अज्ञेय की अंग्रेजी भाषा में रचित एक अन्य काव्य-कृति भी प्रकाशित हुई हैं।

कहानी-संग्रह– विपथगा, परम्परा, कोठरी की बात, शरणार्थी एवं जयदोल।

भ्रमण-वृत्तान्त– अरे यायावर रहेगा याद, एक बूँद सहसा उछली।

नाटक– उत्तर प्रियदर्शी।

निबन्ध संग्रह– हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य, सबरंग और कुछ राग, त्रिशंकु, लिखि कागद कोरे, आत्मनेपद।

इनके अतिरिक्त अज्ञेय जी ने अनेक ग्रन्थों का सम्पादन भी किया। इनके द्वारा सम्पादित किए गए ग्रन्थ हैं — 'आधुनिक हिन्दी-साहित्य' (निबन्ध-संग्रह), 'तार सप्तक' (कविता-संग्रह) एवं 'नए एकांकी' आदि।

2. सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' की भाषा-शैली का उल्लेख कीजिए।

उ०– भाषा शैली– अज्ञेय जी के अतुकान्त छन्दों में सजग शब्द-प्रयोग भाव और विचार की गहराई को खोलते हुए-से लगते हैं। इनकी भाषा में ग्राम्य एवं देशज शब्दों की भरमार है। भाषा पर इनका असाधारण अधिकार रहा है। गम्भीर प्रकृति का शिक्षित और सुसंस्कृत पाठक ही इनके काव्य को ग्रहण कर पाता है। अज्ञेय निरन्तर चिन्तन और मनन के कवि रहे हैं। इनके काव्य में विविध प्रकार के प्रतीक मिलते हैं। अज्ञेय जी ने हमारे जीवन और जगत के ही विविध पदार्थों का चयन करके नवीन अप्रस्तुतों और उपमानों को चुना है और उपमा अलंकार का प्रयोग सर्वाधिक किया है। बाह्य जगत से उद्‌बुद्ध भावों एवं विचारों को ये अपने मानस में रचने-पचने देते हैं और अपने व्यक्तित्व का सहज अंश बन जाने पर ही ये उन्हें अभिव्यक्ति देते हैं। मुख्य रूप से इन्होंने अपनी रचनाओं में उपमा अलंकार का प्रयोग किया है किन्तु इसके अतिरिक्त उल्लेख, उत्प्रेक्षा, मानवीकरण, कुछ नये अलंकारों व रूपक अलंकार की झलक इनके काव्य में विद्यमान हैं। इन्होंने प्रमुखत: बरवै, हरिगीतिका, रोला, मन्दाक्रान्ता, मलिनी व शिखरणी आदि छन्दों को अपनाया है।

व्याख्या सम्बन्धी प्रश्न

1. निम्नलिखित पद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) मैं कब कहता हूँ .... हो परवाह मुझे?

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' के 'सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'' द्वारा रचित काव्य-कृति, 'पूर्वा' से 'मैंने आहुति बनकर देखा' नामक शीर्षक से उद्‌धृत है।

प्रसंग– कवि जीवन को परिभाषित करते हुए बताता है कि दु:ख के बीच पीड़ा सहकर अपना मार्ग प्रशस्त करनेवाला जीवन ही वास्तविक जीवन है। जीवन वही सार्थक है, जो दूसरों की पीड़ा हरकर उनमें प्रेम का बीज रोपने के लिए स्वयं को बलिदन कर दे। प्रस्तुत पंक्तियों में कवि अपने लिए ऐसे ही जीवन की कामना करता है।

व्याख्या– कवि कहता है कि मेरी यह कामना बिल्कुल नहीं है कि यह संसार मेरी कठोर जीवन-गति के अनुकूल बन जाए और मुझे जीवन जीने में किसी प्रकार का कोई कष्ट न हो। मैं यह भी नहीं चाहता हूँ कि मेरा जीवनरूपी सूखा रेगिस्तान देवताओं के उद्यान नन्दन कानन के समान कभी न मुरझानेवाले पुष्पों से महक उठे। जिस प्रकार से काँटे की श्रेष्ठता उसके कठोर और नुकीलेपन में है, उसी प्रकार जीवन की मर्यादा भी उसके दु:खपूर्ण होने में निहित है। इसलिए मैं यह भी नहीं चाहता कि मेरा काँटेरूपी जीवन अपनी कठोरता और तीखापन छोड़कर वन का तुच्छ कोमल पुष्प बन जाए। यह जीवन कभी न समाप्त होनेवाला युद्ध है, इसमें जब-तक अत्यन्त पीड़ादायक गहरे जख्म मिलते ही रहते हैं। मैं यह कभी नहीं चाहता कि मुझे इस जीवन-युद्ध में कभी कोई जख्म न मिले। मेरी यह इच्छा भी नहीं है कि यदि मैं किसी को प्यार करूँ तो उसके बदले में मुझे

भी प्यार मिले अथवा उपहार के रूप में मुझे उसका कोई प्रतिफल प्राप्त हो। मैं यह भी नहीं चाहता कि मैं विश्व-विजेता बन जाऊँ और सारा संसार मेरे चरणों में झुक जाए। न ही मेरी यह कामना है कि मैं इतना वैभवसम्पन्न हो जाऊँ कि मेरे राजमहल के सम्मुख संसार की सारी सुन्दरता समाप्त हो जाए और लोग उसकी विशालता एवं सौन्दर्य पर मन्त्रमुग्ध हो जाएँ। मेरी इच्छा यह भी नहीं है कि मैं कोई ऐसा महान् कार्य कर जाऊँ कि सारा विश्व श्रद्धा के साथ मेरा पुण्य स्मरण करें। मेरा जीवन-मार्ग सदैव श्रेष्ठता और सफलता से परिपूर्ण बना रहे, अथवा मैं सदैव सफलता और श्रेष्ठता की प्राप्ति के लिए बेचैन रहूँ, मेरी यह इच्छा भी नहीं है। मैं अभी तक सबका नेतृत्व करता हुआ जो दुनिया पर राज्य करता आ रहा हूँ, मेरा यह नेतृत्व मुझसे न छिने, मुझे इसकी भी कोई परवाह नहीं है।

काव्य-सौन्दर्य– 1. कवि जीवन को दु:खों की वास्तविकता के साथ स्वीकार करने को प्रस्तुत है। **2. भावसाम्य–** कवि 'अज्ञेय' ने यहाँ माखनलाल चतुर्वेदी की 'पुष्प की अभिलाषा' कविता की भाँति ही देशभक्ति से ओत-प्रोत भाव व्यक्त किए हैं—

चाह नहीं, मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं प्रेमीमाला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि डाला जाऊँ,
चाह नहीं देवों के सिर पर चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ,
मुझे तोड़ देना बनमाली,
उस पथ में देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने,
जिस पथ पर जावें वीर अनेक।

3. भाषा– साहित्यिक खड़ीबोली। **4. शैली–** प्रतीकात्मक। **5. अलंकार–** उपमा, रूपक, पुनरुक्तिप्रकाश एवं अनुप्रास। **6. रस–** वीर। **7. छन्द–** मुक्त। **8. गुण–** ओज। **9. शब्दशक्ति–** अभिधा एवं लक्षणा।

(ख) मैं प्रस्तुत हूँ .... यज्ञ की ज्वाला है!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– यहाँ कवि का दृष्टिकोण है कि जीवन केवल सुखों का संचय ही नहीं है, अपितु उसकी वास्तविक शक्ति कष्टों, विघ्न-बाधाओं तथा विरोधी परिस्थितियों के साथ संघर्ष करने से ही विकसित होती है।

व्याख्या– कवि 'अज्ञेय' कहते है कि मैं जनपद की धूल बनने के लिए तैयार हूँ, फिर चाहे उस धूल का एक-एक कण मेरी जीवन-गति का रोड़ा बनकर मुझे भंयकर पीड़ा पहुँचाए। अर्थात् मेरी इच्छा है कि मैं लाखों पीड़ाएँ प्राप्त करके भी अपने राज्य, देश और मातृभूमि के काम आ सकूँ।

अपने जीवन का रस देकर जिसको मैंने बड़े प्रयास से पाला-पोसा है, वह केवल विषाद से मलिन, गिरते हुए आँसू की लड़ी नहीं है। प्रेम जिन व्यक्तियों को जीवन के अनुभव का कड़वा प्याला लगता है, वे अवश्य ही रोगी होंगे। प्रेम जिनके लिए चेतना लुप्त करनेवाली मदिरा बन जाता है, वे अवश्य ही चेतनाविहीन निर्जीव होंगे।

मैंने कठिनाइयों और बाधाओं की आग में जलकर जीवन के अन्तिम रहस्य को पहचान लिया है। जब मैं स्वयं आहुति बन गया, तब मुझे प्रेम के यज्ञ की ज्वाला दिखाई दी। कठिनाइयों और बाधाओं के मार्ग को पार करके ही मैं विकास के शिखर पर पहुँचा हूँ।

काव्य-सौन्दर्य– 1. कवि का मत है कि कठिनाइयाँ और बाधाएँ व्यक्ति को विकास और प्रगति का मार्ग दिखलाता हैं; अत: उनसे भयभीत होना उचित नहीं है। **2.** व्यक्ति को हँसते-हँसते संघर्ष करना चाहिए; संघर्ष से कभी विचलित नहीं होना चाहिए। **3. भाषा–** साहित्यिक खड़ीबोली। **4. शैली–** प्रतीकात्मक। **5. अलंकार–** अनुप्रास एवं उपमा। **6. रस–** वीर। **7. शब्दशक्ति–** लक्षणा। **8. गुण–** ओज। **9. छन्द–** मुक्त।

(ग) मैं कहता हूँ .... नीरव प्यार बने!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत पंद्याश में कवि ने बताया है कि वास्तविक शक्ति कष्टों, विघ्न-बाधाओं तथा विरोधी परिस्थितियों के साथ संघर्ष करने से ही विकसित होती है।

व्याख्या– कवि का कथन है कि कठिनाईयों और बाधाओं के मार्ग को पार करके ही मैं विकास के शिखर पर पहुँचा हूँ। मैं इस बात की स्पष्ट उद्घोषणा करता हूँ और बताना चाहता हूँ कि मैं संघर्षो के बीच कुचला जाकर भी आँधी के समान और ऊँचा उठ रहा हूँ। जिस प्रकार धूल पैरों से कुचली जाती है, किन्तु कुचलने वाले के सिर पर सवार हो जाती है, उसी प्रकार मैंने भी बाधाओं से कभी हार नहीं मानी है।

मेरी यह तीव्र इच्छा है कि मेरा जीवन ललकार बन जाए और मेरी असफलता ही तलवार की धार बन जाए, जिससे मैं विघ्न-बाधाओं को काट सकूँ। इस जीवनरूपी कठोर संग्राम में पल-पल रुकना ही मेरा आघात और मेरा प्रहार बन जाए। तेरे लिए

सब-कुछ अर्पित करने के उपरान्त अंगारे के समान मेरा जीवन निर्मल हो जाए, पवित्र हो जाए। मेरी कामना है कि मेरा यह मौन प्रेम तेरी पुकार के समान शक्तिशाली बन उठे।

काव्य-सौन्दर्य– 1. कवि का मत है कि कठिनाइयाँ और बाधाएँ ही व्यक्ति को विकास और प्रगति का मार्ग दिखाती हैं, अत: उनसे भयभीत होना उचित नहीं है। **2.** व्यक्ति को हँसते-हँसते संघर्ष करना चाहिए; संघर्ष से कभी विचलित नहीं होना चाहिए। **3. भाषा–** साहित्यिक खड़ीबोली। **4. शैली–** प्रतीकात्मक। **5. रस–** वीर। **6. अलंकार–** अनुप्रास एवं उपमा। **7. शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **8. गुण–** ओज। **9. छन्द–** मुक्त। **10. भावसाम्य–** (i) दुष्यन्त कुमार अपनी एक रचना में लिखते हैं कि—

कौन कहता है कि आसमाँ में सुराख नहीं होता
एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारो।

(ii) एक कवि तो इनसे भी आगे बढ़ गये हैं, जो लिखते हैं—

तलवार की धार पर चलने की आदत डालो
ज्वालामुखी की ढलानों पर अपने घर बनाओ
अपने जहाजों के रुख समुद्री तूफानों की ओर मोड़ दो।

(घ) छायाएँ मानव-जन .... की गच पर।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' के 'सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'' द्वारा रचित काव्य-ग्रन्थ, 'सुनहरे शैवाल' से 'हिरोशिमा' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– प्रस्तुत अंश में अमेरिका के परमाणु बमों द्वारा जापान के हिरोशिमा और नागासाकी नगरों में हुए भीषण नर-संहार का वर्णन हुआ है।

व्याख्या– 'अज्ञेय' जी ने कहा है कि परमाणु शक्ति के दुरुपयोग से मानवता त्रस्त होती है। मानव के साथ-साथ प्रकृति और दूसरे जीव-जन्तु भी समूल नष्ट हो जाते हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के अन्त में अमेरिका ने जापान देश के हिरोशिमा और नागासाकी नगरों पर परमाणु बमों से हमला किया तो मनुष्य द्वारा रचे गये उस सूर्य की रोशनी में वहाँ की जनता भाप बनकर उड़ गयी थी। लोगों की छायाएँ डूबते सूर्य के प्रकाश में जैसे लम्बी होकर मिटती हैं, वैसी हिरोशिमा में नही मिटी थीं, वहाँ तुरन्त ही सब कुछ समाप्त हो गया था। आज तक भी वहाँ की उजड़ी सड़कों और परमाणु बमों की आग से झुलसे पत्थरों पर उस त्रासदी की काली छायाएँ स्पष्ट देखी जा सकती हैं।

काव्य-सौन्दर्य– 1. कवि का मत है कि विज्ञान की अतुल शक्ति का प्रयोग मानव-जीवन की सुख-समृद्धि के लिए करना चाहिए, उसके विनाश के लिए नहीं। **2. भाषा–** साहित्यिक खड़ीबोली। **3. शैली–** नयी कविता की निजी शैली। **4. रस–** भयानक। **5. शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **6. गुण–** ओज। **7. छन्द–** मुक्त।

(ङ) मानव का रचा .... मानव की साखी है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस काव्यांश में कवि हिरोशिमा नगर पर गिराये अणुबम से हुए विनाश का वर्णन करते हुए मनुष्य को आधुनिक विज्ञान के विनाशकारी प्रभाव के विरुद्ध चेतावनी देता है।

व्याख्या– मानव द्वारा बनाये गये अणुबम ने, जो सूर्य के समान भयंकर आग का गोला था, मनुष्य को उसी प्रकार जलाकर भस्म कर डाला, जैसे सूर्य पानी को जलाकर भाप बन डालता है।

उस आग ने मानव तो मानव, पत्थर तक को जलाकर स्याह (काला) कर डाला। उन काले पत्थरों पर आज तक मानो उस महाविनाश की गाथा लिखी हुई है, जो इस बात की साक्षी (गवाह) है कि मनुष्य किस प्रकार वैज्ञानिक शक्ति का प्रयोग अपने ही विनाश के लिए—मानव-जाति के भयानक अन्त के लिए कर रहा है। यह मानो एक जीती-जागती चेतावनी है कि यदि मानव ने विज्ञान की शक्ति का इसी प्रकार दुरुपयोग जारी रखा तो यह एक सामूहिक आत्महत्या के समान होगा; क्योंकि इससे अन्तत: समग्र मानव-जाति नष्ट हो जाएगी। अत: विज्ञान का प्रयोग लोक-कल्याण के लिए होना परमावश्यक है।

काव्य-सौन्दर्य– 1. अज्ञेय जी ने बड़े नपे-तुले शब्दों में बड़ी मार्मिकता से विज्ञान के दुरुपयोग के विरुद्ध चेतावनी दी है। **2. भाषा–** साहित्यिक खड़ीबोली। **3. शैली–** प्रतीकात्मक। **4. रस–** भयानक। **5. शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **6. गुण–** ओज। **7. अलंकार–** उत्प्रेक्षा, रूपक और प्रतीप। **8. भाव-साम्य–** अज्ञेय जी इस आशा में यह कविता लिख रहे हैं कि सम्भवत: मनुष्य विज्ञान के आविष्कारों से होने वाले भावी विनाश के प्रति सचेत हो सके। दिनकर ने भी लिखा है—

सावधान, मनुष्य यदि विज्ञान है तलवार
तो इसे दे फेंक तजकर मोह, स्मृति के पार।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) काँटा कठोर है, तीखा है, उसमें उसकी मर्यादा है!

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' में संकलित 'सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'' द्वारा रचित 'मैंने आहुति बनकर देखा' नामक शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में इस बात पर बल दिया गया है कि प्रकृति ने जिस वस्तु को जिस रंग-रूप और स्वभाव में बनाया है, हमें उसकी उसी रूप में स्वीकार करना चाहिए, इसी में सबका हित निहित है।

व्याख्या– प्रकृति ने काँटे को स्वभाव से कठोर बनाया है, उसकी नोक को अत्यन्त तीक्ष्ण (तीखा) बनाया है, जो किसी के अंग को छूते ही उसे छेद डालता है। यह काँटे का कोई दोष नहीं है, बल्कि उसकी प्रकृति है, जो उसके अस्तित्व और अहम् के लिए आवश्यक है। यही उसकी मर्यादा है। यदि अपने प्रकृति-प्रदत्त स्वभाव को त्यागकर वह कोमल और मधुर बन जाए तो उसका महत्त्व ही समाप्त हो जाएगा, क्योंकि लोग न उससे भय खाएँगे और न ही उसका सम्मान करेंगे, अत: काँटे की मर्यादा कठोर और तीखा बने रहने में ही है।

(ख) वे मुर्दे होंगे प्रेम जिन्हें सम्मोहनकारी हाला है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में सच्चे प्रेम के स्वरूप और उसकी प्राप्ति के उपाय का उल्लेख किया गया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि वे लोग तो जीवित होते हुए भी मुर्दे के समान ही हैं, जो प्रेम को वशीभूत अथवा मोहग्रस्त करनेवाले मदिरापात्र से अधिक नहीं मानते। जीवन का वास्तविक रस तो खोने में है, न कि पाने में। इस दृष्टि से प्रेम तो यज्ञ की उस अग्नि के समान हैं, जिसमें अपनी आहुति देकर अर्थात् प्रेम में डूबकर या स्वयं को उसमें खोकर ही प्रेम के महत्त्व को समझा जा सकता है।

(ग) मैंने आहुति बनकर देखा यह प्रेम यज्ञ की ज्वाला है।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों में प्रेम के सच्चे स्वरूप और उसे प्राप्त करने के मार्ग पर प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या– कवि अज्ञेय का कहना है कि प्रेम जीवन में माधुर्य और सरसता का संचार करता है तथा व्यक्ति को एक नवीन चेतना और उत्साहित करने वाली नव-प्रेरणा प्रदान करता है। यह निष्प्राण व्यक्ति में भी प्राण डाल देता है। कवि कहता है कि मैंने स्वयं अनुभूत करके प्रेम के सच्चे स्वरूप और उसकी महत्ता को जान लिया है। मुझे प्रेम का यह तत्त्व अथवा रहस्य ज्ञात हो गया है कि प्रेम यज्ञ की उस ज्वाला के समान पवित्र और कल्याणकारी है, जो भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही दृष्टियों से व्यक्ति के लिए आवश्यक और मंगलकारी है। साथ ही प्रेम के इस मंगलकारी स्वरूप की अनुभूति तथा प्रेमरूपी यज्ञ की ज्वाला के दर्शन उसी समय सम्भव हो पाते हैं, जब व्यक्ति स्वयं प्रेमरूपी यज्ञ में अपनी आहुति देता है। आशय यह है कि कठिनाईयों और बाधाओं को पार करके तथा संघर्ष में तपकर ही हम प्रेम के तत्त्व को पहचान सकते हैं।

(घ) मानव का रचा हुआ सूरज, मानव को भाप बनाकर सोख गया।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' में संकलित 'सच्चिदानन्द हीरानन्द वास्त्यायन 'अज्ञेय'' द्वारा रचित 'हिरोशिमा' नामक शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में कवि अज्ञेय हिरोशिमा पर गिराये गये परमाणु बम की त्रासदी वर्णन करते हुए बताते है कि वैज्ञानिक प्रगति किस प्रकार विनाश का कारण बनती है।

व्याख्या– परमाणु बम के रूप में मनुष्य ने मानो कृत्रिम सूरज की रचना कर ली है। इसके विस्फोट में सूरज के समान ही अत्यधिक ताप उत्पन्न होता है। अमेरिका ने जब हिरोशिमा पर परमाणु बम गिराया तो विस्फोट के समय उससे इतना ताप और प्रकाश उत्पन्न हुआ कि लगा आसमान से टूटकर सूरज ही धरती पर आ गिरा है। उस समय मनुष्य भाप बनकर उड़ गया और उसकी राख तक शेष न रही। सूर्य में भी इतना ही ताप है कि उसके पास पहुँचकर कोई भी वस्तु ठोस अथवा द्रव अवस्था में नही रहती, वरन् वह गैस में परिवर्तित हो जाती है, ऐसी ही हिरोशिमा के परमाणु बम विस्फोट के समय हुआ था। जहाँ पर बम गिरा था, वहाँ की अधिकांश वस्तुएँ विशेषकर पेड़-पौधे और जीव-जन्तु अत्यधिक ताप के कारण भाप (गैस) बनकर उड़ गये थे। यह वैज्ञानिक प्रगति के महाविनाश का प्रथम प्रमाण था।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न

1. 'अज्ञेय' जी की 'मैंने आहुति बनकर देखा' कविता का भाव स्पष्ट कीजिए।

उ०– 'अज्ञेय' जी कविता में कहते हैं कि दु:खों के बीच पीड़ा सहकर अपना मार्ग प्रशस्त करने वाला जीवन ही वास्तविक है। जीवन वही सार्थक है, जो दूसरों की पीड़ा हरकर उनमें प्रेम का बीज रोपने के लिए स्वयं को बलिदान कर दे। कवि का कहना है कि जीवन केवल सुखों का संचय ही नहीं है, अपितु उसकी वास्तविकता शक्ति कष्टों, विघ्न-बाधाओं तथा विरोधी परिस्थितियों के

साथ संघर्ष करने से ही विकसित होती है। व्यक्ति को हँसते-हँसते संघर्ष करन चाहिए; संघर्ष से कभी विचलित नहीं होना चाहिए। कवि अपने लिए ऐसे ही जीवन की कामना करता है, क्योंकि जिस प्रकार काँटे की श्रेष्ठता उसके कठोर और नुकीलेपन में है, उसी प्रकार जीवन की मर्यादा भी उसके दु:खपूर्ण होने में निहित है।

2. 'अज्ञेय' जी की 'हिरोशिमा' कविता का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– 'अज्ञेय' जी ने 'हिरोशिमा' कविता में द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अमेरिका द्वारा जापान के हिरोशिमा तथा नागासाकी नगरों पर किए गए परमाणु हमलों का वर्णन किया है। कवि कहते हैं कि एक दिन अचानक नगरों के चौक में सूर्य निकला और धूप की वर्षा हुई, किन्तु यह सूर्य अन्तरिक्ष में उदित नहीं हुआ था और न ही वह धूप आकाश से आई थी। इस धूप और सूर्य का उदय अणु-बम के विस्फोट से हुआ था। मानवों की छायाएँ दिशाहीन होकर चारों ओर पड़ी थी। वह सूर्य पूरब दिशा से नहीं उगा था, अपितु वह नगर के बीच में अणु-बम के रूप में बरस पड़ा था। वह अणु-बम दिशाओं में इस प्रकार बिखर गया था, जैसे कालसूर्य के पहिए के डण्डे टूट-टूटकर इधर-उधर फैल गए हों। सूर्य का उदय तथा अस्त केवल कुछ ही क्षणों में हो गया था। यह एक ऐसा जलता हुआ क्षण था, जिसने अपने ताप से दोपहरी को भी सुखाकर रख दिया था और इस प्रकार सारी सुन्दरता क्षण भर में समाप्त हो गई थी।

अज्ञेय जी कहते हैं कि मानवों की छायाएँ आज तक भी समाप्त नहीं हुई हैं। वे छायाएँ लम्बी होकर भापरूप में परिवर्तित हो गई हैं। उन मानवों की छायाएँ आज भी झुलसे हुए पत्थरों तथा उखड़ी हुई सड़कों की दरारों पर बनी हुई है। अज्ञेय जी कहते हैं कि मानव द्वारा निर्मित सूरज अर्थात् अणुबम ने मानव को ही समाप्त कर दिया, उसे भाप बनाकर उड़ा दिया। पत्थर पर बनी हुई मानव की यह छाया इस बात का स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत कर रही है और साक्ष्य दे रही है कि मानव ही मानव के विनाश का कारण बन गया है।

3. 'अज्ञेय' जी की 'हिरोशिमा' कविता में उन्होंने क्या सन्देश दिया है?

उ०– 'अज्ञेय' जी ने 'हिरोशिमा' कविता में विज्ञान का प्रयोग मानवता के कल्याण में करने का सन्देश दिया है। कवि कहता है कि मानव जिस प्रकार वैज्ञानिक शक्ति का प्रयोग अपने ही विनाश के लिए मानव-जाति के भयानक अन्त के लिए कर रहा है। यह मानो एक जीती-जागती चेतावनी है कि यदि मानव ने विज्ञान की शक्ति का प्रयोग इसी प्रकार जारी रखा तो यह एक सामूहिक आत्महत्या की तरह होगा; क्योंकि इससे अन्तत: समग्र मानव जाति समाप्त हो जाएगी। अत: विज्ञान का प्रयोग लोक कल्याण के लिए होना परमावश्यक है।

काव्य-सौन्दर्य से संबंधित प्रश्न

1. ''मैं कब .... फूल बने?'' पंक्तियाँ किस छन्द पर आधारित हैं?

उ०– प्रस्तुत पंक्तियाँ मुक्त छन्द पर आधारित हैं।

2. ''अपने जीवन का .... प्यार बने।'' पंक्तियों में प्रयुक्त अलंकारों को स्पष्ट कीजिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में अनुप्रास एवं उपमा अलंकार प्रयुक्त हुए हैं।

3. ''एक दिन .... फटी मिट्टी से।'' पंक्तियाँ किस छन्द पर आधारित हैं?

उ०– प्रस्तुत पंक्तियाँ मुक्त छन्द पर आधारित हैं।

4. ''छायाएँ मानव .... गच पर।'' पंक्तियों में प्रयुक्त रस तथा उसका स्थायी भाव लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में भयानक रस है जिसका स्थायी भाव भय है।

पाठ्येतर सक्रियता

उ०– छात्र स्वयं करें।

11 विविधा
मधु की एक बूँद, बूँद टपकी एक नभ से, मुझे कदम-कदम पर, चित्रमय धरती, साँझ के बादल

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या– 171 का अवलोकन कीजिए।

कवि पर आधारित प्रश्न–

1. नरेन्द्र शर्मा का जीवन परिचय दीजिए तथा उनकी रचनाओं पर प्रकाश डालिए।

उ०– **कवि परिचय–** प्रसिद्ध कवि एवं उत्कृष्ट गीतकार नरेन्द्र शर्मा का जन्म जहाँगीरपुर, जिला बुलन्दशहर में 28 फरवरी सन् 1913 ई० को हुआ था। इन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय से एम०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद एक पत्रकार के रूप में

साहित्य-सृजन प्रारम्भ किया। सन् 1938 ई० से 1940 ई० तक ये अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के कार्यालय में कार्यरत रहे। स्वतन्त्रता-आन्दोलन में भाग लेने के कारण इन्हें जेल-यात्रा भी करनी पड़ी। इसके पश्चात् लगभग दस वर्षों तक बम्बई में रहकर ये फिल्मों में गीत एवं संवाद-लेखन के कार्य में संलग्न रहे। ये 'ऑल इण्डिया रेडियो' में कार्यक्रम नियोजक भी रहे। 11 फरवरी सन् 1989 ई० को इनका स्वर्गवास हो गया।

रचनाएँ– कर्णफूल, मिट्टी और फूल, शूल-फूल, रक्तचन्दन, प्रवासी के गीत, कदली वन, पलाश-वन, हंसमाला, द्रौपदी, उत्तरजय और सुवर्णा इनके प्रसिद्ध खण्डकाव्य हैं। प्रभात फेरी, कामिनी, अग्निशस्य, प्यासा निर्झर, बहुत रात गये इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

छायावादोत्तरकाल में अपने प्रणय गीतों, सामाजिक भावना एवं क्रान्तिवाहक कविताओं से जनमत को बहुत गहराई से प्रभावित करने वाले कवियों में नरेन्द्र शर्मा प्रमुख रहे हैं। जितनी तन्मयता से इन्होंने प्रेमी-मानस के हर्ष-विषाद को वाणी दी, उतने ही आक्रोश और सच्चाई से इन्होंने विशाल जनमानस की विविशता, विद्रोह-भावना और नव-निर्माण की चेतना को मुखरित किया है। साहित्य और लोकमंचीय कवि-सम्मेलनों के माध्यम से नरेन्द्र शर्मा ने जन-जीवन को प्रभावित एवं प्रेरित कर एक साहित्यकार के दायित्व का निर्वाह किया है। अधिकांशत: गीतों के माध्यम से इन्होंने अपने भावों और विचारों को वाणी दी है। इनकी रचनाओं में लाक्षणिकता, चित्रोपमता एवं प्रतीकात्मकता भी प्रचुरता से पायी जाती है। इनके गीतों में उपमा, रूपक आदि प्राचीन अलंकार तो मिलते ही हैं, मानवीकरण जैसे आधुनिक अलंकार भी हैं।

एक उत्कृष्ट गीतकार के रूप में पं० नरेन्द्र शर्मा को हिन्दी-साहित्य में विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

2. भवानीप्रसाद मिश्र का जीवन परिचय देते हुए उनकी कृतियों का उल्लेख कीजिए।

उ०– **कवि परिचय–** प्रयोगवाद एवं नई कविता के समर्थक भवानीप्रसाद मिश्र का जन्म टिगरिया ग्राम, जनपद होशंगाबाद (मध्य प्रदेश) में 29 मार्च, सन् 1913 ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री सीताराम मिश्र तथा माता का नाम श्रीमति गोमती देवी था। स्नातक तक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त इन्होंने 'कल्पना' नामक पत्रिका का सम्पादन किया तथा इसके बाद ये ऑल इण्डिया रेडियो में सेवारत रहे। आकाशवाणी के मुम्बई केन्द्र में ये हिन्दी विभाग के प्रधान के पद पर कार्यरत रहे। सन् 1942 ई० के आन्दोलन में इनकी सक्रिय भूमिका रही, जिसके परिणामस्वरूप इन्हें जेल-यात्रा भी करनी पड़ी। 20 फरवरी, सन् 1985 ई० को ये परलोकवासी हो गये।

युवावस्था से ही इनकी साहित्य-सृजन में रुचि रही। गाँधी-साहित्य के सम्पादक-मण्डल में सम्मिलित रहते हुए ये निरन्तर साहित्य-साधना करते रहे।

रचनाएँ– त्रिकाल सन्ध्या, अनाम तुम आते हो, फसलें और फूल, बुनी हुई रस्सी, सम्प्रति, गीतफरोश, मानसरोवर दिन, कालजयी, परिवर्तन जिए, चकित है दु:ख, खुशबू के शिलालेख, दूसरे तार सप्तक में संकलित कविताएँ, अँधेरी कविताएँ, गाँधी पंचशती आदि।

3. गजानन माधव 'मुक्तिबोध' का जीवन परिचय देते हुए उनकी कृतियों का उल्लेख कीजिए।

उ०– **कवि परिचय–** कवि गजानन माधव 'मुक्तिबोध' का जन्म श्योपुर, जनपद मुरैना, (मध्य प्रदेश) में 13 नवम्बर, सन् 1917 ई० को हुआ था। इनके पिता का नाम माधवराव और माता का नाम पार्वती बाई था। इनके पिता पुलिस विभाग में नौकरी करते थे। मुक्तिबोध जी ने इन्दौर के होल्कर कॉलेज से स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद उज्जैन के मॉडर्न स्कूल में अध्यापन-कार्य किया। सन् 1954 ई० में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करके दिग्विजय कॉलेज, राजनाँद गाँव में प्राध्यापक हुए। इनका जीवन आर्थिक दृष्टि से अभावमय रहा। 11 सितम्बर, सन् 1964 ई० को साहित्य का यह साधक परलोकवासी हो गया।

रचनाएँ– तार सप्तक में प्रकाशित कविताएँ, भूरी-भूरी खाक धूल, चाँद का मुँह टेढ़ा है।

विपात्र (उपन्यास), काठ का सपना (कहानी-संग्रह), उर्वशी : दर्शन और काव्य, कामायनी : एक पुनर्विचार (पुस्तक-समीक्षा), नई कविता का आत्म-संघर्ष, अन्य निबन्ध (निबन्ध-संग्रह), एक साहित्यिक डायरी (आत्माख्यान)।

4. गिरिजाकुमार माथुर के जीवन परिचय देते हुए उनकी कृतियों का उल्लेख कीजिए।

उ०– **कवि परिचय–** कवि गिरिजाकुमार माथुर का जन्म ग्वालियर जिले के अशोक नगर (मध्य प्रदेश) में 22 अगस्त, सन् 1919 ई० को हुआ था। इनके पिता का नाम श्री देवीचरण माथुर था, जो कि ब्रजभाषा में कविताएँ लिखते थे। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। इसके बाद झाँसी में हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। इण्टरमीडिएट व स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण करके अंग्रेजी विषय से लखनऊ विश्वविद्यालय से इन्होंने स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की। इसके बाद इन्होंने वकालत पास की। तत्कालीन उभरती हुई कवयित्री 'शकुन्त' के साथ इन्होंने विवाह किया। सन् 1953 ई० में आकाशवाणी, लखनऊ में उपनिदेशक के रूप में कार्य किया। अपने जीवनकाल में इन्होंने लन्दन, न्यूयार्क तथा कई यूरोपीय देशों का भ्रमण भी किया। 10 जनवरी, सन् 1994 ई० को ये परलोकवासी हो गए।

रचनाएँ – जो बँध नहीं सका, मंजीर, साक्षी रहे वर्तमान, छाया मत छूना, धूप के धान, पृथ्वीकल्प, शिलापंख चमकीले, भीतरी नदी की यात्रा, नाश और निर्माण आदि।

प्रसिद्ध गीत "We shall overcome one day" का हिन्दी में लयात्मक रूपान्तरण ''हम होंगे कामयाब एक दिन'' इन्हीं के द्वारा किया गया है।

5. धर्मवीर भारती का जीवन परिचय देते हुए उनकी कृतियों का उल्लेख कीजिए।

उ०– **कवि परिचय–** डा० धर्मवीर भारती का जन्म इलाहाबाद में 25 दिसम्बर, सन् 1926 ई० को हुआ था। ये मूल रूप से इलाहाबाद के ही रहने वाले थे। वहीं डॉ० रामकुमार वर्मा, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' व महोदवी वर्मा जैसे महान साहित्यकारों के सम्पर्क मे रहने से साहित्य के प्रति इनका रूझान हुआ। उनसे प्रेरणा प्राप्त करके भारती जी लेखन-कार्य में संलग्न हो गए। 'इलाहाबाद विश्वविद्यालय' से हिन्दी विषय से एम० ए० और पी० एच० डी० की उपाधियाँ प्राप्त करने के उपरान्त इन्होंने कुछ समय तक 'संगम' (साप्ताहिक पत्र) का सम्पादन किया।

इसके बाद इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक नियुक्त हुए। सन् 1959 ई० में बम्बई से प्रकाशित होने वाले हिन्दी के प्रतिष्ठित साप्ताहिक 'धर्मयुग' के सम्पादन का भार इनके कन्धों पर आया। इन्होंने 'धर्मयुग' को व्यावसायिक स्तर से ऊँचा उठाकर उसमें सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, लोकप्रिय और कलात्मक विषयों को समाविष्ट कर एक उच्च आदर्श पर पहुँचाया। महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, विनोबा भावे, जयप्रकाश नारायण एवं डॉ० राममनोहर लोहिया इनके वरेण्य आदर्श रहे। ये स्वतन्त्रता संग्राम के एक सेनानी भी थे तथा 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में इन्होंने सक्रिय भाग लिया था। ये 'भारत-भारती' तथा 'व्यास-सम्मान' जैसे साहित्यिक पुरस्कारों से पुरस्कृत व गौरवान्वित हुए। ये हिन्दी के प्रगतिशील लेखक-संघ के संस्थापक सदस्य भी थे। इनकी साहित्य-साधना से प्रभावित होकर भारत सरकार ने सन् 1972 ई० में इनको 'पद्मश्री' की उपाधि से विभूषित किया। कलम का यह सिपाही 4 सितम्बर, 1997 ई० को इस असार संसार से विदा लेकर परलोकवासी हो गया।

रचनाएँ – धर्मवीर भारती जी की प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

निबन्ध संग्रह– कहनी-अनकहनी, ठेले पर हिमालय तथा पश्यन्ती।

काव्य-कृतियाँ– ठण्डा लोहा, कनुप्रिया, सात गीत वर्ष, अन्धा युग, देशान्तर, सपना अभी भी।

नाटक– नदी प्यासी थी।

एकांकी संग्रह– नीली झील।

उपन्यास– सूरज का सातवाँ घोड़ा, गुनाहों का देवता, ग्यारह सपनों का देश।

आलोचना– 'मानव मूल्य और साहित्य', प्रगतिवाद : एक समीक्षा।

कहानी संग्रह– चाँद और टूटे हुए लोग।

व्याख्या संबंधी प्रश्न

1. निम्नलिखित पद्यावतरणों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) मधु की एक बूँद .... जीने के धंधे।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' के 'नरेश शर्मा' द्वारा रचित काव्य-संग्रह 'बहुत रात गये' से 'मधु की एक बूँद' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– इस पद्यांश में कवि ने स्पष्ट किया है कि संसार के प्रत्येक प्राणी का लक्ष्य आनन्द की प्राप्ति करना है।

व्याख्या– संसार में मधु अर्थात् आनन्द की एक बूँद पाने के लिए; आनन्द के एक क्षण की प्राप्ति के लिए ही मानव सारा श्रम करता है, भाँति-भाँति के कष्ट झेलता और संकट उठाता है। यद्यपि दार्शनिक और बुद्धिवादी लोग इस संसार में आनन्द-प्राप्ति को एक धुँधले बादल (अस्पष्ट लक्ष्य) के सदृश बताते हैं (अर्थात् आनन्द की प्राप्ति को इस मायामय संसार में सम्भव न मानकर उसके पीछे दौड़ना किसी अस्पष्ट और अनिश्चित लक्ष्य के पीछे दौड़ने जैसा निरर्थक और मूर्खतापूर्ण बताते हैं)। कवि की मान्यता है कि ऐसा कहना उचित नहीं है।

यदि इन दार्शनिक के कथानुसार संसार को अज्ञान (माया) का चक्र मान लिया जाए और सांसारिक ज्ञान-विज्ञान को दृष्टिहीन (अन्धे) जैसा मान लिया जाए; क्योंकि वह सच्चे आनन्द की प्राप्ति का मार्ग नहीं दिखा सकता तो फिर सामान्य मानव के पास जीने का कौन-सा सहारा बचता है? वह तो आनन्द की प्राप्ति की आशा में ही सारे उद्यम करता है। यदि वह इस विषय में निराश हो जाएगा; तो फिर पुरुषार्थ क्यों करेगा?

काव्य-सौन्दर्य– 1. दार्शनिक के अनुसार यह संसार अविद्या का परिणाम है और विद्या (वास्तविक ज्ञान) की प्राप्ति आध्यात्मिक साधना के द्वारा ही सम्भव है। कवि की धारणा इसके विपरित है। कवि की यह कविता उस तथ्य की प्रकाशित करती है जिस पर विचार करना अति आवश्यक है। भारत के पिछड़ेपन का मूल कारण भी सांसारिक आनन्दों के प्रति निषेधात्मक दृष्टिकोण का होना है। **2.** यहाँ 'मधु' आनन्द का प्रतीक है। **3. भाषा–** साहित्यिक खड़ीबोली। **4. गुण–** प्रसाद। **5. शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **6. अलंकार–** उपमा व अनुप्रास। **7. छन्द–** मुक्त।

(ख) मधु की एक बूँद .... बात कहे मत!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने यह स्पष्ट किया है कि संसार के प्रत्येक प्राणी का उद्देश्य मधु अर्थात् आनन्द की प्राप्ति करना है और इसी की प्राप्ति हेतु वह सतत प्रयत्नशील रहता है।

व्याख्या– कवि का कहना है कि आनन्द की इसी एक बूँद के बिना सर्वशक्तिमान ईश्वर भी निर्बल है; अर्थात् यदि आनन्द न हो तो ईश्वर महत्त्वहीन सिद्ध होता है। मधु की एक बूँद (आनन्द) सागर के समान है और प्रत्येक जीवात्मा उसकी मधुर मछली है। मधु की यह बूँद पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, कविता और कवि सभी में विद्यमान है। तात्पर्य यह है कि सृष्टि का प्रत्येक जड़ अथवा चेतन पदार्थ इस आनन्द की खोज में ही लगा है। कवि की कविता तो आनन्द की खोज और उसकी प्राप्ति की आशा का ही सुपरिणाम है।

इस आनन्द को प्राप्त करने के लिए हमने नानाविध कष्ट उठाये हैं, पीड़ाओं को सहा है। इसलिए कोई भी यह बात न कहे कि आनन्द मिथ्या है, असत्य है। तात्पर्य यह है कि इस संसार का प्रत्येक कार्य मधु (आनन्द) की एक बूँद के लिए ही सम्पादित किया जाता है; अर्थात् मधु की एक बूँद ही सत्य है, शाश्वत है।

काव्य-सौन्दर्य– 1. इन पंक्तियों में आनन्द के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है। **2.** आनन्द को प्राप्त करने के लिए सभी जड़ अथवा चेतन पदार्थ प्रयत्नशील रहते हैं। **3. अलंकार–** रूपक और उपमा। **4. भाषा–** साहित्यिक खड़ीबोली। **5. शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **6. गुण–** प्रसाद। **7. छन्द–** मुक्त।

(ग) बूँद टपकी एक नभ .... हट गया था।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' के 'भवानी प्रसाद मिश्र' द्वारा रचित 'दूसरा तारसप्तक' में प्रकाशित कविताओं में से, 'बूँद टपकी एक नभ से' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने आकाश से एक बूँद के टपकने जैसी अति साधारण घटना में भी अपनी कल्पना के बल पर अनेक सुकोमल अर्थ भर दिये हैं।

व्याख्या– आकाश से एक बूँद टपकी। कवि को उसकी स्वच्छ आभा ऐसी प्रतीत हुई, मानो किसी चन्द्रमुखी स्त्री ने झरोखे से झाँकते हुए मार्ग में जाते किसी पथिक की ओर देखकर हँस दिया हो और अपनी हँसती हुई आँख से उस पथिक को स्नेह के बन्धन में बाँध दिया हो। वह बूँद कुछ ऐसी लगी, मानो स्त्री की आँखों को देखकर कोई पथिक ठगा-सा रह गया हो और उसने अपने रोमांच पर अंकुश लगाते हुए उसके उस अनुपम सौन्दर्य का आनन्द बिना प्रतिक्रिया जताये ले लिया हो।

आकाश से टपकती हुई वह बूँद कवि को ऐसी लगी, मानो कोई पथिक किसी सुन्दरी की मुस्कान को देखकर अचानक चौंक पड़े और उसकी दृष्टि उन मुस्कुराती हुई आँखों को देखने के लिए उसी ओर घूम पड़े। जिस प्रकार से हँसती हुई आँखों का चुम्बन लिया जाता है, उसी प्रकार कवि ने अपनी आँखे उस ओर उठायीं। उसने अपनी आँखें उठाकर देखा तो बादल फट गया था; अर्थात् उसके मुख पर से घूँघट थोड़ा-सा हट गया था। हटे हुए घूँघट से उसका मुख इस प्रकार प्रतीत हो रहा था, मानो चन्द्रमा के ऊपर से बादल थोड़ा-सा हट गया हो।

काव्य-सौन्दर्य– 1. यहाँ चन्द्रमा और सुन्दरी के मुख में, स्वच्छ बूँद और मुस्कान में तथा मेघ और झरोखे में साम्य स्थापित किया गया है। **2.** साधारण बोलचाल की भाषा में एक विशिष्ट अनुभूति को बड़ी सफलता से प्रस्तुत किया गया है। **3.** नये उपमानों का प्रयोग द्रष्टव्य है। **4. भाषा–**सरल, सुबोध खड़ीबोली। **5. रस–** शृंगार। **6. छन्द–** मुक्त। **7. गुण–** प्रसाद। **8. शब्द-शक्ति–** अभिधा और लक्षणा। **9. अलंकार–** उपमा, उत्प्रेक्षा व अनुप्रास।

(घ) मुझे भ्रम होता है .... अजीब है जिन्दगी!!

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' के 'गजानन माधव 'मुक्तिबोध'' द्वारा रचित काव्य-संग्रह 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' से 'मुझे कदम-कदम पर' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– इस पद्यांश में कवि ने मानव-समाज में व्याप्त दु:ख और वेदना का वर्णन किया है।

व्याख्या– कवि कहता है कि मैं जब बाहर निकलता हूँ तो लगता है कि प्रत्येक मानव-देह में अनुभवों का बहुमूल्य कोश छिपा है। दुनिया का हर व्यक्ति अत्यन्त ही अनुभवपूर्ण है। प्रत्येक हृदय में आत्मा अभिव्यक्ति हेतु व्याकुल है और अपनी व्यथा-कथा कहने को व्यग्र है। मनुष्य की यह कमजोरी है कि वह अपने हृदय के दु:ख को कहना चाहता है। हर मुस्कान से अश्रुओं की कभी न रुकने वाली एक नदी ढकी है; अर्थात् मनुष्य बाहर से तो मुस्कुराता दिखाई देता है, पर उसके मन में वेदना का एक सागर उमड़ता रहता है। मुझे लगता है कि प्रत्येक व्यक्ति की वाणी में अथाह पीड़ा भरी हुई है, जिस पर महाकाव्यों जैसे विशाल ग्रन्थों की रचना की जा सकती है। मैं सबकी व्यथा का स्वयं अनुभव करना चाहता हूँ और सबके हृदयों में बैठकर उनके दु:ख-दर्द का साक्षात्कार करना चाहता हूँ। इस प्रकार मैं अपने व्यक्तित्व को दूसरों में मिलाकर, उनसे एकरूप होकर (तादात्म्य स्थापित करके) स्वयं को उन्हें दे डालता हूँ। है न विचित्र मेरा (कवि का) जीवन! अर्थात् जीवन की विचित्रता यह है कि कवि

स्वयं अपना जीवन कम जीता है, अपने दु:ख-दर्द को चुपचाप विषपायी शिव के समान पीकर दूसरों के दु:ख-दर्द को उजागर करता है।

काव्य-सौन्दर्य– 1. भाषा– सरल, सुबोध खड़ीबोली। **2. शैली–** प्रतीकात्मक एवं लाक्षणिक। **3. छन्द–** मुक्त। **4. गुण–** प्रसाद। **5. शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **6. अलंकार–** उपमा, प्रतीप व अनुप्रास। **7.** मुक्तिबोध ने इसमें काव्य-रचना-प्रक्रिया का बड़ा सुन्दर उद्घोष कराया है। कवि अपनी सहृदयता, भावुकता एवं कल्पना-शक्ति के बल पर; दूसरे व्यक्तियों के अन्तर्मन की पीड़ाओं का साक्षात्कार कर उसे काव्य में पिरोता है। यही उसके काव्य के दुर्निवार आकर्षण का कारण है; क्योंकि कवि की वाणी में हर व्यक्ति अपनी गाथा को मुखरित पाता है।

(ङ) घर पर भी .... नहीं पाता है!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– मुक्तिबोध जी की यह कविता मानव-मात्र की पीड़ा को बाँटकर भोगने की उनकी अदम्य अभिलाषा का स्पष्ट प्रमाण है।

व्याख्या– मुक्तिबोध जी अपनी भावनाओं को शब्द देते हुए कहते हैं कि मुझे घर पर ही कदम-कदम पर चौराहे मिल जाते हैं। और उन पर अपनी बाँहें फैलाये हुए सैकड़ों राहें मिल जाती हैं। उनके अनेकानेक भेद और उपभेद् पनपते और निकलते रहते हैं। जिस प्रकार किसी वृक्ष से हजारों शाखाएँ निकलकर चारों ओर फैल जाती हैं, उसी प्रकार मुझे भी प्रतिदिन नये-नये रूप और दृश्यों वाले अनेकानेक विषय मिलते रहते हैं और मैं बार-बार इस बात पर विचार करता रहता हूँ कि निश्चित ही आज के लेखक के सामने विषय की कोई कमी नहीं है। वस्तुत: विषयों का आधिक्य और वैविध्य ही लेखक की कठिनाई है। यही कारण है कि लेखक विविध प्रकार के विषयों में से उपयुक्त और उपयोगी विषय का चयन नहीं कर पाता।

काव्य-सौन्दर्य– 1. मुक्तिबोध जी ने यह स्पष्ट किया है कि लेखक को विषय खोजने के लिए कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है, वे तो इसके इर्द-गिर्द ही हैं। **2. भाषा–** सरल-सुबोध खड़ीबोली। **3. शैली–** प्रतीकात्मक। **4. अलंकार–** पुनरुक्तिप्रकाश एवं रूपकातिशयोक्ति। **5. शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **6. गुण–** प्रसाद। **7. छन्द–** मुक्त।

(च) यह चित्रमय धरती .... अमरित चन्दा का।

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' के 'गिरिजाकुमार माथुर' द्वारा रचित काव्य-संग्रह 'धूप के धान से' से 'चित्रमय धरती' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– इन पंक्तियों में कवि ने धरती के विविध, परन्तु सीधे-सादे मोहक दृश्यों का अंकन किया है।

व्याख्या– कवि का कथन है कि रंग-बिरंगे विविध दृश्यों वाली धरती कोसों तक फैली हुई है। इसके वनों में नीम, आम, बरगद, पीपल आदि के वृक्षों पर समयानुसार विभिन्न ऋतुएँ आकर इनको निखार जाती हैं, अर्थात् नयी सुषमा से भर देती हैं। कच्चे घरों वाले गाँवों के चारों ओर के खेत विविध रंगों वाली फसलों से भर जाते हैं, जिन पर दिन में सूरज की दूधिया धूप छाकर उन्हें मानो दूध से नहला देती है और रात में चन्द्रमा की अमृतमयी शीतल चाँदनी छनकर अनाज के प्रत्येक दाने को अमृत से भर देती है।

काव्य-सौन्दर्य– 1. गिरिजाकुमार माथुर अपने सहज प्रकृति-चित्रण के लिए विख्यात हैं। वे चारों ओर फैले सीधे-सादे प्राकृतिक दृश्यों को बड़ी सहृदयतापूर्वक सहज-भाषा में अंकित कर उनके सौन्दर्य को उभारने में बहुत कुशल हैं। **2. भाषा–** देशज शब्दों से युक्त खड़ीबोली। **3. शब्द-शक्ति–** अभिधा और लक्षणा। **4. गुण–** प्रसाद। **5. अलंकार–** उपमा व उत्प्रेक्षा। **6. छन्द–** मुक्त।

(छ) इस धूसर, साँवर .... मन्द हवाओं में।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत पंक्तियों से कवि का प्रकृति-प्रेम परिलक्षित होता है।

व्याख्या– कवि का कथन है कि इस भूरी-काली धरती से निकलने वाली सुगन्धित साँसें, कच्ची मिट्टी की ठण्डक और मटियाले रंग की छायाएँ मेरे तन और मन को आनन्द से विभोर कर देती हैं। उस मादक और मनमोहक वातावरण की याद आते ही मेरे प्राणों में इस प्रकार की शीतलता भर जाती है, जिस प्रकार प्रात: काल में ओंस से भीगे खेतों की हरियाली को छूकर बहने वाली मन्द-मन्द वायु से भीनी-भीनी सुगन्ध उठती है। यह सुगन्ध प्रत्येक मानव के प्राणों को शीतलता तथा आनन्द प्रदान करने वाली होती हैं।

काव्य-सौन्दर्य– 1. प्रकृति का कवि ने सूक्ष्मता से अवलोकन किया है और वह उसमें होने वाले परिवर्तनों का साक्षी भी है। **2. भाषा–** सरल और सहज खड़ीबोली। **3. शैली–** चित्रात्मक। **4. शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **5. गुण–** प्रसाद। **6. अलंकार–** उपमा और अनुप्रास। **7. छन्द–** मुक्त।

(ज) ये अनजान नदी... सेन्दुर और प्रवाल!

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' के 'धर्मवीर भारती' द्वारा रचित काव्य-संग्रह 'सात गीत वर्ष' से 'साँझ के बादल' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

प्रसंग– इस पद्यांश में कवि ने सन्ध्या के रंग-बिरंगे बादलों का नावों के रूप में सुन्दर चित्रण किया है।

व्याख्या– इस आकाशरूपी अनजान (अज्ञात) नदी में, बादलरूपी सुन्दर नावें रंग-बिरंगे जादुई (मोहक) पाल उड़ाती धीमी गति से तैरती चली आ रही हैं। सायंकालीन सूर्य ने आकाशरूपी नीलमणि पर अर्थात् नीलम के रंग वाले आकाश पर अपनी सुनहरी किरणों से साँझी चित्रित कर दी है। ये नावें बहुरंगी दृश्य के बीच बिना डोरी और बिना माँझी (मल्लाह) के ढेरों सामान लादे बहती रही हैं। किसी नाव में सिन्दूर लदा है; अर्थात् कोई बादल सिन्दूरी रंग का है; और किसी में मूँगे लदे हैं; अर्थात् कोई बादल लाल रंग का है।

काव्य-सौन्दर्य– 1. सायंकालीन मेघों का बड़ा आकर्षक वर्णन किया गया है, जिसमें कल्पना का नयापन है। **2.** यहाँ प्रकृति का गत्यात्मक रूप में चित्रण हुआ है। **3.** प्रस्तुत पंक्तियाँ कवि की वर्णन-शक्ति का सजीवता की परिचायक है। **4. भाषा–** खड़ीबोली का गत्यात्मक प्रयोग। **5. शब्द-शक्ति–** लक्षणा। **6. गुण–** प्रसाद। **7. छन्द–** मुक्त। **8. अलंकार–** रूपकातिशयोक्ति व विरोधाभास (बिना माँझी के नाव का सामान लादे चलना)।

2. निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

(क) मधु की एक बूँद के पीछे
मानव ने क्या-क्या दुःख देखे!

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' के 'विविधा' भाग में संकलित 'नरेन्द्र शर्मा' द्वारा रचित 'मधु की एक बूँद' नामक शीर्षक से अवतरित हैं।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में बताया गया है कि व्यक्ति आनन्द की प्राप्ति के लिए क्या कुछ नहीं करता है, अर्थात् सब कुछ करता है।

व्याख्या– मधु की एक बूँद अर्थात् एक क्षण के आनन्द की प्राप्ति के लिए इस संसार का प्रत्येक व्यक्ति पागल है। वह उस सुख अथवा आनन्द की प्राप्ति हेतु दुसरों का शोषण करता है, कमजोरों पर अत्याचार करता है, स्वयं भूखा रहता है, न स्वयं खाता है और न दूसरों को खाने देता है, भाँति-भाँति के हथकण्डे अपनाकर भ्रष्टाचार में आकण्ठ डूबा रहता है, रात-दिन व्याकुल रहता है कि कैसे सुख-प्राप्ति के साधनों को प्राप्त करे। वह जैसे-जैसे इन साधनों को प्राप्त करता जाता है, उसका लालच बढ़ता जाता है और उसी के साथ-साथ उसके दुःखों में वृद्धि होती जाती है। इस प्रकार वह आजन्म दुःख भोगता रहता है, किन्तु मधु की वह एक बूँद प्राप्त नहीं कर पाता।

(ख) सृष्टि अविद्या का कोल्हू यदि,
विज्ञानी विद्या के अंधे।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– दार्शनिक के 'संसार को अज्ञान का चक्र' सिद्ध करने की रूढ़ि का तर्कपूर्ण विरोध किया गया है।

व्याख्या– यहाँ कवि कहता है कि दार्शनिक और बुद्धिवादी लोग इस संसार को अज्ञान (माया) का चक्र मानते हैं। ऐसी स्थिति में विज्ञानी तो दृष्टिहीन (अन्धे) कहलाएँगे; क्योंकि वे ऐसे आनन्द की प्राप्ति का वचन भरते है जो इस मायामय संसार में सम्भव नहीं है। विज्ञानियों का ऐसे आनन्द की प्राप्ति के पीछे दौड़ना किसी अस्पष्ट और अनिश्चित लक्ष्य के पीछे दौड़ने जैसा निरर्थक और मूर्खतापूर्ण है। वे अभिमानी होकर अन्धे हैं। भौतिकवाद के पीछे दौड़ते हुए वे उसी में सुख चाहते हैं।

(ग) ना घर तेरा, ना घर मेरा
रैन-बसेरा बनी नगरिया!

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में संसार की नश्वरता पर प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या– यहाँ मधु की बूँद का तात्पर्य आनन्द के क्षण से है। कवि का कहना है कि यदि आनन्द के धरातल पर सभी लोगों के हृदय एक साथ न जुड़ सके तो व्यक्ति का शरीर, इस आनन्द तत्त्व के बिना केवल एक निर्जीव चादर के समान है। यह संसार नश्वर है, न तेरा है, न मेरा है, यह तो रैन बसेरा है। सवेरा होने पर सभी इसे छोड़कर चल देंगे। इसलिए समभाव, बन्धुत्व और प्रेम को महत्त्व देना चाहिए।

(घ) मुझे भ्रम होता है कि प्रत्येक पत्थर में
चमकता हीरा है,
हर एक छाती में आत्मा अधीरा है।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'काव्यांजलि' के 'विविधा' भाग में संकलित गजानन माधव 'मुक्तिबोध' द्वारा रचित 'मुझे कदम-कदम पर' नामक शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– इस सूक्ति में मानव-मन में छिपी पीड़ा को सहज अभिव्यक्ति दी गयी है।

व्याख्या– प्रस्तुत पंक्तियों में कवि कहता है कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर कुछ प्रकाश है और कुछ तड़प है। कवि मानव के व्याकुल जगत् का उद्घाटन करते हुए कहता है कि जैसे प्रत्येक जीवधारी बाहरी तौर से पत्थर की भाँति मूल्यहीन भले ही लगे, किन्तु उसके भीतर अनुभव का आलोक लिये आत्मा का हीरा चमक रहा है। तथा प्रत्येक व्यक्ति के भीतर एक अधीर आत्मा की छटपटाहट है। आशय यह है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिए अधीर है।

अन्य परीक्षोपयोगी प्रश्न

1. नरेन्द्र शर्मा की कविता 'मधु की एक बूँद' का भावार्थ अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– इस कविता में कवि नरेन्द्र शर्मा ने यह स्पष्ट किया है कि संसार के प्रत्येक प्राणी का लक्ष्य आनन्द की प्राप्ति करना है। इस आनन्द को प्राप्त करने के लिए मानव श्रम करता है, भाँति-भाँति के कष्ट झेलता है और संकट उठाता है। यद्यपि दार्शनिक व बुद्धिवादी लोग इस आनन्द को एक धुँधला बादल कहते हैं। परन्तु कवि का मानना है कि यह कहना उचित नहीं है। कवि कहते हैं कि यदि संसार को माया का जाल (चक्र) मान लिया जाए और सांसारिक ज्ञान-विज्ञान को दृष्टिहीन मान लिया जाए तो सामान्य मानव के पास जीने का कौन-सा सहारा बचता है। वह तो आनन्द प्राप्ति की आशा में ही सभी उद्यम करता है।

कवि कहता है कि आनन्द की एक बूँद से भी व्यक्ति का अपनापन जुड़ा रहता है। यदि कर्म करने से व्यक्ति को आनन्द की प्राप्ति न होगी तो श्रमिक पसीना क्यों बहाएगा, सैनिक क्यों लहूँ बहाएगा तथा स्त्री प्रसव की पीड़ा क्यों सहन करेगी। व्यक्ति के असत्य ज्ञान और आडम्बर की चादर का अस्तित्व भी इसी कारण है कि उसे आनन्द की एक बूँद की प्राप्ति नहीं हुई है। यह संसार तो मात्र एक रैन-बसेरा है किसी का स्थायी आवास नहीं है। इस आनन्द के अभाव में पाँचों कोश तथा पाँचों जन सभी शून्य और निष्प्रभ हैं। इस आनन्द के बिना मनुष्य की समस्त योजनाएँ बहुत दूर प्रतीत होती हैं।

कवि कहता है कि इस आनन्द के बिना ईश्वर भी निर्बल है। मधु की एक बूँद सागर के समान है और प्रत्येक जीवात्मा उसकी मधुर मछली है। मधु की यह बूँद पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, कविता और कवि सभी में विद्यमान है। इस आनन्द को प्राप्त करने के लिए हमने अनेकों कष्ट उठाए हैं पीड़ाएँ सही हैं। इसलिए कोई यह न कहें कि आनन्द मिथ्या है, असत्य है। अर्थात् संसार का प्रत्येक कार्य आनन्द को प्राप्त करने के लिए ही किया जाता है, इसलिए मधु की बूँद ही सत्य है, शाश्वत है।

2. 'बूँद टपकी एक नभ से' कविता में कवि ने साधारण बूँद को किस प्रकार चित्रित किया है।

उ०– कवि ने कविता में एक साधारण बूँद को एक चन्द्रमुखी स्त्री तथा सुन्दरी के समान चित्रित किया है। कवि को आकाश में टपकती हुई बूँद ऐसी प्रतीत हुई जैसे किसी चन्द्रमुखी स्त्री झरोखे में से झाँकते हुए किसी पथिक को देखकर हँस पड़ी हो और उसने उस पथिक को अपने स्नेह के बंधन में बाँध लिया हो। वह बूँद ऐसी लगी, जैसे पथिक स्त्री की आँखों में देखता हुआ ठगा-सा रह गया हो।

आकाश से टपकती बूँद को कवि ने सुन्दरी की मुस्कान के समान चित्रित किया है, जिसे देखकर कोई पथिक चौंक गया हो और उसकी ओर घूम गया हो। आकाश से टपकती हुई बूँद को कवि ने उस स्त्री के रूप में चित्रित किया है, जिसका बादलरूपी घूँघट हट गया है।

3. गजानन माधव 'मुक्तिबोध' की कविता 'मुझे कदम-कदम पर' का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– कवि 'मुक्तिबोध' जी ने बाह्य जगत को देखकर उससे प्रेरणा ग्रहण करने की बात कही है तथा बाह्य जगत के अनेक रमणीक चित्र प्रस्तुत किए हैं। कवि कहते हैं कि मुझे कदम-कदम पर अनेक चौराहे अपनी बाँहों को फैलाए मिलते हैं। मुझे उनमें से अनेक दूसरे मार्ग निकलते दिखाई पड़ते हैं, मैं उन सभी मार्गों से जाना चाहता हूँ। कवि कहते हैं कि मुझे इन मार्गों या विकल्पों के अनुभव और उन सभी के स्वप्न अच्छे लगते हैं। मेरे मन में इनके कारण विचित्र सी व्याकुलता उत्पन्न होती है। इन अनुभवों को सीखकर मैं अधिक गहराई में उतरना चाहता हूँ, जिससे सामान्य अनुभवों से अलग कोई विचित्र अनुभव मुझे प्राप्त हो जाए।

कवि कहता है कि मुझे प्रत्येक शरीर में अनुभवों का एक कोश छिपा दिखाई पड़ता है। प्रत्येक हृदय में एक आत्मा अभिव्यक्ति के लिए व्याकुल दिखती है। हर मुस्कान के पीछे अश्रुओं की कभी न रूकने वाली नदी दिखाई देती है। मुझे लगता है प्रत्येक वाणी में अथाह पीड़ा भरी हुई है। मैं उन सबकी पीड़ा का अनुभव करना चाहता हूँ। मैं अपना जीवन उन्हें समर्पित करना चाहता हूँ। इसलिए मेरा जीवन बहुत विचित्र है।

कवि कहता है कि जब वह किसी विषय की तलाश में कदम बढ़ाता है, तो उसे एक नहीं अनेक विषय मिल जाते हैं। जिन पर वह लिख सकता है। जब वह उन सभी विषयों को ध्यान से देखता और सुनता है तो उस समय इतना ढेर एकत्र हो जाता कि उस पर कविता, कहानियाँ ही नहीं उपन्यास लिखा जा सकता है। जिनमें व्यक्ति के अनेक दु:खों की कथाएँ होती है। इसके साथ-साथ समाज के विभिन्न लोगों की एक दूसरे के प्रति शिकायतें है। कवि कहता है कि मुझे किसी के घमंड की कथा या चरित्र के बारे में सुनने को मिलता है। कभी-कभी सूरदास के पद तथा कुरान की आयतें भी सुनने को मिल जाती हैं।

कवि कहता है कि जब मैं घर वापस आता हूँ तो कविताएँ मेरे सौ वर्ष जीने की कामना करती है। कवि मानवों की पीड़ा को बाँटकर भोगने के अदम्य साहस का परिचय देता है। कवि को घर पर भी कदम-कदम पर हजारों राहों वाले चौराहे दिखाई पड़ते हैं। जिनसे भेद और उपभेद निकालते रहते हैं। जिस प्रकार किसी वृक्ष की शाखा व उपशाखाएँ निकलकर चारों ओर फैल

जाती है, उसी प्रकार उन्हें भी नये-नये रूप औश्र दृश्यों वाले विषय मिलते रहते हैं। और वह सोचता है कि लेखक को विषयों की कोई कमी नहीं है। बल्कि विषयों की अधिकता और विविधता ही लेखक की कठिनाई है और वह विविध विषयों में से उपयुक्त और उपयोगी विषय का चयन नहीं कर पाता है।

4. 'चित्रमय धरती' कविता में कवि ने धरती का शब्द चित्र किस प्रकार खीचा है?

उ०– प्रस्तुत कविता में कवि गिरिजाकुमार माथुर ने धरती का भव्य शब्द-चित्र खींचा है जिसे चित्रकला की भाषा में लैण्डस्केप कहते हैं। कवि ने धरती को साँवली, मटमैली, काली, मटियाली कहा है। जो आसमान के घेरे में कोसों तक दूर तक फैली हुई है। इस पर कहीं वृक्षों से छाए हुए नालों के तिरछे ढलान हैं, कहीं पर हरे-भरे लम्बे चढ़ाव है। इस पर झरबेरी, पलाश और काँस के वृक्षों से भरे टीले हैं, जिनके पीछे मार्ग छिप गए हैं। कवि ने धरती की सुन्दरता का वर्णन करते हुए कहा है कि इस पर सोंधी घास से परिपूर्ण मैदान है, जिन पर दूर-दूर तक धूप फैल जाती है। चरागाहों के पार वृक्षों की पंक्तियों की धुँधली छाया दिखाई देती है। कवि का कथन है कि रंग-बिरंगे दृश्यों वाली धरती कोसों तक फैली हुई है। कवि ने शब्दों के माध्यम से धरती का चित्र प्रस्तुत किया है। इस पर पाए जाने वाले विविध दृश्यों को कवि ने रंग-बिरंगे रंगों के समान बताया है, जिस पर सूरज के प्रकाश तथा चन्द्रमा की चाँदनी जैसे विविध रंग भरे हुए हैं।

5. धर्मवीर भारती जी ने 'साँझ के बादल' में बादलों के सौन्दर्य का वर्णन किस प्रकार किया है?

उ०– धर्मवीर भारती ने बादलों के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए साँझ के समय के बादलों की तुलना नावों से की है जो आकाशरूपी नदी में अपने-अपने जादुई पालों को उड़ाती धीमी गति से तैरती चली आ रही है। जैसे सांयकाल के सूर्य ने आकाशरूपी नीलमणि पर अपने सुनहरी किरणों से कोई साँझी चित्रित कर दी हो। ये नावें बिना डोरी और माँझी (मल्लाह) के ढेरों सामान से लदी हैं। जिसमें-से किसी में लाल रंग का सिन्दूर और किसी में मूँदे लदे हैं। अर्थात् बादलों के रंग भिन्न-भिन्न प्रकार के दिख रहे हैं।

ये बादलरूपी नावें कुछ पास लगती हैं तथा कुछ बहुत दूर दिखाई पड़ती हैं। जैसे कुछ चन्दन के समान हैं तथा कुछ कपूर के समान हैं। कुछ गेरू के रंग जैसी प्रतीत होती हैं तो कुछ रेशम के जैसी। ये बादल रूपी नावें अपनी धीमी चाल से बह जा रही हैं।

काव्य-सौन्दर्य से संबंधित प्रश्न

1. ''मधु की एक बूँद बिन .... मधुर मीन है।'' पंक्तियों में प्रयुक्त अलंकारों का परिचय दीजिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में अनुप्रास, उपमा एवं रूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है।

2. ''यह चित्रमर्या .... अमरित चन्दा का।'' पंक्तियों में प्रयुक्त छन्द का नाम बताइए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में मुक्त छन्द का प्रयोग हुआ है।

3. ''ये अनजान .... प्रवाल! पंक्तियों में प्रयुक्त अलंकार बताइए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में रूपकातिशोयक्ति व विरोधाभास अलंकार है।

4. ''बूँद टपकी .... आए अचानक! पंक्तियों में प्रयुक्त रस तथा उसका स्थायी भाव लिखिए।

उ०– प्रस्तुत पंक्तियों में शृंगार रस है जिसका स्थायी भाव रति है।

पाठ्येतर सक्रियता

उ०– छात्र स्वयं करें।

कथा भारती

1 ध्रवयात्रा

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 195 का अवलोकन कीजिए।

लेखकों पर आधारित प्रश्न

1. जैनेन्द्र कुमार का जीवन परिचय देते हुए इनकी कृतियों का उल्लेख कीजिए।

उ०– **लेखक परिचय–** जैनेन्द्र कुमार का जन्म 2 जनवरी सन् 1905 ई० को जिला अलीगढ़ के कोड़ियागंज गाँव में हुआ था। अल्पायु में ही ये पिता की छत्रछाया से वंचित हो गए; अत: इनकी माता तथा नाना ने इनका पालन-पोषण किया। बचपन में

इनका नाम आनन्दी लाल था। हस्तिनापुर के जैन गुरुकुल 'ऋषि ब्रह्मचर्य' से इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। पंजाब से मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद इन्होंने उच्च शिक्षा के लिए 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' में प्रवेश लिया। सन् 1921 ई० में महात्मा गाँधी द्वारा चलाए गए 'असहयोग-आन्दोलन' में इनका सकारात्मक योगदान रहा और इसी कारण इनकी शिक्षा का क्रम टूट गया।

इन्होंने साहित्य के विविध क्षेत्रों में अपना योगदान दिया। कहानीकार व उपन्यासकार के रूप में इनको विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हुई। गाँधी जी से प्रभावित होने के कारण ये अहिंसावादी व गाँधीवादी दर्शन के प्रतीक के रूप में जाने जाते हैं। इन्होंने कुछ राजनीतिक पत्रिकाओं का भी सम्पादन किया, जिस कारण इनको जेल जाना पड़ा। जेल में ही स्वाध्याय करते हुए ये साहित्य-सृजन में संलग्न रहे। 24 दिसम्बर, सन् 1988 ई० को इनका स्वर्गवास हो गया।

कृतियाँ– जैनेन्द्र जी की कृतियाँ इस प्रकार हैं—

कहानी– 'खेल' (सन् 1928 ई० में 'विशाल भारत' में प्रकाशित पहली कहानी)। फाँसी, नीलम देश की राजकन्या, जयसन्धि, वातायन, एक रात, दो चिड़ियाँ, पाजेब, ध्रुवयात्रा, जाह्नवी, अपना-अपना भाग्य, ग्रामोफोन का रिकार्ड, मास्टर साहब, पानवाला।

उपन्यास– त्यागपत्र, सुखदा, जहाज का पंछी, व्यतीत, सुनीता, कल्याणी, विवर्त,परख, मुक्तिबोध, जयवर्तन।

निबन्ध– सोच-विचार, पूर्वोदय, जड़ की बात, साहित्य का श्रेय और प्रेय, परिवार, प्रस्तुत प्रश्न, मन्थन, काम-क्रोध, विचार-वल्लरी, साहित्य-संचय।

संस्मरण– ये और वे।

अनुवाद– पाप और प्रकाश (नाटक), मन्दाकिनी(नाटक) तथा 'प्रेम में भगवान' कहानी-संग्रह का इन्होंने हिन्दी में अनुवाद किया।

इनके प्रथम उपन्यास 'परख' पर साहित्य अकादमी द्वारा इन्हें पाँच सौ रुपये के पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

2. जैनेन्द्र कुमार को कथा-शिल्प एवं शैली पर प्रकाश डालिए।

उ०– **कथा-शिल्प एवं शैली–** जैनेन्द्र की कहानी-कला चरित्र की निष्ठा तथा संवेदना के व्यापक धरातल पर विकसित हुई है। इनकी कहानियाँ दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक हैं। कहानियों में इनके प्रौढ़ चिन्तन एवं बौद्धिक सघनता का समावेश हुआ है।

इनके कथानक मुख्य रूप से संवेदना पर आधारित हैं तथा पाठक के अन्त:स्थल को स्पर्श करते हुए गतिशील होते हैं। इनकी कहानियाँ मनोविश्लेषणात्मक तथा जीवन-दर्शनपरक हैं। फलत: उनमें विस्तार की अपेक्षा गहनता है। इनके अधिकतर कथानक स्पष्ट एवं सूक्ष्म हैं। इन्होंने कथावस्तु के विकास में सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा तथा मानवीय आदर्शों की स्थापना को महत्व दिया है।

इन्होंने चरित्र-चित्रण पर विशेष बल दिया है तथा विविध प्रकार के चरित्रों की सृष्टि की है। मनोविश्लेषण के माध्यम से इन्होंने पात्रों के आन्तरिक द्वन्द्वों तथा उनकी मानसिक उलझनों को व्यक्त किया है। इनके पात्र प्राय: अन्तर्मुखी हैं। ये विशिष्ट पात्रों को विशिष्ट व्यक्तित्व देने में सफल रहे हैं। दूसरे प्रकार के पात्र वर्ग-प्रतिनिधि हैं; जो प्राय: सामान्य कोटि में आते हैं।

जैनेन्द्र की शैली के विविध रूप हैं, जिनमें दृष्टान्त, वार्त्ता तथा कथा-शैली प्रमुख हैं। नाटकीय एवं स्वगत-भाषण शैलियों का प्रयोग भी अनेक कहानियों में हुआ है। कहानियों की भाषा भावपूर्ण, चित्रात्मक एवं सशक्त है। यथोचित्त शब्द-रचना तथा भावानुकूल शब्द-चयन इनकी भाषा-शैली की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं।

जैनेन्द्र की कहानियों में संवादों की सीमित व्याख्या हुई है, तथापि उनके संवाद मानव-चरित्र का विश्लेषण करते हुए पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं एवं उनकी मानसिक स्थितियों का उजागर करते हैं।

इनकी कहानियों में निश्चित लक्ष्य होता है तथा उनमें चिन्तन की गहराई के अतिरिक्त अनुभूति की व्यंजना एवं आदर्श की प्रतिष्ठा का प्रयत्न रहता है। इन्होंने व्यक्ति के जीवन के आन्तरिक पक्षों, उसके रहस्यों एवं उसकी उत्कृष्टताओं को दार्शनिक दृष्टिकोण के आधार पर उभारने का प्रयत्न किया है।

प्रेमचन्दोत्तर युगीन इस कहानीकार का नाम
हिन्दी साहित्य जगत में सदैव अमर रहेगा।

पाठ पर आधारित प्रश्न

1. 'ध्रुवयात्रा' कहानी का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– राजा रिपुदमन उत्तरी ध्रुव की यात्रा सफलतापूर्वक पूर्ण करके लौटते समय यूरोप के नगरों में जहाँ-जहाँ रुके, वहाँ उनका भरपूर सम्मान हुआ। अखबार में यह खबर प्रकाशित हुई। उर्मिला ने अखबार में यह खबर पढ़ी और प्रसन्न मन से सोते हुए शिशु को प्यार किया। कई दिन तक ध्रुवयात्रा की खबर अखबारों में छपती रही और उर्मिला उसे पढ़ती रही। अब रिपुदमन मुम्बई पहुँचे, तब वहाँ भी उनका खूब स्वागत-सत्कार हुआ। शिष्ट मण्डल द्वारा अनुरोध किये जाने पर वे दिल्ली आए। सभी से प्रेमपूर्वक मिले। ऐसा प्रतीत हुआ कि उन्हें प्रदर्शनों में उल्लास नहीं है।

राजा रिपुदमन नींद कम आने के कारण परेशान हैं, इसलिए वे स्वयं को एकाग्र नहीं कर पाते हैं। एक संवाददाता ने उनके विषय में लिखा है कि जब मैं उनसे मिला तो ऐसा लगा कि वे यहाँ न हो, कहीं दूर हों। उर्मिला ने यह पढ़कर अखबार अलग रख दिया। रिपुदमन ने यूरोप में आचार्य मारुति की ख्याति सुनी थी किन्तु वे उन्हें जानते नहीं थे। अवसर मिलने पर वे आचार्य मारुति के पास पहुँचे। मारुति ने कहा— ''वैद्य के पास रोगी आते हैं, विजेता नहीं।'' रिपुदमन ने कहा— ''मुझे नींद नहीं आती है, मन पर मेरा काबू नहीं रहता है।'' रिपुदमन आचार्य मारुति के साथ बातचीत करते हैं। रिपुदमन प्रेम से इन्कार नहीं करते हैं लेकिन विवाह को वह बन्धन मानते हैं। राजा रिपुदमन अपनी प्रेमिका उर्मिला (जो उसके बेटे की माँ है से सिनेमा हॉल में मिलते हैं। उर्मिला उनके बेटे की माँ है, यह बात उन दोनों के अतिरिक्त तीसरा कोई भी नहीं जानता है। बातचीत के दौरान रिपुदमन बच्चे का नाम माधवेन्द्र बहादुर रखता है। उर्मिला कहती है कि तुम अपना कार्य पूर्ण किये बिना ही क्यों लौट आए?) तुम्हें मेरी और मेरे बच्चे की चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं है। राजा रिपुदमन कहते हैं— मैं केवल तुम्हारा हूँ, तुम जो कहोगी, वही करूँगा। क्या तुम अब भी नाराज हो। उर्मिला कहती है— मुझे तुम पर गर्व है। तुम्हें दक्षिण ध्रुव पर विजय प्राप्त करनी है, तुम्हें जाना ही होगा। यदि मेरे कारण तुम नहीं जाओगे, तो मैं स्वयं को क्षमा नहीं कर पाऊँगी। वह आचार्य मारुति को ढोंगी मानती है लेकिन रिपुदमन के कहने पर वह उसके पास जाती है, परन्तु उसके कहने पर विवाह के लिए तैयार नहीं होती है। मारुति रिपुदमन को बताते हैं कि उर्मिला उनकी सगी पुत्री है। उसे विवाह करके उसके साथ रहना चाहिये। रिपुदमन भी यही चाहते थे लेकिन उर्मिला के हठ के कारण वह तीसरे दिन दक्षिणी धुव्र जाने के लिए अमेरिका फोन पर बात करते हैं तो ज्ञात होता है कि परसो शाटलैण्ड द्वीप के लिए जहाज पूरा हो गया है। उर्मिला उन्हें कुछ दिन रुकने के लिए कहती है परन्तु वह नहीं मानते हैं। ध्रुवयात्रा के लिए चल देते हैं। उसकी खबरें अखबार में छपती हैं। उर्मिला अखबार पढ़ती रही। समय बीतता रहा। टेलीफोन भी उसने पास ही रख लिया था। पर अखबार के अतिरिक्त कोई बात उसे ज्ञात नहीं हुई। तीसरे दिन उर्मिला ने अखबार उठाया। सुर्खी है और बॉक्स में खबर है। राजा रिपुदमन सवेरे खून में भरे पाए गये। गोली का कनपटी के आर-आर निशान है। अखबार में दूसरी सूचनाएँ भी थीं। उर्मिला पढ़ती गई। रिपुदमन के सम्मान में सभाएँ हुई, राष्ट्रपति के भोज का भी पूरा विवरण था। उर्मिला एक भी अक्षर नहीं छोड़ सकी।

दोपहर बीत जाने पर नौकरानी ने कहा— खाना तैयार है। तब उर्मिला कहती है कि मैं भी तैयार हूँ, खाना यहीं ले आओ, प्लेट्स इसी अखबार पर रख दो। उसी दिन अखबारों के एक खास अंक में यह खबर प्रकाशित हुई कि मृत व्यक्ति के तकिये के नीचे से मिला उसका पत्र नीचे दिया जा रहा है। जिस पर आशय था— यह यात्रा निजी थी। किसी के वचन को पूरा करने जा रहा था। ध्रुव पर भी बचना नहीं था।, अब भी नहीं बचूँगा। मुझे संतोष है कि किसी की परिपूर्णता में काम आ रहा हूँ। मैं पूरे होश-हवाश में अपना काम तमाम कर रहा हूँ। भगवान मेरे प्रिय के अर्थ मेरी आत्मा की रक्षा करें।

2. श्रेष्ठ कहानी की विशेषताएँ बताते हुए 'ध्रुवयात्रा' कहानी की समीक्षा कीजिए।

उ०– जैनेन्द्र कुमार महान् कथाकार हैं। ये व्यक्तिवादी दृष्टि से पात्रों का मनोविश्लेषण करने में कुशल हैं। प्रेमचन्द की परम्परा के अग्रगामी लेखक होते हुए भी इन्होंने हिन्दी कथा-साहित्य को नवीन शिल्प प्रदान किया। 'ध्रुवयात्रा' जैनेन्द्र कुमार की सामाजिक, मनोविश्लेषणात्मक, यथार्थवादी रचना है। कहानी-कला के तत्त्वों के आधार पर इस कहानी की समीक्षा निम्नवत् है—

(i) शीर्षक– कहानी का शीर्षक आकर्षक और जिज्ञासापूर्ण है। सार्थकता तथा सरलता इस शीर्षक की विशेषता है। कहानी का शीर्षक अपने में कहानी के सम्पूर्ण भाव को समेटे हुए है तथा प्रारम्भ से अन्त तक कहानी इसी ध्रुवयात्रा पर ही टिकी है। कहानी का प्रारम्भ नायक के ध्रुवयात्रा से आगमन पर होता है और कहानी का समापन भी ध्रुवयात्रा के प्रारम्भ के पूर्व ही नायक के समापन के साथ होता है। अत: कहानी का शीर्षक स्वयं में पूर्ण समीचीन है।

(ii) कथानक– श्रेष्ठ कथाकार के रूप में स्थापित जैनेन्द्र कुमार जी ने अपनी कहानियों को कहानी-कला की दृष्टि से आधुनिक रूप प्रदान किया है। ये अपनी कहानियों में मानवीय गुणों; यथा— प्रेम, सत्य तथा करुणा को आदर्श रूप में स्थापित करते हैं।

इस कहानी की कथावस्तु का आरम्भ राजा रिपुदमन की ध्रुवयात्रा से वापस लौटने से प्रारम्भ होता है। कथानक का विकास रिपुदमन और आचार्य के वार्तालाप, तत्पश्चात् रिपुदमन और उसकी अविवाहिता प्रेमिका उर्मिला के वार्तालाप और उर्मिला तथा आचार्य मारुति के मध्य हुए वार्तालाप से होता है। कहानी के मध्य में ही यह स्पष्ट होता है कि उर्मिला ही मारुति की पुत्री है। कहानी का अन्त और चरमोत्कर्ष राजा रिपुदमन द्वारा आत्मघात किये जाने से होता है।

वस्तुत: कहानी में कहानीकार ने एक सुसंस्कारित युवती के उत्कृष्ट प्रेम की पराकाष्ठा को दर्शाया है तथा प्रेम को नारी से बिल्कुल अलग और सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किया है। कहानी का प्रत्येक पात्र कर्त्तव्य के प्रति निष्ठा एवं नैतिकता के प्रति पूर्णरूपेण सतर्क दिखाई पड़ता है। और जिसकी पूर्ण परिणति के लिए वह अपना जीवन अर्पण करने से भी नहीं डरता। कहानी मनोवैज्ञानिकता के साथ-साथ दार्शनिकता से भी ओत-प्रोत है और संवेदना धान होने के कारण पाठक के अन्तस्तल पर अपनी अमिट छाप छोड़ती हैं। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि ध्रुवयात्रा एक अत्युत्कृष्ट कहानी है।

(iii) पात्र तथा चरित्र-चित्रण– जैनेन्द्र कुमार जी की प्रस्तुत कहानी में मात्र तीन पात्र हैं— राजा रिपुदमन, रिपुदमन की

प्रेमिका उर्मिला और उर्मिला के पिता आचार्य मारुति। तीनों ही एक-दूसरे से पूर्णतया सम्बद्ध और तीनों ही मुख्य एवं समस्तरीय हैं। जैनेन्द्र जी की कहानियों के पात्र हाड़-मांस से निर्मित सामान्य मनुष्य होते हैं, जिनमें बुराईयों के साथ-साथ अच्छाइयाँ भी विद्यमान होती हैं। इनके पात्र अन्तर्मुखी होते हैं, जो सामान्य एवं विशिष्ट दोनों ही परिस्थितियों में अपना विशिष्ट परिचय प्रस्तुत करते हैं। प्रस्तुत कहानी के पात्र भी ऐसे ही हैं, जिनमें से एक जीवन की परिस्थितियों से असन्तुष्ट हो विद्रोही बन जाता है, दूसरा क्षणिक विद्रोही हो आत्म-त्यागी हो जाता है और तीसरा अन्ततोगत्वा समझौतावादी हो जाता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्रस्तत कहानी के पात्रों का चरित्र-चित्रण अत्यन्त स्वाभाविक, मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिकता से युक्त है।

(iv) **कथोपकथन या सवांद-योजना–** कहानी के संवाद छोटे, पात्रानुकूल तथा कथा के विकास में सहायक हैं। जैनेन्द्र जी अपने पात्रों के मनोभावों को सरलता से व्यक्त करने में सफल हुए हैं। लगभग पूरी कहानी ही संवादों पर आधारित है, अत: संवाद-योजना की दृष्टि से यह एक श्रेष्ठ कहानी है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

दूर जमुना किनारे पहुँचकर राजा ने कहा, ''अब कहो, मुझे क्या कहती हो?''

''कहती हूँ कि तुम क्यों अपना काम बीच में छोड़कर आये?''

''मेरा काम क्या है?''

''मेरी और मेरे बच्चो की चिन्ता जरूर तुम्हारा काम नहीं है। मैंने कितनी बार तुमसे कहा, तुम उससे ज्यादा के लिए हो?''

''उर्मिला, अब भी मुझसे नाराज हो?''

''नहीं, तुम पर गर्वित हूँ।''

''मैंने तुम्हारा घर छुड़ाया। सब में रुसवा किया। इज्जत ली। तुमको अकेला छोड़ दिया। उर्मिला, मुझे जो कहा जाय, थोड़ा। पर अब बताओ, मुझे क्या करने को कहती हो? मैं तुम्हारी हूँ। रियासत का हूँ, न ध्रुव का हूँ। मैं बस, तुम्हारा हूँ। अब कहो।''

(v) **देश-काल तथा वातावरण–** प्रस्तुत कहानी सन् 1960 के आस-पास की है। तत्कालीन सामाजिक वातावरण के अनुरूप ही जैनेन्द्र जी ने कहानी के पात्रों तथा उनके व्यवहार को प्रदर्शित किया है। कहानी का वातावरण सजीव है। प्रस्तुत कहानी में जीवन्त वातावरण की पृष्ठभूमि पर मानवीय प्रेम और संवेदना के मर्मस्पर्शी चित्र उकेरे गये हैं, जिसमें कहानीकार को पूर्ण सफलता मिली है। एक उदाहरण देखिए—

समय सब पर बह जाता है और अखबार कल को पीछे छोड़ आज पर चलते हैं। राजा रिपु नयेपन से जल्दी छूट गये। ऐसे समय सिनेमा के एक बॉक्स में उर्मिला से उन्होंने भेंट की। उर्मिला बच्चे को साथ लायी थी। राजा सिनेमा के द्वार पर उसे मिले और बच्चे को गोद में लेना चाहा। उर्मिला ने जैसे यह नहीं देखा और अपने कन्धे से उसे लगाये वह उनके साथ जीने पर चढ़ती चली गयी। बॉक्स में आकर सफलतापूर्वक उन्होंने बिजली का पंखा खोल दिया। पूछा, 'कुछ मँगाऊँ?''नहीं!'

(vi) **भाषा शैली–** अपनी कहानियों में जैनेन्द्र जी सरल, स्वाभाविक और व्यावहारिक भाषा का प्रयोग करते हैं, जिसमे संस्कृत के तत्सम, उर्दू, अंग्रेजी तथा देशज शब्दों का भी प्रचुरता से प्रयोग करते हैं। इसी कारण इनकी भाषा सहज, बोधगम्य एवं भावपूर्ण हो जाती है। इनके शब्द-चयन भावों के अनकूल होते हैं तथा शब्दों की रचना पात्रों की भूमिका को साकार कर देती है। प्रस्तुत कहानी की भाषा की भी ये ही विशेषताएँ हैं। इस कहानी में इन्होंने मुख्य रूप से कथा शैली को अपनाया है, जिसमें वार्ता शैली का प्राचुर्य तथा दुष्टान्त शैली का अल्पांश दृष्टिगोचर होता है। इनकी भाष-शैली का एक उदाहरण निम्नवत् है—

प्रेम से तो नाराज नहीं हो? विवाह का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं हैं। प्रेम के निमित्त से उसकी सृष्टि है। विवाह की बात तो दुकानदारी की है। सच्चाई की बात प्रेम है। इस बारे में तुम अपने से बात करके देखो। वह बात डायरी में दर्ज कीजिएगा। अब परसों मिलेंगे।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि भाषा-शैली की दृष्टि से यह एक सफल कहानी है।

(vii) **उद्देश्य–** प्रस्तुत कहानी में कहानीकार जैनेन्द्र जी ने बताया है कि प्रेम एक पवित्र बन्धन है और विवाह एक सामाजिक बन्धन। प्रेम में पवित्रता होती है और विवाह में स्वार्थता। प्रेम की भावना व्यक्ति को उसके लक्ष्य तक पहुँचने में मदद करती है। उर्मिला कहती है, **''हाँ, स्त्री रो रही है, प्रेमिका प्रसन्न है। स्त्री की मत सुनना, मैं भी पुरुष की नहीं सुनूँगी। दोनों जने प्रेम की सुनेंगे। प्रेम जो अपने सिवा किसी दया को, किसी कुछ को नहीं जानता।''**

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि प्रेम को ही सर्वोच्च दर्शाना इस कहानी का मुख्य उद्देश्य है, जिसमें कहानीकार को पूर्ण सफलता मिली है।

3. 'ध्रुवयात्रा' कहानी के शीर्षक की उपयुक्तता पर प्रकाश डालिए।

उ०– 'ध्रुवयात्रा' शीर्षक की दृष्टि से एक उच्चस्तरीय कथा है, जिसमें पात्रों का चयन भी जैनेन्द्र ने उच्चकुलीन वर्ग से किया है नि:सन्देह ध्रुवयात्रा जनसामान्य की सोच के परे की बात है। प्रत्येक पात्र ध्रुवयात्रा की पूर्णता में ही अपने जीवन को सफल मानता है। कहानी के कथानक का आरम्भ और अन्त ध्रुवयात्रा के सन्दर्भ के साथ ही होता है। कहानी के नायक और नायिका दोनों ही ध्रुवयात्रा को अपने प्रेम की पराकाष्ठा और कसौटी मानते हैं; जिस पर दोनों अपने को प्रमाणित करने का प्रयास करते हैं। यद्यपि शीर्षक प्रतीकात्मक है, तथापि सब प्रकार से सार्थक और कहानी के कथानक के उपयुक्त है।

4 'ध्रुवयात्रा' कहानी के आधार पर उर्मिला का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उ०– 'ध्रुवयात्रा' कहानी के आधार पर उर्मिला के चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं—

(i) सुसंस्कारित युवती– प्रस्तुत कहानी की नायिका 'उर्मिला' एक सुसंस्कारित युवती है। उसे बचपन में अपनी माता द्वारा अच्छे संस्कार प्राप्त हुए हैं। इसीलिए वह राजा रिपुदमन को अपने लक्ष्य की ओर उन्मुख होने के लिए प्रेरित करती रहती है।

(ii) सच्ची प्रेमिका– अपनी युवावस्था में उर्मिला रिपुदमन के प्रेमपाश में बद्ध हो जाती है। उस समय रिपुदमन किन्हीं सामाजिक कारणों से विवाह करने से मना कर देता है। बाद में जब उसे पता चलता है कि वह माँ बनने वाली है तो वह उससे विवाह के लिए कहता है, तब वह इनकार कर देती है और कहती है कि **''मुझे तुमसे प्रेम है। प्रेम और विवाह में अन्तर होता है। प्रेम पवित्रतायुक्त होता है और विवाह स्वार्थयुक्त।''** अत: वह उसकी सच्ची प्रेमिका ही बने रहना चाहती है, स्त्री नहीं।

(iii) स्वतन्त्र विचारों वाली– उर्मिला स्वतन्त्र और स्पष्ट विचारों वाली युवती है। रिपुदमन के पूछने पर कि क्या वह विवाह करना नहीं चाहती। वह विवाह के लिए स्पष्ट मना कर देती है। वह रिपुदमन से कहती है कि **''तुम्हारा शरीर स्वस्थ है और रक्त उष्ण है, तो स्त्रियों की कहीं कमी नहीं है। मैं तुम्हारे लिए स्त्री नहीं हूँ, प्रेमिका हूँ। इसलिए किसी स्त्री के प्रति मैं तुममें निषेध नहीं चाह सकती।''** निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वह वर्तमान युग में प्रचलित 'स्त्री-पुरुष के साथ-साथ रहने' की उत्कृष्ट विचारधारा की पोषक है।

(iv) दार्शनिक विचारों से युक्त– उर्मिला शिक्षित, स्वतन्त्र और स्पष्ट विचारों वाली युवती तो है ही, कहानी के पढ़ने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उसके विचारों में दार्शनिकता की विद्यमानता भी है। उसके विचार कभी भी पिछले स्तर पर प्रकट नहीं होते, उनमें दार्शनिकता का गम्भीर स्वर गुंजित होता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

'उर्मिल, सिद्धि मृत्यु से पहले कहाँ है?'

'वह मृत्यु के भी पार है, राजा! इससे मुझ तक लौटने की आशा लेकर तुम नहीं आओगे। सौभाग्य का क्षण मेरे लिए शाश्वत है। उसका पुनरावर्तन कैसा?'

'उर्मिला, तो मुझे जाना ही होगा? तुम्हारा प्रेम दया नहीं जानेगा?'

'यह क्या कहते हो, राजा! मैं तुम्हें पाने के लिए भेजती हूँ, और तुम मुझे पाने के लिए जाते हो। यही तो मिलने की राह है। तुम भूलते क्यों हो?

(v) ज्ञानवान्– उर्मिला अच्छे संस्कारों में पालित-पोषित हुई ज्ञानवान् स्त्री है। उसके बोलने मात्र से ही उसका यह गुण स्पष्ट हो जाता है। वह प्रेमिका और स्त्री के कर्त्तव्य को अलग-अलग मानती है। वह कहती है कि **''शास्त्र से स्त्री को नहीं जाना जा सकता। स्त्री को मात्र प्रेम से जाना जा सकता है।''**

(vi) पितृ स्नेही– उर्मिला के मन में अपने पिता के प्रति अपार स्नेह है। वह नहीं जानती कि उसका पिता कौन है? कहानी के उत्तरार्द्ध में आचार्य मारुति यह स्पष्ट करते हैं कि वे ही उसके पिता है, तब वह स्तब्ध होकर उनको देखती रह जाती है और यह कहती हुई चली जाती है कि मुझ हतभागिन को भूल जाइएगा।

(vii) मातृभाव से युक्त– उर्मिला ने यद्यपि बिना वैवाहिक जीवन में प्रवेश किये ही पुत्र प्राप्त किया है, तथापि उसमें मातृभाव की कमी कदापि नहीं है। वह रिपुदमन से कहती है, **''मेरे लिए क्या यही गौरव कम है कि मैं तुम्हारे पुत्र की माँ हूँ। .... दुनिया को भी जताने की जरूरत नहीं है कि मेरा बालक तुम्हारा है। मेरा जानना मेरे गर्व को काफी है।''**

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि उर्मिला ही इस कहानी के सर्व प्रमुख पात्र और नायिका के रूप में नायक है। कहानीकार को अपनी कल्पना में किसी स्त्री को जिन-जिन गुणों का होना अभीष्ट प्रतीत हुआ वे सभी गुण उसने प्रस्तुत कहानी की नायिका में समाविष्ट कर उसके चरित्र को अतीव गरिमा प्रदान की है।

5. 'ध्रुवयात्रा' कहानी की सबसे मर्मान्तक घटना कौन-सी है?

उ०– 'ध्रुवयात्रा' कहानी की सबसे मर्मान्तक घटना राजा रिपुदमन की मृत्यु की घटना है। जब उर्मिला को अखबारों के माध्यम से रिपुदमन की मृत्यु की खबर मिलती है तो वह अखबार में लिखा पूर्ण वितरण पढ़ती है। जिसमें राजा रिपुदमन द्वारा लिखित पत्र भी छपा होता है, जिसमें वह ध्रुवयात्रा को अपनी निजी यात्रा बताते हैं तथा किसी से (उर्मिला) मिले आदेश और उसे दिए

वचन को पूरा न कर पाने पर खेद व्यक्त करते है। वह यह भी लिखते हैं कि वे पूरे-होशो हवास में अपना जीवन समाप्त कर रहे है। दोपहर होने पर जब नौकरानी उर्मिला से कहती है कि भोजन तैयार है, तो वह कहती हैं कि मैं भी तैयार हूँ। प्लेटस इसी अखबार पर रख दो। राजा रिपुदमन की मृत्यु के बाद उर्मिला की मनोस्थिति का सशक्त चित्रण लेखक ने यहाँ किया है। जो प्रत्येक परिस्थिति का सामना करने के लिए तैयार है।

6. 'ध्रुवयात्रा' कहानी के उद्देश्य को स्पष्ट कीजिए।

उ०– **'ध्रुवयात्रा' कहानी का उद्देश्य–** आलोच्य कहानी 'ध्रुवयात्रा' का मूल-उद्देश्य प्रेम की पवित्रता और पराकाष्ठा की विवेचना एवं वचन-पालन के महत्त्व को प्रतिष्ठित करना है। कहानीकार के अनुसार वैयक्तिक सुखों की अपेक्षा सार्वभौमिक और अलौकिक उपलब्धि श्रेयस्कर है।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि 'ध्रुवयात्रा' कहानी तत्त्वों की दृष्टि से एक सफल मनोवैज्ञानिक कहानी है।

7. 'ध्रुवयात्रा' कहानी के आधार पर रिपुदमन का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उ०– 'ध्रुवयात्रा' कहानी के आधार पर रिपुदमन के चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

(i) ध्रुव विजेता– राजा रिपुदमन बहादुर ने उत्तरी ध्रुव को जीता था। उन्होंने उत्तरी ध्रुव पर विजय प्राप्त करने जैसा मुश्किल कार्य किया था। यह कार्य उन्होंने उर्मिला की प्रेरणा से किया था। वह उर्मिला से कहता है **''उर्मिला, तुमने मुझे ध्रुव भेजा कहती थी- उसके बाद मुझे दक्षिणी ध्रुव जाना होगा। क्या सच मुझे वहीं जाना होगा?''**

(ii) उच्चवर्गीय व प्रतिष्ठित व्यक्ति– राजा रिपुदमन एक उच्चवर्गीय व्यक्ति थे। वह एक रियासत के राजा थे। ध्रुव पर विजय प्राप्त करने पर वह प्रतिष्ठित व्यक्ति बन गए थे। प्रत्येक स्थान पर जहाँ भी वे गये थे उनका आदर-सत्कार किया गया था। उनके सम्मान में समारोह तथा भोज आयोजित किए गए थे।

(iii) सच्चा प्रेमी– रिपुदमन उर्मिला से सच्चा प्रेम करता है। उर्मिला के कहने **पर ही वह उत्तरी ध्रुव पर जाता है। रिपुदमन ध्रुव, से आने के बाद उर्मिला से विवाह करना चाहता है। वह उर्मिला से कहता है, ''मैंने तुम्हारा घर छुड़ाया। सब में रुसवा किया। इज्जत ली। तुमको अकेला छोड़ दिया। उर्मिला मुझे जो कहो थोड़ा। पर अब बताओ, मुझे क्या करने को कहती हो? मैं तुम्हारा हूँ। रियासत का हूँ, न ध्रुव का हूँ। मैं बस, तुम्हारा हूँ। अब कहो।''**

(iv) अप्रसन्न व्यक्तित्व– राजा रिपुदमन को स्वयं से बहुत-सी शिकायतें थी। वह स्वयं से अप्रसन्न था। उसे नींद कम आती थी। उसे अपने मन पर काबू नहीं था। इसलिए वह आचार्य मारुति के पास गया। जब आचार्य मारुति उसके आने का कारण पूछते है तो वह कहता है—

''रोगी ही आपके पास आया है। विजेता छल है और उस दुनिया के छल को दुनिया के लिए छोड़िए। पर आप तो जानते हैं।''

आचार्य– ''हाँ चेहरे पर आपके विजय नहीं पराजय देखता हूँ। शिकायत क्या है?''

रिपु– ''मैं खुद नहीं जानता। मुझे नींद नहीं आती। और मन पर मेरा काबू नहीं जमता।''।

आचार्य– ''हूँ, क्या होता है?''

रिपु– ''जो नहीं चाहता, मन के अन्दर वह सब कुछ हुआ करता है।''

(v) हठधर्मी– राजा रिपुदमन हठधर्मी है। जब उर्मिला उसे दक्षिणी ध्रुव जाने को कहती है तो वह तुरंत जाने का विचार कर लेता है और उर्मिला के इतनी जल्दी जाने से रोकने पर भी वह नहीं मानता और उससे कहता है—

''मैं स्त्री की बात नहीं सुनूँगा; मुझे प्रेमिका के मन्त्र का वरदान है।''

आँखों में आँसू लाकर उर्मिला ने रिपु के दोनों हाथ पकड़कर कहा, ''परसो नहीं जाओगे तो कुछ हर्ज है? यह तो बहुत जल्दी है?''

रिपु हाथ झटककर खड़ा हो गया। बोला, ''मेरे लिए रुकना नहीं है। परसों तक इसी प्रायश्चित में रहना है कि तब तक क्यों रुक रहा हूँ।''

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि रिपुदमन कहानी का प्रमुख पुरुष पात्र है। सम्पूर्ण कथानक उसी के चारों-तरफ घूमती है। कहानीकार ने एक श्रेष्ठ प्रेमी के सभी गुण उसमें समाहित किए हैं। जिससे उसका चरित्र गौरवमयी हो गया है।

8. ''कहानी का अन्त बिच्छु के डंक के समान होना चाहिए, जिसे पढ़कर पाठक तिलमिला जाए।'' कथन को दृष्टिगत रखते हुए 'ध्रुवयात्रा' कहानी के अन्त की समीक्षा कीजिए।

उ०– ध्रुवयात्रा कहानी का अन्त पाठकों के लिए अनापेक्षित है। कहानी में उर्मिला-रिपुदमन की वार्ता के बाद ऐसा प्रतीत नहीं होता कि कहानी का अंत रिपुदमन की मृत्यु से होगा। रिपुदमन द्वारा गोली मारकर की गई आत्महत्या पाठकों के लिए एक आश्चर्य है। कहानीकार इस कहानी का अन्त दूसरी प्रकार से कर सकते थे, परन्तु इस प्रकार का अन्त करके उन्होंने पाठकों को आश्चर्यचकित कर दिया है। रिपुदमन जो एक रियासत का राजा तथा ध्रुव विजेता था वह अपनी-जीवन-लीला का अन्त इस

प्रकार करेगा यह पाठकों ने नहीं सोचा होगा। पाठकों ने आशा की होगी की कहानी का अंत रिपुदमन के दक्षिणी ध्रुव विजय तथा उर्मिला और उसके विवाह से होगा। परंतु कहानी का अन्त वास्तव में बिच्छू के डंक से समान था जिसे पढ़कर पाठक तिलमिला गए।

पाठ्येतर सक्रियता

उ०– छात्र स्वयं करें।

2 खून का रिश्ता

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 205-206 का अवलोकन कीजिए।

कवि पर आधारित प्रश्न–

1. भीष्म साहनी के जीवन परिचय एवं कृतियों का संक्षिप्त उल्लेख कीजिए।

उ०– **लेखक परिचय–** नई कहानी के सुप्रसिद्ध कहानीकार भीष्म साहनी का जन्म 8 अगस्त, सन् 1915 ई० को रावलपिण्डी (वर्तमान में पाकिस्तान में) में हुआ था। इनके पिता का नाम **हरवंशलाल साहनी** था। राष्ट्रीय-आन्दोलनों और देश के विभाजन ने इनके पारिवारिक जीवन को अस्त-व्यस्त कर दिया और ये रावलपिण्डी छोड़कर सपरिवार भारत आकर रहने लगे। सन् 1957 ई० से 1963 ई० तक इन्होंने 'मास्को' के विदेशी-भाषा प्रकाशन-गृह' में अनुवादक के रूप में कार्य किया, जिसमें आस्त्रास्की और टॉलस्टाय आदि की कृतियों के अनुवाद किये। इन्होंने दिल्ली कॉलेज में अंग्रेजी के वरिष्ठ प्रवक्ता पद को भी सुशोभित किया। 11 जुलाई सन् 2003 को माँ सरस्वती का यह पुत्र स्वर्ग सिधार गया।

कृतियाँ– साहनी जी ने विशेष रूप से कहानी व उपन्यास विधा-क्षेत्र को अपनी लेखनी से समृद्ध किया। इनकी प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं—

कहानी– कुछ और साल, भाग्य-रेखा, पहला पाठ, माता-विमाता, भटकती राख, कटघरे, प्रोफेसर, चीफ की दावत, सिफारिशी चिट्ठी, खून का रिश्ता, अहं ब्रहास्मि।

उपन्यास– कुन्ती, बसन्ती, तमस, कड़ियाँ, झरोखे, मय्यादास की माड़ी, नीलू नीलिमा नीलोफर आदि।

'तमस' उपन्यास के लिए भीष्म साहनी जी को सन् 1975 ई० में 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार भी मिला है।

2. भीष्म साहनी के कथा-शिल्प एवं शैली का उल्लेख कीजिए।

उ०– **कथा-शिल्प एवं शैली–** देश के विभाजन की त्रासदी में निर्दोष लोगों द्वारा उठाए गए कष्टों को भीष्म साहनी जी ने प्रत्यक्ष रूप से देखा और महसूस किया। इसी कारण इनकी कहानियों में मानवीय संवेदनाओं की प्रचुरता है। इनकी कहानियों के कथानक राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन से जुड़े हुए होते हैं। ये अपनी कहानियों में निम्न-मध्यमवर्गीय परिवारों के अन्तरंग चित्र बड़े मार्मिक रूप में प्रस्तुत करते हैं। कहानियों के विषय जाने-पहचाने होते हैं किन्तु भीष्म साहनी ने उन्हें नवीन दृष्टिकोण के आधार पर प्रस्तुत किया है। व्यंग्य और करुणा इनकी कहानियों के प्रमुख गुण है। कहानियों में प्राय: किसी-न-किसी प्रकार की विडम्बना को अभिव्यक्ति मिली है, जो किसी-न-किसी रूप में हमारे वर्तमान समाज के अन्तर्विरोधों की ओर संकेत करती है। सरलता और सहजता इनकी कथा-शैली की प्रमुख विशेषता है। आधुनिक कहानी की पेचीदगी, प्रतीकात्मकता और सूक्ष्म-शिल्प इनकी कहानियों में नहीं है किन्तु प्रेषणीयता और प्रभाव की दृष्टि से वे निश्चय ही बेजोड़ ठहरती है। इनकी कथा-शैली में 'रिपोर्ताज' की पद्धति का विशिष्ट प्रयोग देखने को मिलता है। कहानियों की भाषा व्यावहारिक हिन्दी है, जिसमें उर्दू की शब्दावली का विशेष योगदान रहा है। जिस प्रकार इनकी कहानियों की विषयवस्तु व्यक्तिनिष्ठ न होकर समाजपरक है, उसी प्रकार कहानियों की भाषा भी पूर्वाग्रहमुक्त और लोकपरक है। आधुनिक कहानीकारों में इनका विशिष्ट स्थान है। हिन्दी-साहित्य जगत सदैव इनका ऋणी रहेगा।

पाठ पर आधारित प्रश्न

1. 'खून का रिश्ता' कहानी का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– खाट की पाटी पर बैठा चाचा मंगलसेन भतीजे को सगाई की बात मन ही मन सोचता हुआ प्रसन्नचित्त बैठा हुआ था। वह भतीजे की सगाई में आया हुआ है। वह दूध का गिलास हाथ में लिये दूध पी रहा है, कभी बादाम तथा कभी पिस्ते की गिरी, मुँह में आ रही है। तम्बाकू की कड़वाहट भरे मुख में मिठास आ गया। स्वप्न भंग हुआ और उसका मन सगाई में जाने के लिए उत्सुक हो उठा। सचमुच आज सगाई का दिन था। थोड़ी ही देर में सभी सगे-सम्बन्धी सगाई में जायेंगे। उत्साह के कारण मंगलसेन के

लिए खाट पर बैठे रहना असम्भव हो गया। शरीर में छटाँक-भर खून था, मगर वह ऐसा उछल रहा था कि बैठने नहीं देता था। तभी घर का पुराना नौकर सन्तू उसके हाथ से चिलम लेकन पीने लगा और बोला— तुम्हें सगाई में नहीं ले जाएँगे चाचा। मंगलसेन ने इस बात को मजाक समझते हुए कहा— ''मुझे नहीं ले जाएँगे तो क्या तुम्हें ले जाएँगे?'' वीरजी कहते हैं कि सगाई में सिर्फ बाबूजी जाएँगे। ऊपर चलो, सब खाना खा रहे हैं। तुम्हें नहीं ले जाएँगे, चाहे दो-दो रुपये का शर्त लगा लो। वास्तव में रसोईघर में इसी बात पर बहस चल रही थी, वहीं दीवार से पीठ लगाए बाबूजी बैठे थे। पुत्र वीरजी और पुत्री मनोरमा दोनों भाई-बहन खाना खा रहे थे। वीरजी कह रहे थे कि मेरी सगाई सिर्फ सवा रुपये में होगी और अकेले बाबूजी ही सगाई में जायेंगे। मनोरमा कहती है— ''मैं भी जाउँगी, आजकल लड़कियाँ भी जाती हैं।'' मंगलसेन ने अन्दर झाँका तब बाबूजी बोले—''आओ मंगलसेन, देखो कौन बैठा है। वीरसिंह कहता है— ''नमस्ते चाचाजी।'' बाबूजी कहते हैं— ''उठकर चाचाजी के पाँव छुओ, तुम्हें इतनी भी अक्ल नहीं है।'' तब वह चरण-स्पर्श करता है। बाबू जी कहते हैं— ''मंगलसेन जरा आकर टाँगें तो हिलाओ।'' माँ जी ने घूरकर देखा, नौकरों के सामने तो मंगलसेन से इस तरह रूखेपन से बात मत किया करो। मंगलसेन किसी समय फौज में था, उसे अपनी हैसियत पर बड़ा गर्व है वह अब भी खाकी पगड़ी पहनता है। ऊँचा खानदान है और शहर के जाने माने धनवान भाई के घर रहता है, ऐंठना तो स्वाभाविक ही था। वह बाबूजी का गरीब चचेरा भाई है तथा गाँव से शहर आकर बाबूजी के घर में रहता है व उनके काम में हाथ बँटाता है। उसका कद नाटा व शरीर सूखा है, मैले-कुचैले कपड़े तथा फौज के बूट पहनता है। काफी बहस के बाद मंगलसेन का सगाई में जाना तय हुआ। जब मंगलसेन जाने के लिए तैयार होकर आए तो उनका वेश जोकर जैसा प्रतीत हुआ। उन्हें दूसरे कपड़े व पगड़ी दी गई तब मानो मंगलसेन का कायाकल्प ही हो गया। समधियों के घर गये। वहाँ बाबूजी केवल सवा रुपये की माँग दुहराते हैं लेकिन फिर भी उन्हें बहुत कुछ मिलता है। मंगलसेन की भी वहाँ बड़ी आवभगत होती है। सगाई के बाद दोनों भाई लौट आते हैं। लाल रंग में रूमाल से ढका हुआ थाल मंगलसेन के कंधे पर है। घर पहुँचते ही मनोरमा झपटकर थाल ले लेती है। कार्यक्रम चल ही रहा था कि इसी बीच चाँदी की एक चम्मच खो जाती है। सब मंगलसेन पर शक करते हैं सबके सामने बाबूजी की फटकार सुनकर मंगलसेन गिरकर बेहोश हो जाता है। तभी वीरजी का साला चम्मच लेकर आता है, जो वीरजी की ससुराल में ही रह गई थी। नौकर सन्तू मंगलसेन को खाट पर लिटाता है और मुँह पर पानी छींटे मारते हुए कहता है— ''तुम शर्त जीत गए, तनख्वाह मिलने पर दो रुपये नकद तुम्हारी हथेली पर रख दूँगा।''

2. 'खून का रिश्ता' कहानी की पात्र और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से समीक्षा कीजिए।

उ०– कहानी में सीमित पात्र-योजना है। कहानी के पात्रों का चरित्रांकन कथाकार ने कुशलता से किया है। पात्र इतने सजीव हैं कि वे पाठक के समक्ष मूर्त रूप धारण कर खड़े हो जाते हैं। कहानी में चार मुख्य पात्र हैं— वीर जी, वीर जी के माता-पिता और चाचा मंगलसेन। इसके अतिरिक्त मनोरमा, सन्तू आदि सभी गौण पात्र हैं, जो कहानी की गतिमयता को बनाये रखते हैं। कहानी में प्रमुख पात्र के माध्यम से दहेज-प्रथा जैसे सामाजिक कंलक का विरोध कराकर समाज में सामाजिक समरसता की स्थापना करने का प्रयास किया गया है। वीर जी के माता-पिता धन के प्रति कितने केन्द्रीकृत हैं, इसका भी स्पष्ट वर्णन किया गया है।

3. संवाद तथा कथोपकथन की दृष्टि से 'खून का रिश्ता' कहानी का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– कहानी में सटीक संवादों की योजना की गयी है। संवाद सरल तथा पात्रों के चरित्र और परिस्थिति पर प्रभाव डालने वाले हैं। इस सन्दर्भ में कुछ कथन द्रष्टव्य हैं—

फिर भी साहस करके बोला ''यदि आप अकेले नहीं जाना चाहते तो चाचाजी को साथ ले जाइए। बस, दो जने चले जायें।''

''कौन-से चाचा को?'' माँजी ने पूछा।

''चाचा मंगलसेन को।''

कोने में बैठे सन्तू ने हैरान होकर सिर उठाया। माँ झट से बोली, ''हाय-हाय बेटा, शुभ-शुभ बोलो! अपने रईस भाइयों को छोड़कर इस मरदूर को साथ ले जाएँ? सारा शहर थू-थू करेगा!''

''माँजी, अभी तो आप कह रही थीं, खून का रिश्ता है। किधर गया खून का रिश्ता? चाचा जी गरीब हैं इसीलिए?''

तर्कशीलता तथा पैनापन संवादों के विशेष गुण हैं। इस प्रकार कथोपकथन की दृष्टि से यह एक श्रेष्ठ तथा सफल कहानी है।

4. 'खून का रिश्ता' कहानी के शीर्षक की सार्थकता पर प्रकाश डालिए।

उ०– कहानी 'खून का रिश्ता' समाज में बिगड़ते-बनते रिश्तों का अनूठा उदाहरण है। केवल एक व्यक्ति (बाबूजी) को सगाई में भेजने की जिद पर पर अड़े वीरजी खून के रिश्ते को बनाए रखने के लिए चाचा मंगलसेन को सगाई में भेजते हैं। चाँदी की चम्मच खोने पर मंगलसेन पर आरोप लगते हैं लेकिन जब वीरजी का साला चम्मच लौटाने आता है, तब 'खून के रिश्ते' पर धब्बा लगने से बच जाता है। आरम्भ से अंत तक 'खून का रिश्ता' प्रमुख है। अत: कहानी का शीर्षक 'खून का रिश्ता' पूर्णतया उपयुक्त एवं सार्थक है।

5. 'खून का रिश्ता' कहानी के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।

उ०– श्री भीष्म साहनी की प्रस्तुत कहानी का उद्देश्य मनुष्य के आत्म-संस्कार की शक्ति का परिचय देना है। उनका उद्देश्य समाज में

व्याप्त कुसंस्कारों, धन-लोलुपता और स्वार्थपरता से उत्पन्न संकट से समाज को बचाना है। जीवन का उचित दिशा प्रदान करने का उद्देश्य ही इनकी कहानियों का मुख्य लक्ष्य होता है। 'खून का रिश्ता' कहानी भी इनकी ऐसी ही कहानी है, जिसका उद्देश्य समाज से 'दहेज प्रथा' को समूल नष्ट करना है। इस प्रकार 'खून का रिश्ता' कहानी बहुउद्देशीय एवं कालक्रमानुगत है। समाज-सुधार की दृष्टि से इनकी यह अनूठी और श्रेष्ठ कहानी है।

6. 'खून का रिश्ता' कहानी के मुख्य पात्र वीरजी का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उ०– भीष्म साहनी द्वारा लिखित 'खून का रिश्ता' नामक कहानी का मुख्य पात्र वीरजी है, उसकी चारित्रिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) शिक्षित युवक– बाबू जी का लड़का वीरजी सही अर्थों में शिक्षित युवक है। वह 'दहेज' को सामाजिक व्यक्तियों पर आरोपित एक कंलक मानता है। इसीलिए अपने रिश्ते के बारे में वह अपने माता-पिता से स्पष्ट कह देता है कि, मेरी सगाई केवल सवा रुपये से ही होगी और सगाई के लिए केवल बाबू जी ही लड़की वालों के यहाँ जाएँगे। अन्त में बहुत कहने पर वह मंगलसेन नाम के धन से हीन चाचा को अपने पिता जी के साथ भेजता है।

(ii) दहेज विरोधी और आदर्श युवक– वीरजी समाज में नारियों के साथ होने वाली घटनाओं का मुख्य कारण दहेज को मानता है और इसे न लेकर समाज के सामने एक आदर्श उपस्थित करता है। वह एक सैद्धान्तिक युवक भी है। उसकी कथनी और करनी में कोई अन्तर नहीं है। वह अपने पिता को उनकी कही बात ही याद दिलाता है कि ब्याह-शादियों में पैसे बरबाद नहीं करने चाहिए।

(iii) समानता की भावना का पोषक– वीरजी एक सहृदय युवक है। वह गरीब-अमीर सबको समान दृष्टि से देखता है। उसके मन में किसी के भी प्रति किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं है। चाचा मंगलसेन को पिता द्वारा डाँटे जाने पर वह उनका भी विरोध करता है और कहता है कि, ''**चाचाजी गरीब हैं, इसीलिए इन्हें इतना दुत्कारा जाता है।**'' धनी रिश्तेदारों को सगाई में ले जाने की बात का भी वह विरोध करता है और मंगलसेन जी को ही सगाई में ले जाने के लिए पिता को विवश कर देता है।

(iv) व्यवहारकुशल, हँसमुख और विश्वासी– वीरजी एक व्यवहारकुशल युवक है। अपने इसी गुण के कारण वह परिवार के सभी सदस्यों का प्रिय है। वह हँसमुख एवं मृदुभाषी भी है। घर के सभी सदस्यों के प्रति उसका बड़ा ही मृदु व्यवहार है। अपने चाचा मंगलसेन का वह झुककर पाँव छूता है।

(v) भावी संगिनी के प्रति स्नेहिल– वीरजी अपनी होने वाली पत्नी प्रभा के प्रति अत्यधिक प्रेमयुक्त है। उसका वर्णन कहानीकार ने इन शब्दों में किया है— ''**थाल पर रखे लाल रूमाल को देखते हुए उनका रोम-रोम पुलकित हो उठा।**.......

इस रूमाल को जरूर प्रभा ने अपने हाथ से छुआ होगा। उनका जी चाहा कि रूमालप को हाथ में लेकर चूम लें।''

(vi) पश्चातापयुक्त– वीरजी के ससुराल से आये चम्मच; प्रभा के प्रेम की पहली निशानी; के खो जाने पर वह सहसा आवेश में आ जाते हैं और चाचा मंगलसेन के पास जाकर उन्हें दोनों कन्धे पकड़कर झकझोर देते हैं। लेकिन लगभग तुरन्त ही वह खिन्न-सा अनुभव वापस जाने लगता हैं और कहते हैं कि, ''**मुझसे क्या भूल हो गयी?**''

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि वीरजी में वे समस्त गुण विद्यमान हैं; जो एक श्रेष्ठ कहानी के नायक में होने चाहिए। पाठक चाहते हुए भी ऐसे पात्र को विस्मृत नहीं कर सकता।

7. मंगलसेन का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उ०– मंगलसेन कहानी 'खून का रिश्ता' का एक प्रमुख पात्र है उसकी चारित्रिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) स्वप्नशील व्यक्तित्व– मंगलसेन सपनों में रहने वाला व्यक्ति है। वह स्वप्न देखता है कि वीरजी की सगाई में उसका आदर सत्कार हो रहा है। वह सोचता हैं कि **उसकी पगड़ी पर केसर की छींटें हैं और हाथ में दूध का गिलास है, जिसे वह घूँट-घूँट करके पी रहा है। दूध पीते हुए कभी बादाम की गिरी मुँह में आ जाती है, कभी पिस्ते की। बाबूजी पास खड़े समधियों से उसका परिचय करा रहे हैं, यह मेरा चचाजाद छोटा भाई है, मंगलसेन! समधी मंगलसेन के चारों ओर घूम रहे हैं। उनमें से एक झुककर बड़े आग्रह से पूछता है, और दूध लाऊँ चाचाजी? थोड़ा-सा और? अच्छा, ले आओ, आधा गिलास, मंगलसेन कहता है, और तर्जनी से गिलास के तल में से शक्कर निकाल-निकालकर चाटने लगता है.....**

(ii) अनादरित व्यक्ति– मंगलसेन अपने बड़े भाई के घर पर रहता था। वहाँ उसका कोई सम्मान नहीं करता है। घर का नौकर सन्तू भी उसका मजाक उड़ाता है। वीरजी के पिता बाबूजी भी उसका सभी के सामने अपमान कर देते थें। जब बाबूजी मंगलसेन से पूछते हैं ''**आज रामदास के पास गए थे? किराया दिया उसने या नहीं?**'' **मंगलसेन खुशी में था। उसी तरह चहकाकर बोला,** ''**बाबूजी, वह अफीमची कभी घर पर मिलता है, कभी नहीं। आज घर पर था ही नहीं।**''

''**एक थप्पड़ मैं तेरे मुँह पर लगाऊँगा, तुमने क्या मुझे बच्चा समझ रखा है?**''

(iii) **गरीब रिटायर्ड फौजी–** मंगलसेन एक फौज से रियाटर्ड गरीब व्यक्ति है। मंगलसेन का अपना कोई नहीं था वह अपने दूर के भाई के यहाँ रहता था। उसकी गरीबी के कारण होने वाले अपमान से वीरजी गुस्से में आ जाते हैं और मंगलसेन को सगाई में भेजने के लिए कहते हैं। जिस पर उसकी माँ झट से कहती है, ''हाय-हाय बेटा, शुभ-शुभ बोलो! अपने रईस भाईयों को छोड़कर इस मरदूर को साथ ले जाएँ? सारा शहर थू-थू-करेगा।''

(iv) **उत्साहित–** मंगलसेन को जब पता चलता है कि केवल वह ही बाबूजी के साथ वीरजी की सगाई डलवाने जा रहा है तो वह उत्साहित हो जाता है। वह सोचता है क्यों न हो, आखिर मुझसे बड़ा सम्बन्धी है भी कौन, मुझे नही ले जाएँगे तो किसे ले जाएँगे।

(iv) **स्वाभिमानी–** मंगलसेन एक स्वाभिमानी व्यक्ति था। जब वीरजी के सगाई के सामान से एक चम्मच कम मिलता है और उस पर चम्मच गँवा देने का आरोप लगता है तथा उसकी जेबों की तलाशी ली जाती है तो स्तब्ध रह जाता है और वह जमीन पर गिर कर बेहोश हो जाता है।

निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि मंगलसेन का चरित्र कहानी का मुख्य पात्र है कहानी का कथानक उसके चारों तरफ ही घूमता है। वह एक बेसहारा, गरीब व्यक्ति है। वह अपने दूर के रिश्ते के भाई के साथ रहता है जहाँ उसका सम्मान नहीं किया जाता। वास्तव में मंगलसेन का चरित्र दया का पात्र है जो पाठकों के मानस पटल पर स्वयं ही अंकित हो जाता है।

8. 'खून का रिश्ता' कहानी की भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।

उ०– प्रस्तुत कहानी में सामान्य बोलचाल की उर्दू-अंग्रेजी मिश्रित खड़ीबोली का प्रयोग किया गया है मुहावरों का प्रयोग बहुत सुन्दर हुआ है। यत्र-तत्र देशज शब्दों के भी प्रयोग हुए हैं। भाषा पूर्वाग्रह से मुक्त और लोकपरक है। गम्भीर शीर्षक वाली इस कहानी में हास्य एवं व्यंग्य शैली को पात्रों, समय और वातावरण के अनकूल अपनाया गया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

मंगलसेन के बदन में झुरझुरी हुई। दिल में ऐसा हुलास उठा कि जी चाहा पगड़ी उतारकर बाबूजी के कदमों पर रख दे। हुमककर बोला, ''चिन्ता न करो जी, मेरे होते यहाँ चिड़ी फड़क जाये तो कहना? डर किस बात का? मैंने लाम देखी है, बाबूजी! बसरे की लड़ाई में कप्तान रस्किन था हमारा। कहने लगा, देखो मंगलसेन, हमारी शराब की बोतल लारी में रह गयी है, वह हमें चाहिए। उधर मशीनगन चल रह थी। मैंने कहा, अभी लो, साहब! और अकेले मैं वहाँ से बोतल निकाल लाया।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भाषा-शैली की दृष्टि से यह एक श्रेष्ठ कहानी है।

9. 'भीष्म साहनी की कहानी 'खून का रिश्ता' की कथावस्तु की समीक्षा कीजिए।

उ०– **कथावस्तु–** कहानी का कथानक संक्षिप्त और प्रवाहपूर्ण है। यह लेखक के उद्देश्य को पूर्णतया व्यक्त करता है। इसका कोई भी अंश अप्रासंगिक नहीं है। कथानक पूर्णतया सुसम्बद्ध और प्रवाहपूर्ण है। इसमें तारतम्यता भी बनी रहती है। कहानी का प्रारम्भ, विकास एवं अन्त स्वाभाविक रूप से हुआ है। सीमित वातावरण में भी पात्रों के बीच मजबूत सम्बन्ध दिखाई देता है। परिवार के मुखिया को न्यायोचित निर्णय लेने के लिए विवश होते तथा युवा वर्ग को अपने विचारों को दृढ़तापूर्वक रखने का अवसर दिया गया है। इस प्रकार इस कहानी में नव-चेतना और जन-जागृति का आह्वान है। परम्परागत मान्य 'खून के रिश्ते' किस तरह से धनहीनता और धनसम्पन्नता से प्रभावित होते हैं, इसे भी कहानी में पूर्णतया स्पष्ट कर दिया गया है। कहानी का कथानक कहानी से सुसम्बद्ध और प्रभावपूर्ण है, जिससे कहानी में तारतम्यता बनी हुई है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'खून का रिश्ता' कहानी कथानक की दृष्टि में एक सफल कहानी है।

10. 'खून का रिश्ता' कहानी की माँ का चरित्र रिश्तों की विवशता से संचालित है। स्पष्ट कीजिए।

उ०– 'खून का रिश्ता' कहानी में वीरजी की माँ कहानी की प्रमुख स्त्री पात्र है, उसके चरित्र की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं—

(i) **समझदार नारी–** कहानी की मुख्य स्त्री पात्र वीरजी की माँ समझदार नारी है। वीरजी के द्वारा केवल अपने पिता के द्वारा सगाई पर वह बेटे को समझाती हुई कहती हैं— ''यही मौके खुशी के होते हैं बेटा! कोई पैसे का भूखा नहीं होता। अकेले तुम्हारे पिताजी सगाई डलवाने जाएँगे तो समधी भी इसे अपना अपमान समझेंगे।''

वीर जी द्वारा चाचा मंगलसेन को सगाई डलवाने के लिए भेजने की जिद पर वह अपने पति को समझाती हुई कहती है ''क्या बुरा कहता है! आजकल के लड़के माँ-बाप के हजारों रुपये लुटा देते हैं। इसके विचार तो कितने ऊँचे हैं। यह तो सवा रुपये में सगाई करना चाहता है। तुम मंगलसेन को ही अपने साथ ले जाओ। अकेले जाने से तो अच्छा है।

(ii) **सामाजिक व्यक्तित्व–** वीरजी की माँ एक सामाजिक नारी है। अपने पति द्वारा मंगलसेन का अपमान सबके सामने करने पर वह उससे कहती हैं— **''देखो जी, नौकरों के सामने मंगलसेन की इज्जत-आबरू का कुछ ख्याल रखा करो। आखिर तो खून का रिश्ता है। कुछ तो मुँह-मुलाहिजा रखना चाहिए। दिन भर आपका काम करता है।''**

(iii) **विवश माँ–** वीरजी की माँ एक विवश माँ है। वह अपने बेटे की सगाई धूमधाम से करना चाहती है। परन्तु बेटे की जिद के सामने वह विवश हो जाती है। बेटे के कहने पर अगर उसकी बात मंजूर है तो ठीक नहीं तो वह सगाई नहीं करेगा, वह कहती है— ''बस-बस, आगे कुछ मत कहना!'' माँ ने झट से टोकते हुए कहा। फिर क्षुब्ध होकर बोली, '' जो तुम्हारे मन

में आये करो। आजकल कौन किसी की सुनता है! छोटा-सा परिवार और इसमें भी कभी कोई काम ढंग से नहीं हुआ। मुझे तो पहले ही मालूम था, तुम अपनी करोगे.……''

(iv) **सामाजिक प्रतिष्ठा से भयभीत–** वीरजी की माँ समाज व समाधियों के बीच अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखना चाहती है। जब मंगलसेन तैयार होकर आता है तो उनके खराब कपड़े देखकर उनका दिल बैठ जाता है। वह अपनी प्रतिष्ठा के लिए मंगलसेन के लिए मनोरमा से धुला पजामा तथा पगड़ी मगाँती है तथा उसका कायाकल्प करती है।

(v) **प्रफुल्लित नारी–** अपने बेटे की सगाई के होने के कारण वीर जी की माँ बहुत खुश होती है। वह समधियों के यहाँ से आए समान को देखकर प्रसन्न हो जाती है। वह अपने पति से उत्सुकता वश पूछती है कि समधियों ने क्या-क्या सामान दिया है।

(vi) **संदेही स्त्री–** वीरजी की माँ चम्मच गुम हो जाने पर मंगलसेन पर संदेह करती है। वह वीर जी के द्वारा मंगलसेन को झिंझोड़ने पर कहती है ''तुम बीच में मत पड़ो बेटा! अगर चम्मच खो गया है तो तुम्हारी बला से! सबका धर्म अपने-अपने साथ है। एक चम्मच से कोई अमीर नहीं बन जाएगा।''

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि वीरजी की माँ रिश्तों की विवशता में फँसी नारी है जिसने सामाजिक-प्रतिष्ठा के साथ-साथ रिश्तों का मान भी रखा है।

पाठ्येतर सक्रियता

उ०– छात्र स्वयं करे।

3 पंचलाइट

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 211 का अवलोकन कीजिए।

लेखक पर आधारित प्रश्न

1. फणीश्वरनाथ 'रेणु' का जीवन परिचय देते हुए उनकी कृतियों का उल्लेख कीजिए।

उ०– लेखक परिचय– प्रेमचन्दोत्तर युग के प्रमुख कहानीकार फणीश्वारनाथ 'रेणु' जी का जन्म 4 मार्च सन् 1921 ई० को बिहार प्रान्त के पूर्णिया जिले के औराही हिंगना नामक ग्राम में हुआ था। इण्टर तक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त 'रेणु' जी' स्वतन्त्रता-आन्दोलन में कूद पड़े और इस आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निर्वाह करने के कारण अनेक बार इन्हें जेल भी जाना पड़ा। ये समाजवादी विचारधारा से प्रभावित रहे हैं। बिहार-आन्दोलन में अपना सकारात्मक योगदान देते हुए 'रेणु' जी ने सरकार द्वारा प्रदत्त 'पद्मश्री' की उपाधि तथा आर्थिक सहायता राशि वापस लौटा दी थी। 11 अप्रैल सन् 1977 ई० को 'रेणु' जी का निधन हो गया।

कृतियाँ– 'रेणु' जी ने प्रमुख रूप से कहानी व उपन्यास विद्या के क्षेत्र को अपनी लेखनी से समृद्ध किया।

इनकी प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं—

कहानी– आदिम रात्रि की महक (कहानी-संग्रह), रसपिरिया, पंचलाइट, तीसरी कसम, तीन बिन्दियाँ, लाल पान की बेगम, ठुमरी (कहानी-संग्रह), उच्चाटन।

उपन्यास– मैला आँचल, जुलूस, दीर्घतपा, कलंकमुक्ति, परती परिकथा, कितने चौराहे।

2. फणीश्वरनाथ 'रेणु' के कथा-शिल्प एवं शैली पर प्रकाश डालिए।

उ०– कथा-शिल्प एवं शैली– 'रेणु' जी में संवेदना और निरीक्षण की अपूर्व शक्ति है। हिन्दी कथा-जगत में इनका उदय एक ऐतिहासिक घटना है। कथा में आंचलिकता का सन्निवेश तो इनका वैशिष्ट्य है ही, शिल्प के स्तर पर भी इन्होंने रिपोर्ताज की शैली का उपयोग करके किस्सागोई को नई दिशा दी है और उसका संस्कार किया है। इनकी कहानियों में सूक्ष्म ताने-बाने का अपूर्ण कौशल लक्षित होता है। गहरी संवेदनशीलता, ध्वनि-चित्रात्मकता और सघन संगीतात्मकता इनकी कथा-शैली की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। प्रभाव-बिम्बों की योजना द्वारा कहानी के वातावरण को वास्तविक और चित्रोपम बनाने में ये सिद्धहस्त हैं। इनकी कहानियों का रचना-विधान औपन्यासिक कहा जा सकता है। उनमें पात्रों, घटनाओं और भाव-चित्रों का बाहुल्य है। कथावस्तुओं की बहुलता और उनके बिखराव को ये अत्यन्त सधे ढंग से एक विशेष बिन्दु अथवा मुहूर्त की ओर मोड़ देते हैं, जिसके फलस्वरूप कहानी का प्रभाव सघन, मार्मिक और स्थायी हो उठता है। बिहार के ग्राम्यांचलों से निजी स्तर पर जुड़े होने के कारण इनकी कथा-भाषा में इनकी रोजमर्रा की शब्दावली बड़े सहज, किन्तु व्यंजक रूप में घुल-मिल गई है।

इनकी सुप्रसिद्ध लम्बी कहानी 'तीसरी कसम'; हिन्दी में लम्बी कहानियों की परम्परा का सूत्रपात करती है। इस कहानी का फिल्मांकन भी हो चुका है। ग्रामीण परिस्थितियों और वातावरण के अनुसार 'रेणु' जी के कथोपकथन स्वाभाविक, संक्षिप्त सरल एवं रोचक हैं। ग्रामीण मुहावरों और कहावतों के जीवन्त प्रयोग इनकी भाषा में जहाँ-तहाँ देखने को मिलते हैं। अंग्रेजी शब्दों का आंचलिक प्रयोग भी इनकी कहानियों में खूब हुआ है। इनकी रचनाओं में आंचलिक भाषा की मिठास और वास्तविक सौन्दर्य देखते ही बन पड़ता है।

पाठ पर आधारित प्रश्न

1. 'पंचलाइट' कहानी का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– महतो टोली में कुछ लोग अशिक्षित हैं। वे रामनवमी के मेले से 'पेट्रोमेक्स' खरीद लाते हैं। ये सीधे-सादे लोग उसे पंचलाइट (या पंचलैट) कहते हैं। पंचलाइट खरीदने के बाद बचे हुए दस रुपयों से वे पूजा की सामग्री खरीदते हैं सभी खुश हैं, इसी उपलक्ष में कीर्तन का आयोजन किया जाता है। टोली के सभी लोग पंचलैट देखने के लिए इकट्ठे हो जाते हैं। सरदार ने 'पंचलैट' खरीदने का पूरा किस्सा लोगों को सुनाया। टोली के सभी लोग सरदार व दीवान को श्रद्धा भरी नजरों से देख रहे थे। अब प्रश्न है कि 'पंचलैट' जलाएगा कौन? उन सीधे-सादे लोगों में कोई भी पेट्रोमेक्स जलाना नहीं जानता है और पहली ही बार दूसरी टोली के लोगों से 'पंचलैट' जलवाना वे अपना अपमान समझते हैं। निर्णय लिया गया कि दूसरी पंचायत के आदमी से पंचलैट नहीं जलवाया जाएगा, चाहे वह बिना जले ही पड़ा रहे। पंचों के चेहरे उतर गए थे। आज किसी ने अपने घर में ढिबरी भी नहीं जलाई थी। राजपूत टोली के लोग उनका मजाक बनाते हैं। वे हँसते-हँसते पागल हो रहे हैं, कहते हैं— ''कान पकड़कर पंचलैट के सामने पाँच बार उठो-बैठो, तुरन्त जलने लगेगा।'' उनके द्वारा बनाए गए मजाक को महतो टोली के लोगों ने धैर्यपूर्वक सहन किया। वहीं गुलरी काकी की बेटी मुनरी बैठी थी। वह जानती थी कि गोधन पंचलैट जलाना जानता है। वह गोधन से प्रेम करती है, पंचायत ने गोधन का हुक्का-पानी बन्द कर रखा है। मुनरी अपनी सहेली कनेली को यह बात बताती है और कनेली इस बात को पंचों तक पहुँचा देती है कि गोधन पंचलैट जलाना जानता है। जाति की प्रतिष्ठा का प्रश्न है, गोधन को बुलाया जाए या नहीं, इस विषय को लेकर पंच सोच में पड़ जाते हैं तथा अन्त में उसे बुलाने का निर्णय किया जाता है।

सरदार 'गोधन' को बुलाने के लिए छड़ीदार को भेजता है लेकिन उसके कहने से 'गोधन' नहीं आता है। इसके बाद गुलरी काकी उसे मनाकर ले आती है। 'गोधन' आकर 'स्प्रिट' माँगता है। 'स्प्रिट' का नाम सुनकर सभी उदास हो जाते हैं लेकिन गोधन 'गरी' के तेल से ही 'पंचलैट' जला देता है।

सभी प्रसन्न हो जाते हैं। पंच गोधन को पुन: जाति में ले लेते हैं। कीर्तन शुरू होता है। सभी उच्च स्वर से 'महावीर स्वामी की जय' बोलते हैं। मुनरी प्रेमभरी दृष्टि से गोधन को देखती है। सरदार गोधन से कहता है— ''तुमने जाति की इज्जत रखी है, तुम्हारा सात खून माफ। खूब गाओ सलीमा का गाना।'' गोधन ने मुनरी की ओर देखा तो उसकी पलकें झुक गईं। गुलरी काकी गोधन को रात के खाने पर आने का निमन्त्रण देती है।

प्रस्तुत कहानी का शीर्षक 'पंचलाइट' पूरी कथा को स्वयं में समाहित किए हुए है। ग्रामीण बोलचाल तथा आचंलिक प्रभाव से युक्त इसका शीर्षक इसके मूलभाव को स्पष्ट करने वाला है तथा ग्रामीण परिवेश का यथार्थ-चित्रण करने में भी यह समर्थ है। इसका शीर्षक संक्षिप्त व सारगर्भित है; अत: स्पष्ट है कि कहानी का शीर्षक सर्वथा उपयुक्त एवं सार्थक है।

2. 'पंचलाइट' कहानी के शीर्षक की सार्थकता बताइए।

उ०– कहानी का शीर्षक 'पंचलाइट' पूरी कथा को स्वयं में समाहित किए हुए है। ग्रामीण बोलचाल तथा आचंलिक प्रभाव से युक्त इसका शीर्षक इसके मूलभाव को स्पष्ट करने वाला है तथा ग्रामीण परिवेश का यथार्थ-चित्रण करने में भी यह समर्थ है। इसका शीर्षक संक्षिप्त व सारगर्भित है; अत: स्पष्ट है कि कहानी का शीर्षक सर्वथा उपयुक्त एवं सार्थक है।

3. 'पंचलाइट' कहानी में कहानीकार का क्या उद्देश्य निहित है?

उ०– ग्रामवासी जाति के आधार पर किस प्रकार टोलियों में विभक्त हो जाते हैं और परस्पर ईर्ष्या-द्वेष के भावों से भरे रहते हैं, इसका बड़ा ही सजीव और यथार्थ चित्रण इस कहानी में किया गया है। परोक्ष रूप से रेणु जी ने ग्राम-सुधार की प्रेरणा भी दी है। इसी के साथ कहानीकार ने यह भी सिद्ध किया है कि आवश्यता बड़े-से-बड़े संस्कार और निषेध को अनावश्यक सिद्ध कर देती है।

4. 'पंचलाइट' कहानी के आधार पर गोधन का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उ०– 'पंचलाइट' फणीश्वरनाथ 'रेणु' की एक आंचलिक कहानी है। यह कहानी ग्रामीण जीवन पर आधारित है। इसमें ग्रामवासियों की मन: स्थिति की वास्तविकता झलक देखने को मिलती है। गोधन इस कहानी का एक मुख्य पात्र है, जिसे समाज के लोग बहिष्कृत कर देते हैं। गोधन के चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

(i) योग्य युवक– 'गोधन' 'पंचलाइट' कहानी का ऐसा पात्र है जो अशिक्षित होते हुए भी योग्य है। पेट्रोमेक्स जलाने के कार्य को उसकी बिरादरी का कोई भी व्यक्ति नहीं जानता, परन्तु वह उसे जला देता है।

(ii) गुणवान्– गोधन अशिक्षित होते हुए भी गुणवान् है। उसके इसी गुण के कारण टोले का सरदार उसकी सभी गलतियों को माफ कर देता है तथा उसे फिर से अपने टोले में सम्मिलित कर लेता है।

(iii) विवेकी– गोधन अशिक्षित अवश्य है; किन्तु वह विवेकी है। पेट्रोमेक्स जलाने के लिए जब स्पिरिट उपलब्ध नहीं थी तो उसने 'गरी' के तेल से ही मेट्रोमेक्स को जला दिया था।

(iv) वर्ग भेद से दूर– गोधन और मुनरी परस्पर स्नेह रखते हैं। गोधन जाति-पाँति, ईर्ष्या-द्वेष आदि के चक्कर में नहीं पड़ता। वह मानवीय गुणों का समर्थक है। उसके लिए सभी व्यक्ति एक समान हैं।

(v) निडर– गोधन में निडरता का गुण भी है। वह गाने गाकर तथा आँख मटकाकर मुनरी के प्रति अपने प्रेम को प्रकट कर देता है। अत: कहा जा सकता है कि गोधन ग्रामीण परिवेश में पलने-बढ़ने वाला उपर्युक्त गुणों से युक्त एक आदर्श लड़का है।

5. 'पंचलाइट' कहानी के प्रमुख स्त्री पात्र का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उ०– मुनरी; श्री फणीश्वरनाथ 'रेणु' कृत 'पंचलाइट' कहानी की एक प्रमुख स्त्री-पात्र है। इसके चरित्र की मुख्य विशेषताएँ निम्नवत् हैं–

(i) साधारण ग्रामबाला– मुनरी, महतो टोली की भोली-भाली ग्रामबाला है। वह गुलरी काकी की बेटी है।

(ii) परम्परावादी– मुनरी एक परम्परावादी लड़की है। वह टोली से बहिष्कृत गोधन नामक युवक को मन-ही-मन चाहती है, किन्तु परम्परा की बेड़ियों में जकड़ी होने के कारण यह बात सार्वजनिक रूप से स्वीकार करने का साहस नहीं कर पाती।

(iii) गुणों पर रीझने वाली– मुनरी गोधन द्वारा गाना गाने और आँख मटकाकर अपने प्रेम को प्रदर्शित करने पर रीझ जाती है और मन-ही-मन गोधन को चाहने लगती है।

(iv) नारी सुलभ शील और संकोच– मुनरी ने नारी सुलभ शील और संकोच पर्याप्त मात्रा में है। पेट्रोमेक्स न जलाने पर उसे स्वंय यह जानकारी देने में लज्जा आती है कि गोधन पेट्रोमेक्स जलाना जानता है।

(v) बुद्धिमती– मुनरी लज्जाशील और संकोची होने के साथ-साथ बुद्धिमती भी है। जो बात वह लज्जावश स्वयं नहीं कह पाती, उसे अपनी सहेली कनेली के माध्यम से कहलवा देती है–

''कनेली!''''''' चिगो, चिधऽ-ऽ, चिन ''''''' कनेली मुस्कराकर रह गयी– गोधन ''''''' तो बन्द है।
मुनरी बोली– तू कह तो सरदार से।
गोधन जानता है पंचलैट बालना।' कनेली बोली।''

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मुनरी एक भोली-भाली और लज्जालु ग्रामीण बालिका है।

6. आंचलिक कहानी क्या हैं? 'पंचलाइट' कहानी के आधार पर स्पष्ट कीजिए।

उ०– आंचलिक कहानी में किसी विशेष अंचल, क्षेत्र अथवा उसके किसी एक भाग का चित्रण किया गया है। इसमें स्थानीय दृश्यों, प्रकृति, जलवायु, लोकगीत, बातचीत के विशिष्ट ढंग, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, भाषा व उच्चारण की विकृतियाँ, लोगों की स्वभावगत या व्यवहारगत विशेषताओं, नैतिक मान्यताओं आदि का समावेश बड़ी कुशलता, सर्तकता और सावधानी से किया जाता है।

इस दृष्टि से 'पंचलाइट' कहानी एक सफल आंचलिक कहानी है। आंचलिकता के प्राय: सभी गुण उसमें विद्यमान हैं; यथा–

(i) इस कहानी में बिहार प्रदेश के ग्राम्यांचल और उसके वातावरण का चित्रण हुआ है।

(ii) इस कहानी में बिहार के ग्रामीण अंचल की सामाजिक परिस्थितियों पर आधारित इस तथ्य पर प्रकाश डाला गया है कि वहाँ के लोग किस प्रकार जाति के आधार पर टोलियों में बँट जाते हैं। उनमें परस्पर ईर्ष्या-भाव और द्वेष-भाव भरा हुआ है और वे रूढ़िवादिता से ग्रस्त हैं।

(iii) इसमें बिहार के ग्रामीण अंचल की नैतिकता मान्यताओं और जनता की मनोवृत्तियों का चित्रण भी हुआ है। एक टोली के पेट्रामैक्स (पंचलाइट) को दूसरी टोली का व्यक्ति नहीं जला सकता; क्योंकि इससे टोली का अनादर होता है।

(iv) इस कहानी में स्थानीय भाषा में बातचीत के विशिष्ट ढंग ने उसे आंचलिक बना दिया है; जैसे– **''सरदार ने अपनी स्त्री से कहा-साँझ को पूजा होगी; जल्दी से नहा-धोकर चौका-पीढ़ा लगाओ।''**
''कितने में लालटेन खरीद हुआ महतो?''

(v) कहानीकार ने ग्रामीण अंचल के रीति-रिवाजों, अन्धविश्वासों और रूढ़ियों का भी विशिष्ट चित्रण किया है। 'पंचलाइट' आने पर उसका पूजन, कीर्तन, प्रसाद-वितरण सभी इसी अन्धविश्वास का परिचायक है।

इस प्रकार 'पंचलाइट' कहानी में आंचलिकता पर आधारित प्राय: सभी विशेषताएँ प्रतिबिम्बित हुई हैं।

7. कहानी कला की दृष्टि से 'पंचलाइट' कहानी की विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।

उ०– फणीश्वरनाथ 'रेणु जी हिन्दी-जगत् के सुप्रसिद्ध आंचलिक कथाकार है। अनेक जन-आन्दोलनों से वे निकट से जुड़े रहे, इस कारण ग्रामीण अंचलों से उनका निकट का परिचय है। उन्होंने अपने पात्रों की कल्पना किसी कॉफी हाउस में बैठकर नहीं की, अपितु वे स्वयं अपने पात्रों के बीच रहे हैं। बिहार के अंचलों के सजीव चित्र इनकी कथाओं के अलंकार है। 'पंचलाइट' भी बिहार के आंचलिक परिवेश की कहानी है। कहानी-कला की दृष्टि से इस कहानी की समीक्षा (विशेषताएँ) निम्नवत् है–

(i) शीर्षक– कहानी का शीर्षक 'पंचलाइट'; एक सार्थक और कलात्मक शीर्षक है। यह शीर्षक संक्षिप्त और उत्सुकतापूर्ण

है। शीर्षक को पढ़कर ही पाठक कहानी को पढ़ने के लिए उत्सुक हो जाता है। 'पंचलाइट' का अर्थ है 'पेट्रोमेक्स' अर्थात् 'गैस की लालटेन'। शीर्षक ही कथा का केन्द्र-बिन्दु है।

(ii) कथानक– महतो-टोली के सरपंच पेट्रोमेक्स खरीद लाये हैं, परन्तु इसे जलाने की विधि वहाँ कोई नहीं जानता। दूसरे टोले वाले इस बात का मजाक बनाते हैं। महतो टोले का एक व्यक्ति पंचलाइट जलाना जानता है और वह है—'गोधन', किन्तु वह बिरादरी से बहिष्कृत है। वह 'मुनरी' नाम की लड़की का प्रेमी है। उसकी और प्रेम की दृष्टि रखने और सिनेमा का गीत गाने के कारण ही पंच उसे बिरादरी से बहिष्कृत कर देते हैं। मुनरी इस बात की चर्चा करती है कि गोधन पंचलाइट जलाना जानता है। इस समय जाति की प्रतिष्ठा का प्रश्न है, अत: गोधन को पंचायत में बुलाया जाता है। वह पंचलाइट को स्पिरिट के अभाव में गरी के तेल से ही जला देता है। अब न केवल गोधन पर लगे सारे प्रतिबन्ध हट जाते हैं वरन् उसे मनोनुकूल आचरण की भी छूट मिल पाती है। पंचलाइट की रोशनी में गाँव में उत्सव मनाया जाता है।

प्रस्तुत कहानी में कहानीकार ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि आवश्यकता किसी भी बुराई को अनदेखा कर देती है। कथानक संक्षिप्त, रोचक, सरल, आंचलिक और यथार्थवादी है। कौतूहल और गतिशीलता के अलावा इसमें मुनरी तथा गोधन का प्रेम-प्रसंग बड़े स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है।

(iii) पात्र तथा चरित्र चित्रण– रेणु जी ने इस कहानी में सामान्य ग्रामीण वातावरण के सीधे-सादे लोगों को पात्रों के रूप में चुना है। कहानी के पात्र वर्गगत हैं। कहानीकार ने स्वयं ग्रामीण यथार्थ को भोगा है, इस कारण पात्र-और चरित्र-चित्रण स्वाभाविक तथा सजीव है। कहानी के पात्र दो वर्ग के हैं, एक वर्ग में—रूढ़िवाद, जातिवाद तथा ईर्ष्या आदि दोष व्याप्त हैं, तो दूसरे वर्ग में—गोधन और मुनरी हैं। ये जाति-पाँति या रोग-द्वेष के चक्कर में नहीं पड़ते। गोधन निडर है, वह गाने गाकर तथा आँख मटकाकर अपने प्रेम को प्रदर्शित कर देता है, परन्तु मुनरी भोली-भाली, लज्जाशील ग्रामीण बालिका है। लेखक ने पात्रों का चयन बड़ी चतुराई से किया है। इस कहानी के सभी पात्र सजीव प्रतीत होते हैं। कहानी में ग्रामवासियों की मनोवृत्ति का परिचय बड़े जीवन्त और यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया है। ग्रामीण समूह के चरित्र को उभारने में लेखक को विशेष सहायता मिली है।

(iv) कथोपकथन– प्रस्तुत कहानी के संवाद संक्षिप्त, सरल तथा रोचक हैं। ग्रामीण परिस्थितियों और वातावरण के अनुसार स्वाभाविक संवादों की रचना की गयी है। बिहार के ग्रामीण अंचल की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी इस कहानी में वहाँ के बोलचाल के शब्दों का प्रयोग करके रेणु जी ने संवादों की स्वाभाविका को बढ़ा दिया है। संवादों की स्वाभाविकता का एक उदाहरण देखिए—

मुनरी ने चालाकी से अपनी सहेली कनेली के कान में बात डाल दी-कनेली! ''''''' चिगो, चिध-ऽ-ऽ, चिन ''''''।
कनेली मुस्कुराकर रह गयी– गोधन '''''' तो बन्द है। मुनरी बोली– तू कह तो सरदार से!
'गोधन जानता है पंचलैट बालना।' कनेली बोली।
कौन, गोधन? जानता है बालना? लेकिन ''''''।

ग्रामीणों का सीधापन भी संवादों में स्पष्ट झलकता है; यथा— **''सरदार ने गोधन को बहुत प्यार से पास बुलाकर कहा– तुमने जाति की इज्जत रखी है। तुम्हारा सात खून माफ। खूब गाओ सलीमा का गाना।''**
गुलरी काकी बोली– आज रात में मेरे घर में खाना गोधन।

(v) भाषा-शैली– फणीश्वरनाथ रेणु की भाषा की विशेषता उनके द्वारा किये गये ग्रामीण शब्दों के सटीक प्रयोग में है। उन्होंने अंग्रेजी के शब्दों का आंचलिक प्रयोग बहुत सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है; जैसे—पंचलैट, सलीमा आदि। ग्रामीण मुहावरों का प्रयोग भी सुन्दर बन पड़ा है; जैसे—'धुरखेल करना', 'सात खून माफ' इत्यादि। इस कहानी में व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग है। साथ ही चित्रात्मक, रमणीय और कलात्मक शैली के द्वारा आंचलिक रंग भरते हुए कहानी की रचना की गयी है। भाषा-शैली का एक उदाहरण द्रष्टव्य है— **''सब किये-कराये पर पानी फिर रहा था। सरदार, दीवान और छड़ीदार के मुँह में बोली नहीं। पंचों के चेहरे उतर गये थे। किसी ने दबी आवाज में कहा– कल-कब्जे वाली चीज का नखरा बहुत बड़ा होता है।''**

(vi) देश-काल और वातावरण– फणीश्वरनाथ 'रेणु' आंचलिक लेखक हैं। इन्होंने इस कहानी में बिहार के ग्रामीण जीवन का सजीव चित्रण किया है। 'पंचलाइट' के माध्यम से ग्रामीण वातावरण का चित्रण करते हुए ग्रामवासियों के मनोविज्ञान, ईर्ष्या, अन्धविश्वास और कुरीतियों का भी चित्रण हुआ है। पंचलाइट आने पर महतो टोली का गर्व, पंचलाइट की पूजा की तैयारी, जलाना न आने पर मान-अपमान का प्रश्न आदि तथ्य, ग्रामीण वातावरण को साकार कर देते हैं। ग्रामीणों में अशिक्षा, अन्धविश्वास और मिथ्या प्रदर्शन की भावना है। निश्चय ही देश-काल और वातावरण के सजीव चित्रण का सतत प्रयास किया गया है; जैसे— ''टोले-भर के लोग जमा हो गये, औरत-मर्द, बूढ़े-बच्चे सभी काम-काज छोड़कर दौड़ आये— चल रे चल! अपना पंचलैट आया है, पंचलैट! छड़ीदार अगनू महतो रह-रहकर लोगों को चेतावनी देने लगा— हाँ, दूर से, जरा दूर से! छू-छा मत करो, ठेस न लगे।''

(vii) उद्देश्य– इस कहानी के द्वारा रेणु जी ने अप्रत्यक्ष रूप से ग्राम-सुधार की कोशिश की है। गोधन के द्वारा 'पेट्रोमेक्स' जलाने

पर उसकी सभी गलतियाँ माफ कर दी जाती हैं, जिससे स्पष्ट है कि आवश्यकता बड़े-से-बड़े रूढ़िगत संस्कार और परम्परा को व्यर्थ साबित कर देती है।

कहानी का आरम्भ, मध्य और अन्त मनोरंजक व कौतूहलवर्द्धक है। पाठक के मन में जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि आगे क्या होगा? इनकी 'पंचलाइट' कहानी भी कहानी-कला के सभी पहलुओं पर खरी उतरती है।

8. पात्र-योजना तथा चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'पंचलाइट' कहानी की समीक्षा कीजिए।

उ०– रेणु जी ने इस कहानी में सामान्य ग्रामीण वातावरण के सीधे-सादे लोगों को पात्रों के रूप में चुना है। कहानी के पात्र वर्गगत हैं। कहानीकार ने स्वयं ग्रामीण यथार्थ को भोगा है, इस कारण पात्र-और चरित्र-चित्रण स्वाभाविक तथा सजीव है। कहानी के पात्र दो वर्ग के हैं, एक वर्ग में—रूढ़िवाद, जातिवाद तथा ईर्ष्या आदि दोष व्याप्त हैं, तो दूसरे वर्ग में—गोधन और मुनरी हैं। ये जाति-पाँति या रोग-द्वेष के चक्कर में नहीं पड़ते। गोधन निडर है, वह गाने गाकर तथा आँख मटकाकर अपने प्रेम को प्रदर्शित कर देता है, परन्तु मुनरी भोली-भाली, लज्जाशील ग्रामीण बालिका है। लेखक ने पात्रों का चयन बड़ी चतुराई से किया है। इस कहानी के सभी पात्र सजीव प्रतीत होते हैं। कहानी में ग्रामवासियों की मनोवृत्ति का परिचय बड़े जीवन्त और यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया है। ग्रामीण समूह के चरित्र को उभारने में लेखक को विशेष सहायता मिली है।

9. कथोपकथन की दृष्टि से 'पंचलाइट' कहानी का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– प्रस्तुत कहानी के संवाद संक्षिप्त, सरल तथा रोचक हैं। ग्रामीण परिस्थितियों और वातावरण के अनुसार स्वाभाविक संवादों की रचना की गयी है। बिहार के ग्रामीण अंचल की पृष्ठभूमि पर लिखी गयी इस कहानी में वहाँ के बोलचाल के शब्दों का प्रयोग करके रेणु जी ने संवादों की स्वाभाविका को बढ़ा दिया है। संवादों की स्वाभाविकता का एक उदाहरण देखिए—

मुनरी ने चालाकी से अपनी सहेली कनेली के कान में बात डाल दी– कनेली! ''''''' चिगो, चिध-ऽ-ऽ, चिन ''''''।
कनेली मुस्कुराकर रह गयी– गोधन ''''''' तो बन्द है। मुनरी बोली– तू कह तो सरदार से!
'गोधन जानता है पंचलैट बालना।' कनेली बोली।
कौन, गोधन? जानता है बालना? लेकिन ''''''।

ग्रामीणों का सीधापन भी संवादों में स्पष्ट झलकता है; यथा— **''सरदार ने गोधन को बहुत प्यार से पास बुलाकर कहा– तुमने जाति की इज्जत रखी है। तुम्हारा सात खून माफ। खूब गाओ सलामी का गाना।''**
गुलरी काकी बोली– आज रात में मेरे घर में खाना गोधन।

10. 'पंचलाइट' कहानी की भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।

उ०– फणीश्वरनाथ रेणु की भाषा की विशेषता उनके द्वारा किये गये ग्रामीण शब्दों के सटीक प्रयोग में है। उन्होंने अंग्रेजी के शब्दों का आंचलिक प्रयोग बहुत सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है; जैसे—पंचलैट, सलीमा आदि। ग्रामीण मुहावरों का प्रयोग भी सुन्दर बन पड़ा है; जैसे—'धुरखेल करना', 'सात खून माफ' इत्यादि। इस कहानी में व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग है। साथ ही चित्रात्मक, रमणीय और कलात्मक शैली के द्वारा आंचलिक रंग भरते हुए कहानी की रचना की गयी है। भाषा-शैली का एक उदाहरण द्रष्टव्य है— **''सब किये-कराये पर पानी फिर रहा था। सरदार, दीवान और छड़ीदार के मुँह में बोली नहीं। पंचों के चेहरे उतर गये थे। किसी ने दबी आवाज में कहा– कल-कब्जे वाली चीज का नखरा बहुत बड़ा होता है।''**

पाठ्येतर सक्रियता

उ०– छात्र स्वयं करें।

4 लाटी

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 218 का अवलोकन कीजिए।

लेखक पर आधारित प्रश्न

1. शिवानी का जीवन परिचय देते हुए उनकी कृतियों का उल्लेख कीजिए।

उ०– **लेखिका परिचय–** सुप्रसिद्ध कथाकार शिवानी जी का जन्म 17 अक्तूबर, सन् 1923 ई० में राजकोट, (गुजरात) में हुआ था। इन्होंने शान्ति निकेतन और कलकत्ता विश्वविद्यालय से शिक्षा प्राप्त की। इनका वास्तविक नाम गौरा पन्त था किन्तु ये 'शिवानी' के नाम से लेखन करती थी। अपने साहित्य-सर्जन के कारण साहित्य-जगत में शिवानी जी का महत्वपूर्ण स्थान है। पर्वतीय क्षेत्र से इनका व्यक्तिगत सम्पर्क रहा है, अत: इन्होंने पर्वतीय समाज को अपनी कहानियों का आधार बनाया है। देश की प्रमुख पत्रिकाओं में शिवानी जी की कहानियाँ प्रकाशित होती रहीं। 21 मार्च सन् 2003 ई० को दिल्ली में शिवानी जी का निधन हो गया।

कृतियाँ– शिवानी जी ने साहित्य की विविध-विद्याओं के क्षेत्र में अपना योगदान दिया। इन्होंने उपन्यास, कहानी, संस्मरण व रिपोर्ताज लिखे हैं। इनकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं—

कहानियाँ– सती, चील गाड़ी, फिरबे की? मौसी, लाटी, मधुयामिनी।

कहानी-संग्रह– अपराधिनी, करिए छिमा, लाल हवेली, चार दिन, विषकन्या, पुष्पहार, मेरी प्रिय कहानियाँ।

उपन्यास– कृष्णकली, भैरवी, चौदह फेरे, श्मशान चम्पा, मायापुरी, कैंजा, गैंडा, रथ्या, सुरंगमा, चल खुसरो घर आपने।

संस्मरण– चार दिन का झूला, आमोदर, अमादेर शान्ति-निकेतन, समृति कलश, वातायन।

2. शिवानी के कथा-शिल्प एवं शैली पर प्रकाश डालिए।

उ०– **कथा-शिल्प एवं शैली–** शिवानी जी की कहानियों में अधिकांशत: पर्वतीय समाज से सम्बद्ध समस्याओं, प्रथाओं एवं मनोभावों का सहज चित्रण हुआ है। इन्होंने भावात्मक और सामाजिक-आर्थिक समस्याओं से जूझती-टकराती नारी को बड़े रोचक और मार्मिक रूप में अभिचित्रित किया है। शिवानी जी के कथानक निजी अनुभवों पर आधारित हैं। इनकी कहानियाँ प्राय: घटना-प्रधान और चरित्र-प्रधान हैं। घटना-प्रधान कहानियों में कौतूहल व चमत्कार देखने को मिलता है। चरित्र-प्रधान कहानियाँ प्राय: किसी गम्भीर सामाजिक अथवा मानसिक समस्या का चित्रण करती हैं। कहानियों के चरित्र प्राय: उच्चवर्गीय होते हैं। इनकी कहानियों में नारी तथा पुरुष दोनों के ही जीवन्त शब्दचित्र प्रस्तुत किए गए हैं।

शिवानी जी की कहानियों पर बाँग्ला कथा-शैली का व्यापक प्रभाव है। इनकी भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है, जिसमें प्राय: तत्सम शब्दावली का प्रयोग किया गया है। साथ ही आंचलिक शब्दावली, मुहावरों, लोकोक्तियों और काव्य-पंक्तियों का सुरुचिपूर्ण प्रयोग भी देखने को मिलता है। शब्द-रचना कोमल तथा मोहक है। कवित्वपूर्ण चित्रण और सटीक उपमाओं के कारण इनकी कहानियों में एक विशेष वातावरण मिलता है। यह लालित्य और कवित्वपूर्ण सम्मोहन, कहानी के अन्त तक पाठक पर छाया रहता है,जो शिवानी की निजी विशेषता है। इनकी कहानियाँ व्यंग्य प्रधान हैं। बड़े सीधे और शालीन ढंग से ये सामाजिक रूढ़ियों, विडम्बनाओं और बाह्याडम्बरों पर व्यंग्य करती हैं। कहानी के क्षेत्र में अपने योगदान के कारण शिवानी जी हिन्दी-साहित्य जगत में हमेशा अमर रहेंगी।

पाठ पर आधारित प्रश्न–

1. 'लाटी' कहानी का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

उ०– कप्तान जोशी अपनी बीमार पत्नी के साथ टी.बी. अस्पताल गोठिया सेनेटोरियम के बँगला नम्बर तीन में पलंग के पास आराम कुर्सी डाले बैठा रहता है। कभी टैम्प्रेचर चार्ट भरता है तथा कभी उसके दवाई देता है। कभी-कभी अपनी मीठी आवाज में पहाड़ी झोड़े गाता है; जिनकी मिठास में तिब्बती बकरियों के गले में बँधी घण्टियों की-सी छुनक रहती है। उसे सुनकर पहाड़ी मरीज कहते है— ''वाह कप्तान साहब, एक और।'' अपनी पत्नी सुन्दरी बानो को देखकर वह धीमे से मुस्करा देता था। बानो भी बार-बार अपने पति को देखती रहती थी। बीमारी के कारण उसका चेहरा एकदम पीला हो गया था। वहाँ के डॉक्टर ने एक दिन कप्तान से कहा— ''तुम जरा भी परहेज नहीं करते, मरीज को दवा से जीतना होगा, मुहब्बत से नहीं।'' कप्तान का चेहरा शर्म से लाल हो गया। कपतान के माता-पिता का पत्र आता है। वे लिखते हैं— ''उनके कोई दस-बीस पूत नहीं हैं, यह बीमारी सत्यनाशी है।'' कप्तान अभी भी पहले की ही तरह अपनी पत्नी से प्रेम करता है। कभी उसके चिकने केशों को चूमता है तो कभी उसकी पलकों को। कप्तान उदास रहने लगा। बानो भी अब उदास रहने लगी। कप्तान को अपने वे पुराने दिन याद आने लगे, जब वह बानो को अपने ओवरकोट में लपेटकर अपनी देह से सटाए लम्बे चीड़ के वृक्ष की छाया में बैठा रहता था। वह बानो की हर जिद पूरी करता था। एक दिन डॉक्टर ने कमरा खाली करने का नोटिस दे दिया और कहा कि 'मरीज तीन दिन से अधिक नहीं बचेगी।' इसका मतलब था कि मृत्यु समीप है। मृत्यु का पासपोर्ट पाए बानो जैसे मरीजों के लिए भुवाली के पास ही चाय की दुकान के नीचे एक कमरा था। कप्तान ने भूमिका बाँधते हुए कहा— ''सैनेटोरियम छोड़कर हम कल दूसरी जगह चलेंगे बानो, यहाँ साली तबीयत बोर हो गई है।'' बानो समझ गई कि आज उसे भी नोटिस दे दिया गया। रात को वह बानो के पास गुनगुनाता रहा, उसके बाद बानो को नींद आ गई। कप्तान भी सो गया।

सुबह उठकर देखा तो बानो पलंग पर नहीं थी। उसने बहुत ढूँढ़ा लेकिन बानो का कहीं पता नहीं चला। दूसरे दिन रथी घाट पर बानो की साड़ी मिली। मृत्यु के आने से पूर्व वह अभागी स्वयं ही मृत्यु से मिलने चली गई।

कप्तान एक साल के अन्दर ही दूसरी शादी कर लेता है। एक सन्त बानो को बचा लेता है और उपचार के बाद उसका क्षयरोग भी ठीक हो जाता है लेकिन उसकी जबान व स्मृति नहीं रहती है। कप्तान अपनी पत्नी प्रभा के साथ घूमने जाता है। भुवाली में चाय की दुकान पर उसकी भेंट बानो से होती है। वह समझ जाता है कि यह बानो है लेकिन अपनी पत्नी प्रभा के सामने वह उसे स्वीकार नहीं कर पाता है। चाय वाले दुकानदार ने बताया— ''यह लाटी है, असली नाम क्या है, पता नहीं।'' जिस दल के साथ लाटी आई थी उसकी हेड वैष्णवी ने कहा— हमारे गुरु महाराज को इसकी देह नदी में तैरती हुई मिली। जीभड़ी कटकर गिर गई

होगी। इसके गले में मंगलसूत्र था, ब्याह हो गया होगा। इसे भयंकर क्षय रोग था, गुरु की शरण में रोग ठीक हो गया। कप्तान की पत्नी प्रभा ने कहा— ''अपने आदमी को भी भूल गई क्या?'' वैष्णवी बोली— उसे कुछ याद नहीं है। चाय के पैसे देकर वैष्णवी हल्की-हल्की सी ठोकर मारकर कहती है— ''उठ साली लाटी।'' सब चले गए लाटी भी दल के पीछे-पीछे चली गई।

2. 'लाटी' कहानी के शीर्षक की उपयुक्तता पर प्रकाश डालिए।

उ०— प्रस्तुत कहानी का शीर्षक 'लाटी' पूरी कथा को स्वयं में समाहित किये हुए है। लाटी के जीवन की त्रासदपूर्ण व्यथा को स्पष्ट करना कहानीकार का मन्तव्य है। शीर्षक संक्षिप्त, सारगर्भित, कथा का वाहक और कथा के मूल-भाव पर आधारित है। अत: कहा जा सकता है कि प्रस्तुत कहानी का शीर्षक 'लाटी' सर्वथा उपयुक्त एवं सार्थक है।

3. 'लाटी' कहानी में लेखिका शिवानी को अपने उद्देश्य में कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है? स्पष्ट कीजिए।

उ०— आलोच्य कहानी का उद्देश्य मध्यमवर्गीय समाज में पति के बिना अकेली रहनेवाली पत्नी के जीवन की त्रासद को दिखाना रहा है, जिसमें लेखिका को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। लेखिका ने यह भी सन्देश दिया कि आज महिला ही महिला के शोषण में लगी है; अत: उन्हें अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करते हुए उनके साथ सहयोग करते हुए अपनी उन्नति के मार्ग को प्रशस्त करना चाहिए। लेखिका का एक उद्देश्य यह भी है कि यदि क्षयरोग जैसे असाध्य रोग में परिजनों का सहयोग और सहानुभूति रोगी को मिले तो व्यक्ति को मृत्यु के आगोश में जाने से बचाया भी जा सकता है। यही कारण है कि लम्बी-चौड़ी देहेवाली नेपाली भाभी एक दिन अचानक दम तोड़ देती है और हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गई रुई के फाये जैसी बानो का क्षयरोग बाल भी बाँका न कर सका।

4. 'लाटी' कहानी के आधार पर कहानी की नायिका का चरित्र चित्रण कीजिए।

उ०— कहानी के आरम्भ में लाटी का नाम बानो है। जब कप्तान जोशी से उसका विवाह हुआ था, उसका आयु केवल सोलह वर्ष थी। वह अत्यन्त सुन्दर और दुबली-पतली थी। वही कहानी की नायिका भी है। उसके चरित्र की विशेषताओं का वर्णन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

(i) अत्यन्त मोहक और भोली-भाली– लाटी अर्थात् बानो अत्यन्त मोहक व्यक्तित्व की भोली-भाली किशोरी है। गोल, गोरा-सुन्दर चेहरा, बड़ी-बड़ी शान्त आँखें उसके भोलेपन को दर्शाती हैं यह उसके भोलेपन का ही प्रमाण है कि विवाह के दो दिन बाद भी वह अपने पति कप्तान जोशी को बड़ी मुश्किल से अपना नाम बता पाता है।

(ii) जिद्दी और चिड़चिड़ी– बानो यद्यपि स्वभाव से हँसमुख और प्रसन्नचित्त युवती है, किन्तु असाध्य क्षयरोग ने उसे चिड़चिड़ी और जिद्दी बना दिया था। शिवानी ने उसके इस स्वभाव का वर्णन इस प्रकार किया है— **''नित्य निकट आती मौत ने बानों को चिड़चिड़ा बना दिया, ... कभी वह खिली चाँदनी में बाहर जाने को मचलती।''**

(iii) अत्यन्त भावुक– बानो अत्यन्त चावुक स्वभाव की शर्मिली किशोरी है। विवाह के पश्चात् वह बड़ी कठिनाई से अपना नाम बता पाती है। जब पति जोशी उससे कहता हैं कि तुम्हारा बानो नाम तो मुसलमानी है। इस पर उसकी आँखें छलछला आती हैं—''सब यही कहते हैं, मैं क्या करूँ?'' पति कप्तान जोशी के बसरा जाते समय तो वह स्वयं को रोक ही नहीं पाती और उसके पैरों में पड़ जाती है—**''उसकी पलकें भीगी थीं और पति की आहट पाकर उसने घुटनों में सिर डाल दिया। .... उसका गला भर आया''।**

(iv) परिश्रमी और सहिष्णु– परिश्रमशीलता और सहिष्णुता स्त्री का गहना है और लाटी इससे सुशोभित है। वह सात-सात ननदों के ताने चुपचाप सुनती हैं, भतीजों के कपड़े धोती है, ससुर के होज बीनती है और पाँच-पाँच सेर उड़द की बड़ियाँ तोड़ने के बाद भी सास के व्यंग्य-बाण सहती है, किन्तु मुख से कुछ नहीं कहती। वह मन-ही-मन घुलती रहती है। वह दो साल वापस आये अपने पति भी इसके विषय में कुछ नहीं कहती—

''कप्तान को देखकर उसकी तरल आँखें खुली ही रह गयीं, फिर आँसू टपकने लगे। कहने और कैफियत देने की कोई गुंजाइश नहीं रही। बानों के बहते आँसुओं की धारा ने दो साल के सारे उलाहने सुना दिये। दोनों ने समझ लिया कि मिलन के वे क्षण मुट्ठी भर ही रह गये थे।''

(v) पतिव्रता– बानो पतिव्रता स्त्री है। जब वह अपनी मृत्यु को सन्निकट देखती है तो चुपचाप पति के जीवन से चले जाने का निर्णय कर लेती है, जिससे उसे दु:ख न पहुँचे। अपने पति को दु:ख से मुक्ति प्रदान करने के लिए वह रात्रि में किराये के कमरे से चुपचाप निकलकर नदी में छलाँग लगा लेती है।

इस प्रकार बानो अर्थात् लाटी का चरित्र अत्यन्त भावपूर्ण और आकर्षक है।

5. कप्तान जोशी का चरित्र-चित्रण 'लाटी' कहानी के आधार पर कीजिए।

उ०— सुप्रसिद्ध कथा-लेखिका शिवानी की 'लाटी' कहानी के प्रमुख पात्र कप्तान जोशी की चारित्रिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) आकर्षक व्यक्तित्व– कप्तान का व्यक्तित्व बहुत ही आकर्षक था। लेखिका ने लिखा है कि उसका छह फुट का कसा हुआ शरीर और भरी-भरी मूछें थी। वह ठसकेदार बाँका कप्तान था।

(ii) चरित्रवान्– फौजी अफसरों में कप्तान की सबसे छोटी उम्र का था। उसके बारे में लेखिका ने लिखा है कि **''बर्मा की युद्ध से स्तब्ध सड़कों पर चपल बर्मी रमणियों के कुटिल कटाक्षों का अभाव नहीं था, फिर भी कप्तान अपनी जवानी को दाँतों के बीच जीभ-सी बचाता सेंत गया।''**

(iii) पत्नी स्नेही– कप्तान जोशी के हृदय में अपनी पत्नी के प्रति विशेष स्नेह है। छूत की बीमारी टी०बी० से ग्रसित होने पर भी वह उसे अकेला नहीं छोड़ता। उसके माता-पिता सभी उसे इस सम्बन्ध में चेतावनी देते हैं, लेकिन वह किसी को नहीं सुनता। वह कभी बानो के चिकने केशों को चूमता, कभी उसकी रेशमी पलकों को। कहानी के अन्त में; लाटी के चले जाने के बाद; लेखिका कहती है कि, ''कुछ ही पलों में वह बूढ़ा और खोखला हो गया था।'' ये बाते स्पष्ट करती हैं कि वह अपनी पूर्व पत्नी बानों से अत्यधिक प्रेम करता था।

(iv) समय का पाबन्द और सेवा-भावना से युक्त– कप्तान समय के महत्त्व को अच्छी तरह से समझता था। इसलिए वह अपनी रोगिणी पत्नी को समय से दवाई देता और समय से उसके शरीर का तापक्रम नापता था। उसके अन्दर सेवा-भावना भी कूट-कूटकर भरी हुई थी। वह अपनी बीमार पत्नी के साथ हर समय रहता था और उसकी हर-सम्भव सेवा करना अपना फर्ज समझता था। उसकी सेवा-भावना को देखकर आस-पास के मरीज भी उसकी सराहना करते थे।

(v) प्रसन्नचित्त– कप्तान बहुत ही प्रसन्नमिजाज का व्यक्ति था। वह अपनी बातों से दूसरे रोगियों को भी प्रसन्न रखता था। उसके आनन्दित चेहरे पर भी खीझ या झुँझलाहट दिखाई नहीं पड़ती थीं। हँसने की कोई भी बात वह बानो को भी सुनाना नहीं भूलता था।

(vi) भविष्य के प्रति चिन्तित– जब कप्तान की नेपाली भाभी की मौत हो गयी, जो कि लाल, गोरी और हृष्ट-पुष्ट थी, उसकी तुलना में बानों तो रुई का फाहा थी। अब वह बानो के बारे में सोच-समझकर उदास रहने लगा था।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कप्तान जोशी में एक श्रेष्ठ इन्सान के समस्त मौजूद हैं।

6. कहानी के तत्वों के आधार पर 'लाटी' कहानी की समीक्षा कीजिए।

उ०– शिवानी हिन्दी की एक प्रसिद्ध महिला कथाकार रही हैं। इनकी कहानियों में नारी के विभिन्न रूपों का सुन्दर चित्रण हुआ है। सामाजिक रूढ़ियों और आडम्बरों पर वे शालीन व्यंग्य करती हैं। प्रस्तुत कहानी 'लाटी' में एक महिला की कथा है। कहानी-कला के तत्त्वों के आधार पर इस कहानी की समीक्षा निम्नवत् है—

(i) शीर्षक– कहानी का शीर्षक संक्षिप्त, सरल, कौतूहलवर्द्धक तथा आकर्षक है। कहानी का मूल भाव शीर्षक के साथ जुड़ा है। शीर्षक पढ़ते ही जिज्ञासा होती है, कौन लाटी? 'लाटी' के अतिरिक्त अन्य कोई भी शीर्षक पाठकों की जिज्ञासा में इतनी वृद्धि नहीं कर सकता था, जितना 'लाटी' ने किया। अत: प्रस्तुत कहानी का यह शीर्षक पूर्णतया उपयुक्त है।

(ii) कथानक– बानो से विवाह के तीसरे ही दिन कप्तान को बरस जाना पड़ा। अपनी खिलौने-सी बहू से उसे अतिशय प्यार है। दो वर्ष बाद जब वह वापस लौटता है तो उसे पता चलता है कि उसकी पत्नी एक टी० बी० सैनेटोरियम में भर्ती है। इन दो वर्षों में सास-ननदों के ताने सुने; घर के समस्त काम किये और अन्तत: बीमार होकर सैनेटोरियम की चारपाई पकड़ ली। कप्तान आता है, उसे हर प्रकार की सुविधा उपलब्ध कराता है और उसकी समस्त सेवा-शुश्रूषा स्वयं करता है। डॉक्टरों ने उसके बचने की उम्मीद छोड़ दी और उसके तीन बच्चे भी बड़े हो जाते हैं। सोलह-सत्रह वर्षों के बाद जब वह नैनीताल घूमने आता है तो एक चाय की दुकान पर बानो लाटी के रूप में जीवित मिलती है, जिसकी याददाश्त जा चुकी है और वह बोल नहीं सकती।

प्रस्तुत कहानी का अन्त नाटकीय है, कहानी में उत्सुकता, आकर्षण तथा सुगठन है। बानो को लाटी के रूप में जीवित दिखाकर लेखिका ने कथा में एक अकल्पनीय मोड़ प्रस्तुत किया है। कथा-लेखिका ने मुख्य घटना के घटने तक पाठकों की जिज्ञासा को बनाये तथा उन्हें कहानी से बाँधे रखा है। घटना का क्रम, उदय, विकास और उपसंहार अत्यधिक सुनियोजित ढंग से हुआ है। कहानी में प्रवाह और गतिशीलता अन्त तक बनी हुई है। अत: कहा जा सकता है कि कथानक के तत्त्वों की दृष्टि से लाटी एक उत्कृष्ट कहानी है।

(iii) पात्र और चरित्र-चित्रण– कहानी में मुख्य पात्र सिर्फ दो हैं—कप्तान और बानो। शेष सभी पात्र गौण हैं; जिसमें बानों के सास-ससुर, प्रभा और उसके बेटे-बेटी, वैष्णव साध्वियाँ आदि। ये सभी केवल कथाकन को गतिमयता प्रदान करने के उद्देश्य से ही कथा में आये हैं। कहानी के मुख्य पात्र कप्तान का चरित्र-चित्रण करने में लेखिका ने कोई कसर नहीं छोड़ी है। एक उदाहरण देखिए—

बँगले के बरामदे में पत्नी के पलंग के पास वह दिन भर आराम-कुर्सी डाले बैठा रहता है, कभी अपने हाथों से टेम्प्रेचर चार्ट भरता और कभी समय देखकर दवाइयाँ देता। .... कभी उसके चेहरे पर झुँझलाहट या खीझ की अस्पष्ट रेखा भी नहीं उभरती। कभी वह घुँघराले बालों को ब्रुश से सँवारता, बड़े ही मीठे स्वर में पहाड़ी झोड़े गाता, जिनकी मिठास में तिब्बती बकरियों के गले में बँधी, बजती-रुनकती घण्टियों की-सी छुनक रहती। पहाड़ी मरीज बिस्तरों से पुकार कर कहते, ''वाह कप्तान साहब, एक और।'' कप्तान अपने पलँग से घुली मिली सुन्दरी 'बानो' की ओर देख बड़े लाड़ से मुस्करा देता।

अत: पात्र और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से लाटी को एक श्रेष्ठ कहानी माना जा सकता है।

(iv) कथोपकथन– इस कहानी के कथोपकथन सरल, सरस, सुरुचिपूर्ण, संक्षिप्त तथा पात्रानुकूल है। घटना तथा चरित्रों को सजीवता प्रदान करने का गुण शिवानी के संवादों में मिलता है। नारी पात्रों का यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत करने में उन्हें सफलता मिली है। संवाद कथा को प्रवाह प्रदान करने में समर्थ हैं। संवादों का पैनापन रोचकता उत्पन्न करता है; यथा—

प्रभा ने गाड़ी रुकवा दी, ''इसी दुकान में आज एकदम पहाड़ी स्टाइल से कलई के गिलास में चाय पिएँगे, हनी।'' वह बोली।

कप्तान अब मेजर था, ''मेजर की डिग्निटी कहाँ जाएगी।?'' वह बोला।

''भाड़ में!'' कहकर प्रभा अपनी पेंसिल हील की जूतियाँ चटकाती दुकान में घुस गयी।

(v) भाषा-शैली– शिवानी घटनाप्रधान अथवा चरित्रप्रधान कहानियाँ लिखती हैं। कौतूहल तथा चमत्कार की उत्पत्ति शिवानी जी की शैली की विशेषताएँ हैं। नारी के जीवन्त शब्द-चित्र उकेरने में वे अप्रतिम हैं। इनकी भाषा तत्समप्रधान है। आंचलिक शब्दावली, अंग्रेजी के वाक्यों, मुहावरों तथा कहीं-कहीं कवित्वपूर्ण पंक्तियों का प्रयोग इनकी भाषा की विशिष्टता है। इनकी कथा-शैली में अद्‌भुत सम्मोहन रहता है। निम्नलिखित उदाहरणों में सजीव शब्द-चित्र देखते ही बनते हैं—

(क) सैनेटोरियम की मनहूस जिन्दगी के काले आकाश में रोबदार ठकुरानी ही एकमात्र द्युतिमान तारिका थीं। भरे-भरे हाथ-पैर की, चिकनी चेहरे पर सदा मुस्कान बिखेरती वह पूरे सैनेटोरियम की भाभी थी। उसके स्वास्थ्य के दुर्गम दुर्ग में भी न जाने बीमारी का घुन किस आरक्षित छिद्र से प्रवेश पा गया था। टी०बी लगने की पीड़ा से कराहती वह अपनी कदर्य गालियों का अक्षय भण्डार खोल देती। कभी लक्षपति श्वसुर को लक्ष्य बनाती, ''हैं हमारे 'बुडज्यू' आधी कमाऊँ के छत्रपति, पर बहू तिथांण (श्मशान) को जा रही है तो उनका बला से!

(ख) कुत्सित बूढ़ी अधेड़ वैष्णवियों के बीच देवांगन-सी सुन्दरी लाटी अपनी दाड़िम-सी दंतपंक्ति दिखाकर हँस दी। मेजर का शरीर सुन्न पड़ गया। स्वथ्य होकर जैसे साक्षात् बानो ही बैठी थी। गालों पर स्वास्थ्य की लालिमा थी, कान तक फैली आँखों में वही तरल स्निग्धता थी और गूँगी जिह्वा का गूँजापन चेहरे पर फैलकर उसे और भी भोला बना रहा था।

(vi) देश-काल तथा वातावरण– शिवानी सजीव वातावरण के चित्रण में सिद्धहस्त हैं। 'लाटी' नामक कहानी में भी आधुनिक महिला के वस्त्र, भाषा तथा वाक्-चातुर्य से वातावरण का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। देश-काल तथा वातावरण की दृष्टि से 'लाटी' एक सफल रचना है। कहानी के वातावरण को स्वाभाविक और सजीव बनाने की पूरी कोशिश की गयी है, जो निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट है—

लम्बे देवदारों का झुरमुट झुक-झुककर गोठिया सैनेटोरियम की बलैया-सी ले रहा था। काँच की खिड़कियों पर सूरज की आड़ी-तिरछी किरणें मरीजों के क्लांत चेहरों पर पड़कर उन्हें उठा देती थीं। मौत की नगरी के मुसाफिरों के रोग-जीर्ण पीले चेहरे सुबह की मीठी धूप में क्षणभर को खिल उठते। आज टी०बी०, सिरदर्द और जुकाम-खाँसी की तरह आसानी से जीतने वाली बीमारी है, पर आज से कोई बीस साल पहले टी०बी० मृत्यु का जीवन्त आह्वान थी। भुवाली से भी अधिक माँग तब गोठिया सैनेटोरियम की थी। काठगोदाम से कुछ ही मील दूर एक ऊँचे पहाड़ पर गाठिया सैनेटोरियम के लाल-लाल छत्तों के बँगले छोटे-छोटे गुलदस्ते से सजे थे।

(vii) उद्देश्य– शिवानी की कहानियाँ चित्रण अथवा घटनाप्रधान होती है। इन कहानियों का उद्देश्य मुख्यत: मनोरंजन प्रदान करना ही होता है। इसके साथ-ही लेखिका अपने पाठक को आज के समाज की वास्तविकता से भी अवगत कराना चाहती हैं।

इस प्रकार कहानी-कला के तत्त्वों की दृष्टि से शिवानी जी की 'लाटी' कहानी सफल कहानी है। इसमें प्रारम्भ से अन्त तक पाठक के हृदय को बाँध लेने का गुण विद्यमान है।

7. पात्र योजना और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'लाटी' कहानी का मूल्यांकन कीजिए।

उ०– कहानी में मुख्य पात्र सिर्फ दो हैं—कप्तान और बानो। शेष सभी पात्र गौण हैं; जिसमें बानों के सास-ससुर, प्रभा और उसके बेटे-बेटी, वैष्णव साध्वियाँ आदि। ये सभी केवल कथाकन को गतिमयता प्रदान करने के उद्देश्य से ही कथा में आये हैं। कहानी के मुख्य पात्र कप्तान का चरित्र-चित्रण करने में लेखिका ने कोई कसर नहीं छोड़ी है। एक उदाहरण देखिए—

बँगले के बरामदे में पत्नी के पलंग के पास वह दिन भर आराम-कुर्सी डाले बैठा रहता है, कभी अपने हाथों से टेम्प्रेचर चार्ट भरता और कभी समय देखकर दवाइयाँ देता। .... कभी उसके चेहरे पर झुँझलाहट या खीझ की अस्पष्ट रेखा भी नहीं उभरती। कभी वह घुँघराले बालों को ब्रुश से सँवारता, बड़े ही मीठे स्वर में पहाड़ी झोड़े गाता, जिनकी मिठास में तिब्बती बकरियों के गले में बँधी, बजती-रुनकती घण्टियों की-सी छुनक रहती। पहाड़ी मरीज बिस्तरों से पुकार कर कहते, ''वाह कप्तान साहब, एक और।'' कप्तान अपने पलँग से घुली मिली सुन्दरी 'बानो' की ओर देख बड़े लाड़ से मुस्करा देता।

अत: पात्र और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से लाटी को एक श्रेष्ठ कहानी माना जा सकता है।

8. वातावरण चित्रण की दृष्टि से 'लाटी' कहानी की लेखिका शिवानी ने कहाँ तक सफलता प्राप्त की है?

उ०– शिवानी सजीव वातावरण के चित्रण में सिद्धहस्त हैं। 'लाटी' नामक कहानी में भी आधुनिक महिला के वस्त्र, भाषा तथा वाक्-चातुर्य से वातावरण का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। देश-काल तथा वातावरण की दृष्टि से 'लाटी' एक सफल रचना है। कहानी के वातावरण को स्वाभाविक और सजीव बनाने की पूरी कोशिश की गयी है, जो निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट है—

लम्बे देवदारों का झुरमुट झुक-झुककर गोठिया सैनेटोरियम की बलैया-सी ले रहा था। काँच की खिड़कियों पर सूरज की आड़ी-तिरछी किरणें मरीजों के क्लांत चेहरों पर पड़कर उन्हें उठा देती थी। मौत की नगरी के मुसाफिरों के रोग-जीर्ण पीले चेहरे सुबह की मीठी धूप में क्षणभर को खिल उठते। आज टी०बी० सिरदर्द और जुकाम-खाँसी की तरह आसानी से जीतने वाली बीमारी है, पर आज से कोई बीस साल पहले टी०बी० मृत्यु का जीवन्त आह्वान थी। भुवाली से भी अधिक माँग तब गोठिया सैनेटोरियम की थी। काठगोदाम से कुछ ही मील दूर एक ऊँचे पहाड़ पर गाठिया सैनेटोरियम के लाल-लाल छत्तों के बँगले छोटे-छोटे गुलदस्ते से सजे थे।

9. लाटी कहानी का अंत आपको कैसा लगा तथा इससे आपको क्या शिक्षा मिली?

उ०– लाटी अत्यन्त संवेदनशील तथा मानवीय संवेदनाओं को झकझोरने वाली कहानी है। जिसका अंत बहुत ही भावुक तथा मर्मस्पर्शी है। कप्तान जोशी जो बानो (लाटी) को मृत मान चुका था, जब बानो उन्हें लाटी के रूप में मिलती है तो वह असंमजस की स्थिति में आ जाता है। जो लाटी भयंकर क्षय रोग से पीड़ित थी और मृत्यु के द्वार पर थी, वही आज गालों पर स्वास्थ्य की लालिमा लिए उसके सामने उपस्थित थी। मेजर के जिन्दगी में आगे बढ़ जाने से तथा उसका लाटी को, जो अपनी याददाश्त तथा आवाज खो चुकी थी, को बानो के रूप में न पहचानना कहानी का अत्यन्त मार्मिक क्षण है।

कहानी 'लाटी' से हमें शिक्षा मिलती है कि समाज में आज महिलाएँ ही महिलाओं के शोषण का कारण बनी हुई है, उन्हें अपनी विचार-धारा, अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करके उनके साथ सहयोग करना चाहिए। 'इस कहानी से यह भी शिक्षा मिलती है कि यदि परिजनों का सहयोग व सहानुभूति मिले तो क्षयरोग, जैसे असाध्य रोगों से ग्रसित रोगी को भी मृत्यु के आगोश में जाने से बचाया जा सकता है। परिजनों का सहयोग तथा प्रेम इस प्रकार के असाध्य रोगियों के लिए संजीवनी का कार्य करता है।

10. कथानक की दृष्टि से 'लाटी' कहानी की समीक्षा कीजिए।

उ०– बानो से विवाह के तीसरे ही दिन कप्तान को बरस जाना पड़ा। अपनी खिलौने-सी बहू से उसे अतिशय प्यार है। दो वर्ष बाद जब वह वापस लौटता है तो उसे पता चलता है कि उसकी पत्नी एक टी० बी० सैनेटोरियम में भर्ती है। इन दो वर्षों में सास-ननदों के ताने सुने; घर के समस्त काम किये और अन्तत: बीमार होकर सैनेटोरियम की चारपाई पकड़ ली। कप्तान आता है, उसे हर प्रकार की सुविधा उपलब्ध कराता है और उसकी समस्त सेवा-शुश्रूषा स्वयं करता है। डॉक्टरों ने उसके बचने की उम्मीद छोड़ दी और उसके तीन बच्चे भी बड़े हो जाते हैं। सोलह-सत्रह वर्षों के बाद जब वह नैनीताल घूमने आता है तो एक चाय की दुकान पर बानो लाटी के रूप में जीवित मिलती है, जिसकी याददाश्त जा चुकी है और वह बोल नहीं सकती।

प्रस्तुत कहानी का अन्त नाटकीय है, कहानी में उत्सुकता, आकर्षण तथा सुगठन है। बानो को लाटी के रूप में जीवित दिखाकर लेखिका ने कथा में एक अकल्पनीय मोड़ प्रस्तुत किया है। कथा-लेखिका ने मुख्य घटना के घटने तक पाठकों की जिज्ञासा को बनाये तथा उन्हें कहानी से बाँधे रखा है। घटना का क्रम, उदय, विकास और उपसंहार अत्यधिक सुनियोजित ढंग से हुआ है। कहानी में प्रवाह और गतिशीलता अन्त तक बनी हुई है। अत: कहा जा सकता है कि कथानक के तत्त्वों की दृष्टि से लाटी एक उत्कृष्ट कहानी है।

पाठ्येतर सक्रियता

उ०– छात्र स्वयं करें।

5 बहादुर

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 227 का अवलोकन कीजिए।

लेखक पर आधारित प्रश्न

1. अमरकान्त जी का जीवन परिचय देते हुए उनकी कृतियों का उल्लेख कीजिए।

उ०– लेखक परिचय– सुप्रसिद्ध कहानीकार अमरकान्त का जन्म उत्तर प्रदेश के बलिया जिले में 1 जुलाई, सन् 1925 ई० को हुआ था। इन्होने बलिया, गोरखपुर तथा प्रयाग में शिक्षा प्राप्त की। इन्होंने स्नातक तक ही शिक्षा प्राप्त की। इनके पिता का नाम सीताराम वर्मा था। सन् 1942 ई० में असहयोग आन्दोलन में इन्होंने सक्रिय भूमिका निर्वाह की। प्रगतिशीलता के प्रति सदैव इनका रूझान रहा। पत्रकारिता क्षेत्र में विशेष रुचि रखने वाले अमरकान्त जी कई वर्ष तक अमृत पत्रिका, सैनिक, कहानी आदि पत्रिकाओं से सम्बन्धित रहे। सन् 2001 ई० में इन्होंने देश का सर्वोच्च साहित्यिक सम्मान ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त किया। हिन्दी कहानी-जगत को अपनी लेखनी से समृद्ध करने वाले इस महान कहानीकार का 17 फरवरी, सन् 2014 ई० को देहावसान हो गया।

कृतियाँ– कहानी के साथ ही उपन्यास, संस्मरण एवं बाल साहित्य में भी इन्होंने अपनी लेखनी चलाई। इनकी प्रमुख रचनायें इस प्रकार हैं—

कहानी– मौत का नगर, देश के लोग, जिन्दगी और जोंक (तीनों कहानी-संग्रह), बहादुर, इण्टरव्यू, हत्यारे, डिप्टी कलक्टरी, दोपहर का भोजन, घुडसवारी, लड़का-लड़की, छिपकली, गगनविहारी, मूस, मित्र-मिलन। इनकी पहली कहानी 'बाबू' है, जो आगरा के 'सैनिक' पत्र में प्रकाशित हुई।

उपन्यास– सूखा पत्ता, आकाश-पक्षी, पराई डाल का पक्षी, कँटीली राह के फूल, दीवार और आँगन, काले-उजले दिन।

संस्मरण– कुछ यादें-कुछ बातें, दोस्ती।

बाल साहित्य– वानर सेना, मँगरी, दो हिम्मती बच्चे, नेऊर भाई, बाबू का फैसला।

2. अमरकान्त जी के कथा-शिल्प एवं शैली पर प्रकाश डालिए।

उ०– कथा-शिल्प एवं शैली– अमरकान्त ने जीवन की अत्यन्त सामान्य घटनाओं और स्थितियों को अपनी कहानियों का विषय बनाया है। बिना किसी विशेष आग्रह के उद्दाम मानवीय जिजीविषा का मूर्तिकरण इनकी निजी विशेषता है। इनमें गहरी अन्तर्दृष्टि और संवेदना है। अपने कथा-पात्रों से इनको केवल सहानुभूति नहीं होती, वरन् ये उन्हीं के साथ जीते हैं। इनकी अधिकतर कहानियों में नवीन आर्थिक परिस्थितियों से जूझते मध्यमवर्गीय समाज की समस्याओं, विशेषताओं, पीड़ाओं, प्रवंचनाओं और जीवन की भूख का मर्मवेधी चित्रण किया गया है। वस्तुत: अमरकान्त के नाम के बिना आज की नई कहानी की कोई भी चर्चा अधूरी ही है।

अमरकान्त की कथा-शैली सरल और सहज है। इसमें किसी प्रकार का दुराव-छिपाव, वक्रता अथवा 'फैशन' नहीं है। इनकी कहानियों में आभासहीनता और सादगी है। इनमें सामाजिक व्यंग्य की विशेषता देखने को मिलती है। इनकी कहानियों का अन्तिम प्रभाव करुणामूलक हुआ करता है। अमरकान्त की कहानियाँ पत्थर की तरह ठोस और कंक्रीट की तरह शक्तिसम्पन्न हैं। इनकी कहानियों के शीर्षक लघु, आकर्षक और सरल होने के साथ-साथ सार्थक भी हैं। अपनी कहानियों की भाषा को अमरकान्त जी व्यावहारिकता और कृत्रिमता से अलग रखते हैं। अंग्रेजी और उर्दू के प्रचलित शब्दों को आवश्यकतानुसार अपनी भाषा में प्रयुक्त करना इनकी प्रमुख विशेषता है। इनकी रचनाओं में कहीं-कहीं आत्मकथन शैली के भी दर्शन होते हैं। कथा जगत में इनके महत्वपूर्ण योगदान को हिन्दी-साहित्य जगत हमेशा याद रखेगा।

पाठ पर आधारित प्रश्न

1. 'बहादुर' कहानी का सारांश लिखिए।

उ०– 'दिलबहादुर' एक पहाड़ी नेपाली बालक है। उसके पिता युद्ध में मारे जा चुके हैं तथा माता उसे बहुत मारती-पीटती है। इसीलिए वह माँ के रखे रुपयों में से दो रुपये लेकर घर से भाग जाता है और एक मध्यमवर्गीय परिवार में नौकरी कर लेता है। गृह-स्वामिनी निर्मला उसके काम से बहुत खुश थी। निर्मला ने उसका नाम बहादुर रखा। बहादुर की मेहनत के कारण उनका

घर तथा सबके कपड़े साफ रहने लगे। रात को वह देर तक काम करता तथा सुबह जल्दी उठकर काम में लग जाता था। रात को सोते समय पहाड़ी भाषा में कोई गीत गुनगुनाता रहता था। वह स्वयं खुश रहता था और सबको हँसाता रहता था। निर्मला के उद्दण्ड बेटे किशोर ने अपने सभी काम बहादुर को सौंप दिये थे। किसी काम में जरा-सी भी लापरवाही होने पर किशोर उसे मारता-पीटता था। वह थोड़ी देर चुपचाप कोने में खड़ा रहता और फिर पहले की तरह ही काम में लग जाता था।

एक दिन किशोर ने बहादुर को सुअर का बच्चा कह दिया। बहुादर को सहन नहीं हुआ। अपने स्वाभिमान को बनाए रखते हुए बहादुर ने उसका काम करने से मना कर दिया। निर्मला के पति ने जब उसे डाँटा तो बहादुर कहने लगा— ''बाबूजी, भैया ने मेरे मरे बाप को क्यों लाकर खड़ा किया?'' कहकर वह रोने लगा।

पहले निर्मला बहादुर को बहुत प्यार करती थी, उसके खाने-पीने का भी पूरा ध्यान रखती थी लेकिन अब निर्मला का व्यवहार भी उसके प्रति बदल गया था। निर्मला ने उसकी रोटी सेंकना भी बन्द कर दिया। इसलिए एक दिन बहादुर भूखा ही सो गया लेकिन अगले दिन सुबह उठकर उसने रोटियाँ सेंकीं और रात की सब्जी से ही खा ली।

स्थिति ऐसी हो गयी थी कि जरा-सी गलती होने पर ही किशोर व निर्मला उसे बहुत पीटने लगे। उनकी पिटाई और गालियों के कारण बहादुर से अब गलतियाँ और भूलें अधिक होने लगीं।

निर्मला के घर आने वाले रिश्तेदार की पत्नी ने जब बहादुर पर ग्यारह रुपये चोरी करने का आरोप लगाया तो बहुादर के हृदय को गहरा आघात लगा। उसे डराया-धमकाया गया, पुलिस के सुपुर्द करने की बात कही गई लेकिन उसने रुपये लिये ही नहीं थे, इसलिए वह अपराध स्वीकार कैसे करता। उस दिन से बहादुर बहुत उदास रहने लगा। एक दिन दोपहर को अपना सभी सामान छोड़कर वह घर से चला गया। निर्मला के पति को शाम को दफ्तर से लौटने पर मालूम हुआ कि बहादुर घर छोड़कर चला गया है। निर्मला सिर पर हाथ रखे बैठी थी। घर गन्दा पड़ा था, बर्तन बिना मँजे पड़े थे तथा घर का सामान अस्त-व्यस्त था। अब निर्मला, उसके पति तथा पुत्र किशोर को बहादुर की ईमानदारी पर विश्वास हो गया था। वे इस बात को भी स्वीकार कर चुके थे कि रिश्तेदारों के रुपये भी उसने नहीं उठाये थे। वे सभी बहादुर पर किए गए अत्याचारों के प्रति पश्चात्ताप करते हैं।

घर के सभी सदस्य उसके काम के आदी हो गए थे लेकिन अब केवल उसकी यादें ही शेष रह गयी थीं। निर्धन तथा असहाय होते हुए भी सहनशीलता तथा स्वाभिमान की भावना उसमें कूट-कूटकर भरी हुई थी।

कहानी का नामकरण 'दिलबहादुर' को केन्द्रित करके ही किया गया है। पूरी कथा उसी के चारों ओर घूमती रहती है। स्पष्ट है कि प्रस्तु कहानी का शीर्षक बहुादर संक्षिप्त, कौतूहलवर्द्धक, सारगर्भित तथा सब प्रकार से उपयुक्त एवं सार्थक है।

2. 'बहादुर' कहानी में निहित सन्देश को स्पष्ट कीजिए।

उ०– यह कहानी निम्न एवं मध्यमवर्गीय समाज के मनोविज्ञान का वास्तविक चित्र प्रदर्शित करती है। आधुनिक समाज झूठे-प्रदर्शन और शान-शौकत में विश्वास करता है। वह बनावटी जिन्दगी जीना पसन्द करता है। कहानीकार ने निम्न वर्ग के प्रति सहानुभूति रखते हुए मध्यम वर्ग के लोगों की स्थिति की वास्तविकता को समझा है। उसने वर्ग-भेद मिटाने को प्रोत्साहन दिया है। कहानीकार का सन्देश है कि मानवीय सहानुभूति के आधार पर ही वर्ग-भेद की खाई को पाटा जा सकता है।

3. 'बहादुर' कहानी के आधार पर निर्मला का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उ०– 'अमरकान्त' जी की कहानी 'बहादुर' एक चरित्र-चित्रण कहानी है। इस कहानी की पात्रा जो एक मध्यम परिवार की महिला 'निर्मला' है जिसके चरित्र की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

(i) मध्यम परिवार की सदस्यता– 'बहादुर' कहानी की पात्र निर्मला एक मध्यम परिवार की महिला है। यह परिवार आर्थिक दृष्टि से बहुत सम्पन्न नहीं है।

(ii) दिखावे की संस्कृति की पोषक– 'बहादुर' कहानी की स्त्री पात्रा निर्मला दिखावे की संस्कृति की पोषक है। उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। यद्यपि, फिर भी झूठे दिखावे और शान-शौकत के लिए वह नौकर की आवश्यकता को बनाए हुए है। वह अपनी शान-शौकत से पड़ोसियों को प्रभावित करना चाहती है।

(iii) संकीर्ण विचारधारा– 'बहादुर' कहानी की स्त्री पात्रा निर्मला एक मध्यम परिवार की महिला है। दिखावे और शान-शौकत के लिए वह नौकर रखती है तथा सामन्ती व्यवस्था के अनुकरण पर उससे अधिक कार्य लेती है। वह उसके साथ उचित व्यवहार भी नहीं करती है।

(iv) सामन्ती व्यवस्था की पोषक– 'बहादुर' कहानी की पात्रा निर्मला एक मध्यम परिवार की महिला है। दिखावे और शान शौकत के लिए वह एक नौकर रखती है तथा सामन्ती व्यवस्था के अनुकरण पर उससे अधिक कार्य लेती है। वह उसके साथ उचित व्यवहार भी नहीं करती है।

(v) शोषक मानसिकता– निर्मला एक शोषक मानसिकता वाली महिला है। नौकर रखने का प्रदर्शन, नौकर के प्रति दिखावे

का व्यवहार, नौकर पर रोब डालना, नौकर से जी-तोड़ काम लेना, उसका बात-बात पर पीटना, गाली देना आदि क्रिया-कलापों उसकी शोषक मानसिकता को उजागर करते हैं।

4. 'बहादुर' कहानी के मुख्य पात्र 'दिलबहादुर' का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उ०– अमरकान्त जी की कहानी 'बहादुर'; एक चरित्र-प्रधान कहानी है। एक नेपाली बालक 'दिलबहादुर' इसका नायक है। बहादुर के चरित्र की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) **असहाय और भोला–** बहादुर नेपाल का रहने वाला है। अपनी कर्कशा माता के व्यवहार से पीड़ित होकर वह अपना घर छोड़ देता है तथा प्यार का व्यवहार पाकर निर्मला के परिवार का सारा कार्य सँभाल लेता है।

(ii) **परिश्रमी और ईमानदार–** बहादुर सुबह आठ बजे से लेकर रात्रि तक कार्य करता है। मारपीट के उपरान्त भी वह दिल लगाकर कार्य करता है। वह चोरी नहीं करता, फिर भी झूठे इल्जाम पर मार खाता है।

(iii) **प्रेम का भूखा–** वह मातृ-प्रेम व स्नेह के व्यवहार का भूखा है, जो उसे अपने घर नहीं मिला। वह प्रेम शुरू में निर्मला के परिवार से उसे मिलता है। मगर जब निर्मला भी उसके प्रति अच्छा व्यवहार नहीं करती, तब वह घर छोड़ देता है।

(iv) **हँसमुख बालक–** बहादुर भोला और हँसमुख है। वह हर बात को हँसकर कहता है। बच्चों के पूछने पर अपना नाम दिलबहादुर बताकर हँसने लगता है। मालिक के साथ भी बात कहकर हँसता रहता है। मार खाने के बाद भी वह नाराज नहीं होता और शीघ्र ही पूर्व स्थिति में आ जाता है।

(v) **सहनशील और स्वाभिमानी–** बहादुर बहुत सहनशील है। वह सभी की डाँट, गाली और मारपीट सब-कुछ सहन नहीं कर पाता है और कोई प्रतिरोध नहीं करता, परन्तु अपने स्वर्गवासी पिता को गाली दिये जाने पर उसका स्वाभिमान जाग जाता है। चोरी के झूठे आरोप से उसके मन को असहनीय ठेस पहुँचती है और वह अपना सामान और अर्जित पारिश्रमिक तक वहीं छोड़कर चला जाता है।

(vi) **व्यवहारकुशल–** बहादुर एक व्यवहारकुशल बालक है। सभी के प्रति उसका व्यवहार बहुत मृदु है। अपने इसी गुण के कारण वह घर के सभी सदस्यों पर जादू का-सा प्रभाव डाल देता है। इतना ही नहीं, मुहल्ले के बच्चे भी उसके व्यवहार से मोहित हो जाते हैं।

(vii) **मातृ-पितृभक्त बालक–** बहादुर का हृदय मातृभक्ति और पितृभक्ति की भावना से ओत-प्रोत है। उसकी माँ उसे मारती थी और उसकी उपेक्षा करती थी। इसीलिए वह घर से भाग आया। वह घर वापस भी नहीं जाना चाहता, लेकिन अपने वेतन के रुपये अपनी माँ के पास ही भेजना चाहता है। वह कहता है— ''माँ-बाप का कर्जा तो जन्म भर भरा जाता है।''

(viii) **स्नेही बालक–** निर्मला बहादुर के खाने और नाश्ते का बहुत ध्यान रखती है। बहादुर को उसमें अपनी माँ की छवि दिखाई देती थी। निर्मला की तबियत खराब होने पर यदि वह उसे काम करते देखता तो कहता— **''माता जी, मेहनत न करो, तकलीफ बढ़ जाएगा।''** दवा खाने का समय होते ही वह दवाई का डिब्बा लाकर उसके सामने रख देता।

इस प्रकार बहादुर एक सच्चा, ईमानदार, सहनशील, स्वाभिमानी, व्यवहारकुशल, भोला और स्नेही बालक है। अपने इन्हीं गुणों के कारण वह सबके मन को बरबस ही आकर्षित कर लेता है। पाठक उसे चाहते हुए भी भूल नहीं सकता।

5. अमरकान्त जी द्वारा लिखित 'बहादुर' कहानी के शीर्षक की उपयुक्तता पर प्रकाश डालिए।

उ०– कहानी का नामकरण 'दिलबहादुर' को केन्द्रित करके ही किया गया है। पूरी कथा उसी के चारों ओर घूमती रहती है। स्पष्ट है कि प्रस्तुत कहानी का शीर्षक बहादुर संक्षिप्त, कौतूहलवर्द्धक, सारगर्भित तथा सब प्रकार से उपयुक्त एवं सार्थक है।

6. कथावस्तु तथा संवाद की दृष्टि से 'बहादुर' कहानी की समीक्षा कीजिए।

उ०– **कथानक–** प्रस्तुत कहानी में लेखक ने समाज के वर्ग-भेद को उजागर किया है। बहादुर 12-13 वर्ष की उम्र का एक गरीब बालक है। वह एक साधारण परिवार में नौकर है, जिसका मुखिया स्वयं लेखक है। प्रारम्भ में तो उसका परिवार में पालतू पशु-पक्षियों की तरह बड़ा आदर-सत्कार होता है और वह भी बड़ी मेहनत व लगन से काम करता है, किन्तु कुछ दिनों बाद वह लेखक के बड़े लड़के किशोर और उसकी पत्नी निर्मला द्वारा डाँट, मार खाने लगता है। उससे अपनी रोटी स्वयं सेंक लेने को भी कहा जाता है। एक दिन घर में आये कुछ रिश्तेदारों द्वारा बहादुर के ऊपर चोरी करने का आरोप लगाया जाता है और लेखक द्वारा बहादुर को मारा-पीटा भी जाता है। पत्थर की एक सिल के टूट जाने और समस्त परिवारजनों के दुर्व्यवहार से पीड़ित होने के कारण वह उस घर से भाग जाता है। वह अपने साथ घर का और अपना कोई भी सामान नहीं ले जाता। बहादुर के चले जाने के बाद परिवार के लोगों को बहादुर के गुणों की अनुभूति होती है और वे अपने द्वारा उसके प्रति किये गये अमानवीय व्यवहारों पर पश्चात्ताप करते हैं।

कहानी का कथानक रोचक, सुगठित, संक्षिप्त तथा समस्याप्रधान है। इसमें बताया गया है कि मात्र पूँजीपति ही श्रम का शोषण

नहीं करते, वरन् सामान्य मध्यम-वर्ग भी इसे कुकृत्य में पीछे नहीं है। इस प्रकार कथानक-तत्त्व की दृष्टि से यह एक सफल कहानी है।

संवाद या कथोपकथन– यह कहानी संवाद की दृष्टि से सफल रचना है। इसके संवाद सरस, सरल, सुन्दर, संक्षिप्त, रोचक तथा पात्रानुकूल है। कथानक को गतिशीलता बनाये रखने में अमरकान्त के संवाद प्रेमचन्द की भाँति समर्थ हैं। 'बहादुर' कहानी के एक रोचक प्रसंग से संवाद-योजना प्रस्तुत है—

क्या बात है?– मैंने पूछा।

बहादुर भाग गया।

भाग गया। क्यों?

पता नहीं आज तो कुछ हुआ भी नहीं था।

कुछ ले गया?

यही तो अफसोस है। कोई भी सामान नहीं ले गया।

7. ''मानवीय सहानुभूति ही वर्ग-भेद को मिटा सकती है।'' क्या आप मानते हैं कि अमरकान्त ने 'बहादुर' के माध्यम से यही सन्देश दिया है?

उ०– कहानी 'बहादुर' में अमरकान्त जी ने समाज में उत्पन्न वर्ग-संघर्ष को मानवीय सहानुभूति द्वारा समाप्त करने का सन्देश दिया है। मानवीय सहानुभूति ही इस वर्ग-भेद को समाप्त कर सकती है। शोषितों के प्रति मानवता एवं प्रेम का व्यवहार, ऊँच-नीच के भेद से उत्पन्न दिलों में पड़ी दीवारों को गिरा सकता है। कहानी का नायक बहादुर भी मानवीय स्नेह एवं संवेदनाओं का भूखा बालक है। मालिक द्वारा पीटे जाने और प्रतिक्रियास्वरूप उनके घर छोड़ देने पर परिवार के लोगों को पश्चात्ताप का अनुभव होता है। वे स्वयं को उसके प्रति किए गए बुरे व्यवहार के लिए दोषी मानते हैं। धनी और निर्धन का वर्ग-भेद मानवीय भावनाएँ एवं प्रेम के द्वारा ही समाप्त किया जा सकता है लेखक का मुख्य उद्देश्य दोनों के हृदयों का परिवर्तन है और सबके प्रति सहानुभूति व्यवहार बनाए रखने का सन्देश देना है।

8. 'बहादुर' कहानी की चरित्र-चित्रण की दृष्टि से समीक्षा कीजिए।

उ०– पात्र तथा चरित्र-चित्रण– प्रस्तुत कहानी में पात्रों की संख्या सीमित है। वे निम्न तथा मध्यम वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। बहादुर निम्न वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। उसके अपने घर की आर्थिक स्थिति शोचनीय है। माँ की मार और उपेक्षा से खीझकर वह घर से शहर भाग आता है और एक मध्य-वित्त-परिवार में नौकरी करता है। कहानी का प्रमुख पात्र बहादुर है। गृहस्वामिनी निर्मला तथा उसका बेटा किशोर, रिश्तेदार, उसकी पत्नी और लेखक कहानी के अन्य पात्र हैं। बहादुर ईमानदारी, मेहनती तथा स्वाभिमानी बालक है। वह निर्मला के पुत्र किशोर तथा फिर निर्मला के दुर्व्यवहार का शिकार होता है। गाली खाकर भी वह मौन बना रहता है, परन्तु 'सुअर का बच्चा' गाली उसके स्वाभिमान पर विशेष चोट पहुँचाती है—

'' ....बाबूजी, भैया ने मेरे मरे बाप को क्यों लाकर खड़ा किया?–वह रोता हुआ बोला।''

बहादुर के मन पर सबसे गहरा आघात तब लगता है, जब उस पर चोरी का इल्जाम लगाया जाता है, उसे धमकाया और पीटा जाता है। इस आघात के कारण वह खाली हाथ घर छोड़कर चला जाता है।

कथाकार बाल-मनोविज्ञान के सूक्ष्म विश्लेषण में सफल रहे हैं। निर्मला साधारण महिला है। किशोर शान-शौकत से रहने का अभ्यस्त है। वह आज के समाज के उन नवयुवकों का प्रतिनिधित्व करता है, जो कम साधन होते हुए भी रईसों की नकल करते हैं। इस प्रकार पात्र तथा चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'बहादुर' एक सफल कहानी है।

9. 'बहादुर' कहानी की भाषा-शैली की समीक्षा कीजिए।

उ०– इस कहानी की भाषा कथा-प्रसंग के अनुकूल व्यावहारिक एवं प्रवाहपूर्ण है तथा शैली आत्मपरक है। प्रचलित मुहावरों का प्रयोग भाषा की विशेषता है; जैसे—नौ दो ग्यारह होना, माथा ठनकना, पेट में दाढ़ी होना आदि। उर्दू तथा अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग मिलता है; जैसे—किस्सा, तमीज, सिनेमा, रिपोर्ट इत्यादि। भाषा-शैली का एक उदाहरण प्रस्तुत है— **''अम्माँ, एक बार भी अगर बहादुर आ जाता तो मैं उसको पकड़ लेता और कभी जाने न देता। उससे माफी माँग लेता और कभी नही मारता। सच, अब ऐसा नौकर कभी नहीं मिलेगा। कितना आराम दे गया है वह। अगर वह कुछ चुराकर ले गया होता तो सन्तोष हो जाता।**

पाठ्येतर सक्रियता

उ०– छात्र स्वयं करें।

6 कर्मनाशा की हार

अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न–

उ०– बहुविकल्पीय प्रश्नोत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक के पृष्ठ संख्या— 236 का अवलोकन कीजिए।

लेखक पर आधारित प्रश्न

1. शिवप्रसाद सिंह का जीवन परिचय देते हुए उनकी कृतियों का उल्लेख कीजिए।

उ०– लेखक परिचय– प्रसिद्ध कहानीकार शिवप्रसाद सिंह का जन्म वाराणसी जनपद के जलालपुर गाँव में 19 अगस्त, सन् 1928 ई० को एक कृषक परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम चन्द्रिकाप्रसाद सिंह था। इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा उदयप्रताप कॉलेज, वाराणसी से प्राप्त की। स्नातकोत्तर तथा पी०एच०डी० की उपाधियाँ इन्होंने 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' से प्राप्त कीं। 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' में ही ये हिन्दी विभाग में 'रीडर' पद पर कार्यरत रहे। भारत सरकार की नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत यू०जी०सी० ने सन् 1986 ई० में इन्हें 'हिन्दी पाठ्यक्रम विकास केन्द्र' का समन्वयक भी नियुक्त किया। ये रेलवे बोर्ड के 'राजभाषा विभाग' के मानद सदस्य भी रहे और 'साहित्य अकादमी', 'बिरला फाउंडेशन' तथा 'उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान' जैसी अनेक संस्थाओं से किसी-न-किसी रूप में जुड़े रहे। सन् 1990 ई० में 'नीला चाँद' उपन्यास के लिए इन्हें 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। आलोचना, कहानी, सम्पादन, नाटक, उपन्यास, शोध व जीवनी आदि साहित्यिक विधाओं के क्षेत्र को इन्होंने अपनी लेखनी से समृद्ध किया। 28 सितम्बर, सन् 2008 ई० को यह महान कहानीकार इस असार संसार से सदैव के लिए विदा हो गया।

कृतियाँ– शिवप्रसाद जी की प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं—

कहानी– आर-पार की माला, मुरदा सराय, भेड़िये, बिन्दा महाराज, हाथ का दाग, सुबह के बादल, इन्हें भी इन्तजार है, कर्मनाशा की हार, दादी माँ, अँधेरा हँसता है, केवड़े का फूल, अरुन्धती।

उपन्यास– अलग-अलग वैतरणी, दिल्ली दूर है, कुहरे में युद्ध, वैश्वानर, गली आगे मुड़ती है, औरत, नीला चाँद, चाँद फिर उगा।

नाटक– घंटियाँ गूँजती हैं।

जीवनी– उत्तरयोगी श्री अरविन्द।

निबन्ध संग्रह– शिखरों के सेतु, चतुर्दिक, कस्तूरी मृग।

रिपोर्ताज– अन्तरिक्ष के मेहमान।

आलोचना– विद्यापति, आधुनिक परिवेश और नवलेखन।

सम्पादन– शान्तिनिकेतन से शिवालिक तक।

इनकी 'कर्मनाशा की हार' शीर्षक कहानी का उर्दू, रूसी, जर्मन, अंग्रेजी आदि भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

2. शिवप्रसाद सिंह के कथा-शिल्प एवं शैली पर प्रकाश डालिए।

उ०– कथा-शिल्प एवं शैली– शिवप्रसाद सिंह की कहानियों में सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन के सम-समायिक चित्रों का अंकन किया गया है। ग्राम्यांचलों के प्रति इनकी विशेष रुचि है। व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं तथा रूढ़ियों से ग्रस्त मानवता के प्रति इनमें गहन-संवेदना है। ये समन्वयशील विचारक हैं। जीवन के यथार्थ को ये नैतिक समाधान देते हैं। प्राचीन नैतिक आदर्शों पर आधारित ये कहानियाँ नैतिकता, बौद्धिकता और तर्क की कसौटी पर भी खरी उतरती हैं। इनकी कहानियों में निम्नवर्ग के प्रतिनिधि पात्र स्थान पाते रहे हैं। चरित्र-चित्रण व्यक्तिपरक तथा मनोवैज्ञानिक होता है। समस्यात्मक पृष्ठभूमि पर आधारित पात्रों के मनोद्वन्द्व को उभारने में ये सिद्धहस्त हैं। इनकी कहानियों की भाषा प्रांजन है, किन्तु उसमें व्यावहारिक और लोक-जीवन की शब्दावली का सटीक प्रयोग भी देखने को मिलता है। इनकी रचना-शैली सरलता, सहजता तथा चित्रात्मकता से युक्त है। भावात्मकता एवं कवित्वपूर्ण वर्णनों के कारण इनकी कहानियाँ अतिमोहक एवं मर्मस्पर्शी बन पड़ी हैं। साहित्य जगत में शिवप्रसाद सिंह के महत्वपूर्ण योगदान को हमेशा याद रखा जाएगा।

पाठ पर आधारित प्रश्न

1. 'कर्मनाशा की हार' कहानी का सारांश लिखिए।

उ०– फुलमतिया और कुलदीप साधारण युवती-युवक हैं। कुलदीप के वंश-मर्यादा के विपरीत मल्लाह की विधवा बेटी फूलमत के

प्रति अनुरक्त होने से कुलदीप के बड़े भाई भैरो पाण्डे दु:खी हैं। वे दोनों कर्मनाशा नदी के तट पर चुपचाप मिलने जाते हैं, भैरो पाण्डे उन्हें डाँटते हैं। लज्जा व भय से कुलदीप घर से भाग जाता है। भैरो पाण्डे विचारशील हैं।

'कर्मनाशा' नदी में जब बाढ़ आती है तो वह नरबलि अवश्य लेती है। 'विधवा फुलमत अब कुलदीप के बच्चे की माँ है' यह जानकर सभी ग्रामीण कर्मनाशा नदी की बाढ़ का कारण फुलमत को मानते हुए कहते हैं कि फुलमत को उसके बच्चे सहित कर्मनाशा नदी में फेंक दिया जाए। 'फुलमत' भयभीत होकर अपने बच्चे को प्यार से चिपकाए हुए खड़ी थी, तभी भैरो पाण्डे वहाँ आकर इस क्रूरता को रोकते हैं। वे बच्चे को गोद में लेकर निर्भीकतापूर्वक कहते हैं कि फूलमत उनके छोटे भाई की पत्नी है, उनकी बहू है, उसका बच्चे उनके छोटे भाई का पुत्र है। गाँव का मुखिया कहता है कि पाप का दण्ड तो भोगना ही पड़ेगा। भैरो पाण्डे दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि यदि यहाँ उपस्थिति सभी लोगों के पाप गिनाने लगूँ तो यहाँ खड़े सभी लोगों को कर्मनाशा नदी की धारा में जाना होगा। उपस्थित जन-समुदाय में सन्नाटा छा गया। सहमे हुए सभी लोग अपाहिज भैरो पाण्डे के चट्टान की तरह अडिग व्यक्तित्व को देखते ही रह गए। कर्मनाशा नदी की बाढ़ भी उतर गई थी।

2. 'कर्मनाशा की हार' कहानी के शीर्षक की सार्थकता पर प्रकाश डालिए।

उ०– प्रस्तुत कहानी 'कर्मनाशा की हार' का शीर्षक संक्षिप्त, रोचक व सारगर्भित है। प्रस्तुत कहानी का शीर्षक पूरी कहानी को स्वयं में समाहित किए हुए है। अत: स्पष्ट है कि प्रस्तुत कहानी का शीर्षक सर्वथा उपयुक्त एवं सार्थक है।

3. 'कर्मनाशा की हार' कहानी के आधार पर भैरो पाण्डे का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उ०– भैरो पाण्डे; श्री शिवप्रसाद सिंह की 'कर्मनाशा की हार' कहानी का प्रमुख पात्र और नयी डीह गाँव का आदर्श व्यक्ति है। उसका चारित्रिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) **कर्मठ और गम्भीर–** भैरो पाण्डे पैर से लाचार होते हुए भी बहुत कर्मठ है। वह सारे दिन काम में लगा रहता है। वह गम्भीर प्रकृति का व्यक्ति है। फुलमत और अपने भाई कुलदीप के परस्पर टकरा जाने पर वह इतनी कटु दृष्टि से उन्हें देखता है कि दोनों इधर-उधर भाग खड़े होते हैं।

(ii) **भाई के प्रति अपार प्रेम–** भैरो पाण्डे को अपने भाई कुलदीप से अपार प्रेम था। कुलदीप की दो वर्ष की अवस्था में उसके माता-पिता की मृत्यु हो गयी थी। इसलिए उसका लालन-पोषण पूरे प्यार से भैरो पाण्डे ने ही किया था। कुलदीप के घर से भाग जाने पर पाण्डे दु:ख के सागर में डूबने-उतराने लगता है— **''अपने से तो कौर भी नहीं उठ पाता था। भूखा बैठा होगा कहीं।''**

(iii) **मर्यादावादी और मानवतावादी–** भैरो पाण्डे अपनी मर्यादावादी भावनाओं के कारण फुलमत को पहले अपने परिवार का अंग नहीं बना पाता, लेकिन मानवतावादी भावना से प्रेरित होकर वह फुलमन और उसके बच्चे की कर्मनाशा नदी में बलि देने का विरोध करता है और उन्हें अपने परिवार का सदस्य स्वीकार करता है— **''मेरे जीते-जी बच्चे और उसकी माँ का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता।''**

(iv) **निर्भीक और साहसी–** भैरो पाण्डे निर्भीक व्यक्ति है। वह मुखिया से इस वक्तव्य से कि— **'समाज का दण्ड तो झेलना ही होगा'**— भयभीत नहीं होता। वह बड़े साहस से उसका उत्तर देता है— **''जरूर भोगना होगा मुखिया जी ……… मैं आपके समाज को कर्मनाशा से कम नहीं समझता। किन्तु मैं एक-एक के पाप गिनाने लगूँ, तो यहाँ खड़े सारे लोगों को परिवार समेत कर्मनाशा के पेट में जाना पड़ेगा।''**

(v) **प्रगतिशील विचारों का पोषक–** भैरो पाण्डे अन्धविश्वासों का खण्डन और रूढ़िवादिता का विरोध करने को तत्पर रहता है। वह कर्मनाशा की बाढ़ को रोकने के लिए निर्दोष प्राणियों की बलि दिये जाने का विरोध करता है तथा बाढ़ को रोकने के लिए बाँधों को ठीक करने पर बल देता है।

इस प्रकार भैरो पाण्डे प्रस्तुत कहानी का एक प्रगतिशीलल विचारों वाला मानवतावादी पात्र है। अपनी मानवतावादी भावना के बल पर वह सामाजिक रूढ़ियों का डटकर विरोध करता है और कर्मनाशा को हारने पर विवश कर देता है।

4. कुलदीप का चरित्र-चित्रण 'कर्मनाशा की हार' कहानी के आधार पर कीजिए।

उ०– कहानी 'कर्मनाशा की हार' में कुलदीप एक मुख्य पात्र है। उसके चारित्रिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) **नवयुवक–** कुलदीप 18 वर्षीय एक नवयुवक है। जिसका शरीर छरहरा था। उसके काले बाल कनपटी तक लटकते थे। वह एक सुन्दर नवयुवक था।

(ii) **जाँत-पात का विरोधी–** कुलदीप जाँत-पाँत को न मानने वाला नवयुवक है। तभी तो वह मल्लाह की विधवा पुत्री फुलमत से प्रेम करने लगता है।

(iii) **प्रेम में मग्न–** कुलदीप विधवा फुलमत से प्रेम करने लगता है। जब वह किताब खोलकर पढ़ने बैठता तो दीये की रोशनी में सफेद कपड़ों में लिपटी फुलमत खड़ी हो जाती, पुस्तक के पन्ने खुले रहते तथा वह दीये की लौ को देखता रहता।

(iv) **कायर एवं डरपोक–** कुलदीप एक कायर एवं डरपोक नवयुवक है। वह अपने व फुलमत के प्रेम के बारे में अपने दादा को नहीं बता पाता। जब भैरों पाण्डे उसे फुलमत के साथ देखकर डाटते हैं तो वह, गाँव से भाग जाता है। जिसे फुलमत और उसके बच्चे की बलि के समय भैरों पाण्डे कहते है, **''कुलदीप कायर हो सकता है वह अपने बहू-बच्चे को छोड़कर भाग सकता है, किन्तु मैं कायर नहीं हूँ। मेरे जीते-जी बच्चे और उसकी माँ का कोई बाल बाँका नहीं कर सकता .... समझे।''**

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि कुलदीप एक शिक्षित युवक था एवं वह जाँत पाँत को नहीं मानता था। परंतु उसमें समाज का सामना करने का साहस नहीं था। इसलिए वह फुलमत को गर्भावस्था में छोड़कर भाग जाता है।

5. 'कर्मनाशा की हार' कहानी के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।

उ०– **उद्देश्य–** आज के प्रगतिशील युग में भी भारतीय ग्राम रूढ़ियों, अन्धविश्वासों तथा वर्गगत ऊँच-नीच के विषैले संस्कारों में डूबे हुए हैं। प्रस्तुत कहानी में अन्धविश्वासों और रूढ़ियों का विरोध करते हुए मानवावाद और प्रगतिशलता का समर्थन किया गया है। इस घटनाक्रम में ब्राह्मण युवक का मल्लाह विधवा की लड़की से प्रेम-प्रसंग चित्रित किया है। पहले 'भैरों' इसका विरोध करते हैं, फिर 'फुलमत' को अपने छोटे भाई की पत्नी के रूप में स्वीकार करके ऊँच-नीच के वर्गगत भेद को नकारते हैं। इस प्रकार उपेक्षितों के प्रति संवेदना, रूढ़ियों का विरोध तथा मानवतावादी विचारों की स्थापना कथा का उद्देश्य है। इसी उद्देश्य को व्यक्त करते हुए भैरो पाण्डे कहते हैं— **''मैं आपके समाज को कर्मनाशा से कम नहीं समझता।''**

6. 'कर्मनाशा की हार' कहानी का अन्त मर्मान्तक एवं नाटकीय है।'' इस कथन पर प्रकाश डालिए।

उ०– श्री शिवप्रसाद द्वारा लिखित कहानी 'कर्मनाशा की हार' अपने सम्पूर्ण स्वरूप में एक ऐसे भारतीय गाँव की कहानी है, जहाँ अन्धविश्वास है, रूढ़ि है, ईर्ष्या है तथा बाहरी प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिए चिन्ताग्रस्त लोगों का समुदाय है।

फुलमत एक विजातीय विधवा है, जो कुलदीप से प्रेम करती है। इस प्रेम को कुलदीप का भाई भैरो पाण्डे समझ जाता है। भैरो पाण्डे जानता है कि कुलदीप की किसी भी हालत में फुलमत से शादी नहीं हो सकती, अत: वह अपने भाई को डाँटता है।

फुलमत कुलदीप के बच्चे की माँ बन जाती है। गाँव में यह अन्धविश्वास व्याप्त है कि कर्मनाशा के पानी का विकराल रूप किसी गाँववासी के कुकर्म का ही परिणाम है। इसी कारण गाँव वाले फुलमत और उसके मासूम बच्चे को कर्मनाशा की उफनती धारा में फेंक देना चाहते हैं। भैरो पाण्डे अन्तर्द्वन्द्व का शिकार है। उसकी आत्मा यह स्वीकार नहीं करती है कि खानदान, प्रतिष्ठा और सामाजिक मान्यताओं की बलिवेदी पर फुलमत और उसके मासूम बच्चे की बलि चढ़ा जी जाए। वह वहाँ जाकर घोषणा करता है कि फुलमत उसकी बहू है और उसे अपना लेता है। जब गाँववाले फुलमत के पापकर्म के दण्ड की बातें करते हैं तो वह कहता है कि गाँव में कौन ऐसा है, जिसने पाप नहीं किया। उनके पापों को वह गिनाने लगे तो कर्मनाशा में भी उन्हें जगह नहीं मिलेगी।

इस कहानी का अन्त विधवा पुनर्विवाह तथा अन्तर्जातीय विवाह के आदर्शों का समर्थन करता हुआ और गाँव के समर्थ वह सम्मानित कहलाने वाले लोगों की पोल खोलता हुआ; समाज में व्याप्त अन्धविश्वास पर प्रहार करता है, किन्तु कहानी का यह अन्त नाटकीयता से भरा हुआ है। कहानीकार ने कहानी की रचना करते समय इस अन्त की योजना की है, अत: यह नाटकीय हो गया है। फिर भी कहानी का अन्त मर्मस्पर्शी है और पाठकों पर अपना प्रभाव छोड़ता है।

7. 'कर्मनाशा की हार' कहानी की संवाद-योजना पर प्रकाश डालिए।

उ०– कहानी में प्राणतत्त्व की प्रतिष्ठा का कार्य संवादों के द्वारा होता है। इस कहानी के संवाद संक्षिप्त तथा पात्रानुकूल हैं। पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं को मनोवैज्ञानिक संवादों के माध्यम से सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया गया है। संवादों में पैनापन तथा चुभते व्यंग्य हैं—

''मेरे जीते-जी बच्चे और उसकी माँ का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता .... समझे।''

''पाप का फल तो भोगना ही होगा पाण्डे जी, समाज का दण्ड तो झेलना ही होगा।''

'' .... मैं आपके समाज को कर्मनाशा से कम नहीं समझता। किन्तु मैं एक-एक के पाप गिनाने लगूँ, तो यहाँ खड़े सारे लोगों को परिवार समेत कर्मनाशा के पेट में जाना पड़ेगा। ....।''

इस प्रकार संवाद की दृष्टि से 'कर्मनाशा की हार' एक सफल रचना है।

8. 'कर्मनाशा की हार' कहानी की भाषा-शैली की दृष्टि से समीक्षा कीजिए।

उ०– शिल्प की दृष्टि से यह एक सफल रचना है। शिवप्रसाद सिंह ने बाढ़ का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। भाषा में ग्रामीण शब्दों

के साथ-साथ उर्दू के शब्द भी प्रयुक्त किये गये हैं;— जैसे- हौंसला, जान, जार-बेजार इत्यादि। मुहावरों तथा लोकोक्तियों को प्रयोग भी सुन्दर ढंग से हुआ है; जैसे 'न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी', 'कालिख पोतना', 'खाक-छानना' इत्यादि। एक उदाहरण द्रष्टव्य है— **''परलय न होगी, तब क्या बरक्कत होगी? हे भगवान् जिस गाँव में ऐसा पाप करम होगा वह बहेगा नहीं, तब क्या बचेगा।''** माथे के लुग्गे को ठीक करती धनेसरा चाची बोली, **''मैं तो कहूँ कि फुलमतिया ऐसी चुप काहे है। राम रे राम, एक ने पाप किया, सारे गाँव के सिर बीता। उसकी माई कैसी सतवन्ती बनती थी। आग लाने गयी तो घर में जाने नहीं दिया। मैं तो तभी छनगी कि हो न हो दाल में कुछ काला है।''**

शिल्प की दृष्टि से कहानी विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। शिल्प की विशेषताओं में फुलमत के कारुणिक वियोग का चित्रण है। फुलमत विधवा है। पिछले दर्द को भुलाने के लिए उसने कुलदीप से प्रेम-सम्बन्ध बनाये, परन्तु वह भी उसे असहाय छोड़कर भाग गया। फुलमत की दर्दीली हूक भैरो को सुनाई पड़ती है— **''मोहे जोगनी बनाके कहाँ गइले रे जोगिया?''** कथाशिल्प में काव्य द्वारा दर्द पैदा करने का प्रयोग सफल रहा है। कथा में चित्रण सजीव है तथा उपमाओं का यथोचित उपयोग हुआ है। इस प्रकार यह कहानी भाषा-शिल्प की दृष्टि से एक सफल रचना है।

9. देशकाल और वातावरण की दृष्टि से 'कर्मनाशा की हार' कहानी की विवेचना कीजिए।

उ०– वातावरण तथा देश-काल के प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से यह कहानी एक सफल रचना है गाँव में ऊँच-नीच का भेद, युवक-युवतियों का प्रेम तथा धनेसरा चाची और मुखिया जैसे लोगों की कमी आज भी नहीं है। बाढ़ का चित्रण बड़ा सजीव बन पड़ा है। 'कर्मनाशा' को प्रतीकात्मक रूप से चित्रित करने में कथाकार सफल रहे हैं। इस प्रकार कहानी-कला के तत्त्वों के आधार पर प्रस्तुत रचना में देश-काल और वातावरण तत्त्व का सुन्दर निर्वाह हुआ है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है— **''पूरबी आकाश पर सूरज दो लट्ठे ऊपर चढ़ आया था। काले-काले बादलों की दौड़-धूप जारी थी, कभी-कभी हलकी हवा के साथ बूँदें बिखर जातीं। दूर किनारे पर बाढ़ के पानी की टकराहट हवा में गूँज उठती।''**

पाठ्येतर सक्रियता

उ०– छात्र स्वयं करें।

नाटक

नोट– नाटकों के लिए पाठ्यपुस्तक की पृष्ठ संख्या 237 से 267 तक का अध्ययन करें।

खंडकाव्य

नोट– खण्डकाव्यों के लिए पाठ्यपुस्तक की पृष्ठसंख्या 268 से 310 तक का अध्ययन करें।

द्वितीय प्रश्न-पत्र

संस्कृत दिग्दर्शिका

प्रथमः पाठः चतुरश्चौरः

अभ्यास प्रश्न

अवतरण अनुवादात्मक प्रश्न

निम्नलिखित गद्यावतरणों का ससन्दर्भ हिन्दी में अनुवाद कीजिए–

1. आसीत् काञ्ची .... विचक्षणाः॥

[आसीत् = थी; था, तत्रैकदा > तत्र + एकदा = वहाँ एक बार, कस्यापि > कस्य + अपि = किसी का, चोरयन्तश्चत्वारश्चौराः > चोरयन्तः + चत्वारः + चौराः = चुराते हुए चार चोर, सन्धिद्वारि = सेंध के द्वार पर, प्रशास्तृपुरुषैः = राजपुरुषों या सिपाहियों द्वारा, घातकपुरुषान् = जल्लादों को, आदिष्टवान् = आदेश दिया, विमर्द = दमन करना, बुधा = विद्वानों ने, दण्डनीति-विचक्षणाः = दण्डनीति में, कुशल]

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'चतुरश्चौरः' नामक पाठ से उद्धृत है।

अनुवाद– काँची नाम की (एक) राजधानी थी। वहाँ सुप्रताप नाम का राजा था। वहाँ एक दिन किसी धनिक का धन चुराते हुए चोरों को सेंध के द्वार पर सिपाहियों ने जंजीर से बाँधकर राजा को सौंप दिया और राजा ने जल्लादों को आदेश दिया— "अरे! जल्लादों! इन्हें ले जाकर मार दो।" क्योंकि—

दण्डनीति में कुशल विद्वान् राजा का कर्त्तव्य सज्जनों को बढ़ाना (पालना) तथा दुष्टों को दण्ड देना बताते हैं।

2. ततो राजाज्ञया .... नरः॥

[त्रयश्चौराः > त्रयः + चौराः = तीन चोरों को, शूलम् आरोप्य हताः = सूली पर चढ़ाकर मार दिए गए, प्रत्यासन्नेऽपि > प्रत्यासन्ने + अपि = समीप होने पर भी, विधीयते = मारा जाता हुआ, भूभुजा = राजा के द्वारा, प्रत्यायति = लौट आता है, प्रतीकारपरः = उपाय करने में लगा]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– तब राजा की आज्ञा से तीन चोर सूली पर चढ़ाकर मार दिये गये। चौथे ने सोचा—

मृत्यु निकट होने पर भी (मनुष्य को अपनी) रक्षा का उपाय करना चाहिए। उपाय के सफल होने पर रक्षा हो जाती है (और)निष्फल (व्यर्थ) होने पर मृत्यु से अधिक (बुरा तो) और कुछ (होने वाला) नहीं। रोग से पीड़ित होने या राजा द्वारा मरवाये जाने पर भी मनुष्य यदि (अपने बचाव के) उपाय में तत्पर हो, तो यम के द्वार से (मृत्यु के मुख से) भी लौट आता है।

3. चौरोऽवदत् .... मया दातव्या?

[राजसन्निधानं = राजा के पास, यतोऽहमेकां > यतः + अहम् + एकाम् = क्योंकि मैं एक, मर्त्यलोके = पृथ्वी पर; संसार में, पापपुरुषाधम > पाप-पुरुष + अधम = पापी पुरुषों में नीच, तवाधमस्य > तव + अधमस्य = तुझ अधम नीच की, पूजायितव्या = सम्मानित होगी, कर्तुमिच्छथ > कर्तुम् + इच्छथ = करना चाहते हो, ज्ञातुमिच्छति > ज्ञातुम् + इच्छति = जानना चाहता है, गृह्णातु = ग्रहण करे, दातव्या = देने योग्य]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– चोर बोला— "अरे वधिकों! तीन चोर तो तुम लोगों ने राजा की आज्ञा से मार ही दिये, किन्तु मुझे राजा के पास ले जाकर मारना; क्योंकि मैं एक महती (बड़ी महत्त्वपूर्ण) विद्या जातना हूँ। मेरे मरने पर वह विद्या लुप्त हो जाएगी। राजा उस (विद्या) को लेकर (सीखकर) मुझे मार दे, जिससे वह विद्या मृत्युलोक (पृथ्वी) में तो रह जाये।

जल्लादों ने कहा— 'अरे चोर! पापी लोगों (पापियों) में नीच! तू वध-स्थान पर लाया जा चुका है। क्या तू और जीना चाहता है? तुझ (जैसे) अधम की विद्या राजा के द्वारा कैसे पूजनीय होगी?' चोर ने कहा— 'अरे! जल्लादों! क्या बोलते (बकते) हो? राजा के कार्य में विघ्न डालना चाहते हो? तुम जाकर निवेदन करो। यदि राजा उस विद्या को जानना चाहता है तो ले-ले। वह विद्या मैं तुम्हें कैसे दे दूँ?'

4. ततश्चौरस्य .... न वपति?

[राजकार्यानुरोधेन > राज -कार्य + अनुरोधेन = राजकाज के अनुरोध से, राज्ञे निवेदिता = राजा से निवेदन किया, सकौतुकं = कौतूहल से, सर्षपपरिमाणानि = सरसों के बराबर, उप्यन्ते = बोए जाते हैं, कन्दल्यः = अंकुर, रक्तिकामात्रेण = रत्ती-मात्र से,

पलसंङ्ख्याकानि = पल नामक परिमाण की संख्या में, देव! = हे देव आप!, कस्यासत्यभाषणे > कस्य + असत्यभाषणे = किसकी झूठ बोलने में, शक्ति: = सामर्थ्य, व्यभिचरितं = असत्य या गलत, ततश्चौर: > तत: + चौर: = तब चोर ने, दाहयित्वा = तपाकर, परमनिगूढ़स्थाने = अत्यन्त गुप्त स्थान में, भूपरिष्कारम = भूमि की सफाई, वप्ता = बोने वाला, सुवर्णवपने = सोना बोने में, सुवर्णवपनाधिकारों नास्ति > सुवर्ण: + वपन + अधिकार + न: + अस्ति = सोना बोने का अधिकार नहीं है]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– तत्पश्चात् चोर के कहने से और राजकाज के लिहाज से उन्होंने यह बात रोजा से कही और राजा ने कौतूहलवश चोर को बुलाकर पूछा– 'रे चोर! तू कौन-सी विद्या जानता है?' चोर ने कहा– 'सरसो' के बराबर सोने के बीज बनाकर भूमि में बोए जाते हैं और एक माह में ही अंकुर और फूल आ जाते हैं। वे फूल सोना ही होते हैं। रत्तीमात्र बीज से फल (नामक परिमाण) की संख्या में बीज हो जाते हैं। उसे आप प्रत्यक्ष देख लें। राजा ने कहा– 'रे चोर! क्या यह सत्य है?' चोर ने कहा– 'आपके सामने झूठ बोलने की सामर्थ्य किसकी है? (अर्थात् आपके सामने झूठ बोलने को किसी में सामर्थ नहीं है।) यदि मेरा वचन असत्य हो, तो एक माह में मेरा भी अन्त हो जाएगा।' राजा ने कहा– 'हे भद्र! सोना बोओ।'

तब चोर ने सोने को तपाकर, सरसों के आकार के बीच बनाकर राजा के अन्त:पुर के क्रीड़ा-सरोवर के किनारे पर अत्यन्त गुप्त स्थान (एकान्त स्थान) में भूमि की सफाई करके कहा– 'हे देव! खेत और बीज तैयार हैं, कोई बोनेवाला दीजिए।' राजा ने कहा– 'तुम ही क्यों नहीं बोते?' चोर ने कहा– 'महाराज! यदि सोना बोने का मेरा अधिकार होता तो इस विद्या के होते हुए मैं दु:खी क्यों होता? किन्तु चोर को सोना बोने का अधिकार नहीं है। जिसने कभी कुछ भी न चुराया हो, वह बोए। महाराज (आप) ही क्यों नहीं बोते?'

5. **राजाऽवदत् .... चोरिता:।**

[चारणेभ्यो = चारणों (भाटों) को, तातचरणाम् = पिता जी का, राजोप जीविन: > राजा + उपजीविन = राजा के सहारे जीने वाले, अस्तेयिन: = चोरी न करने वाले, मोदका: = लड्डू,]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– राजा ने कहा– ''मैंने चारणों (भाटों) को देने के लिए पिताजी का धन चुराया था।' चोर ने कहा– 'तब मन्त्रिगण बोएँ।' मन्त्रियों ने कहा– 'राजा के सहारे जीतेवाले हम लोग, फिर चोरी ने करनेवाले कैसे हो सकते हैं? चोर ने कहा– 'तो धर्माधिकारी बोए।' धर्माधिकारी ने कहा– 'मैंने बचपन में (अपनी) माता के लड्डू चुराए थे।

6. **चौरोऽवदत् .... गत:।**

[तच्चौरवचनं > तत् + चोरवचनम = चोर के उस वचन को, हास्यरसापनीतक्रोधो > हास्य-रस + अपनीत + क्रोध: = हास्य रस से क्रोध दूर होने पर, प्रस्तावे = समय-समय पर; अवसर पर, धृत: = रख लिया, समुच्छिद्य = काटकर, वल्लभतां गत: = प्रिय हो गया।]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– चोर बोला– 'यदि तुम सब चोर हो, तो मैं अकेला ही क्यों मारे जाने योग्य हूँ?' चोर के उस वचन को सुनकर समस्त सभासद हँस पड़े। हास्य रस से (हँसी के कारण क्रोध दूर हो जाने पर) राजा ने भी हँसकर कहा– 'रे चोर! तू मारने योग्य नहीं है। हे मन्त्रियों! दुर्बुद्धि होते हुए भी यह चोर बुद्धिमान् और हास्य रस में प्रवीण है। अत: यह मेरे ही निकट रहे। समय-समय पर मुझे हँसाए और खिलाए (मेरा मनारंजन करे)।' ऐसा कहकर राजा ने उस चोर को अपने पास रख लिया।

चोर से अधिक कोई अधम नहीं होता, परन्तु वह (चोर) हँसी और विद्या के कारण मृत्यु के जाल को काटकर राजा को प्रिय हो गया।

सूक्ति-व्याख्या संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित सूक्तिरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

1. **राजधर्म बुधा प्राहुर्दण्डनीति-विचक्षणा:।।**

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'चतुरश्चौर:' नामक पाठ से उद्धृत है।

प्रसंग– सैनिकों द्वारा पकड़कर लाए गए चोरों को मृत्युदण्ड देने का आदेश देता हुआ राजा जल्लादों को राजधर्म के विषय में यह सूक्ति कहता है।

व्याख्या– दण्डनीति में कुशल विद्वान राजधर्म अर्थात् राजाओं का कर्त्तव्य बताते हुए कहते हैं कि वास्तव में आदर्श राजा वही होता है जो सज्जनों का सभी प्रकार से पालन-पोषण करता है और उन्हें सर्वविध सरंक्षण प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त वह दुष्टों और अपराधियों को कठोर-से-कठोर दण्ड देकर उनको हतोत्साहित करता है अथवा उनका समूल विनाश कर देता है। जो भी राजा इस कर्त्तव्य का निर्वाह करता है, वही अपने राजधर्म का भी उचित निर्वाह करता है।

2. प्रत्यासन्नेऽपि मरणे रक्षोपायो विधीयते।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– मृत्युदण्ड सुनाये गये चारों चोरों में चौथे चोर को जब जल्लाद वधस्थल पर ले आये तो वह अपने प्राण बचाने का उपाय सोचता हुआ यह सूक्ति कहता है।

व्याख्या– इस सूक्ति का आशय यह है कि मृत्यु सिर पर भी खड़ी हो तो भी मनुष्य को निराश होकर नहीं बैठ जाना चाहिए, वरन् अपनी रक्षा का उपाय करना चाहिए अर्थात् कितना ही बड़ा संकट क्यों न हो, मनुष्य को निराश कदापि नहीं होना चाहिए, अपितु उसमें से बच निकलने का उपाय खोजना चाहिए। यदि उपाय सफल हो गया तो रक्षा हो जाएगी, यदि विफल हो गया तो संकट यथापूर्व बना रहता है। अत: व्यक्ति को निराशा को त्यागकर पूरी आशा के साथ अपनी रक्षा का उपाय करना चाहिए; क्योंकि निराशा तो साक्षात् मृत्यु है।

3. उपाये सफले रक्षा निष्फले नाधिकं मृते:॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में बताया गया है कि उपाय के सफल होने पर रक्षा हो जाती है।

व्याख्या– व्यक्ति को अत्यधिक परेशानी आने पर भी उससे हार नहीं माननी चाहिए, अपितु उससे जूझते रहना चाहिए और सफल होने के लिए सतत प्रयास करते रहना चाहिए। यदि प्रयास करते रहने पर भी असफलता ही मिलती है तो भी उसे निराश न होकर नये तरीके से, नये जोश से प्रयास करना चाहिए। इस बात के अनेकानेक उदाहरण हमारे समक्ष हैं जिनमें कई बार असफल होने के बाद भी कार्य की सिद्धी के लिए निरन्तर प्रयासरत लोगों ने अन्तत: सफलता का ही वरण किया है। प्रस्तुत कथा भी यही शिक्षा देती है। वधस्थल पर लाये गये चार चारों में से तीन ने अपने बचाव का कोई उपाय नहीं किया और वे मृत्यु को प्राप्त हुए, लेकिन चौथे चोर ने बचाव का उपाय किया और सफल भी हुआ। प्रस्तुत सूक्ति निरन्तर कर्म में लगे रहने का भी सन्देश देती है।

4. प्रत्यायति यमद्वारात् प्रतीकरपरो नर:॥

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में बताया गया है कि प्रयास में लगा हुआ व्यक्ति मृत्यु-मुख से भी बच जाता है।

व्याख्या– यदि व्यक्ति अपनी रक्षा में लगा रहे तो वह साक्षात् मृत्यु के मुख से भी बचकर निकल आता है। कहने का आशय यह है कि व्यक्ति को किसी भी स्थिति में निराश न होकर, आत्मविश्वास न खोकर, संकट से उबरने का उपाय सोचते रहना चाहिए। ऐसा आत्मविश्वासी एवं दृढ़चित्त-व्यक्ति आसन्न मृत्यु (या विपत्ति) से भी बच निकलता है, किन्तु जो पहले ही निराश या हतोत्साहित हो जाता है, वह बचने की पूरी सम्भावना रहते हुए भी बच नहीं पाता। अत: मनुष्य को कष्ट-निवारण हेतु प्रयत्न अवश्य करना चाहिए। प्रयत्न करने पर वह बड़ी-से-बड़ी विपत्ति का भी सामना कर सकता है।

5. न चौरादधम: कश्चित्।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में बताया गया है कि चोर सबसे बड़ा पापी होता है।

व्याख्या– यदि कोई व्यक्ति किसी प्रकार की चोरी करता है तो उससे बड़ा पापी (अधम) संसार में दूसरा कोई नहीं है। वह चोरी करकर अपने अस्तेय के व्रत को तोड़ता है तथा अपना धर्म व नीयत भ्रष्ट कर लेता है। तथा दण्ड का पात्र बन जाता है।

पाठ पर आधारित प्रश्न

1. राज्ञ: सुप्रतापस्य राजधानी क: आसीत्?

उ०– राज्ञ: सुप्रतापस्य राजधानी काञ्ची आसीत्।

2. काञ्ची कस्य राजधानी आसीत्?

उ०– काञ्ची राज्ञ: सुप्रतापस्य राजधानी आसीत्।

3. प्रशास्तृपुरुषै: चौरा: कुत्र गृहीत्वा:?

उ०– प्रशास्तृपुरुषै: चौरा: सन्धिद्वारे गृहीत्वा:।

4. चौरा: किम् अचोरयन्?

उ०– चौरा: धनिकस्य धनम् अचोरयन्।

5. राज्ञा घातकापुरुषान् किम आदिशत्?

उ०– राजा घातकापुरुषान् आदिशत्, 'इमान चौरान् नीत्वा मारयत्' इति।

6. चतुर्थेन चौरेण किं चिन्तितम्?

उ०– चतुर्थेन चौरेण रक्षोपाय: चिन्तितम्।

7. कीदृश: नर: यमद्वारात् प्रत्यायति?

उ०– प्रतीकारपरो नर: यमद्वारात् प्रत्यायति।

8. राजा सुकौतकं चौरमाहूय किमपृच्छत्?

उ०– राजा सुकौतकं चौरमाहूय 'कां विद्यां जानासि' इति अपृच्छत।

9. सुवर्ण तपने कस्य अधिकार: नास्ति?

उ०– सुवर्ण तपने चौरस्य अधिकार: नास्ति।

10. राज्ञा किं चोरितमासीत्?

उ०– राज्ञा चारणदेभ्यो दातुं पितु: धनं चोरितामासीत।

11. धर्माध्यक्ष किं अकथयत्?

उ०– धर्माध्यक्ष कथयत् मया बाल्यदशायां मातुर्मोदकाश्चोरिता:।

12. राज्ञा कस्य स्वसन्निधाने धृत:?

उ०– राज्ञा चौरा: स्वसन्निधाने धृत:।

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए–

1. सुप्रताप नामक राजा था।

अनुवाद– सुप्रतापस्य नामक:राज्ञ: आसीत्।

2. तीन चोरों को जल्लादों ने मार डाला।

अनुवाद– त्रयश्चौरा: घातकपुरुषा: हता:।

3. प्रतिकार करने वाला मनुष्य यम के द्वार से भी लौट आता है।

अनुवाद– प्रतिकारपरो नर: यमद्वारात् प्रत्यायति।

4. मैं एक महान विद्या जानता हूँ।

अनुवाद– अहं एकां महतीं विद्यां जानामि।

5. हम सब वाराणसी जाएँगे।

अनुवाद– वयं वाराणसीं गमिष्यमि:।

6. वह कलम से लिखता है।

अनुवाद– स: कलमेन् लिखति।

7. हिमालय भारतवर्ष की रक्षा करता है।

अनुवाद– हिमालय: भारतवर्षं रक्षति।

8. चौथा चौर अपने बुद्धि बल से बच गया।

अनुवाद– चतुर्थश्चौर: स्वबुद्धिबलेन रक्षित:।

9. राजा ने उन्हें मृत्युदण्ड दिया।

अनुवाद– राजा तेभ्य: मृत्युदण्डमद्दात्।

10. शिक्षा जीवन के लिए ही होती है।

अनुवाद– शिक्षा जीवनार्थायैव भवति।

संस्कृत व्याकरण संबंधी प्रश्न–

1. निम्नलिखित शब्द रूपों में विभक्ति एवं वचन बताइए–

उ०–

शब्द रूप	**विभक्ति**	**वचन**
राज्ञे	चतुर्थी	एकवचन
माम्	द्वितीया	एकवचन
चतुर्थेन	तृतीया	एकवचन
विद्यया	तृतीया	एकवचन
युष्माभि:	तृतीया	बहुवचन
धनिकस्य	षष्ठी	एकवचन
वचनै:	तृतीया	बहुवचन
यूयम्	प्रथमा	बहुवचन

2. निम्नलिखित समस्तपदों का विग्रह कीजिए तथा समास का नाम भी बताइए–

उ०–

समस्तपद	**समास-विग्रह**	**समास का नाम**
सन्धिद्वारि	सन्धि:द्वार:	तत्पुरुष समास
त्रयश्चौरा:	त्रय: चौरा:	कर्मधारय समास
शूलमारोप्य	शूलं आरोप्य	तत्पुरुष समास
राजकार्ये	राज्ञ:कार्ये	तत्पुरुष समास
मासामात्रैणैव	मासमात्रैव एव	तत्पुरुष समास
सुर्वणबीजनि	सुवर्षस्य बीजानि	तत्पुरुष समास
राज्ञाज्ञया	राज्ञ: आज्ञाया	तत्पुरुष समास
तत्रैकदा	तत्रएकदा	अव्ययीभाव समास

3. निम्नलिखित धातु-रूपों में प्रयुक्त प्रत्यय लिखिए–

उ०–

धातु-रूप	**प्रत्यय**	**धातु**
आदिष्टवान	क्तवतु	आ + दिश्
मारणीयम्	अनीयर्	मृ
दाहायित्वा	कत्वा	दाह्
पूजायितव्या	तव्यत्	पूजयित
ज्ञातव्या	तव्यत्	ज्ञा

4. निम्नलिखित का सन्धि विच्छेद कीजिए–

उ०–

सन्धि शब्द	**सन्धि विच्छेद**	**सन्धि नाम**
शूलमारोप्य	शूलम् + आरोप्य	अनुस्वार सन्धि
सुवर्णान्येव	सुवर्ण + अन्य + इव	दीर्घ, वृद्धि सन्धि
राजकार्यानुरोधेन	राजकार्य + अनुरोधेन	दीर्घ सन्धि
मृत्युपाशं	मृत्यु + पाशं	प्रकृतिभावं सन्धि
ममैव	मम + एव	वृद्धि सन्धि
मासमात्रैणैव	मासमात्रैण + एव	वृद्धि सन्धि
यतोऽहम्	यत: + अहम्	उत्व सन्धि
त्रयश्चौरा:	त्रय: + चौरा:	सत्व सन्धि
मासान्ते	मासां + ते	परसवर्ण सन्धि
राजाज्ञया	राज्ञा + आज्ञया	दीर्घ सन्धि
रक्षोपाय:	रक्षा + उपाय:	वृद्धि सन्धि

5. निम्नलिखित धातु-रूपों में मूलधातु एवं पुरुष, वचन स्पष्ट कीजिए–

उ०–

धातु रूप	**मूल धातु**	**पुरुष**	**वचन**
गृहणातु	ग्रह्	प्रथम	एकवचन
तिष्ठतु	स्था	प्रथम	एकवचन
मारयत	मृ	मध्यम	बहुवचन
अवदत्	वद्	प्रथम	एकवचन
अपृच्छत्	प्रच्छ	प्रथम	एकवचन
भविष्यति	भू	प्रथम	एकवचन
वपसि	वप्	प्रथम	एकवचन
जानासि	ज्ञा्	मध्यम	एकवचन
विधीयते	वि + धा	प्रथम	एकवचन
इच्छासि	इष्	मध्यम	एकवचन

पाठ्येतर सक्रियता

उ०– छात्र स्वयं करें।

द्वितीयः पाठः सुभाषचन्द्रः

अभ्यास प्रश्न

अवतरण अनुवादात्मक प्रश्न

निम्नलिखित गद्यावतरणों का ससन्दर्भ हिन्दी में अनुवाद कीजिए–

1. सप्तनवत्युत्तराष्टादशशततमेऽब्दे ....स्वीकृतवान्।

[सप्तनवत्युत्तराष्टादशशततमेऽब्दे > सप्त + नवति + उत्तर + अष्टादश- शत-तमे + अब्दे = सन् 1897 ई० में, जनवरीमासस्य = जनवरी महीने की, त्रयोविंशतितिथौ = तेईस तारीख को, अलञ्चकार = अलंकृत किया, राजकीय-प्राड्विवाक: = सरकारी वकील, भृत्यत्वम् = नौकरी]

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'सुभाषचन्द्रः' पाठ से उद्धृत है।

अनुवाद– सन् अठारह सौ सत्तानबे के जनवरी महीने की तेईस तारीख (अर्थात् 23 जनवरी, व 1897 ई०) को श्री सुभाष ने अपने जन्म से बंगाल को अलंकृत किया। इनके पिता जानकीनाथ वसु सरकारी वकील थे। सुभाष बाल्यकाल से ही बुद्धिमान्, धैर्यशाली, साहसी और प्रतिभासम्पन्न थे। इन्होंने कलकत्ता नगर में शिक्षा प्राप्त करके सम्मानित आई०सी०एस० की परीक्षा उत्तीर्ण करके भी विदेशी शासन की नौकरी स्वीकार नहीं की।

2. आङ्ग्लशासकानां .... सम्पादिता।

[भीता: = डरे हुए, अक्षिपन् = डाला, सप्तत्रिंशदुत्तरैकोनविंशतिशततमे > सप्तत्रिंशत + उत्तर + एकोनविंशति + शत-तमे = सन् 1937 ई०, वृत: = वरण किए गए; चुने गए, पञ्चाशद्वृषभयुक्ते = पचास बैलों से युक्त]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– अंग्रेज शासकों का भारत पर अधिकार नहीं है, वे विदेशी यहाँ क्यों शासन करते हैं? इस चिन्ता से ग्रस्त हो इन्होंने अपने प्रयत्न से भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के लिए बहुत-से भारतीयों को अपने पक्ष में कर लिया। इस प्रकार इनके उग्र विचारों से भयभीत अंग्रेज शासकों ने इन्हें बार-बार जेल में डाला, परन्तु इस वीर ने स्वतन्त्रता के अपने प्रयास को नहीं छोड़ा।

1937 ई० में त्रिपुरा के कांग्रेस-अधिवेशन में इन्हें सर्वसम्मति से सभापति चुना गया और नागरिकों ने इनके सम्मान में पचास बैलों से युक्त रथ में इनकी शोभायात्रा निकाली।

3. अहिंसामात्रेण .... बहिर्गतः।

[क्रान्तिपक्षमङ्गीकृतवान् > क्रान्ति-पक्षम + अङ्गीकृतवान = क्रान्ति के पक्ष को स्वीकार किया, अस्योग्रक्रान्ते: = इनकी उग्र क्रान्ति से, पुनरिमं > पुन: + इमम = इन्हें; फिर, व्यदीर्यत = टुकड़े-टुकड़े हो गया; फट गया, कमायमान: = चाहते हुए, संस्मृत्य = स्मरण करके]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– "केवल अहिंसा से स्वतन्त्रता-प्राप्ति का प्रयास कल्पनामात्र है"— ऐसा निश्चय करके इन्होंने क्रान्ति के पक्ष को स्वीकार किया। इनकी उग्र क्रान्ति से डरकर अंग्रेज शासकों ने इन्हें फिर कलकत्ता (कोलकात्ता) नगर की जेल में डाल दिया। इस कष्टकर (अर्थात् दु:खद) वृत्तान्त को सुनकर सुभाष से प्रेम करनेवाले भारतीयों का हृदय फट (टुकड़े-टुकड़े हो) गया। एक बार रात में कारागार-निरीक्षकों के सो जाने पर यह वीर सहसा उठकर— "दुष्ट के साथ दुष्टता का व्यवहार करना चाहिए"— इस नीति का अनुसरण कर अपनी इष्टसिद्धि को चाहते हुए सिद्धिदात्री जगदम्बा का स्मरण करके कारगार से बाहर निकल गया।

4. प्रातः सुभाषमनवलोक्य .... देशं गतः।

[भृशमन्विष्यापि > भृशम् + अन्विष्य + अपि = बहुत खोज करके भी, वेषपरिवर्तनं विधाय = वेश बदलकर, वाणिजो गेहे > वणिज: + गेहे = व्यापारी या बनिये के घर में, अवधानपूर्वकं = सावधानी से]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– प्रात:काल सुभाष को न देखकर सभी कारगार-निरीक्षक आश्चर्यचकित हो गए, बहुत खोज करने पर भी वे उनको नहीं पा सके। कारगार से बाहर आकर सुभाष वेश बदलकर पेशावर नगर चले गए। वहाँ उत्तमचन्द्र नाम के वणिक् (बनिये या व्यापारी) के घर कुछ समय तक रहे। तत्पश्चात् अंग्रेज शासकों के सावधानी से निरीक्षक करने पर भी (बचकर) 'जियाउद्दीन' नाम से 'जर्मन' देश चले गए। वहाँ के हिटलर नाम के शासक से मैत्री करके वायुयान से जापान देश गए।

5. मलयदेशे .... इत्यासीत्।

[अस्यास्मिन् > अस्य + अस्मिन् = इनके इस, हिन्दुयवनादिसर्वसम्प्रदाया वलम्बिन: > हिन्दु-यवन + आदि-सर्व-सम्प्रदाय +

अवलम्बिन: = हिन्दु-मुसलमान आदि सब सम्प्रदायों को मानने वाले, राष्ट्रानुरागिण: > राष्ट्र + अनुरागिण: = राष्ट्रप्रेमी, अभिवादनपदम् = अभिवादन; नमस्कार का शब्द, उद्घोषश्च = उद्घोष: + च = और नारा]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– मलय (मलाया) देश में अपने संगठन के कौशल से इन्होंने 'आजाद हिन्द फौज' नामक सेना का गठन किया। इनके इस गठन में हिन्दू-मुसलमान आदि समस्त सम्प्रदायों को माननेवाले (तथा) राष्ट्र से प्रेम करने वाले वीरवर सम्मिलित थे। इस गठन के अभिवादन का शब्द 'जयहिन्द' और नारा 'दिल्ली चलो' था।

6. यूयं मह्यं .... अर्पितानि।

[रक्तमर्पयत > रक्तम् + अर्पयत = खून दो, त्वरितम् > त्वरितम् + एव = शीघ्र ही; तुरन्त ही, अवतीर्ण: = उतर गया, तस्मिन्नेव > तस्मिन् + एव = उसी समय, सर्वणसूत्राण्यपि > सुवर्णसूत्राणि + अपि = सुवर्णसूत्र (मंगलसूत्र) भी, सुभाषचरणयोरर्पितानि > सुभाष-चरणयो: + अर्पितानि = सुभाष के चरणों में अर्पित कर दिए]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– जिसने भी सुभाष के मुख से— "तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें स्वतन्त्रता दूँगा"— ऐसे रोमांचकारी शब्द सुने, वह तुरन्त ही (शीघ्र ही) उनके साथ स्वतन्त्रता-संग्राम में सैनिक के रूप में उतर गया। उसी समय ब्रह्मा (बर्मा; म्यामांर) देश की नारियों ने अपने आभूषणें के साथ सौभाग्यसूचक सुवर्णसूत्र (मंगलसूत्र) भी सुभाष के चरणों में अर्पित कर दिए।

7. दिल्ली चलत .... सुनिश्चितम्।

[नातिदूरे > न + अतिदूरे = अधिक दूर नहीं है, प्रस्थिता: = प्रस्थान किया, बन्दीकृता: = बन्दी बना लिए गए, सप्तचत्वारिंशदुत्तरैकोनविंशातिशततेमेऽब्दे > सप्तचत्वारिंशत् + उत्तर + एकोनविंशति-शत-तम = 1947 ई० को। अगस्तमासस्य पञ्चदशतिथौ = अगस्त महीने की पन्द्रह तारीख को; 15 अगस्त को]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– सुभाष के— "दिल्ली चलो, दिल्ली बहुत दूर नहीं है"— इन उत्साहपूर्ण वचनों से सैनिकों ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। इसी बीच दुर्भाग्यवश जापान देश की पराजय के कारण सुभाष के सारे सैनिक अंग्रेज शासकों के द्वारा बन्दी बना लिए गए।

इस वीर श्रेष्ठ की स्वतन्त्रता-प्राप्ति की कामना सन् 1947 ई० में 15 अगस्त को पूर्ण हुई। आज हमारे बीच विद्यमान न होने पर भी सुभाष— "जिसकी कीर्ति है, वह जीवित है"— इस कथन के अनुसार सदैव अमर हैं; ऐसा सुनिश्चित है।

सूक्ति-व्याख्या संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित सूक्तिरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

1. अहिंसामात्रेण स्वातन्त्र्यप्राप्ते: प्रयास: कल्पनामात्रमेव।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'सुभाषचन्द्र:' नामक पाठ से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में बताया गया है कि मात्र अहिंसा से ही स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती।

व्याख्या– भारतीय स्वातन्त्र्य-आन्दोलन में मुख्य रूप से दो विचारधाराओं के लोग संलग्न थे। इनमें से एक विचारधारा के लोग गाँधी जी के नेतृत्व में मात्र अहिंसा से स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए प्रयास कर रहे थे। दूसरी विचारधारा के लोग सुभाषचन्द्र बोस के समर्थक थे, जो कि मात्र अहिंसा के बल पर स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए किये जाने वाले प्रयास को कल्पना ही मानते थे। ये लोग सशस्त्र क्रान्ति को उचित समझते थे। इनका मानना था कि दुष्ट को दुष्टता से ही जीता जा सकता है। राम यदि रावण के विरुद्ध धनुष न उठाते, कृष्ण यदि अर्जुन को कौरवों के विरुद्ध युद्ध करने के लिए प्रेरित न करते तो आज समग्र भारत में राक्षसत्व और अधर्मी जन ही शासन कर रहे होते। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सुभाषचन्द्र बोस की सशस्त्र क्रान्ति का विचार कुछ अंशों में उचित ही था।

2. शठे शाठ्यं समाचरेत्।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– अंग्रेजों की सुरक्षा-व्यवस्था को झुठलाते हुए सुभाष जेल से भाग निकले। इसी विषय में यह सूक्ति कही गयी है।

व्याख्या– दुष्ट आदमी के साथ सज्जनता का व्यवहार करना मूर्खता है; क्योंकि नीच व्यक्ति अपनी नीचता कदापि नहीं छोड़ता। उसके प्रति सज्जनता दिखाने से वह उसका दुरुपयोग कर और अधिक हानि पहुँचाता है। इसीलिए कहा गया है कि 'पय: पानं भुजङ्गानां केवलं विषवर्धनम्' अर्थात् साँपों को दूध पिलाने से उनका विष ही बढ़ता है। इसीलिए दुष्ट को उसी के हथियार अर्थात् दुष्टता से ही दबाया जा सकता है। इस कारण विषस्य विषमौषधम्' (विष की औषध विष ही है) तथा 'काँटे से काँटा निकलता है' जैसी उक्तियाँ प्रचलित हुईं। अत: दुष्ट को किसी दुष्ट चाल से ही परास्त या विफल मनोरथ किया जा

सकता है, सज्जनता से नहीं। इसी का आचरण करते हुए सुभाष; दुष्ट अंग्रेजों को धोखा देकर जेल से भाग गये। दुष्ट मनुष्य के विषय में गोस्वामी तुलसीदास जी की प्रसिद्ध उक्ति है—

नीच निचाई नहिं तजै, सज्जनहूँ के संग।
तुलसी चन्दन बिटप बसि, विष नहिं तजत भुजंग।।

3. यूयं मह्यं रक्तमर्पयत्, अहं युष्मभ्यं स्वतंत्रता दास्यामि।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक वाक्य ''तुम लोग मूझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा।'' श्री सुभाष चन्द्र बोस का कथन है।

व्याख्या– सुभाषचन्द्र बोस स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए संघर्ष को आवश्यक मानते थे। उनका मानना था कि बिना युद्ध के अंग्रेजों को भारत से नहीं भगाया जा सकता। इसीलिए वे लोगों को युद्ध के लिए अर्थात् सशस्त्र क्रान्ति के लिए प्रेरित किया करते थे और कहा करते थे कि तुम मुझे रक्त दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा। उनके कहने का आशय यह था कि जब तक देशवासी अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध करके अपने प्राणों का बलिदान नहीं कर देते, तब तक उनकी आने वाली पीढ़ियाँ स्वतन्त्रता का मुख नहीं देख सकतीं। अर्थात् यदि वे चाहती हैं कि उनके वंशज स्वतन्त्र राष्ट्र की मुक्त वायु में साँस लें, तो उन्हें अपने प्राणों को, सर्वस्व को होम करना ही पड़ेगा। सुभाष के ऐसे ही वाक्यों से प्रेरित होकर अनेक लोग स्वातन्त्र्य-यज्ञ में आहुति स्वरूप अपना बलिदान देने को कूद पड़े।

4. दिल्ली नातिदूरे वर्तते।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में सुभाषचन्द्र आजाद हिन्द फौज के सैनिकों को दिल्ली पर अधिकार करने के लिए प्रोत्साहित करते हुए कहते हैं—

व्याख्या– नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने भारतीयों को स्वतन्त्रता का अमर सन्देश दिया। बचपन से ही सुभाष के हृदय में देशभक्ति की भावना एवं क्रान्तिकारी विचार अपना स्थान बना चुके थे। अहिंसात्मक आन्दोलनों से स्वतन्त्रता-प्राप्ति कल्पनामात्र है—अपने इस दृढ़ विचार से प्रेरित होकर उन्होंने क्रान्ति का मार्ग स्वीकार किया।

वे अंग्रेज सरकार की आँखों में धूल झोंककर जापान चले गए। वहाँ उन्होंने राष्ट्रभक्त हिन्दू एवं मुसलमानों को संगठित किया। उन्होंने 'आजाद हिन्द सेना' का गठन करके भारत-भूमि को अंग्रेजों की दासता से मुक्त कराने के लिए युद्ध का बिगुल बजा दिया। उन्होंने कहा— ''तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा।'' इन वचनों को सुनकर अनेक देशभक्त सेना में भर्ती हो गए। उन्होंने सैनिकों को प्रोत्साहित करते हुए कहा— ''दिल्ली चलो, दिल्ली दूर नहीं है।'' अर्थात् हम शीघ्र ही दिल्ली पर अधिकार कर लेंगे। इन उत्साहभरे वचनों को सुनकर सैनिक दिल्ली की ओर चल दिए। वस्तुत: आज की स्वतन्त्रता सुभाष जैसे राष्ट्रभक्तों के बलिदान का ही परिणाम है।

5. कीर्तिर्यस्य स जीवति।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में बताया गया है कि सुभाष जैसे देशभक्त अपने यश के लिए अमर हो जाते हैं।

व्याख्या– जिसकी कीर्ति (मरणोपरान्त यश) रहती है वह (सदा) जीवित रहता है। मानव-शरीर नाशवान् है। संसार में कोई अमर होकर नहीं आया। एक-न-एक दिन सभी को मरना है और सभी का भौतिक शरीर नष्ट होना है, किन्तु जो लोग अपने समाज, देश या जाति की या मानवमात्र की महती सेवा कर जाते हैं, अपने जीवन स्वार्थ की बजाय परोपकार में बिताते हैं, उनका यश मरने के बाद भी बना रहता है। लोग उन्हें निरन्तर याद करते हैं, उनके प्रति भाँति-भाँति से श्रद्धाजंलि अर्पित करते हैं। इस प्रकार वे पुण्यशील महापुरुष भौतिक शरीर से हमारे बीच न रहने पर भी अपने यशरूपी शरीर से सदा जीवित रहते हैं। बड़े-बड़े राजाओं, महाराजाओं, विजेताओं के नाम इतिहास के पृष्ठों मात्र पर रह जाते हैं, लोग उन्हें पूर्णत: भूल जाते हैं। ऐसे लोग अपनी मृत्यु के साथ ही सदा के लिए मिट जाते हैं पर महापुरुष सदा मानवमात्र के मनों में निवास करके अमर हो जाते हैं। सुभाषचन्द्र ऐसे ही महामानव है।

पाठ पर आधारित प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संस्कृत में दीजिए–

1. सुभाषस्य जन्म कुत्र अभवत्?

उ०– सुभाषस्य जन्म बङ्गप्रान्ते अभवत्।

2. सुभाषस्य पितु: नाम किम् आसीत्?

उ०– सुभाषस्य पितु: नाम जानकीनाथ वसु: आसीत्।

3. तस्य पितु: क: आसीत्?

उ०– तस्य पितु: राजकीय-प्राड्तिताक: आसीत्।

4. सुभाषचन्द्रः कस्यां नगर्यां शिक्षां प्राप्तवान्?

उ०– सुभाषचन्द्र: कालिकातानगर्यां शिक्षां प्राप्तवान्।

5. सुभाषचन्द्रस्योग्रक्रान्तेः भीताः आङ्ग्लशासकाः किमकुर्वन्?

उ०– सुभाषचन्द्रस्या अग्रक्रान्ते: भीता: आङ्ग्लशासका: इमं कारागारे अक्षिपन्।

6. सुभाषः कां नीतिमनुसरन् कारगारात् बहिर्गतः?

उ०– सुभाष: 'शठे शाठयं समाचरेत्' इति नीतिमनुसरन् कारागारात् बहिर्गत:।

7. सुभाषः कारागारात् निर्गत्य कुत्र गतः?

उ०– कारागारात् बहिरागत्य सुभाषचन्द्र: पुरुषपुरनगरमगच्छत्।

8. सुभाषः केन नाम्ना जर्मनदेशं गतः?

उ०– सुभाष: 'जियाउद्दीन' इति नाम्ना जर्मनदेशं गत:।

9. सुभाषः कां सेनां सङ्घटितवान्?

उ०– सुभाष: मलयदेशे 'आजाद हिन्द फौज' इत्याख्यां सेनां सङ्घटितवान्।

10. सुभाषस्य सङ्गटनस्य अभिवादनपदम् उद्घोषः च किं आसीत्?

उ०– सुभाषस्य सङ्गटनस्य अभिवादनपदम् उद्घोष: 'जयहिन्द' इत्यासीत।

11. सुभाषचन्द्रः मलयदेशे कां सेना सङ्घटितवान?

उ०– सुभाषचन्द्र: मलयदेशे 'आजाद हिन्द फौज' इत्याख्यां सेनां सङ्घटितवान।

12. सुभाषचन्द्रस्यः रोमाञ्चकराः शब्दाः के आसन्?

उ०– 'यूयं मह्यं रक्तमर्पयत्, अहं युष्मभ्यं स्वतन्त्रतां दास्यामि' इति सुभाषचन्द्रस्य रोमाञ्चकरा: शब्दा: आसन्।

13. सुभाषः कदा काङ्ग्रेस्य सभापतिः वृतः?

उ०– सुभाष: सप्तत्रिंशदुत्तरैकोनविंशतिशततमे वर्षे काङ्ग्रेसस्य सभापति: वृत्त:।

संस्कृत अनुवाद संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए–

1. **श्री सुभाषचन्द्र कई बार कारगार गये।**

   अनुवाद– श्री सुभाषचन्द्र: अनेकदा कारागारमगच्छत्।
2. **सुभाषचन्द्र बचपन से ही साहसी थे।**

   अनुवाद– सुभाषचन्द्र: बाल्यादेव साहसी आसीत्।
3. **दिल्ली दूर नहीं है।**

   अनुवाद– नास्ति दिल्ली दूरम्।
4. **अहिंसा परम धर्म है।**

   अनुवाद– अहिंसा परमो धर्म:।
5. **दुष्ट के साथ दुष्टता का व्यवहार करना चाहिए।**

   अनुवाद– दुष्टेन सह दुष्टस्य व्यवहारं कुर्यात्।
6. **तुम मुझे खून दो , मैं तुम्हें आजादी दूगाँ।**

   अनुवाद– यूयं मह्यं रक्तमर्पयत्, अहं पुष्मभ्यं स्वतन्त्रतां दास्यामि।
7. **सुभाषचन्द्र बोस का जन्म बंगाल में हुआ था।**

   अनुवाद– सुभाषचन्द्र: बोसस्य जन्म: बंङग प्रान्ते अभवत्।
8. **हम कल बाजार जाएँगे।**

   अनुवाद– वयं श्व: आपणं गमिष्याम:।
9. **तुम राम के घर जाते हो।**

   अनुवाद– त्वं रामस्य गृहं गच्छसि।
10. **हम दोनों गेंद से खेलेंगे।**

    अनुवाद– आवां कन्दुकेन क्रीडष्याव:।

संस्कृत व्याकरण संबंधी प्रश्न–

1. निम्नलिखित शब्द रूपों में विभक्ति एवं वचन बताइए–

उ०–

शब्द रूप	विभक्ति	वचन
स्वजन्मना	तृतीया	एकवचन
भारते	सप्तमी	एकवचन
रात्रौ	सप्तमी	एकवचन
कौशलेन	तृतीया	एकवचन
वायुयानेन	तृतीया	एकवचन
नारीभि:	तृतीया	बहुवचन
निरीक्षणे	सप्तमी	एकवचन
मुखात्	पञ्चमी	एकवचन
वणिज:	पञ्चमी/षष्ठी	एकवचन
वृत्तान्तम्	द्वितीया	एकवचन
चरणयो:	षष्ठी/सप्तमी	द्विवचन

2. निम्नलिखित शब्दों में धातु और प्रत्यय अलग करकर लिखिए–

उ०–

शब्द रूप	प्रत्यय	धातु
श्रुत्वा	क्त्वा	श्रु
प्राप्य	ल्यप्	प्र + आप्
भीता:	क्त	भी
उत्तीर्य	ल्यप्	उत् + तृ
समुत्थाय	ल्यप्	सम् + स्था
उक्तवा	क्त्वा	वद्

3. निम्नलिखित विग्रह के आधार पर समस्तपद बनाइए और समास का नाम लिखिए–

उ०–

समास-विग्रह	समस्तपद	समास का नाम
कारागारस्य निरीक्षका:	कारागारनिरीक्षका:	तत्पुरुष समास
सुभाषे अनुरक्ता:	सुभाषानुरक्ता:	तत्पुरुष समास
प्रतिभया सम्पन्न:	प्रतिभासम्पन्न:	तत्पुरुष समास
आङ्ग्लाश्च ते शासका:	आङ्ग्लशासका:	तत्पुरुष समास

4. निम्नलिखित पदों में धातु, लकार, वचन व पुरुष बताइए–

उ०–

धातुरूप	धातु	लकार	पुरुष	वचन
अक्षिपन्	क्षिप्	लङ्	प्रथम	एकवचन
अत्यजत्	त्यज्	लङ्	प्रथम	एकवचन
कुर्वन्ति	कृ	लट्	प्रथम	एकवचन
चलत	चल्	लोट्	मध्यम	बहुवचन
दास्यामि	दा	लृट्	उत्तम	एकवचन
अकरोत्	कृ	लङ्	प्रथम	एकवचन

5. निम्नलिखित सन्धि-विच्छेदों से सन्धि पद बनाइए तथा सन्धि का नाम लिखिए–

उ०–

सन्धि-विच्छेद	सन्धि-पद	सन्धि का नाम
इति + उक्तवा	इत्युक्तवा	यण् सन्धि
कीर्ति + यस्य	कीर्तियस्य	रुत्व सन्धि
अत्र + एव	अत्रैव	वृद्धि सन्धि
पर: + अयम्	परोऽयम्	उत्व सन्धि
सूत्राणि + अपि	सूत्राण्यपि	यण् सन्धि
बाल्यात् + एव	बाल्यादेव	जश्त्व सन्धि

राष्ट्र + अनुरागिण:	राष्ट्रानुरागिण:	दीर्घ सन्धि
पतित: + अपि	पतितोऽपि	उत्व सन्धि
अस्य + उग्रक्रान्ते:	अस्योग्रक्रान्ते:	गुण सन्धि
वीर + अयम्	वरोऽयम्	उत्व सन्धि

पाठ्येतर सक्रियता

उ०– छात्र स्वयं करें।

तृतीय: पाठ: भोजस्यौदार्यम्

<u>अभ्यास प्रश्न</u>

अवतरण अनुवादात्मक प्रश्न

निम्नलिखित गद्यावतरणों का ससन्दर्भ हिन्दी में अनुवाद कीजिए–

1. तत: कदाचित् ....पुनरुद्धर्तुमुचित:।

[कौपीनावशेषो: > कौपीन + अवशेष: = जिस पर लँगोटीमात्र शेष है, वह अर्थात् दरिद्र, दारिद्र्यनाश: = दरिद्रता का नाश, मत्वा = मानकर, हर्षाश्रुणि सुमोच = हर्ष के आँसू ढलका दिए, मद्गृहस्थितिम् = मेरे घर की स्थिति को, लाजानुच्चै: > लाजान + उच्चै: = खीलें लेने का उच्च शब्द, सुपिहितवती = अच्छी प्रकार बन्द कर दिए, क्षीणोपाये > क्षीण + उपाये = साधनहीन, दृशावश्रुबहुले > दृशौ + अश्रुबहुले = आँसुओं से भरी दृष्टि, तदन्त:शल्यं > तत् + अन्त:शल्यं = हृदय में चुभे काँटे (दु:ख) को, उद्धर्तुमुचित: = निकालने के योग्य (समर्थ)]

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'भोजस्यौदार्यम्' पाठ से उद्धृत है।

अनुवाद– इसके बाद कभी द्वारपाल ने आकर महाराज भोज से कहा, ''देव, केवल लँगोटी पहने (अति दरिद्र) एक विद्वान द्वार पर खड़े हैं।'' (राजा बोले)— ''प्रवेश कराओ''। तब प्रविष्ट होकर उस कवि ने भोज को देखकर 'आज मेरी दरिद्रता का नाश हो जाएगा' यह मानकर (विश्वास कर) प्रसन्न हो खुशी के आँसू बहाये। राजा ने उसे देखकर कहा— ''हे कवि, रोते क्यों हो?'' तब कवि बोला, ''राजन् मेरे घर की दशा सुनिए–

''(घर से बाहर) रास्ते पर (खील बेचने वाले के द्वारा) ऊँचे स्वर से 'अरे, खीलें लो' की आवाज सुनकर मेरी दीन मुख वाली पत्नी से बच्चों के कानों को सँभालकर बन्द कर दिया (जिससे कि वे सुनकर खीलें दिलवाने का हठ न करें) और मुझ दरिद्र पर जो आँसुओं से भरी दृष्टि डाली, वह मेरे हृदय में काँटे की तरह गड़ गयी, जिससे निकालने में आप ही समर्थ हैं।''

2. राजाशिव ....तु भिक्षाटनम्।

[उदीरयन् = कहते हुए, शिवसन्निधौ = शिवजी के समीप, दानववैरिणा = दानव-वैरी अर्थात् विष्णु के द्वारा, गिरिजयाप्यर्द्धम् > गिरिजया + अपि + अर्द्धम् = पार्वती जी द्वारा भी आधा, शिवस्यहृतम् > शिवस्य + आहृतम् = शिव का आधा भाग ले लिया, देवेत्थम् > देव + इत्थम् = है देव! इस, पुरहराभावे > पुरहर + अभावे = शिव का अभाव, समुन्मीलति = प्रकाशित करती है; सुशोभित करती है, क्ष्मातलम् = पृथ्वी-तल को, सर्वज्ञत्वमधीश्वरत्वमगमत् > सर्वज्ञत्वम + अधीश्वरत्वम् + अगमत् = सर्वज्ञता और ईश्वरत्व, भिक्षाटनम् = भिक्षा के लिए घूमते फिरना]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– राजा ने 'शिव शिव' कहते हुए(अर्थात् अत्यधिक करुणा प्रकट करते हुए) प्रत्येक अक्षर के लिए एक-एक लाख (रुपये) देकर कहा, ''तुरन्त घर जाओ। तुम्हारी पत्नी दु:खी हो रही होगी।'' दूसरे दिन (अन्य किसी दिन) भोज शिवजी को प्रणाम करने शिवालय गये। वहाँ किसी ब्राह्मण ने शंकर के समीप जाकर कहा— भगवान् शंकर की आधी देह दानव वैरी अर्थात् भगवान विष्णु ने ले ली, आधी पार्वती जी ने। (तब) हे देव? इस पृथ्वीतल पर गंगा भगवान् शिव के देहरहित हो जाने पर सागर को सुशोभित करने लगीं (सागर को चली गयीं), चन्द्रकला आकाश को, शेषनाग पृथ्वीतल से नीचे (पाताल को), सर्वज्ञता और ईश्वरता (शक्तिमत्ता या प्रभुत्ता) आपको प्राप्त हुई और भीख माँगते फिरना मुझे (इस प्रकार भगवान् शंकर के समस्त गुण विभिन्न स्थानों पर बँट गये)।

3. राजा तुष्ट..लक्ष्मीरनुद्यमिनामिव।

[विरलविरला: = कोई-कोई, स्थूलास्तारा: = बड़े तारे, कलाविव > कलौ + इव = जैसे कलियुग में, प्रसन्नमभून्नभ: > प्रसन्नम् + अभूत + नभ: = आकाश निर्मल हो गया, अपसरित = दूर हो रहा है, ध्वान्तं = अन्धकार, चित्तात्सतामिव > चित्तात् + सताम + इव = जैसे सज्जनों के चित्त से, क्षिप्रम् = शीघ्र, लक्ष्मीरनुद्यमिनामिव > लक्ष्मी: + अनुद्यमिनाम + इव = उद्यमरहित लोगों की सम्पदा के समान]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– राजा ने सन्तुष्ट होकर उसे प्रत्येक अक्षर पर एक-एक लाख (रुपये) दिये। अन्य किसी दिन राजा ने पास में स्थित सीता (नाम की किसी कवयित्री) से कहा, ''देवी! प्रभात का वर्णन करो।'' सीता ने कहा—(इस प्रभात बेला में) बड़े तारे कलियुग में सज्जनों के समान बहुत कम हो गये हैं, मुनियों के मन (या अन्त:करण) के सदृश आकाश सर्वत्र निर्मल (स्वच्छ) हो गया है, अन्धकार सज्जनों के चित्त से दुर्जनों (के कुकृत्यों की स्मृति) के समान दूर हो गया है और रात्रि उद्योगरहित (पुरुषार्थहीन) व्यक्ति की समृद्धि के समान शीघ्र समाप्त होती जा रही है (अर्थात् जो व्यक्ति धन कमाने में उद्योग न करके पहले से जमा धन ही व्यय किये जाते है, जिस प्रकार उसकी समृद्धि शीघ्रतापूर्वक घटती जाती है, उसी प्रकार रात भी शीघ्रता से समाप्त होती जा रही है)।

4. राजा तस्मै...लक्षं ददौ।

[पिङ्गा = पीली, रसपति: = पारा, गतच्छायश्चन्द्रो बुधजन + इव > गतच्छाय: + चन्द्र: + बुधजन + इव = विद्वज्जन की तरह चन्द्रमा कान्तिहीन, इवानुद्यमपरा: > इव + अनुद्यमपरा: = अनुद्यमियों की तरह, राजन्ते = चमक रहे हैं, द्रविणरहितानाम् = धनहीनों के]

अनुवाद– राजा ने उसे एक लाख (रुपये) देकर कालिदास से कहा, ''मित्र तुम भी प्रभात का वर्णन करो।'' तब कालिदास ने कहा—

पूर्व दिशा उसी प्रकार पीली हो गयी है जैसे सुवर्ण के संयोग से पारा (पीली हो जाती है), चन्द्रमा उसी प्रकार कान्तिहीन (फीका) दिख पड़ता है जैसे गँवारों (मूर्खों) की सभा में विद्वान्। तारे क्षणभर में (सहसा) उसी प्रकार क्षीण हो गये हैं जैसे उद्योगरहित राजागण की राज्यश्री (क्षीण हो जाती है) और दीपक उसी प्रकार शोभा नहीं पाते जैसे धनहीन व्यक्तियों के गुण। (निर्धन व्यक्ति चाहे कितना भी गुणी हो, समाज में उसके गुणों का उचित मूल्यांकन या आदर नहीं होता और धनी व्यक्ति गुणहीन हो, तो भी समाज उसे आदर देता है।) राजा ने अति सन्तुष्ट होकर उसे प्रत्येक अक्षर पर एक लाख (रुपये) दे दिये।

सूक्ति-व्याख्या संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित सूक्तिरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

1. व्रजति च निशा क्षिप्रं लक्ष्मीरनुद्यमिनामिव।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'भौजस्यौदार्यम्' नामक पाठ से अवतरित है।

प्रसंग– इस सूक्ति में कवयित्री सीता ने उद्यमहीन व्यक्तियों के दरिद्र होने पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या– उद्यम तथा बुद्धिचातुर्य से व्यक्ति अपने कार्यों को सम्पन्न करता है। जब व्यक्ति उद्यम करता है तो उसे अपने समस्त कार्यों में सफलता प्राप्त होती है। उद्योग से वह धन अर्जित करता है, जिससे उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहती है। यदि व्यक्ति उद्यम छोड़ देता है तो उसका संचित धन एक दिन अवश्य ही समाप्त हो जाता है। इसलिए व्यक्ति को चाहिए कि वह निरन्तर उद्यम करता रहे। ऐसा करने से वह केवल धनी ही नहीं रहेगा वरन् उसकी धनराशि में निरन्तर वृद्धि भी होती रहेगी। इसके विपरित जो व्यक्ति उद्यम छोड़ देते हैं, इनका साथ लक्ष्मी भी छोड़ देती है। सीता कहती है कि प्रात:काल निकट होने पर रात्रि उसी प्रकार शीघ्रता से जा रही है, जैसे उद्यमहीन व्यक्ति की लक्ष्मी शीघ्र चली जाती है। प्रभात-वर्णन के माध्यम से कवयित्री व्यक्ति को कभी भी उद्यम न छोड़ने की चेतावनी देती है। अन्यत्र कहा भी गया है— ''उद्योगिनं पुरुषसिंहमपैति लक्ष्मी:।''

2. गतच्छायश्चन्द्रो बुधजन इव ग्राम्यसदसि।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में प्रात:काल का वर्णन करते हुए महाकवि कालिदास अज्ञानियों के मध्य स्थित ज्ञानी की स्थिति का अंकन कर रहे हैं।

व्याख्या– प्रात: काल के समय चन्द्रमा उसी प्रकार कान्तिहीन हो गया है जैसे मूर्खों (गँवारों) की सभा में विद्वान्। वस्तुत: विद्वान् के गुणों का सम्मान विद्वान ही कर सकता है; क्योंकि वही उसको समझ सकता है। मूर्ख तो मूर्खता की बात समझ सकते हैं, विद्वान ही गम्भीर वाणी को समझना उनके बस की बात नहीं। फलत: वे ऐसे विद्वान् की बहुमूल्य सम्पति की हँसी ही उड़ा सकते हैं। उसका मजाक उड़ाकर उसे निष्प्रभ ही बना सकते हैं। ज्ञानी व्यक्ति का ज्ञान एवं व्यक्तित्व ज्ञानियों के मध्य जाकर ही निखरता है, अज्ञानियों के बीच नहीं।

इसीलिए किसी कवि ने विधाता से एकमात्र यही वरदान माँगा है कि उसको भाग्य में अरसिकों के सामने काव्यचर्चा करने, लिखने का अवसर न आये, चाहे और कोई भी कष्ट आ जाए—

3. न दीपा राजन्ते द्रविणरहितानामिव गुणा:।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– महाकवि कालिदास ने इस सूक्ति में प्रात:काल के वर्णन के माध्यम से इस सांसारिक सत्य को उद्‌घाटित किया है कि निर्धन के गुणों को कोई महत्व नहीं देता।

व्याख्या– प्रात: काल के समय दीपक उसी प्रकार उपेक्षित हो जाते हैं, शोभाहीन लगते हैं, जैसे निर्धन व्यक्तियों के गुण। समाज में धन का इतना आदर है कि निर्धन व्यक्ति को लोग उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं, चाहे वह कितना ही गुणवान् क्यों न हो और धनी व्यक्ति गुणहीन हो तो भी लोग उसको बड़ा सम्मान देते हैं। इसीलिए किसी कवि ने लिखा है कि 'सारे गुण सोने में निहित हैं'— सर्वेगुणा: काञ्चनमाश्रयन्ते। इसीलिए कद्र भी उसी के गुणों की होती है, जो साधनसम्पन्न हो। लक्ष्मी और अधिकार से सम्पन्न हो। चाणक्य का भी कथन है। ''जिसके पास बहुत धन है उसी के बहुत-से मित्र होते हैं, जिसके पास धन है उसी के बन्धु होते हैं, जिसके पास धन है वही पुरुष गिना जाता है और जिसके पास धन है वही विद्वान् कहलाता है।''

पाठ पर आधारित प्रश्न

1. द्वारपाल: भोजं किम् अकथयत्?

उ०– द्वारपाल: भोजं अकथयत्—'देव, कौपीनावशेषो विद्वान द्वारि वर्तते।'

2. भोज: कविं किम् अपृच्छत?

उ०– भोज: कविं अपृच्छत्— कवे: किं रोदिपि?' इति।

3. भोजं दृष्ट्ता कवि: किम् अचिन्तयत्?

उ०– भोजं दृष्ट्ता कवि: अचिन्तयत्, ''अद्य गम दरिद्रताया: नाश: भविष्यति'' इति।

4. कवि: कथम् अरोदीत्?

उ०– कवि: स्वदरिद्रताया: कारणात् अरोदीत्।

5. विदुष: ब्राह्मणस्य पत्नी कथं दु:खिनी आसीत् ?

उ०– विदुष: ब्राह्मणस्य पत्नी क्षीणोपाय: (दरिद्र:) हेतुना दु:खिनी आसीत्।

6. राजा भोज: सीतां किं प्राह ?

उ०– राजा भोज: सीतां 'प्रभातं वर्णव' इति प्राह।

7. राजा भोज: कालिदासं किं कुर्तं प्राह?

उ०– राजा भोज: कालिदासं प्रभातवर्णनं कर्तुं प्रेरितवान्।

8. भोज: कालिदासस्य किं पुरस्कारं ददौ?

उ०– भोज: कालिदासाय प्रत्यक्षरं लक्षं ददौ।

9. भोज: कुत्र कथञ्च अगच्छत्

उ०– भोज: श्रीमहेश्वरं नमितुं शिवालयमगच्छत्।

संस्कृत अनुवाद संबंधी प्रश्न

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए–

1. राजा ने कवि से क्या पूछा?

अनुवाद– राजा कवि: किमं अपृच्छत।

2. महाराज ने शिवजी को प्रणाम किया।

अनुवाद– महाराज: शिवं प्रणाम: अकरोत्।

3. मोर नाचता है।

अनुवाद– मयूर: नृत्यति।

4. राजा ने कालिदास से कहा– तुम भी प्रात:काल का वर्णन करो।

अनुवाद– राजा कालिदास अकथयत्— त्वमपि प्रभात वर्णयं कुरु।

5. हमारे घर के चारों ओर पेड़ हैं।

अनुवाद– अस्माकं गृहं पारित: वृक्षा: सन्ति।

6. विनय मनुष्यों का आभूषण है।

अनुवाद– विनय: मनुष्याणां आभूषणम् अस्ति।

7. आज मेरी दरिद्रता का नाश हो जाएगा।

अनुवाद– अद्य मम दरिद्रता: नाशों भविष्यति।

8. हमें बड़ों का आदर करना चाहिए।

अनुवाद– वयं अग्रज: सम्मानं कुर्याम्।

9. राम प्रतिदिन विद्यालय जाता है।

अनुवाद– राम: प्रतिदिनं विद्यालयं गच्छति।

10. महाराज ने सीता से क्या कहा?

अनुवाद– महाराज: सीताया किम् अकथयत्?

संस्कृत व्याकरण संबंधी प्रश्न–

1. निम्नलिखित समस्तपदों का विग्रह कीजिए तथा समास का नाम लिखिए–

उ०–

समस्तपद	समास-विग्रह	समास का नाम
शिवालयम्	शिवस्य आलयम्	तत्पुरुष समास
दानववैरिणा	दानवस्य वैरिय:स:	बहुब्रीहि समास
शशिकला	शनि इव कला	कर्मधारय समास
द्रारिद्रानाश:	द्रारिद्रस्य नाश:	तत्पुरुष समास
प्रत्यक्षरम्	अक्षरम्-अक्षरम्	अव्ययीभाव समास
त्वद् गृहिणी	तव गृहिणी	तत्पुरुष समास

2. निम्नलिखित शब्द-रूपों में प्रयुक्त विभक्ति एवं वचन लिखिए–

उ०–

शब्द रूप	विभक्ति	वचन
सखे	प्रथमा/द्वितीया	द्विवचन
गिरिजया	तृतीया	एकवचन
स्थूला:	प्रथमा	बहुवचन
महेश्वरम्	द्वितीया	एकवचन
समुत्थिनाम्	षष्ठी	बहुवचन
गृहिणी	प्रथमा	एकवचन
कवि:	प्रथमा	एकवचन
सीताम्	द्वितीया	एकवचन
मुने:	पञ्चमी/षष्ठी	एकवचन
तस्मै	चतुर्थी	एकवचन

3. निम्नलिखित शब्दों में सन्धि विच्छेद करते हुए सन्धि का नाम लिखिए–

उ०–

सन्धि-पद	सन्धि-विच्छेद	सन्धि का नाम
स्थूलास्तारा:	स्थूला: + तारा:	सत्व सन्धि
यदकृत	यत् + अकृत	जश्त्व सन्धि
कौपीनातशेषो	कौपीन + अवशेषो	दीर्घ सन्धि
सज्जना:	सत् + जना:	श्चुत्व सन्धि
हर्षाश्रूणि	हर्ष + अश्रूणि	दीर्घ सन्धि
प्रत्यक्षरं	प्रति + अक्षरम्	यण सन्धि
क्षीणोपाये	क्षीण + उपाये	गुण सन्धि
कलावित	कलौ + इव	अयादि सन्धि
शिवालय	शिव + आलय्	दीर्घ सन्धि
त्वमसि	त्वम् + असि	दीर्घ सन्धि

पाठ्येतर सक्रियता

उ०– छात्र स्वयं करें।

चतुर्थः पाठः   संस्कृतभाषायाः महत्त्वम्

अभ्यास प्रश्न

अवतरण अनुवादात्मक प्रश्न

निम्नलिखित गद्यावतरणों का ससन्दर्भ हिन्दी में अनुवाद कीजिए–

1. **धन्योऽयं...दृष्टेरविषयः।**

   [समुल्लसति = शोभित होती है, जनमानसपावनी = जनमानस को पवित्र करने वाली, भव्यभावोद्भाविनी > भव्य-भाव + उद्भाविन = सुन्दर भावों को उत्पन्न करने वाली, शब्द-सन्दोह-प्रसविनी = शब्दों के समूह को जन्म देने वाली, वाङ्मयेषु = साहित्यों में, प्रथिता = प्रसिद्ध, बहुविधज्ञानाश्रयत्वम् > बहुविध-ज्ञान + आश्रयत्वम् = अनेक प्रकार के ज्ञान का आश्रय होना, दृष्टेरविषय: > दृष्टे: + अविषय: = अज्ञात नहीं (दृष्टि से ओझल नहीं)]

   सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'संस्कृतभाषाया: महत्त्वम्' नामक पाठ से उद्धृत है।

   अनुवाद– यह भारत देश धन्य है, जहाँ मनुष्यों के पवित्र मनों को प्रसन्न करने वाली, उच्च भावों को उत्पन्न करने वाली, शब्दराशि को जन्म देने वाली देववाणी (संस्कृत) सुशोभित है। (वर्तमान काल में) विद्यमान समस्त साहित्यों में इसका साहित्य सर्वश्रेष्ठ एवं सुसमद्ध है। यही भाषा संसार में संस्कृत के नाम से भी प्रसिद्ध है। हमारे रामायण, महाभारत आदि ऐतिहासिक ग्रन्थ, चारों वेद, सारे उपनिषद्, अट्ठारह पुराण तथा अन्य महाकाव्य, नाटक आदि इसी भाषा में लिखे गये हैं। भाषाविज्ञानियों ने इसी भाषा को सारी आर्यभाषाओं की जननी माना है। संस्कृत का गौरव, उसमें अनेक प्रकार के ज्ञान का होना तथा उसकी व्यापकता किसी की दृष्टि से छिपी नहीं (किसी को अज्ञात नहीं) है।

2. **संस्कृतस्य गौरवमेव..सञ्जायन्ते।**

   [सम्यगुक्तमाचार्यप्रवरेणदण्डिना > सम्यक् + उक्तम् + आचार्यप्रवरेण दण्डिना = आचार्यश्रेष्ठ दण्डी ने ठीक ही कहा है, वागन्वाख्याता = वाणी कही गई है, किं बहुना = और अधिक क्या, यादृशीं = जैसी, तादृशी = वैसी, किञ्चिदन्यत् > किञ्चित् + अन्यत् = और कोई (नहीं), नान्यत्र > न + अन्यत्र = अन्यत्र नहीं, शौचम् = पवित्रता, अनसूया = ईर्ष्या न करना, अनुशीलनेन = अध्ययन से, सञ्जायन्ते = उत्पन्न होते हैं,]

   सन्दर्भ– पूर्ववत्

   अनुवाद– संस्कृत के गौरव को ध्यान में रखकर ही आचार्यश्रेष्ठ दण्डी ने ठीक ही कहा है— संस्कृत को महर्षियों ने दिव्य वाणी (देवताओं की भाषा) कहा है। संस्कृत का साहित्य सरस है और (उसका) व्याकरण सुनिश्चित है। उसके गद्य और पद्य में लालित्य (सौन्दर्य), भावों का बोध (ज्ञान कराने) की क्षमता और अद्वितीय कर्णमधुरता(कानों को प्रिय लगना) है। अधिक क्या, चरित्र-निर्माण की जैसी उत्तम प्रेरणा संस्कृत साहित्य देता है वैसी (प्रेरणा) अन्य कोई (साहित्य) नहीं। मूलभूत मानवीय गुणों का जैसा विवेचन संस्कृत साहित्य में मिलता है, वैसा अन्य कहीं नहीं दया, दान, पवित्रता, उदारता, ईर्ष्या (या द्वेष) रहित होना, क्षमा तथा अन्यान्य अनेक गुण इसके साहित्य के अनुशीलन अध्ययन एवं मनन से (मनुष्य में) उत्पन्न होते हैं।

3. **संस्कृतसाहित्यस्य आदिकविः...गीर्वाणभारतीं' इति।**

   [सांस्कृतिमेकत्वं > सांस्कृतिकम् + एकत्वम् = सांस्कृतिक एकता, सुरक्षितुं शक्यन्ते = सुरक्षित हो सकती है, सुष्ठूक्तम् > सुष्ठु + उक्तम् = ठीक कहा गया है। गीर्वाणभारती = देववाणी (संस्कृत)।

   सन्दर्भ– पूर्ववत्

   अनुवाद– संस्कृत साहित्य के आदिकवि वाल्मीकि, महर्षि वेदव्यास, कविकुलगुरु कालिदास, भास-भारवि-भवभूति आदि अन्य महाकवि अपने श्रेष्ठ ग्रन्थों द्वारा आज भी पाठकों के हृदय में विराजते हैं (अर्थात् उनके ग्रन्थों को पढ़कर पाठक आज भी उन्हें याद करते हैं)। यह भाषा हमारे लिए माता के समान आदरणीया और पूजनीया है, क्योंकि भारतमाता की स्वतन्त्रता, गौरव, अखण्डता एवं सांस्कृतिक एकता संस्कृत के द्वारा ही सुरक्षित रह सकती है। यह संस्कृत भाषा (विश्व की) समस्त भाषाओं में सर्वाधिक प्राचीन एवं श्रेष्ठ है। इसीलिए यह ठीक ही कहा गया है कि '(सब) भाषाओं में देववाणी (संस्कृत) मुख्य, मधुर और दिव्य (अलौकिक) है।''

सूक्ति-व्याख्या संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

1. **संस्कृत नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः।**

   सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'संस्कृतभाषाया: महत्त्वम्' नामक पाठ से अवतरित है।

   प्रसंग– महाकवि दण्डी द्वारा 'काव्यादर्श' में कही गयी इसी सूक्ति में संस्कृत भाषा की प्राचीनता एवं महानता को बताया गया है।

व्याख्या– भाषा की दृष्टि से संस्कृत प्राचीनतम भाषा है और समस्त भारतीय भाषाओं की जननी है। भाषा वैज्ञानिक भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं। संस्कृत की व्यापकता तथा विविध ज्ञान-विज्ञानों की आश्रयता सबको विदित ही है। इसीलिए महर्षियों द्वारा संस्कृत भाषा को देववाणी कहा गया है। आचार्य दण्डी का यह कथन संस्कृत भाषा के गौरव को बढ़ाने वाला है। इसमें संस्कृत का सम्बन्ध देवताओं से जोड़कर इसकी पावनता एवं महत्त्व को उद्घाटित किया गया है।

2. इयं भाषा अस्माभिः मातृसमं सम्माननीया वन्दनीया च।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में संस्कृत-भाषा के महत्त्व को प्रदर्शित किया गया है।

व्याख्या– संस्कृत-भाषा हमारे लिए उतनी ही आदरणीय है, जितनी जन्म देने वाली माता। माता जिस प्रकार सन्तान को जन्म देती है, उसी प्रकार संस्कृत-भाषा ने भी अनेक भारतीय भाषाओं को जन्म दिया है। जिस प्रकार माता सन्तान को जन्म देकर तथा उसको प्रारम्भिक ज्ञान कराकर जीवनपर्यन्त प्रेरणा देती रहती है, उसे उच्च मानवीय गुणों की ओर अग्रसर करती है, उसी प्रकार संस्कृत-भाषा भी प्राचीनकाल से ही यह कार्य करती आ रही है। इसीलिए हमें अपनी जन्मदायिनी माता के समान ही संस्कृत-भाषा का भी सम्मान और उसके गुणों का गान करना चाहिए, क्योंकि इसी के द्वारा हम अपनी विचारधारा को अन्य व्यक्तियों तक पहुँचाने के योग्य हुए हैं।

3. भाषासु मुख्य मधुर दिव्या गीर्वाणभारती।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– संस्कृत की महत्ता को इस सूक्ति में प्रतिपादित किया गया है।

व्याख्या– संसार की भाषाओं में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाषा संस्कृत ही मानी जाती है। इसके कई कारण हैं— प्रथम, यह भाषा संसार की समस्त आर्यभाषाओं की जननी है। द्वितीय, इसका साहित्य प्राचीनतम और सर्वाधिक समृद्ध है। तृतीय, इसका साहित्य उच्चतम लौकिक उन्नति के साथ-साथ दिव्य मानवीय गुणों के विकास एवं चरम आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग भी दिखाता है, जो संसार का कोई भी दूसरा साहित्य नहीं करता। चतुर्थ, संस्कृत भाषा अपनी रचना और लिपि में संसार की सर्वाधिक वैज्ञानिक एवं पूर्ण भाषा है तथा इसका व्याकरण पूर्णतः व्यवस्थित एवं सुनिश्चित है। पञ्चम, यह भाषा अतीव श्रुतिमधुर (सुनने में मधुर) एवं ललित है, जिसका आकर्षण दुर्निवार है। सचमुच यह लौकिक भाषा नहीं जान पड़ती, इसीलिए इसे 'देववाणी' (देवताओं की भाषा) कहना सर्वथा समीचीन है। आज संसार में संस्कृत के महत्त्व को अधिकाधिक समझा जा रहा है।

पाठ पर आधारित प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संस्कृत में दीजिए–

1. संस्कृत-साहितस्य का विशेषता अस्ति?

उ०– संस्कृतसाहित्यं सरसं, सुविशालमस्ति।

2. संस्कृतसाहित्यस्य आदिकविः कः अस्ति?

उ०– संस्कृतस्य आदिकविः वाल्मीकिः अस्ति।

3. रामायण, महाभारताद्यैतिहासिक ग्रन्थाः कस्यां भाषायां लिखितानि सन्ति?

उ०– रामायण, महाभारताद्यैतिहासिक ग्रन्थाः संस्कृतः भाषायां लिखितानि सन्ति।

4. संस्कृतभाषायाः मुख्याः कवयः के सन्ति?

उ०– वाल्मीकिः महर्षिव्यासः, कालिदासः, भास-भारति च भवभूति संस्कृतभाषायाः मुख्याः कवयः सन्ति।

5. संस्कृत साहित्यस्य अनुशीलने के गुणाः सञ्जायन्ते?

उ०– संस्कृत साहित्यस्य अनुशीलनेन दया, दान, शौचम्, औदार्यम्, अनुसूया, क्षमा च एते गुणाः सञ्जायन्ते।

6. का भाषा सर्वासु भाषासु प्राचीनतया श्रेष्ठा चास्ति?

उ०– भाषासु प्राचीनतमा श्रेष्ठा च भाषा संस्कृतभाषा अस्ति।

7. संस्कृतस्य गौरवं दुष्ट्वा दण्डिन किं उक्तम्?

उ०– संस्कृतस्य गौरवं दुष्ट्वा दण्डिना उक्तम् "संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः" इति।

8. संस्कृतभाषायाः काः काः प्रमुखविशेषताः सन्ति?

उ०– अस्याः वाङ्म सर्वोत्कृष्टं गद्ये-पद्ये च लालित्यं, भावबोध सामर्थ्यम-द्वितीयं श्रुतिमाधुर्यञ्च वर्तते। इयं भाषा दैवी वागिति महर्षिभिः ख्याता।

9. का भाषा अस्माभिः मातृसमं सम्मानीया वन्दनीया च?

उ०– संस्कृतभाषा अस्माभिः मातृसमं सम्मानीया वन्दनीया च।

10. भाषातत्त्वविदिभ: का भाषा सर्वासामार्यभाषाणां जननीति मन्यते?

उ०– भाषातत्त्वविदिभ: संस्कृतभाषा सर्वासामार्यभाषाणां जननीति मन्यते।

11. भास, भारवि, भवभूत्यादि महाकवय: स्वीकायै: ग्रन्थरत्नै: अद्यापि कुत्र विराजन्ते?

उ०– भास, भारवि, भवभूत्यादि महाकवय: स्वीकायै: ग्रन्थरत्नै: अद्यापि पाठकानां हृदि विराजन्ते।

12. संस्कृतभाषायां कति पुरणानि लिखितानि सन्ति?

उ०– संस्कृतभाषायां अष्टादश पुरणानि लिखितानि सन्ति।

13. कस्य साहित्यं सरसं व्याकरणं च सुनिश्चितम्?

उ०– संस्कृतभाषाया: साहित्यं सरसं, व्याकरणञ्च सुनिश्चितम् अस्ति।

14. कविकुलगुरु: क: कथ्यते?

उ०– कविकुलगुरु: कालिदास: कथ्यते।

15. संस्कृतभाषा प्राचीना अथवा नवीनास्ति कथय?

उ०– संस्कृतभाषा प्राचीना अस्ति।

संस्कृत अनुवाद संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए–

1. **महर्षियों ने संस्कृत को दैवी वाणी कहा है।**
   अनुवाद– महर्षिभि: संस्कृत: दैवी वाणीं कथ्यते।
2. **महर्षियों वाल्मीकि संस्कृत के आदिकवि हैं।**
   अनुवाद– महर्षि: वाल्मीकि: संस्कृतस्य आदिकवि: अस्ति।
3. **संस्कृत भाषा सभी भाषाओं की जननी है।**
   अनुवाद– संस्कृत: भाषा सर्वेषां भाषायां जननीं अस्ति।
4. **संस्कृत भाषा सभी भाषाओं में मुख्य, मधुर व अलौकिक है।**
   अनुवाद– संस्कृत: भाषा सर्वेषु भाषासुं मुख्य: मधुरं आलौकिं च अस्ति।
5. **यह भाषा हमारी माता के समान है।**
   अनुवाद– इयं भाषा अस्याभि: मातृसमं अस्ति।
6. **संस्कृत का साहित्य, सरस और व्याकरण सुनिश्चित है।**
   अनुवाद– संस्कृतस्य साहित्य सरसं, व्याकरण च सुनिश्चितम् अस्ति।
7. **हमारी संस्कृति में संस्कृत भाषा का विशेष महत्व है।**
   अनुवाद– अस्माकं संस्कृति: संस्कृत: भाषायां विशेष: महत्वं अस्ति।
8. **संस्कृत-साहित्य के अध्ययन से अनेक गुण उत्पन्न होते हैं।**
   अनुवाद– संस्कृतसाहित्यस्य अध्ययना अनेका: गुणा: उत्पन्ति।
9. **लड़का घोड़े से गिर पड़ा।**
   अनुवाद– बालक: अश्वात् अपतत्।
10. **हमें परिश्रम करना चाहिए।**
    अनुवाद– वयं परिश्रमं कुर्याम्।

संस्कृत व्याकरण संबंधी प्रश्न–

1. **निम्नलिखित शब्दों में सन्धि-विच्छेद करते हुए सन्धि का नाम लिखिए–**

सन्धि पद	**सन्धि-विच्छेद**	**सन्धि का नाम**
नाम्नापि	नाम्ना + अपि	दीर्घ सन्धि
इयमेव	श्यम् + एव	अनुस्वार सन्धि
धन्योऽयम्	धन्य: + अयम्	उत्व सन्धि
भावोद्भाविनी	भाव + उद्भाविनी	गुण सन्धि
निखिलेष्वपि	निखिलेषु + अपि	यण् सन्धि
चानेके	च + अनेके	दीर्घ सन्धि
पथमानीय	पथम् + आनीय	अनुस्वार सन्धि

सुष्ठुक्तम्	सुष्ठु+ उक्तम्	दीर्घ सन्धि
भवभूत्यादयो	भवभूति + आदयो	यण् सन्धि

2. **निम्नलिखित शब्द-रूपों में प्रयुक्त विभक्ति एवं वचन लिखिए-**

शब्द रूप	**विभक्ति**	**वचन**
पद्ये	सप्तमी/प्रथमा, द्वितीया	एकवचन/द्विवचन
भाषायाम्	सप्तमी	एकवचन
निखिलेषु	सप्तमी	बहुवचन
विद्यामानेषु	सप्तमी	बहुवचन
मूलभूतानाम्	षष्ठी	बहुवचन
संस्कृतस्य	षष्ठी	एकवचन
कवय:	प्रथमा	बहुवचन
वाङ्यमेषु	सप्तमी	बहुवचन
अस्या:	पञ्चमी	एकवचन
अनुशीलनेने	चतुर्थी	एकवचन

3. **निम्नलिखित क्रियापदों से उपसर्ग अलग कीजिए-**

क्रियापद	**उपसर्ग**
अद्वितीय	अ
सुनिश्चितम्	सु
समुल्लसति	सम्
अनुशीलनेन	अनु
नान्यत्र	न
विराजन्ते	वि

पाठ्येतर सक्रियता

उ०- छात्र स्वयं करें।

पञ्चमः पाठः आत्मज्ञ एवं सर्वज्ञः

अभ्यास प्रश्न

अवतरण अनुवादात्मक प्रश्न

निम्नलिखित गद्यावतरणों का ससन्दर्भ हिन्दी में अनुवाद कीजिए-

1. **याज्ञवल्क्यो..उवाच-नेति।**

[उवाच = बोले, उद्‌यास्यन अहम् अस्मात् = (मैं) ऊपर जाने वाला हूँ (इस गृहस्थाश्रम को छोड़कर ऊपर के आश्रम अर्थात् संन्यासाश्रम में जाने वाला हूँ), अस्मात् स्थानात् = इस स्थान से (गृहस्थाश्रम से), ततस्तेऽनया > तत: + ते + अनया = तो तुम्हारा इस, कात्यायन्या = कात्यायनी नामक दूसरी (पत्नी)से, विच्छेदम् = सम्पत्ति का बँटवारा, यदीयम् > यदि + इयम् = यदि यह, तेनाहममृता > तेन + अहम + अमृता = उससे मैं अमर]

सन्दर्भ- प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'आत्मज्ञ एवं सर्वज्ञ:' नामक पाठ से उद्‌धृत है।

अनुवाद- (ऋषि) याज्ञवल्क्य ने (अपनी पत्नी) मैत्रेयी से कहा- ''मैत्रेयी! मैं इस स्थान (गृहस्थाश्रम) से ऊपर (संन्यासाश्रम में) जाने वाला हूँ, तो मैं तेरा इस (अपनी दूसरी पत्नी) कात्यायनी के साथ विच्छेद (सम्पत्ति का बँटवारा) कर दूँ।'' मैत्रेयी बोली- ''यदि इस धन से सम्पन्न सारी पृथ्वी मेरी हो जाए तो क्या मैं उससे अमर हो सकती हूँ?'' याज्ञवल्क्य ने कहा-''नहीं।''

2. **यथैवोपकरणवतां...ते अमृतत्वसाधनम्।**

[यथैवोपकरणवततां > यथा + एव + उपकरणवताम् = जैसा ही साधनसम्पन्न या धनवानों का, नाशास्ति > न + आशा + अस्ति = आशा नहीं है, भगवान् = आप, केवलम् = अकेला, अमृतत्वस्य = अमरता की, व्याख्यास्यामि = व्याख्या करूँगा; समझाऊँगा]

सन्दर्भ- पूर्ववत्

अनुवाद– ''जैसा साधनसम्पन्नों (धनिकों) का जीवन होता है, वैसा ही तुम्हारा भी जीवन होगा। धन से अमरता की आशा नहीं है।'' (जैसे सभी धनवान् लोगों का अध्यात्मक की ओर ध्यान ही नहीं है, वैसी ही तुम भी हो।) (तब) उसे मैत्रेयी ने कहा– ''जिससे मैं अमर न हो सकूँ, उसे (लेकर) क्या करूँगी?'' भगवान् (आप) जो केवल अमरता (की प्राप्ति) का साधन जानते हो, वही मुझे बताएँ'' याज्ञवल्क्य बोले–''तू (पहले भी) मेरी प्रिया रही है(मुझे अच्छी लगने वाली बात कह रही है)। आ बैठ, तुझसे अमृतत्व (अमरता-प्राप्ति) के साधन की व्याख्या करूँगा।''

3. **याज्ञवल्क्य उवाच..विदिंत भवति।**

[कामाय: = कामना के लिए (इच्छापूर्ति के लिए), जाया = पत्नी, निदिध्यासितव्यश्च = ध्यान करने योग्य।]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– याज्ञवल्क्य बोले– ''अरी मैत्रेयी! पति की इच्छापूर्ति के लिए (नारी को) पति प्रिय नहीं होता, अपनी ही इच्छापूर्ति के लिए पति प्रिय होता है। (अपने स्वार्थ से ही वह पति को चाहती अथवा प्रेम करती है।) अरी न ही, पत्नी की इच्छापूर्ति के लिए (पति को) पत्नी प्रिय होती है, (वरन्) अपनी इच्छापूर्ति के लिए पत्नी प्रिय होती है। न ही अरे, पुत्र या धन की कामना से पुत्र या धन प्रिय होता है, (वरन्) अपनी ही कामना (पूर्ति) के लिए सब प्रिय होते हैं।'' (आशय यह है कि मनुष्य जो कुछ भी कामना इस संसार में करता है, वह दूसरों के सुख के लिए नहीं, अपितु अपने ही सुख के लिए, अपनी ही आत्मा की तृप्ति के लिए करता है। मनुष्य का एकमात्र लक्ष्य दूसरे किसी को सुख देना नहीं, केवल अपने को ही सुख देना है। इस प्रकार आत्म-तृप्ति के लिए ही पति, पत्नी पुत्र, सम्बन्धी का हित चाहना अथवा उन्हें सुख देना नहीं, केवल अपने को ही सुख देना है। इस प्रकार आत्म-तृप्ति के लिए ही पति, पत्नी, पुत्र, सम्बन्धी आदि प्रिय होते हैं।)

इसलिए हे मैत्रेयी! आत्मा ही देखने योग्य है, देखने के लिए (अर्थात् यदि देखना हो तो उसके लिए वह) सुनने योग्य है, मनन करने योग्य है और ध्यान करने योग्य है। निश्चय ही आत्म-दर्शन से (आत्मा के स्वरूप के ज्ञान से) इस सबका ज्ञान हो जाता है।''

सूक्ति व्याख्या संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

1. **आत्मनस्तु वै कामाय: पति: प्रियो भवति।**

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'आत्मज्ञ एवं सर्वज्ञ:' नामक पाठ से उद्धृत है।

प्रसंग– अपने पति याज्ञवल्क्य से जब मैत्रेयी अमरता-प्राप्ति के साधनों के विषय में पूछती है, तब याज्ञवल्क्य उसे उसके विषय में बताना आरम्भ करते हैं। इसी सन्दर्भ में यह सूक्ति कही गयी है।

व्याख्या– याज्ञवल्क्य मैत्रेयी से कहते हैं कि संसार में प्रत्येक व्यक्ति को जो कुछ भी प्रिय लगता है, वह उस व्यक्ति या वस्तु के हित की दृष्टि से नहीं, अपितु केवल अपने हित या सुख की दृष्टि से ही प्रिय लगता है। आशय यह है कि पुत्र, पत्नी, धन, मित्र आदि जो कुछ भी पाना चाहते हैं, वह इसीलिए नहीं कि हम पुत्र, पत्नी मित्र आदि को सुख देना चाहते हैं, उनका प्रिय करना चाहते हैं, अपितु केवल अपना ही प्रिय करना चाहते हैं, स्वयं को सुख देना चाहते हैं। उन्हें पाकर हमें सुख मिलता है, इसलिए हम उनके सुख की कामना करते हैं। यदि किसी पत्नी को अपना पति प्रिय लगता है तो इसलिए कि उसमें पत्नी का अपना स्वार्थ छिपा है। वह पति की हित-कामना के लिए उसे प्रेम नहीं करती, वरन् अपने स्वार्थों के लिए करती है। इस प्रकार संसार में प्रत्येक व्यक्ति केवल आत्मसन्तुष्टि के लिए ही विविध पदार्थों की कामना करता है, दूसरों के हितार्थ नहीं। वस्तुत: याज्ञवल्क्य ऋषि का यह कथन अक्षरश: सत्य है कि ''संसार में सब कुछ सबकी कामना के लिए प्रिय नहीं होता, वरन् सब कुछ अपनी कामना के लिए प्रिय होता है।'' अन्यत्र तुलसीदास जी ने कहा है– **''तुलसी स्वारथ मीत सब, परमारथ रघुनाथ।''**

2. **आत्मन: खलु दर्शनेन इदं सर्वं विदितं भवति।**

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से अमरता-प्राप्ति के साधन के बारे में बताया है।

व्याख्या– याज्ञवल्क्य मैत्रेयी से कहते हैं– ''व्यक्ति जब आत्मदर्शन कर लेता है, अपने सच्चे स्वरूप को जान लेता है और उसे सभी बातों का सच्चा ज्ञान हो जाता है। वह जाना जाता है कि क्यों उसे कोई वस्तु प्रिय या अप्रिय लगती है। उसे अपना और इस विश्व का, आत्मा का और परमात्मा का भी सच्चा ज्ञान उपलब्ध हो जाता है। तब उसे सासांरिक पदार्थों की निस्सारता और आत्मा की अमरता का बोध हो जाता है और वह माना-जीवन के सच्चे उद्देश्य अर्थात् अमृतत्व की प्राप्ति को ही परम पुरुषार्थ मानकर यत्नवान् होता है। इसलिए मनुष्य के लिए एकमात्र आत्मा ही दर्शनीय, श्रवणीय, मननीय और निदिध्यासान अर्थात् ध्यान करने योग्य है। जो आत्मा को जानता है, वह सब कुछ जानता है।''

प्रस्तुत सूक्ति में याज्ञवल्क्य ने 'आत्मज्ञ एवं सर्वज्ञ:' की सार्थकता को स्पष्ट किया है। उनके कहने का आशय यह है कि जो व्यक्ति आत्मा के भेद को समझ जाता है, वह इस संसार के मोह-माया, दु:ख-सुख से परे हो जाता है; अर्थात् मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।

पाठ पर आधारित प्रश्न–

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संस्कृत में दीजिए–

1. कः सर्वज्ञः भवति?

उ०– आत्मज्ञानेन साधक सर्वज्ञः भवति।

2. मैत्रेयी याज्ञवल्क्यम् किम् अपृच्छत?

उ०– मैत्रेयी याज्ञवल्क्यम् केवलम् अमृतत्त्वसाधनम् अपृच्छत।

3. आत्मज्ञानेन साधकः कथम् सर्वज्ञो भवति?

उ०– आत्मज्ञानेन साधकः आत्मदर्शनीय श्रोतव्यं शृणोति, मन्तव्यं मनुते, निदिध्यासितव्यं निदिध्यासति चएवं सः सर्वज्ञो भवति।

4. याज्ञवल्क्यः मैत्रेयीं कस्य विषयस्य व्याख्यनां कृतवान्?

उ०– याज्ञवल्क्यः मैत्रेयीं अमृतत्त्वस्य विषस्य व्याख्यां कृतवान्।

5. कस्य खलु दर्शनेन इदं सर्वं विदितं भवति?

उ०– आत्मनः खलु दर्शनेन इदं सर्वं विदितं भवति।

6. कस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति?

उ०– आत्मनस्तु वैकामाय सर्वं प्रियं भवति।

7. वित्तेन कस्य आशा न अस्ति?

उ०– वित्तेन अमृतत्त्वस्य आशा न अस्ति।

8. मैत्रेयी किमुवाच?

उ०– मैत्रेयी उवाच– ''येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम्?''

संस्कृत अनुवाद संबंधी प्रश्न

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए–

1. याज्ञवल्कय ने मैत्रेयी से क्या कहा?

अनुवाद– याज्ञवल्क्यः मैत्रेयीं किम् अकथयत्?

2. पति की कामना के लिए पति प्रिय होता है।

अनुवाद– पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति।

3. अपनी कामना के लिए सब प्रिय होते हैं।

अनुवाद– आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति।

4. वृक्ष पर मोर बैठे हैं।

अनुवाद– वृक्षाणि मयूरः तिष्ठति।

5. मैं कल हरिद्वार गया था।

अनुवाद– अहम् ह्यः हरिद्वारम् अगच्छम्।

6. सूर्य प्रतिदिन पूर्व दिशा में उदित होता है।

अनुवाद– रविः प्रतिदिनं पूर्वदिशायाम् उदेति।

7. आत्मदर्शन से यह सब विदित होता है।

अनुवाद– आत्मदर्शनेन इदं सर्वं विदितं भवति।

8. धन से अमरता की आशा नहीं है।

अनुवाद– वित्तेन अमृतत्वस्य नाशास्ति।

9. लोभ पाप का कारण होता है।

अनुवाद– लोभः पापस्य कारणम् भवति।

10. कश्मीर अत्यधिक सुन्दर प्रदेश है।

अनुवाद– कश्मीरः अतीवसुन्दरः प्रदेशः अस्ति।

संस्कृत व्याकरण संबंधी प्रश्न

1. निम्नलिखित शब्दों में से सन्धि-विच्छेद करते हुए सन्धि का नाम लिखिए–

सन्धि-रूप	सन्धि-विच्छेद	सन्धि का नाम
मैत्रीयमुवाच	मैत्रीयम + उवाच	अनुस्वार सन्धि
ततस्तेऽनया	ततः + ते + अनया	सत्व, पूर्वरूप सन्धि

नेति	न + इति	गुण सन्धि
यदीयं	यदि + इयं	दीर्घ सन्धि
स्थानादस्मि	स्थानात् + अस्मि	जश्त्व सन्धि
यथैवोपकरणवतां	यथा + एव + उपकरणवत	वृद्धि, गुण सन्धि
नाशास्ति	नाश + अस्ति	दीर्घ सन्धि
येनाहं	येन + अहं	दीर्घ सन्धि

2. **निम्नलिखित धातु-रूपों में लकार, पुरुष और वचन लिखिए–**

धातु रूप	**लकार**	**पुरुष**	**वचन**
स्यात्	विधिलिङ्ग	प्रथमा	एकवचन
करवाणि	लोट्	उत्तम	एकवचन
स्याम्	विधिलिङ्ग	उत्तम	एकवचन
अस्मि	लट्	उत्तम	एकवचन
जानासि	लट्	मध्यम	एकवचन
कुर्याम्	विलिलिङ्ग	उत्तम	एकवचन
जानाति	लट्	प्रथम	एकवचन
भवति	लट्	प्रथम	एकवचन

3. **निम्नलिखित शब्द-रूपों में प्रयुक्त विभिक्ति और वचन लिखिए–**

शब्द-रूप	**विभक्ति**	**वचन**
स्थानात्	पञ्चमी्	एकवचन
मे	चतुर्थी	एकवचन
ते	प्रथमा	बहुवचन
मैत्रीयीम्	द्वितीया	एकवचन
कामाय	चतुर्थी	एकवचन
वित्तेन	तृतीया	एकवचन
पत्यु:	षष्ठी/सप्तमी	द्विवचन
दर्शनेन	तृतीया	एकवचन
वितस्य	षष्ठी	एकवचन
आत्मन:	पञ्चमी/षष्ठी	एकवचन

4. **निम्नलिखित धातु-रूपों में प्रयुक्त प्रत्यय लिखिए–**

धातु रूप	**प्रत्यय**
दर्शनार्थम्	क्त्
श्रोतव्य:	तव्यत्
दृष्टव्य:	तव्यत्
मन्तव्य:	तव्यत्
निदिध्यासितव्य:	तव्यत्

पाठ्येतर सक्रियता

उ०– छात्र स्वयं करें।

षष्ठः पाठः ऋतुवर्णनम्ः

<u>अभ्यास प्रश्न</u>

अवतरण अनुवादात्मक प्रश्न

निम्नलिखित गद्यावतरणों का ससन्दर्भ हिन्दी में अनुवाद कीजिए–

1. **स्वनैर्धनानां..नदन्ति।**

[स्वनै: = ध्वनि से; गर्जना से, प्लवगा: = मेढक, चिरसन्निरुद्धाम = बहुत दिनों से रुकी हुई, नवाम्बुधाराभिहता: > नव + अम्बु-धारा + अभिहता: = नवीन जलधारा से प्रताड़ित होकर, नदन्ति = टर्र- टर्र कर रहे हैं।]

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'ऋतुवर्णनम्' पाठ के 'वर्षा' शीर्षक से उद्धृत है। यह श्लोक वाल्मीकि रामायण के 'सुन्दरकाण्ड' का है, जिसमें माल्यवान् पर्वत पर वास करते हुए राम-लक्ष्मण से वर्षा का वर्णन करते हैं।

अनुवाद– विविध रूप, आकृति, वर्ण (रंग) और ध्वनि वाले मेंढक (जो बहुत दिनों से सो रहे थे) (वर्षाकाल के) नवीन मेघों के शब्द (गर्जन) से अपनी समय से रोकी हुई नींद को त्यागकर जाग उठे हैं और नव-जलधाराओं से चोट खाकर (टर्र-टर्र) शब्द कर (बोल) रहे हैं।

2. मत्ता गजेन्द्राः...सुरेन्द्रः॥

[गवेन्द्राः = साँड, विक्रान्ततराः = शक्तिशाली, मृगेन्द्राः = सिंह, नगेन्द्राः = पर्वत, निभृता = निश्छल या उभयरहित (विजययात्रा आदि कार्यों से रहित), प्रकीडितोः = खेल रहे]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– हाथी मस्त हो रहे हैं, साँड प्रसन्नचित्त हैं, वनों में सिंह अधिक पराक्रमी हो रहे हैं; पर्वत सुन्दर लग रहे हैं, राजागण शान्त या उद्यमरहित हैं, (और) इन्द्र मेघों से क्रीड़ा कर रहे हैं।

3. घनोपगूढं...प्रकाशाः॥

[घनोपगूढम् > घन + उपगूढम् = बादलों से ढका हुआ, दर्शनमभ्युपैति > दर्शनम् + अभ्युपैति = दिखाई दे रहा है, जलौघैः = जल की बाढ़ से, वितृप्ता- तृप्त हो गई, तमोविलिप्ताः > तमः + विलिप्ताः = अन्धकार से लिपी (दिशाएँ)]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– आकाश के मेघों से आच्छादित हो जाने के कारण न तो तारे दिखाई पड़ रहे हैं, न सूर्य। नवीन जलराशि से पृथ्वी तृप्त हो गयी है और अन्धकार से व्याप्त दिशाएँ प्रकाशित नहीं हो रही हैं (अर्थात् दिख नहीं रही हैं)।

4. महान्ति...लम्बमानैः॥

[महान्ति कूटानि = बड़े पर्वत शिखर, धाराविधौतानि = जलधाराओं से घुले, विभान्ति = शोभित हो रहे हैं, महाप्रमाणैः = बड़े चौड़े, विपुलैः = विशाल, प्रपातैः = झरनों से, मुक्ता-कलापैः = मोतियों की लड़ियों से, लम्बमानैः = लटकती हुई]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– पर्वतों के बड़े-बड़े शिखर, जिन पर बहुत चौड़े और प्रचुर जल वाले झरने मोतियों की लड़ियों के समान लटक रहे हैं, जलधाराओं से घुलकर बहुत शोभा पा रहे हैं।

5. अत्यन्त-सुख-सञ्चारा...छायासलिलदुर्भगाः॥

[स्पर्शतः = स्पर्श से, सुभगादित्याः > सुभग + आदित्याः = अच्छे सूर्य वाले (दिवसाः का विशेषण, छायासलिलदुर्भगाः = जिनमें छाया और जल प्रिय नहीं लगते ऐसे]

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'ऋतुवर्णनम' पाठ के 'हेमन्तः' शीर्षक से उद्धृत है। यह श्लोक वाल्मीकि-रामायण के 'अरण्यकाण्ड' का हैं, जहाँ पंचवटी में निवास करते हुए श्रीराम-लक्ष्मण से 'हेमन्त' का वर्णन करते हैं।

अनुवाद– (हेमन्त ऋतु के) दिन सुखपूर्वक इधर-उधर आने-जाने के योग्य हैं, मध्याह्न (धूप के) स्पर्श से सुखदायक हैं, यह सूर्य के कारण सुखकर (किन्तु) छाया और जल के कारण कष्टप्रद हैं (भाव यह है कि शीतकाल में दिन में कहीं आना-जाना अच्छा लगता है; क्योंकि धूप का स्पर्श सुखकर होता है। इन दिनों में सूर्य की धूप में रहना बहुत अच्छा लगता है किन्तु शीतलता के कारण छाया और जल कष्टप्रद लगते हैं।)

6. एते हि...इवाहतम्।

[समुपासीनाः बैठे हुए (जल के समीप), विहगाः = पक्षी, नावगाहन्ति > न + अवगाहन्ति = प्रवेश नहीं कर रहे हैं, अप्रगल्भाः = कायर (व्यक्ति), इव = सदृश, आहवम् = युद्धभूमि]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– जल के पास बैठे ये जलचर पक्षी (शीत के कारण) जल में उसी प्रकार स्नान नहीं कर पा रहे हैं, जिस प्रकार कायर युद्धभूमि में (युद्धार्थ) प्रविष्ट नहीं होते।

7. अवश्यायतमोनद्धा...वनराजयः।

[अवश्यायतमोनद्धाः > अवश्याय-तमः + नद्धाः = ओस के अन्धकार से बँधी, नीहारतमसावृताः > नीहारतमसा + आवृताः = कुहरे की धुन्ध से ढकी, लक्ष्यन्ते = प्रतीत हो रही है, विपुष्पाः = पुष्परहित, वनराजयः = वृक्षों की पंक्तियाँ]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– ओस तथा अन्धकार से जकड़े (निश्छल) तथा कुहरे की धुन्ध से ढके हुए पुष्पहीन वृक्षों की पंक्तियाँ सोती हुई प्रतीत हो रही हैं।

8. **सुखानिलोऽयं...जातपुष्पफलद्रुमः।**

[सुखानिलोऽयं > सुख + अनिल: + अयम् = यह सुखदायक पवन वाला, सौमित्रे = सुमित्रा के पुत्र (लक्ष्मण), प्रचुरमन्मथ: = अत्यधिक कामोद्दीपक, सुरभिर्मास: > सुरभि: + मास: = वसन्त का महीना, जात: = उत्पन्न हुए है]

सन्दर्भ– प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'ऋतुवर्णनम्' पाठ के 'बसन्त:' शीर्षक से उदधृत है। यह श्लोक वाल्मीकि-रामायण के 'किष्किन्धाकाण्ड' का है, जहाँ सीता को खोजते हुए श्रीराम पम्पा सरोवर पर पहुँचकर लक्ष्मण से वहाँ के वन की वसन्तकालीन शोभा का वर्णन करते हैं।

अनुवाद– हे लक्ष्मण! सुखदायक पवन वाला यह (वसन्त) काल बड़ा कामोद्दीपक है। सुगन्ध से भरे हुए इस चैत्र मास में वृक्षों में पुष्प और फल लग गये हैं।

9. **प्रस्तरेषु..गाम्।**

[प्रस्तरेषु = समतल शिखरों पर; पत्थरों पर, रम्येषु = सुन्दर, अवकिरन्ति = बिखेर रहे हैं, गाम् = पृथ्वी पर]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– सुन्दर शिलातलों पर उगे हुए भाँति-भाँति के जंगली वृक्ष वायु से हिलकर पृथ्वी पर पुष्प बिखेर रहे हैं।

10. **सुपुष्पिततांस्तु...पीताम्बरानिव।**

[सुपुष्पितांस्तु = भली प्रकार पुष्पों से युक्त, कर्णिकारान् = कनेर के वृक्षों को, समन्तत: = सब ओर, हाटकप्रतिसञ्छन्नान् = स्वर्ण-आभूषणों से ढके।]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– हे लक्ष्मण! इस कनेर के वृक्षों को देखो, जो कि पीले पुष्पों से लदे हुए हैं। इन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि स्वर्णाभूषणों से युक्त पीताम्बर ओढ़े हुए मनुष्य बैठे हुए हैं।

सूक्ति-व्याख्या संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

1. **प्रक्रीडितो वारिधरैः सुरेन्द्रः।**

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'ऋतुवर्णनम' पाठ के 'वर्षा' शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्तिपरक पंक्ति में श्रीराम लक्ष्मण से वर्षा का वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्या– प्रस्तुत पंक्ति में श्रीराम वर्षा का वर्णन करते हुए लक्ष्मण से कह रहे हैं कि इन्द्र मेघों से क्रीड़ा कर रहे हैं। अन्तरिक्ष के देवता इन्द्र भारतीय आर्यों के वृष्टि देवता हैं। पुराणों के अनुसार यह वज्र धारण करते हैं, बिजली को भेजते हैं तथा वर्षा करते हैं। वर्षा के देवता होने के कारण ही इनको मेघों (वर्षा कराने में सहायक) के साथ क्रीड़ा करते हुए कहा गया है। इनके वर्षा का देवता होने के प्रमाण यह भी है कि द्वापर युग में कृष्ण के कहने पर मथुरावासियों ने जब इन्द्र की पूजा-आराधना बन्द कर दी थी तो इन्द्र ने कुपित होकर अनवरत वृष्टि की थी जिससे त्रस्त मथुरावासियों की रक्षा कृष्ण ने की थी। यह साक्ष्य इन्द्र को वर्षा का देवता सिद्ध करता है। वर्षा के देवता का तो मेघों से क्रीड़ा करना स्वाभाविक ही है। इसीलिए प्रस्तुत सूक्ति में यह बात कह गयी है।

2. **नावगाहन्ति सलिलमप्रगल्भा इवाहवम्।**

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'ऋतुवर्णनम' पाठ के 'हेमन्त:' शीर्षक से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में राम-लक्ष्मण से हेमन्त ऋतु का वर्णन करते हैं।

व्याख्या– प्रस्तुत सूक्ति में श्रीराम लक्ष्मण से हेमन्त ऋतु का वर्णन करते हुए कहते हैं, जिस प्रकार भय के कारण कायर व्यक्ति, जो युद्ध से घबराते हैं, युद्धभूमि मे प्रवेश नहीं करते है, अपितु बाहर से ही अवलोकन करते रहते हैं उसी प्रकार हेमन्त ऋतु में भी जलचर पक्षी स्नान करने के लिए जल के समीप होते हुए भी उसमें प्रवेश नहीं करते।

पाठ पर आधारित प्रश्न–

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संस्कृत में दीजिए–

1. **वर्षर्तौ गगनं कीदृशं भवति?**

उ०– वर्षर्तौ गगनं घनोपगूढ़म् अन्धकारपूर्णं च भवति।

2. **कः कालः प्रचुरमन्मथः भवति?**

उ०– वसन्त: काल: प्रचुरन्मथ: भवति।

3. **वर्षर्तौ निद्रां विहास के नदन्ति?**

उ०– वर्षर्तौ निद्रां विहाय प्लवगा: नदन्ति।

4. हेमन्ते विपुष्पा वनराजयः कथं प्रतीयन्ते?

उ०– हेमन्ते विपुष्पा वनराजयः प्रसुप्ताः इव प्रतीयन्ते।

5. हेमन्ततौं वृक्षाः लताश्च कथं सुप्ता इव लक्ष्यन्ते?

उ०– हेमन्ततौं वृक्षाः लताश्च तुषारपतनेन पुष्पहीनत्वेन च प्रसुप्ताः इव लक्ष्यन्ते।

6. वर्षाकाले पर्वतशिखराणां तुलना केन सह कृता अस्ति?

उ०– वर्षाकाले प्रतापैभूषितानि शिखराणि मुक्ताकलापैर्भूर्षिताः पुरुषाः इव प्रतीयन्ते।

7. वसन्तकाले वृक्षा कीदृशाः भवन्ति?

उ०– वसन्तकाले वृक्षाः पुष्पयुक्ताः फलयुक्ताः च भवन्ति।

8. वसन्ततौं पुष्पिताः कर्णिकाराः कीदृशाः प्रतीयन्ते?

उ०– वसन्ततौं पुष्पिताः कर्णिकाराः स्वर्णयुक्ता पीताम्बरा नरा इव प्रतीयन्ते।

9. काननद्रुमाः गां पुष्पैः कदा अवकिरन्ति?

उ०– काननद्रुमाः गां पुष्पैः वसन्ते अवकिरन्ति?

10. हेमन्ततौं दिवसाः कीदृशाः भवन्ति?

उ०– हेमन्ततौं दिवसाः अत्यन्तं सुखसञ्चाराः, सुखगादित्याः, छ्रासलिल–दुर्भगाः च भवन्ति।

11. हेमन्ते जलचारिणः जले किं नावगाहन्ति?

उ०– हेमन्ते जलचारिणः शीतस्य कारणात् जले नावगाहन्ति।

संस्कृत अनुवाद संबंधी प्रश्न

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए–

1. सिंह वनों में गरजते हैं।
अनुवाद– सिंहः वने गर्जति।

2. कायर मनुष्य युद्ध-भूमि में प्रवेश नहीं करते।
अनुवाद– का पुरुषाः संग्रामे प्रवेशं न कुर्वन्ति।

3. नदियाँ किनारों को तोड़कर बहती हैं।
अनुवाद– नद्यः कूलाः प्रनष्टः प्रवहति।

4. हे लक्ष्मण! फूलों से युक्त इस वन की शोभा को देखो।
अनुवाद– भो लक्ष्मण! पुष्पेन युक्तः इदं वनः शोभाख् पश्य।

5. वनों में भौरे गूँजते हैं।
अनुवाद– वनें षटपदैः कूजन्ति।

6. सुखद हवा बह रही है।
अनुवाद– सुखदं वायुः प्रहवति।

7. सोने की चमकवाले शालि शोभा देते हैं।
अनुवाद– कनकप्रभाः शालयः शोभन्ते।

8. वर्षा ऋतु में तालाब में मेढ़क बोलेंगे।
अनुवाद– वर्षातौं तडागे दादुरः नदष्यिति।

9. हेमन्त में वृक्षों से पीले पत्ते गिरते हैं।
अनुवाद– हेमन्ते वृक्षेभ्यः पीतानि पर्णाति पतन्ति।

10. बसन्त ऋतु में कोयल बोलती है।
अनुवाद– वसन्ततौं पिकः कूजति।

संस्कृत व्याकरण संबंधी प्रश्न–

1. निम्नलिखित शब्द-रूपों में प्रयुक्त विभक्ति और वचन लिखिए–

शब्द-रूप	विभक्ति	वचन
प्रयातैः	चतुर्थी	एकवचन
रम्येषु	सप्तमी	बहुवचन

सौमित्रे	सम्बोधन	एकवचन
घनानां	षष्ठी	बहुवचन
वारिघरै:	तृतीया	बहुवचन
कर्णिकारान्	द्वितीया	बहुवचन
गन्धिषु	सप्तमी	बहुवचन
वनानाम्	षष्ठी	बहुवचन
शिरोभि:	तृतीया	बहुवचन
शालिनाम्	षष्ठी	बहुवचन

2. निम्नलिखित शब्दों में सन्धि-विच्छेद कीजिए-

सन्धि-पद	**सन्धि-विच्छेद**	**सन्धि नाम**
नवाम्बु:	नव + अम्बु:	दीर्घ सन्धि
सुभगादित्या:	सुभग + आदित्या:	दीर्घ सन्धि
नगेन्द्र:	नग + इन्द्र:	गुण सन्धि
घनोपगूढं	घन + उपगूढं	गुण सन्धि
रूपाकृतिम्	रूप + आकृतिम	दीर्घ सन्धि
सुखानिलोऽयं	सुख + अनिल: + अयम्	दीर्घ, उत्व सन्धि
नावगाहन्ति	न + आवगाहन्ति	दीर्घ सन्धि
तमसावृता	तमसा + आवृता	दीर्घ सन्धि

3. निम्नलिखित धातु-रूपों में लकार, पुरुष और वचन लिखिए-

धातु-रूप	**लकार**	**पुरुष**	**वचन**
प्रवहन्ति	लट्	प्रथम	बहुवचन
सृजतां	लोट्	प्रथम	एकवचन
पतन्ति	लट्	प्रथम	बहुवचन
पश्य	लोट्	मध्यम	एकवचन
लक्ष्यन्ते	लृट्	प्रथम	बहुवचन
विभान्ति	लट्	प्रथम	बहुवचन
पश्यैवान्	लोट्	मध्यम	एकवचन
नदन्ति	लट्	प्रथम	बहुवचन

4. निम्नलिखित शब्दों में धातु और प्रत्यय अलग कीजिए-

शब्द	**धातु**	**प्रत्यय**
गन्धवान्	गन्ध	क्तवतु
प्रसुप्ता:	प्र + सुप्	क्त
वितृप्ता:	वि + तृप	क्त
प्रबुद्धा:	प्र + बुध्	क्त
विहाय	वि + हा	ल्यप्

5. निम्नलिखित शब्दों के संस्कृत में पर्यायवाची शब्द लिखिए-

कमल	—	पंकजम्, नीरजम्।
बादल	—	मेघ:, पयोद:।
शेर	—	मृगेन्द्र:, केशरी।
हाथी	—	गज:, हस्ती।
पर्वत	—	गिरि:, शैल:।
नदी	—	गिरितनया, सरित्।

पाठ्येतर सक्रियता

उ०– छात्र स्वयं करें।

सप्तमः पाठः — जातक-कथा

अभ्यास प्रश्न

अवतरण अनुवादात्मक प्रश्न

निम्नलिखित गद्यावतरणों का ससन्दर्भ हिन्दी में अनुवाद कीजिए–

1. **अतीते प्रथमकल्पे..इत्यवोचन्।**

[अतीते = विगत; बीते, अभिरूपम् = सुन्दर, सर्वाकारपरिपूर्णं > सर्व + आकार-परिपूर्णम् = समग्र आकृति से परिपूर्ण, चतुष्पदा: = पशु, सन्निपत्य = एकत्रित होकर, शुकनिगणा: = पक्षी, प्रज्ञायते = जाना जाता है, चतुष्पदेषु = चौपायों में, पुनरन्तरे > पुन: + अन्तरे = किन्तु (हमारे) बीच, अराजक: = राजा के बिना, स्थापयितव्य: = बैठाना या स्थापित करना चाहिए]

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'जातक-कथा' पाठ के 'उलूकजातकम्' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

अनुवाद– प्राचीन काल के प्रथम कल्प में मनुष्यों ने एक सुन्दर, सौभाग्यशाली एवं समस्त सुलक्षणों से युक्त पुरुष को राजा बनाया। चौपायों (पशुओं) ने भी इकट्ठे होकर एक सिंह को राजा बनाया। तब पक्षियों ने हिमालय प्रदेश में एक शिलातल पर इकट्ठे होकर कहा— ''मनुष्यों में राजा दीख पड़ता है, वैसे ही चौपायों में भी, किन्तु हमारे बीच कोई राजा नहीं है। राजा के बिना रहना ठीक नहीं। (हमें भी) किसी को राजा के पद पर नियुक्त करना चाहिए। तब उन्होंने (राजा की खोज में) एक-दूसरे की दृष्टि दौड़ाते हुए एक उल्लू को देखकर कहा 'यह हमको पसन्द है।''

2. **अथैक:..कृत्वा आगमन्।**

[आशयग्रहणार्थम् = राय जानने के लिए, त्रिकृत्व: = तीन बार, अश्रावयत् = सुनाया, तप्तकटाहे = गर्म कड़ाही में, प्रक्षिप्तास्तिला > प्रक्षिप्ता: + तिला: = डाले गए तिल, धङ्क्ष्याम: = भुन जाएँगे, विरुवन = चिल्लाता हुआ, उदपतत् = उड़ गया, एनमन्वधावत् > एनम् + अन्वधावत = इसके पीछे दौड़ा]

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

अनुवाद– इसके बाद एक पक्षी ने सबका मत जानने के लिए तीन बार सुनाया (घोषणा की)। तब एक कौआ उठकर बोला—''जरा ठहरो, इसका राज्याभिषेक के समय ही (अर्थात् इस अतीव हर्ष के अवसर पर ही) ऐसा (भयानक) मुख है तो क्रुद्ध होने पर कैसा होगा? इसके क्रुद्ध होकर देखने पर तो हम लोग गर्म कड़ाही में डाले गये तिलों की तरह जहाँ-के-तहाँ ही जल-भुन जाएँगे। ऐसा राजा मुझे अच्छा नहीं लगता।

तुम लोगों का इस उल्लू को राजा बनाना मुझे ठीक नहीं लगता। इस समय के क्रोधहीन मुख को ही देखो, कुद्ध होने पर यह कैसा (विकृत) हो जाएगा?''

वह ऐसा कहकर 'मुझे अच्छा नहीं लगता', 'मुझे अच्छा नहीं लगता' चिल्लाता हुआ आकाश में उड़ गया। उल्लू ने भी उठकर उसका पीछा किया (या उसके पीछे भागा)। तब से ही दोनों एक-दूसरे के वैरी बन गये। पक्षी भी सुवर्ण हस को राजा बनाकर चले गये।

3. **अतीते प्रथमकल्पे..दुहितरमादिदेश।**

[दुहिता = पुत्री, वरमदात् > वरम् + अदात् = वर दिया, आत्मनश्चित्तन्तरुचितं > आत्मन: + चित्त + रुचितम् = अपने मनपसन्द, वृणुयात् = वरण करे]

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के जातक-कथा' पाठ के 'नृत्यजातकम्' शीर्षक से उद्धृत है।

अनुवाद– प्राचीनकाल में प्रथम कल्प में चौपायों (पशुओं) ने सिंह को राजा बनाया। मछलियों ने आनन्द मत्स्य (मछली) को एवं पक्षियों ने सुवर्ण हंस को (राजा बनाया)। उस सुवर्ण राजहंस की पुत्री हंसपोतिका (हंसकुमारी) अत्यधिक रूपवती थी। उस (हंसराज) ने उसे (हंसकुमारी को) वर दिया कि वह अपने मनोनुकूल पति का वरण करे। हंसराज ने उसे वर देकर हिमालय के पक्षियों को इकट्ठा कराया। विभिन्न प्रकार के हंस, मोर पक्षीगण आकर एक विशाल शिलातल पर इकट्ठे हुए। हंसराज ने पुत्री को आदेश दिया कि (वह) आकर अपने मनपसन्द पति को चुने।

4. **सा शकुनिसङ्घे..अगच्छत।**

[मणिवर्णग्रीवं = मणि के रंग के समान गर्दन वाले, चित्रपेक्षणम् = रंग-बिरंगे पंखों वाले, लज्जाञ्च > लज्जाम् + च = और लज्जा को, प्रतिच्छन्न = बिना ढका (नंगा), ह्री: = विनय, बर्हाणां = पंखों को, समुत्थाने = उठाने में, नास्मै > न + अस्मै = इसे नहीं, गतत्रपाय = नष्ट हो गई लज्जा जिसकी वह; निर्लज्ज, परिषन्मध्ये > परिषत् + मध्ये = सभा के बीच, भागिनेयाय = भांजे के लिए, हंसपोतिकाम् = हंस की पुत्री]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– उसने पक्षी समुदाय पर दृष्टि डालते हुए नीलमणि के रंग की गर्दन और रंग-बिरंगे (या विचित्र) पंखों वाले मोर को देखकर कहा कि 'यह मेरा स्वामी हो।' मोर ने (यह कहते हुए कि) 'आज भी तुम मेरा बल नहीं देखती हो' (अर्थात् अभी तुमने मेरा पराक्रम देखा ही कहाँ है?), बड़े गर्व से निर्लज्जतापूर्वक उस बड़े पक्षी समुदाय के बीच पंख फैलाकर नाचना शुरू किया और नाचते हुए नग्न हो गया। सुवर्ण राजहंस ने लज्जित होकर कहा—"इसे तो न (अन्दर का) संकोच है और न ही पंखों को उठाने में (बाहर की) लज्जा। इस निर्लज्ज को मैं अपनी पुत्री नही दूँगा। यह मेरी पुत्री से विवाह योग्य नहीं है"।

हंसराज ने उसी परिषद् के बीच अपने भांजे हंसकुमार को पुत्री दे दी। मोर हंसपुत्री को न पाकर लजाकर उस स्थान से भाग गया। हंसराज भी प्रसन्न मन से अपने घर को चला गया।

सूक्ति-व्याख्या संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

1. **अकुद्धस्य मुखं पश्य कथं कुद्धो भविष्यति?**

   सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'जातक-कथा' पाठ के 'उलूकजातकम्' शीर्षक से अवतरित है।

   प्रसंग– कौआ उल्लू को अपना राजा न मानने हेतु जो तर्क देता है, उसी का इस सूक्ति में कहा गया है।

   व्याख्या– पक्षियों की सभा में राजा के लिए जब उल्लू के नाम का प्रस्ताव आया तो एक कौए ने इसका विरोध करते हुए कहा कि अभी यह उल्लू कुद्ध नहीं है, राज्याभिषेक के समय भी इसका मुख देखो कैसा लग रहा है? जब अभी यह दशा है, तब क्रुद्ध होन पर इसका मुख कितना डरावना लगेगा? इसलिए मुझे इसका राजा बनना अच्छा नहीं लगता है। भाव यह है कि जब यह क्रोधहीन स्थिति में इतना क्रोधित दिखाई दे रहा है तब क्रोध की स्थिति में कितना अधिक क्रोधित दिखाई पड़ेगा। तात्पर्य यह है कि प्रसन्नमुख व्यक्ति ही सर्वप्रिय होता है। क्रुद्धमुखाकृति को कोई पसन्द नहीं करता।

2. **अराजको वासो नाम न वर्तते।**

   सन्दर्भ– पूर्ववत्

   प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में राजा के महत्त्व पर पक्षियों के द्वारा प्रकाश डाला गया है।

   व्याख्या– प्राचीनकाल में जब मनुष्यों ने सर्वगुणसम्पन्न एक व्यक्ति को राजा बनाया और पशुओं ने सिंह को अपना राजा बनाया, तब पक्षियों ने भी आपस में मिलकर विचार किया कि क्यों न हमें भी किसी पक्षी को अपना राजा बनाना चाहिए। जब सभी जीवों ने अपना-अपना राजा चुन लिया है, ऐसे में हमारा बिना राजा के रहना उचित नहीं है; क्योंकि राजा ही प्रजा की रक्षा और कल्याण के उपाय में लगा रहकर सदैव उसका पालन करता रहता है।

पाठ पर आधारित प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संस्कृत में दीजिए–

1. **चतुष्पदाः सन्निपत्य किम् अकुर्वन्?**

उ०– अतीते प्रथमा कल्पे चतुष्पदा: मिलित्वा सिंहं राजानमकुर्वन्।

2. **पक्षिणः कं राजानं कुर्तं व्यचारयन्?**

उ०– पक्षिण: एकं उलूकं राजानं कुर्तं व्यचारयन्।

3. **'ईदृशो राजा मह्यं न रोचते' इति कस्योक्तिः?**

उ०– 'ईदृशो राजा मह्यं न रोचते' इति काकस्य उक्ति:?

4. **जनाः कीदृशं पुरुषं राजानाम् अकुर्वन्?**

उ०– जना: एकमभिरूपं सौभाग्यप्राप्तं राजनाम् अकुर्वन्।

5. **चतुष्पदाः कः राजानाम् अकुर्वन्?**

उ०– चतुष्पदा: सिंहं राजानाम् अकुर्वन्।

6. **काकः कथमुलूकस्य विरोधमकरोत्?**

उ०– काक क्रुद्धा कृतिकारणात् उलूकस्य विरोधनम् अकरोत्।

7. **पक्षिणोऽन्ते कः राजानमकरोत्?**

उ०– पक्षिणोऽन्ते सुवर्णहंस राजानमकरोत।

8. **सुवर्णराजहंसस्य दुहितुः नाम किमासीत्?**

उ०– सुवर्णराजहंसस्य दुहितु: नाम हंसपोतिका आसीत्।

9. **हंसपोतिका पतिरूपेण कस्य वरणम् अकरोत्?**

उ०– हंसपोतिका पतिरूपेण मयूरस्य वरणम् अकरोत्।

10. मयूरः कीदृशः आसीत्?

उ०– मयूर: मणिवर्णग्रीव: चित्रप्रेक्षण: च आसीत्।

11. नानाप्रकाराः हंसमयूरादयः कुत्रं संन्यपतन्?

उ०– नानाप्रकारा: हंसमयूरादय: एकस्मिन् महति पाषाणतले संन्यपतन्।

12. राजहंसः परिषन्मध्ये कस्मै स्व दुहितरम् अददात्?

उ०– राजहंस: परिषन्मध्ये आत्मन: भागिनेयाय हंसपोतकाय स्व दुहितरम् अददात्।

13. मयूरो हंसपोतिकामाप्राप्य किमकरोत्?

उ०– मयूरो हंसपोतिकामाप्राप्य लज्जित:, तस्मात् स्थानात् पलायित:।

14. मयूरः शकुनिसङ्घे किम अकरोत्?

उ०– मयूर: शकुनिसङ्घे पक्षौ प्रसार्य नृत्यम् अकरोत्।

संस्कृत अनुवाद संबंधी प्रश्न

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए–

1. **पशुओं ने शेर को राजा बनाया।**
   अनुवाद– चतुष्पदा सिंहस्य राजानाम् अकुर्वन्।
2. **हंसपोतिका अत्यन्त रूपवती थी।**
   अनुवाद– हंसपोतिका अतीव रूपवती आसीत्।
3. **हंसपोतिका ने पति रूप में मोर का वरण किया।**
   अनुवाद– हंसपोतिका पतिरूपेण मयूरस्य वरणं अकरोत्।
4. **यह मुझे अच्छा नहीं लगता।**
   अनुवाद– इदं मह्यं न रोचते।
5. **राजहंस ने अपनी पुत्री मोर को नहीं दी।**
   अनुवाद– राजहंस आत्मन: दुहिता मयूरस्य न अददात्।
6. **तुमने मेरा बल नहीं देखा।**
   अनुवाद– त्वं मम बलं न पश्य।
7. **मोर वन में नाचता है।**
   अनुवाद– मयूर: वनें नृत्यति।
8. **उल्लू ने कौए का पीछा किया।**
   अनुवाद– उलूक: काक: अन्वधावत्।
9. **मछलियों ने आनन्द मत्स्य को राजा बनाया।**
   अनुवाद– मत्स्या आनन्द मत्स्यस्य राजानाम् अकुर्वन्।
10. **सभी पक्षी हिमालय प्रदेश में एकत्रित हुए।**
    अनुवाद– सर्व शकु: हिमालय: प्रदेशे समागत्य:।

संस्कृत व्याकरण संबंधी प्रश्न–

1. **निम्नलिखित शब्दों में से सन्धि-विच्छेद कीजिए तथा सन्धि का नाम लिखिए–**

सन्धि पद	सन्धि-विच्छेद	सन्धि नाम
पक्षिभिरुक्तम्	पक्षिभि: + उक्तम्	रुत्व सन्धि
मयूरादय:	मयूरा + उदय:	दीर्घ सन्धि
प्रक्षिप्तास्तिला	प्रक्षिप्ता: + तिला:	सत्व सन्धि
तावन्महत:	तावत् + महत:	अनुनासिक सन्धि
पुनरन्तरे:	पुन: + अन्तरे	रुत्व सन्धि
इत्युक्तवन्त:	इति + उक्तवन्त:	यण सन्धि
अद्यापि	अद्य + अपि	दीर्घ सन्धि
राज्याभिषेक्	राज्य + अभिषेक	दीर्घ सन्धि
सर्वाकार	सर्व + आकार	दीर्घ सन्धि
अथैक:	अथ + एक:	वृद्धि सन्धि

2. **निम्नलिखित शब्द-रूपों में प्रयुक्त विभिक्ति एवं वचन लिखिए-**

शब्द रूप	**विभक्ति**	**वचन**
सर्वैः	तृतीया	बहुवचन
मह्यम्	चतुर्थी	एकवचन
पक्षिभिः	तृतीया	बहुवचन
सङ्घे	सप्तमी	एकवचन
मनुष्येषु	सप्तमी	एकवचन
पाषाणे	सप्तमी	बहुवचन
आत्मनः	पञ्चमी/ षष्ठी	एकवचन
बर्हाणाम्	षष्ठी	बहुवचन
हिमवति	सप्तमी	एकवचन
हंसपोतकाय	चतुर्थी	एकवचन

3. **निम्नलिखित धातु-रूपों के लकार, पुरुष तथा वचन लिखिए-**

धातु रूप	**लकार**	**पुरुष**	**वचन**
तिष्ठ	लोट्	मध्यम	एकवचन
अश्रावयत्	लङ्	प्रथम	एकवचन
गृह्णातु	लोट्	प्रथम	एकवचन
अभूत्	लङ्	प्रथम	एकवचन
आह	लट्	प्रथम	एकवचन
आसीत्	लङ्	प्रथम	एकवचन
वर्तते	लट्	प्रथम	एकवचन
अकुर्वन्	लङ्	प्रथम	बहुवचन
दास्यामि	लृट्	उत्तम	एकवचन
नास्ति	लट्	प्रथम	एकवचन
रोचते	लट्	प्रथम	एकवचन

4. **निम्नलिखित में धातु और प्रत्यय अलग कीजिए-**

शब्द	**धातु**	**प्रत्यय**
कृत्वा	कृ	क्त्वा
नर्तितुम्	नृत्	तुमुन्
सन्निपत्य	सम् + नि + पत्	ल्यप्
समागत्य	सम् + आ + गम्	ल्यप्
स्थापयितव्यः	स्था	त्वयत्
दृष्ट्वा	दृश्	क्त्वा

पाठ्येतर सक्रियता

उ०- छात्र स्वयं करें।

अष्टमः पाठः नृपतिर्दिलीपः

अभ्यास प्रश्न

अवतरण अनुवादात्मक प्रश्न

निम्नलिखित गद्यावतरणों का ससन्दर्भ हिन्दी में अनुवाद कीजिए-

1. **वैवस्वतो..प्रणवश्छन्दसामिव।**

[वैवस्वतः = विवस्वान् (सूर्य) का पुत्र, मनीषिणाम् = विद्वानों के, आसीन्महीक्षितामाद्यः > आसीन् + महीक्षिताम् + आद्यः = हुए राजाओं में प्रथम, प्रणवश्छन्दसामिव > प्रणवः + छन्दसाम् + इव = वेदों में ओऽम् (ॐ) की भाँति]

सन्दर्भ– प्रस्तुत श्लोक हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'नृपतिर्दिलीप:' नामक शीर्षक से उद्धृत है।

अनुवाद– विद्वानों में सम्मान के योग्य वैवस्वत (सूर्य के पुत्र) मनु (नाम के राजा) का जन्म राजाओं में उसी प्रकार हुआ है, जैसे कि वेदों में प्रणव मन्त्र ॐ का महत्त्व होता है।

2. तदन्त्तये .... क्षीरनिधाविव।

[तदन्वये > तत् + अन्वये = उन (मनु) के वशं में, शुद्धिमति = पवित्र, प्रसूत: = उत्पन्न हुए, शुद्धिमत्तर: = अति पवित्र, राजेन्दु: > राजा + इन्दु: = राजश्रेष्ठ, क्षीरनिधाविव = क्षीरनिधौ + इव = जैसे क्षीरसागर में]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– उन (मनु) के पवित्र वंश में अति पवित्र (चरित्र वाले) दिलीप नामक श्रेष्ठ राजा वैसे ही उत्पन्न हुए, जैसे क्षीरसागर में चन्द्रमा। (समुद्र-मन्थन के समय बहुत-से रत्नों के निकलते समय चन्द्रमा श्रेष्ठ था। उसी प्रकार उस मनु-वंश में दिलीप नाम के राजा सर्वोत्तम चरित्र वाले थे।)

3. रेखामात्रमपि ....नियन्तुर्नेमितृवय:।

[रेखामात्रमपि = रंचमात्र भी, क्षुण्णाद् = प्रचलित, आमनोवर्त्मन: > आ + मनो: + वर्त्मन: = मनु के समय से (चले आए हुए) मार्ग से, न व्यतीयु: = अतिक्रमण न किया, नियन्तु: = सारथी, नेंमिवृत्तय: = परम्परा का पालन करने वाली; लीक पर चलने वाली]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– जिस प्रकार कुशल सारथी के द्वारा हाँके गये रथ के पहिये लीक से जरा भी इधर-उधर नहीं होते, उसी प्रकार कुशल शासक दिलीप द्वारा शासित प्रजा, मनु द्वारा निर्दिष्ट (वर्णाश्रम धर्म के) मार्ग से जरा भी विचलित नहीं होती थी।

4. आकारसदृशप्रज्ञ: ....आरम्भसदृशोदय:।

[आकारसदृशप्रज्ञ: = आकृति के अनुरूप बुद्धि वाले, आगम: = शास्त्रज्ञान, आरम्भसदृशोदय: > आरम्भसदृश: + उदय: = प्रारम्भ किए गए कार्यों के अनुरूप फल]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– महाराज दिलीप अपनी विशाल शरीरकृति के सदृश ही विशाल बुद्धि वाले थे (अर्थात् अत्यधिक मेधावी थे), विशाल बुद्धि के अनुरूप ही उनका शास्त्रज्ञान था (अर्थात् उन्होंने विभिन्न शास्त्रों का गम्भीर ज्ञान बहुत शीघ्र प्राप्त कर लिया था), अपने शास्त्रज्ञान के अनुरूप ही वे किसी कार्य का प्रारम्भ करते थे। (अर्थात् शास्त्रानुसार ही किसी कार्य में हाथ डालते थे) और कार्यरम्भ के अनुरूप ही उनकी फलसिद्धि होती थी (अर्थात् शास्त्रानुसार कार्यारम्भ के कारण उनको सफलता भी अति शीघ्र प्राप्त हो जाती थी)।

5. सेनापरिच्छदस्तस्य ....चातता।

[परिच्छदस्तस्य > परिच्छद: + तस्य = उसका उपकरण थी, द्वयमेवार्थसाधनम् > द्वयम + एव + अर्थसाधनम् = (दिलीप के) अर्थ (प्रयोजन) को सिद्ध करने वाले (साधन तो) दो ही थे, अकुण्ठिता = अप्रतिहत; न रुकने वाली, मौर्वी = धनुष की डोरी; प्रत्यंचा, चातता > च + आतता = और चढ़ी हुई या तनी हुई]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– उन (राजा दिलीप) की विशाल सेना तो बस उपकरणमात्र (शोभामात्र) थी। उनका प्रयोजनन सिद्ध करने वाले (वस्तुत:) दो ही साधन थे— शास्त्रों में उनकी अप्रितहत बुद्धि (अर्थात् शास्त्रों पर उनका असाधारण अधिकार) और धनुष पर चढ़ी हुई डोरी (भाव यह है कि राजा दिलीप का असाधारण शास्त्रज्ञान, जिससे वे हर कार्य उचित ढंग से करते थे और उनका व्यक्तिगत पराक्रम उन्हें तत्काल सफलता दिलवाता था। उन्हें सेना के प्रयोग की कभी आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी)।

6. जुगोपात्यानमत्रस्तो...सुखमन्वभूत्।

[जुगोप = रक्षा करते थे, अत्रस्तम् = भयरहित होकर, भेजे = सेवन करते थे; अर्जन करते थे, अनातुर: = बिना घबराए हुए, अगृध्नु: = लोभरहित, आददे = ग्रहण; संग्रह करते थे, अन्वभूत् = अनुभव करते थे।]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– वे (राजा दिलीप) निर्भीक होकर अपनी रक्षा करते थे, धैयपूर्वक धर्म का पालन करते थे, लोभरहित होकर धन का संग्रह करते थे और आसक्तिरहित होकर सांसारिक सुखों का अनुभव (भोग) करते थे।

7. ज्ञाने मौनं...सप्रसव्य इव।

[शक्तौ = शक्ति रहते हुए भी, श्लाघाविपर्यय: = प्रशंसारहित, अनुबन्धित्वात् = साथ-साथ रहने के कारण, सप्रसवा इव > सप्रसवा: + इव = सहोदर जैसे]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– सब कुछ जानते हुए चुप रहना, (शत्रु से बदला लेने की) सामर्थ्य होते हुए भी क्षमा करना तथा त्याग करके भी अपनी प्रशंसा से दूर रहना— ये परस्पर विरोधी गुण राजा दिलीप में साथ-साथ रहने के कारण (अर्थात्) ज्ञान, शक्ति और त्याग के साथ उनके विरोधी गुण मौन, क्षमा और आत्म-प्रशंसा का अभाव रहने के कारण) लगता था, मानो ये (परस्पर-विरोधी गुण) उनमें साथ-साथ ही उत्पन्न हुए हों।

8. प्रजानां..जन्महेतवः।

[विनयाधानाद् = विनय का आधान करने के कारण, भरणाद् = पालन-पोषण करने के कारण, तासाम् = उन के (प्रजाओं के), जन्महेतवः = जन्म देने के कारण]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– प्रज्ञाओं को सदाचार की शिक्षा देने, (विपत्तियों से उनकी) रक्षा करने एवं (अन्न-वस्त्रादि देकर उनका) पालन-पोषण करने से वे (राजा दिलीप) ही प्रज्ञाओं के (वास्तविक) पिता थे। पिता कहलाने वाले अन्य लोग तो केवल जन्म भर के पिता थे (आशय है कि पिता का भरण-पोषणादि का कार्य राजा ही करते थे।)

9. दुदोह गां..दधतुर्भुवनद्वयम्।

[दुदोह = दोहन किया था, गाम् = पृथ्वी का, शस्याय = अन्न के लिए, मधवा = इन्द्र, दिवम् = स्वर्ग को, सम्पद्विनिमयनोभौ > सम्पद-विनिमयेन + उभौः = सम्पत्ति के आदान-प्रदान से वे दोनों, दधतुः = पोषण करते थे]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– वे (राजा दिलीप) यज्ञ करने के लिए पृथ्वी को दुहाते थे (अर्थात् प्रजा से कर लेकर उसे यज्ञों में लगाते थे, जिससे देवताओं का पोषण होता था) और (बदले में) इन्द्र अनाज (की वृद्धि) के लिए आकाश को दुहते थे (अर्थात् आकाश से जल की वर्षा करके पृथ्वी पर अन्न की वृद्धि करते थे।)। (इस प्रकार) वे दोनों (दिलीप और इन्द्र) अपनी-अपनी सम्पत्तियों के पारस्परिक विनिमय (आदान-प्रदान) द्वारा दोनों लोकों (भूलोक और स्वर्गलोक) का पोषण करते थे।

विशेष– यज्ञों से देवताओं का पोषण होता है; क्योंकि उनमें दी गयी आहुतियाँ देवताओं तक पहुँचाती हैं।

10. स वेलावप्रवलयां..शशासैकपुरीभिव।

[वेलावप्रवलयाम् = समुद्ररूपी परकोटे वाली, परिखीकृत-सागराम् = सागररूपी खाई वाली, अनन्यशासनाम् = जो दूसरों के शासन से रहित है (ऐसी पृथ्वी), उर्वीम् = पृथ्वी, शशास = शासन किया।]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– उस (दिलीप) ने सागरतटरूपी परकोटे वाली और समुद्ररूपी खाई वाली तथा अन्य किसी राजा के शासन से रहित समग्र पृथ्वी पर एक नगरी के सदृश शासन किया (आशय यह है कि सागर से घिरी समस्त पृथ्वी पर दिलीप का एकछत्र अधिकार था, फिर भी वे उसका शासन ऐसी सुगमता से करते थे, जैसे कोई राजा एक नगरी पर शासन करे)।

सूक्ति-व्याख्या संबंधी प्रश्न

निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

1. त्याज्यो दुष्टः प्रियोप्यासीत्।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'नृपतिर्दिलीपः' नामक पाठ से अवतरित है।

प्रसंग– इस सूक्ति में राजा दिलीप की न्यायप्रियता को प्रदर्शित किया गया है।

व्याख्या– राजा दिलीप बड़े न्यायप्रिय राजा थे। यदि उनका प्रिय व्यक्ति भी दुष्टतापूर्ण आचरण करता था तो वे उसको त्याग देते थे और दण्ड के विधानुरूप उसे कठोर-से-कठोर दण्ड देते थे। वे सज्जन व्यक्ति का सम्मान करते थे, भले ही वह उनका शत्रु ही क्यों न हो। दुर्जन प्रिय व्यक्ति का त्याग करने में वे लेशमात्र भी संकोच नहीं करते थे। सामान्य व्यक्ति गुणहीन प्रियजन के प्रति भी स्नेहभाव रखता है और गुणवान शत्रु के प्रति देषभाव। किन्तु राजा दिलीप सामान्य व्यक्ति नहीं थे। गुणी शत्रु भी उनके लिए उसी प्रकार ग्राह्य होता था, जिस प्रकार रोगी के लिए कटु औषध और दुष्ट प्रिय व्यक्ति भी उसी प्रकार त्याज्य था, जिस प्रकार सर्प के द्वारा दंशित अँगुली।

2. वृद्धत्वं जरसा विना।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में राजा दिलीप के धीरे-गम्भीर व्यक्तित्व का प्रतिपादन किया गया है।

व्याख्या– व्यक्तिगत जीवन को उन्नत करने के लिए भारतीय संस्कृति में चार आश्रमों— ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और

संन्यास का निर्धारण किया गया है। ब्रह्मचर्य में विद्याध्ययन, गृहस्थ में धनोपार्जन और वैवाहिक जीवन, वानप्रस्थ में गृहस्थ के अनेक कार्यों से विरक्ति और संन्यास में अपने को ईश्वर और दैवी उपासना में समर्पण की व्यवस्था है। व्यक्ति आयु बढ़ने के साथ-साथ अनुभव से परिपक्वता प्राप्त करना है तथा वृद्धावस्था में उसका विषयों के प्रति आकर्षण समाप्त हो जाता है, किन्तु राजा दिलीप ने युवा होते हुए भी सांसारिक विषयों के प्रति आकर्षित न होकर, सम्पूर्ण विद्याओं में पारंगत होकर तथा अपने धर्म का पालन करके बिना वृद्धावस्था के ही बुद्धत्व (परिपक्वता) को प्राप्त कर लिया था अर्थात् उन्हें सभी विद्याओं का बहुत अधिक ज्ञान था, जो उनकी अवस्था के व्यक्तियों में होना असम्भव था। अन्यत्र भी कहा गया है कि, ''मनुष्य के केश श्वेत हो जाने पर ही वह बुद्ध नहीं होता, अपितु अध्ययनरत युवा भी वृद्धों की कोटि में ही आता है।

3. **प्रणवश्छन्दसामिव।**

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– यह सूक्ति राजा मनु की श्रेष्ठता के सन्दर्भ में कही गयी है।

व्याख्या– सभी मन्त्रों में प्रणव मन्त्र अर्थात् ओंकार मन्त्र को श्रेष्ठ और पवित्र माना गया है। राजा मनु भी अपने समय के सभी राजाओं में उसी प्रकार से सर्वश्रेष्ठ थे, जिस प्रकार से मन्त्रों में प्रणव मन्त्र सर्वश्रेष्ठ होता है।

4. **द्वेष्योऽपि सम्मतः शिष्टः।**

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में राजा दिलीप की चारित्रिक श्रेष्ठता पर प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या– राजा दिलीप योग्य एवं गुणवान् व्यक्ति का सदा सम्मान करते थे। यदि कोई सज्जन स्वभाव वाला व्यक्ति उनसे शत्रुता का भाव रखता था तो वे ऐसे शत्रु के प्रति भी सम्मान का भाव रखते थे। ऐसा व्यक्ति उन्हें वैसे ही प्रिय होता था जैसे कि रोगी को कटु औषध प्रिय होती है। इसके विपरित उनके लिए दुष्ट व्यक्ति प्रिय होते हुए भी त्याज्य था। तात्पर्य यह है कि राजा दिलीप स्वयं अनेक सद्गुणों से युक्त थे और वे दूसरे किञ्चित् गुणवान् व्यक्तियों का भी सम्मान करते थे। उनका मानना था कि शत्रु भी किसी अनुकरणीय गुण से सम्पन्न हो सकता है। अत: सम्पूर्ण रूप से किसी व्यक्ति को नकारना हमारी अज्ञानता का परिचायक होता है और हमारे व्यक्तित्व को संकुचित बना देता है।

5. **ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघाविपर्ययः।**

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में राजा दिलीप के त्यागपूर्ण व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या– राजा दिलीप बहुत गुणवान् थे। जहाँ वे ज्ञान होने पर भी मौन रहते थे, वहीं त्याग करने पर भी अपनी प्रशंसा के विरुद्ध रहते थे। उनका त्याग नि:स्वार्थ भाव का त्याग होता था। वे उस त्याग के बदले अपनी प्रशस्ति नहीं सुनना चाहते थे। ऐसा कहा गया है कि आत्म-प्रशंसा सबसे बड़ी आत्मा-प्रवंचना होती है। त्याग एवं दान का मूलभूत सिद्धान्त यही है कि जो दिया जाए उसका कभी भी ढिंढोरा न पीटा जाए। राजा दिलीप का त्यागपूर्ण व्यक्तित्व भी ऐसा ही था।

6. **स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः।**

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में राजा दिलीप के कर्त्तव्य-पालन पर प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या– राजा दिलीप अपने कर्तव्यों का सदैव पालन करते थे। वे अपनी प्रज्ञा को सदाचार की शिक्षा देते थे, विपत्तियों से अपनी प्रजा की रक्षा करते थे, तथा अन्न-वस्त्र आदि देकर वे अपनी प्रजा का पालन-पोषण करते थे, जैसे वे ही प्रजा के वास्तविक पिता हो। पिता कहलाने वाले अन्य लोग तो केवल जन्म देने भर के पिता थे। उनका पालन-पोषण तो राजा दिलीप ही करते थे। अर्थात् प्रजा के पालन-पोषण का दायित्व राजा दिलीप ही उठाते थे।

7. **प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमगृहीत।**

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में राजा दिलीप की कर-व्यवस्था की प्रशंसा की गयी है।

व्याख्या– जिस प्रकार भगवान् सूर्य बहुत कम मात्रा में जल सोखते हैं, पर बदले में हजार गुना जल बरसा देते है, ठीक उसी प्रकार राजा दिलीप अपनी प्रजा से बहुत कम कर (टैक्स) ग्रहण करते थे और उसके बदले हजार गुना सुविधाएँ प्रजा को देते थे। उनके कर प्राप्त करने का तरीका इतना सहज और स्वाभाविक था कि प्रजा को कर देते समय किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता था अर्थात् प्रजा को कर देने का उसी प्रकार पता नहीं चलता था, जिस प्रकार से सूर्य द्वारा वाष्प बनाकर जल सोखने की क्रिया का किसी को पता नहीं चलता।

पाठ पर आधारित प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संस्कृत में दीजिए–

1. **महीक्षितामं आद्यः कः आसीत्?**

उ०– महीक्षितामं आद्य: वैवस्वत: आसीत्।

2. **वैवस्वतः मनुः कः आसीत्?**

उ०– वैवस्वत: मनु: पृथिव्याम् आद्य: शासक: आसीत्?

3. **मनीषिणां माननीयः कः आसीत्?**

उ०– मनीषिणां माननीय: वैवस्वत: मनु: आसीत्।

4. **राज्ञः दिलीपस्य गुणान् वर्णयन्तु?**

उ०– दिलीप: मनीषिणां माननीय: नृपगुणै: परिचारकाणामधृष्यश्चाभिगम्यश्च, प्रजापालक:, शास्त्रज्ञ: संवृतमन्त्र:, धनुर्धर:, प्रजानुशास्ता आसीत्।

5. **दिलीपः कस्य प्रदेशस्य राजा आसीत्?**

उ०– दिलीप:समग्रभूमण्डलस्य राजा आसीत्?

6. **दिलीपः गां किमर्थं दुदोह?**

उ०– दिलीप: गां यज्ञाय दुदोह।

7. **दिलीपःकस्यान्वये प्रसूतः?**

उ०– दिलीप: वैवस्वतमनोरन्वये प्रसूत:।

8. **मधवा दिवं किमर्थं दुदोह?**

उ०– मधवा दिवं शस्याय दुदोह।

9. **रविः रसं किमर्थं आदत्ते?**

उ०– रवि: रसं (जलं) सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते।

10. **दिलीपः किमर्थं बलिमगृहीत्?**

उ०– दिलीप: प्रजनामेव भूत्यवर्थं बलिमगृहीत्।

संस्कृत अनुवाद संबंधी प्रश्न

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए–

1. **दिलीप अयोध्या के राजा थे।**
   अनुवाद– दिलीप: अयोध्याया राजा आसीत्।
2. **वे प्रजा के हित के लिए ही कर लेते थे।**
   अनुवाद– स: प्रजाहितायैव करमगृहीत्।
3. **दिलीप ने वैवस्वत मनु के वंश में जन्म लिया।**
   अनुवाद– दिलीप: वैवस्वत: मनुस्य वंशे प्रसूत:।
4. **वे सज्जनो का आदर करते थे।**
   अनुवाद– स: सज्जनानामादरं करोति स्म।
5. **वे प्रजा का पुत्र की भाँति पालन करते थे।**
   अनुवाद– स: प्रजां पुत्रवत् पालयति स्म।
6. **मेरा मित्र मेरे साथ हरिद्वार गया।**
   अनुवाद– मम मित्र मया सह हरिद्वारं अगच्छत्।
7. **गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीरामचरितमानस लिखा।**
   अनुवाद– गोस्वामी तुलसीदास: श्रीरामचरितमानसम् अलिखत्।
8. **मेरा गाँव गंगा के तट पर है।**
   अनुवाद– मम ग्राम: गंगाया तटे अस्ति।
9. **श्याम राम को पुस्तक देता है।**
   अनुवाद– श्याम: रामं पुस्तकं ददाति।

10. **हमें गुरुओं को नमस्कार करना चाहिए।**

अनुवाद– वयं गुरुभ्य: नमस्कारं कुर्याम्।

संस्कृत व्याकरण संबंधी प्रश्न

1. **निम्नलिखित शब्दों में से सन्धि-विच्छेद कीजिए तथा सन्धि का नाम लिखिए–**

सन्धि शब्द	सन्धि-विच्छेद	सन्धि का नाम
राजेन्दु	राज + इन्दु	गुण सन्धि
क्षीरनिधाणिव	क्षीरनिधौ + इव	अयादि सन्धि
शशासैकपुरीम्	शशास + एकपुरीम्	वृद्धि सन्धि
अङ्गुलीव	अङ्गुलि + इव	दीर्घ सन्धि
भूत्यर्थं	भूति + अर्थम्	यण सन्धि
प्रजानामेव	प्रजानाम् + एव	अनुस्वार सन्धि
तत्यार्तस्य	तस्य + आर्तस्य	दीर्घ सन्धि
द्वेष्योऽपि	द्वेष्य: + अपि	उत्व सन्धि
आसीन्महाक्षितामाघ:	आसीत् + महीक्षिताम् + आघ:	अनुनासिक, अनुस्वार सन्धि
प्रणवश्छन्दसामिव	प्रणव: + छन्दसाम् + इव	सत्व, अनुस्वार सन्धि

2. **निम्नलिखित शब्द-रूपों में प्रयुक्त विभक्ति एवं वचन लिखिए–**

शब्द-रूप	विभक्ति	वचन
मनीषिणाम्	षष्ठी	बहुवचन
ताभ्यो	चतुर्थी/पञ्चमी	बहुवचन
प्रज्ञया	तृतीया	एकवचन
आगमैं:	तृतीया	बहुवचन
शक्तौ	सप्तमी	एकवचन
त्यागे	सप्तमी	एकवचन
प्रजानां	षष्ठी	बहुवचन
यज्ञाय	चतुर्थी	एकवचन
धनात	पञ्चमी	एकवचन
मन्त्रस्य	षष्ठी	एकवचन

3. **निम्नलिखित धातु-रूपों के लकार, पुरुष तथा वचन लिखिए–**

धातु-रूप	लकार	पुरुष	वचन
पृच्छेयम्	विधिलिङ्	उत्तम	एकवचन
पक्ष्यसि	लृट्	मध्यम	एकवचन
प्रच्छाानि	लोट्	उत्तम	एकवचन
हसानि	लोट्	उत्तम	एकवचन
हसन्तु	लोट्	प्रथम	बहुवचन
खोदत्	विधिलिङ्	प्रथम	एकवचन
खादिष्यति	लृट्	प्रथम	एकवचन
अखाद:	लङ्	मध्यम	एकवचन
हसेव	विधिलिङ्	उत्तम	द्विवचन
अपचत्	लङ्	प्रथम	एकवचन

पाठ्येतर सक्रियता

उ०– छात्र स्वयं करें।

नवमः पाठः महर्षिर्दयानन्दः

अभ्यास प्रश्न

अवतरण अनुवादात्मक प्रश्न

निम्नलिखित गद्यावतरणों का ससन्दर्भ हिन्दी में अनुवाद कीजिए–

1. **सौराष्ट्रप्रान्ते..प्रसिद्धोऽभूत।**

   [औदीच्यविप्रवंशीयस्य = औदीच्य (उत्तरी) ब्राह्मणवंशीय, एकाशीत्युन्तराष्टादशशततमे > एकाशीति + उत्तर + अष्टदश-शततमे = सन् 1881 ई० में, वैक्रमाब्दे > वैक्रम + अब्दे = विक्रम संवत में, चोपरि > च + उपरि = और ऊपर, मूषिकम = चूहे को, इतस्ततः > इतः + ततः = इधर-उधर, ततःप्रभृत्येव > ततः प्रभृति + इव = तब से लेकर ही]

   सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'महर्षिर्दयानन्दः' नामक पाठ से उद्धृत है।

   अनुवाद– सौराष्ट्र प्रान्त के टंकारा नामक ग्राम में औदीत्य ब्राह्मण वंश के श्री कर्षण तिवारी नामक एक धनी की पत्नी ने, शिव की (अर्द्धांगिनी) पार्वती के सदृश, विक्रम संवत् 1881 के भाद्रपद के महीने में नवमी तिथि को बृहस्पतिवार के दिन मूल नक्षत्र में पुत्ररत्न को जन्म दिया।

   जन्म से दसवें दिन पिता ने (इस) विचार से कि 'यह (बालक) शिव को भजे' (शिव की उपासना करे) अपने पुत्र का नाम मूलशंकर रखा और आठवें वर्ष में इनका उपनयन (यज्ञोपवित संस्कार) किया। तेरह वर्ष के हो जाने पर मूलशंकर से पिता ने शिवरात्रि का व्रत करने को कहा। पिता की आज्ञानुसार मूलशंकर ने व्रत के सभी विधान (पूरे) किये। रात में शिवालय में अपने पिता समेत सबको सोता देख ये स्वयं जागते रहे और शिवलिंग पर एक चूहे को इधर-उधर घूमते देख मन में शंका उत्पन्न हो जाने से (कि जो शिवलिंग अपनी रक्षा नहीं कर सकता, वह हमारी रक्षा क्या करेगा) सत्यम् , शिवम, सुन्दरम् (तथा) लोककल्याणकारी शंकर का साक्षात्कार करने का हृदय में निश्चय किया। तभी से लेकर शिवरात्रि का उत्सव श्रीमद्दयानन्द के अनुयायी आर्यसमाजियों में 'ऋषिबोधोत्सव' (ऋषि दयानन्द को सच्चा ज्ञान प्राप्त होने का उत्सव) के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

2. **यदा अयं..गृहमत्यजत्।**

   [षोडशवर्षदेशीयः = लगभग सोलह वर्ष के, कनीयसी = छोटी, भगिनी = बहन, विषूचिकया = हैजे से, पञ्चत्वं = मृत्यु को, गता = प्राप्त हो गई, पितृव्योऽपि > पितृव्यः + अपि = चाचा भी, दिवङ्गत = स्वर्ग सिधार गए, आसीदस्य > आसीत् + अस्य = हुआ इनके (मन में) वायं > व + अयम् = अथवा यह (संसार), भास्वान् = सूर्य]

   सन्दर्भ– पूर्ववत्

   अनुवाद– जब ये लगभग सोलह वर्ष के थे, इनकी छोटी बहन हैजे से मर गयी। तीन वर्ष बाद इनके चाचा भी स्वर्ग को सुधार गये। इन दो मौतों को देखकर इनके मन में (विचार) आया कि मैं अथवा यह संसार मृत्युभय से कैसे छुटकारा पाये। यह सोचते हुए इनके हृदय में सहसा ही वैराग्य का दीपक जल उठा। एक दिन भगवान् सूर्य के अस्त हो जाने पर मूलशंकर ने घर त्याग दिया।

3. **सप्तदशवर्षाणि..न्यवेदयत।**

   [यावत् = तक, नाविन्दताततिरां > न + अविन्दत + अतितराम = अधिक संतुष्टि नहीं पाई, सकाशात् = पास से, अङ्गीकृतवान = स्वीकार किया, श्रावं-श्रावं = बार-बार सुनकर, सप्तदशैकोनविंशतिशततमे = सन् 1917 ई० में, गुरुकल्पवृक्षं = गुरु-रूपी कल्पवृक्ष, विलोचनम् = नेत्रहीन, आगमलोचनं = शास्त्र या ज्ञानरूपी नेत्रों वाले, औत्सुक्यं = उत्सुकता से]

   सन्दर्भ– पूर्ववत्

   अनुवाद– सत्रह वर्ष तक अमरता-प्राप्ति का उपाय सोचते हुए मूलशंकर एक गाँव से दूसरे गाँव, एक शहर से दूसरे शहर, एक वन से दूसरे वन, एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर घूमते रहे, किन्तु अधिक सन्तोष न पा सके। अनेक विद्वानों से व्याकरण, वेदान्त आदि शास्त्रों और योग विद्या को सीखा। नर्मदा तट पर पूर्णानन्द सरस्वती नामक संन्यासी से संन्यास ग्रहण कर 'दयानन्द सरस्वती' नाम धारण किया।

   क्रमशः मथुरा नगर से आये हुए व्यक्तियों से दण्डी विरजानन्द स्वामी के पवित्र यश को सुनते-सुनते संवत् 1917 विक्रमी में ये भगवान् श्रीकृष्ण की जन्मभूमि मथुरा पहुँचे। वहाँ गौरवशाली कल्पवृक्ष के सदृश (शिष्य की ज्ञानप्राप्ति की कामना को पूर्ण करने वाले)वेद-वेदाङ्गों में निष्णात, नेत्रहीन होते हुए भी शास्त्ररूपी नेत्रों वाले, साधु स्वभाव वाले गुरु विरजानन्द के पास उपस्थित हो और भक्तिपूर्वक प्रणाम कर विद्याध्ययन की उत्सुकता प्रकट की।

4. गुरु विरजानन्दोऽपि..में गुरुदक्षिणाम्

[कुशाग्रबुद्धिमिमं = कुशाग्र बुद्धि वाले; तीव्र बुद्धिवाले, अष्टाध्यायीमन्यानि > अष्टध्यायीम् + अन्यनि = अष्टध्यायी तथा दूसरे, अध्यापयामास = अध्ययन कराया, समाप्तविद्यः = जिसकी शिक्षा पूरी हो गई हो, अकिञ्चनतया = निर्धन होने के कारण, तनुमनोभ्यां = शरीर और मन के, समं = साथ, लवङ्गजातम् = लौंग का जोड़ा, मदीयामिमां > मदीयाम + इमाम = मेरी इस]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– गुरु विरजानन्द ने भी इन कुशाग्र बुद्धियुक्त दयानन्द को तीन वर्ष तक पाणिनी की 'अष्टाध्यायी' एवं अन्यान्य शास्त्र पढ़ाये। पढ़ाई समाप्त होने पर दयानन्द ने परम श्रद्धापूर्वक गुरु से कहा— ''भगवान्, दरिद्रता के कारण मैं तन-मन (के समर्पण रूप में) केवल लौंग का एक जोड़ा लाया हूँ (आशय यह है कि गुरु की सेवा तन, मन, धन से करनी चाहिए, किन्तु दयानन्द जी के पास धन तो था ही नही, इसलिए तन-मन से गुरु के प्रति समर्पण के प्रतीक-रूप में लौंग का एक जोड़ा अर्पित किया) आज मेरी इस गुरुदक्षिणा को स्वीकार कर मुझे अनुगृहीत करें।''

4. गुरुणा एवम्...नुनमनुकरणीयमस्ति।

[आज्ञप्तः = आज्ञा पाकर, पाखण्डखण्डिनीं पताकाम् = पाखण्ड का नाश करने वाली ध्वजा को, ईश्वरकर्तृकाः = ईश्वरकृत, नाधीयाताम् > न + अधीयाताम = नहीं पढ़ने चाहिए, प्रतिपाद्य = प्रतिपादन करके, प्रयतमानः = प्रयन्त करते हुए, उद्धाराय = उद्धार के लिए, नूनम् = निश्चय ही]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– गुरु से इस प्रकार आज्ञा पाकर महर्षि दयानन्द इस देश के निवासियों का उद्धार करने के लिए कर्मक्षेत्र में उतर पड़े। सबसे पहले उन्होंने हरिद्वार में कुम्भ के पर्व पर गंगा किनारे 'पाखण्डखण्डिनी' पताका स्थापित की (फहरायी)। इसके बाद हिमालय पर जाकर तीन वर्ष तक तप किया। तत्पश्चात् इन्होंने प्रतिपादित किया कि ऋग्, यजु, साम, अथर्व (ये चारों) वेद नित्य और ईश्वरकृत हैं, ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र का विभाजन कर्म, स्वभाव के आधार पर किया गया है, न कि जन्म के (आधार पर)। आश्रम चार ही हैं। ईश्वर एक ही है। ब्रह्म, पितृ, देवता, अतिथि और बलिवैश्वदेव— ये पाँच महायज्ञ नित्य करने चाहिए। 'स्त्री-शूद्रों को वेद न पढ़ाया जाए' इस कथन की निस्सारता प्रतिपादित करके वेद के अध्ययन का सबको अधिकार है, ऐसी व्यवस्था दी। इस प्रकार ये (महर्षि दयानन्द) पाखण्ड के उन्मूलन और वैदिक धर्म की स्थापना के लिए सर्वत्र घूमते रहे।

अस्तु, आर्यज्ञान के महादीपक देव दयानन्द ने सारा जीवन देश और जाति के उद्धार के लिए प्रयन्त करते हुए उसी के लिए अपना जीवन तक दे दिया और मुक्ति प्राप्त की। इस प्रकार इन महर्षि का जीवन निश्चय ही अनुकरण करने योग है।

सूक्ति-व्याख्या संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

1. सत्यं शिवं सुन्दरम्।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'महर्षिर्दयानन्दः' नामक पाठ से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में महर्षि दयानन्द द्वारा किया गया निराकार ईश्वर के महत्व पर प्रकाश डाला है।

व्याख्या– प्रस्तुत सूक्ति में बताया गया है कि महर्षि दयानन्द मूर्ति पूजा के विरोधी थे। वे निराकार ईश्वर के उपासक थे। वह ईश्वर को सत्य का रूप मानते थे, सत्य ही शिव का रूप है और शिव ही सुन्दर है। उन्होनें मन में लोककल्याणकारी ईश्वर का साक्षात्कार करने का निश्चय किया। उन्होंने निराकार ईश्वर को ही महत्व दिया।

2. स्त्रीशूद्रौ वेंद नाधीयाताम्।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में प्राचीनकाल की उस परिपाटी पर प्रकाश डाला गया है, जिसमें स्त्री और शूद्रों को वेदों का अध्ययन करने की अनुमति नहीं थी।

व्याख्या– प्राचीनकाल में समाज में ऐसी व्यवस्था थी कि स्त्रियों और शूद्रों को वेद न पढ़ाये जाएँ। उस समय ऐसा सम्भवतः इसलिए कहा गया होगा कि उस समय स्त्रियों के लिए परदा-प्रथा का कठोर नियम था। उनका घर से बाहर निकलना वर्जित था और वेद के अध्ययन के लिए उन्हें गुरु के आश्रम में जाना पड़ता, जिससे सामाजिक व्यवस्था बिगड़ती। सम्भवतः यही बात शूद्रों के विषय में भी जारी रहेगी। जाति और आश्रम-व्यवस्था के कड़ाई से पालन किये जाने के कारण शूद्रों को वेदाध्ययन के अधिकार से वंचित किया गया होगा। आज इस सूक्ति को स्त्री और शूद्रों के दमन का पोषक मानकर इसका विरोध किया जाता है, जो कि उचित भी है। महर्षि दयानन्द ने भी इसका विरोध कर स्त्री और शूद्रों को समाज में समानाधिकार दिलाने के लिए

आन्दोलन चलाया। यहाँ यह बात भी उल्लेखनीय है कि यह सूक्ति आज भले ही प्रासंगिक न रही हो, किन्तु जिस काल में इसकी रचना हुई होगी, उस समय की सामाजिक परिस्थितियों में इसका सामाजिक व्यवस्था बनाये रखने में महत्वपूर्ण योगदान रहा होगा। आशय यह है कि स्वामी दयानन्द ने सदियों से चली आ रही रूढ़ि को समाप्त किया तथा स्त्री-पुरुष व उच्च-शूद्र वर्ण के मध्य व्याप्त भेदभाव को दूर किया।

पाठ पर आधारित प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संस्कृत में दीजिए-

1. महर्षेः दयानन्दस्य जन्म कस्मिन् स्थानेऽभवत्?

उ०- महर्षिदयानन्दस्य (मूलशङ्करस्य) जन्म सौराष्ट्रप्रान्ते टङ्कारानाम्नि ग्रामे भाद्रपदमासस्य नवम्यां तिथौ गुरुवासरे मूलनक्षत्रे एकाशीत्युत्तराष्टादशशतमे वैक्रमाब्दे अभवत्।

2. महर्षेः दयानन्दस्य बाल्यकालिकं किं नाम आसीत्?

उ०- महर्षेः दयानन्दस्य बाल्यकालिकं मूलशङ्करः इति नाम आसीत्।

3. महर्षेः दयानन्दस्य पितुः नाम किम् आसीत्?

उ०- महर्षेः दयानन्दस्य पितुर्नाम श्रीकर्षणातिवारी आसीत्।

4. दयानन्दस्य जनकः 'मूलशङ्कर' इति नाम कथं कृतवान्?

उ०- 'शिवं भजेदयम्' इति विचार्य पिता अस्य नाम 'मूलशङ्कर' इत्यकरोत।

5. मूलशङ्करः शिवरात्रिव्रते किमन्वपभवत्?

उ०- मूलशङ्करः शिवरात्रिव्रते मूर्तिपूजनात् किमन्वपभवत्।

6. शिवलिङ्गस्योपरि मूषकं विचरन्तं दुष्ट्वा मूलशंङ्करः किम् अचिन्तयत्?

उ०- शिवलिङ्गस्योपरि मूषकं विचरन्तं दुष्ट्वा मूलशंङ्करः लोकशङ्करं शिवं प्राप्तुम् अचिन्तयत्।

7. कोः गुरु दयानन्दं व्याकरणं अध्यपयामास?

उ०- विरजानन्दः दयानन्दं व्याकरणं अध्यपयामास।

8. दयानन्दः किमर्थं सर्वत्र भ्रमति स्मः?

उ०- दयानन्दः पाखण्डोन्मूलनाय वैदिकधर्मसंस्थापनाय च सर्वत्राभ्रमत्।

9. गुरुः इमां कां दक्षिणामयाचत्?

उ०- 'उन्नमय पतिवान्, समुद्धर स्त्रीजातिम्, खण्डय पाखण्डम्' इति गुरुदक्षिणारूपे तमयाचत्।

10. मूलशङ्करे वैराग्यं कथमभवत्?

उ०- स्वभगिन्याः पितृव्यस्य च मृत्युं दृष्ट्वा मूलशङ्करस्य हृदये वैराग्यप्रदीपः प्रज्वलितः।

11. महर्षेः दयानन्दस्य गुरुः कः आसीत्?

उ०- दण्डिविरजानन्दः स्वामिनः महर्षेदयानन्दस्य गुरुः आसीत्।

12. दयानन्दः मथुरानगरं किमर्धम् अगच्छत्?

उ०- विरजानन्दस्य यशः श्रुत्वा दयानन्दः (मूलशङ्करः) मथुराम् अगच्छत्।

13. दयानन्दः सर्वप्रथमं कां पताकां कुत्र अस्थापयत्?

उ०- दयानन्दः सर्वप्रथमं हरिद्वारे पाखण्डनाशाय पाखण्डखण्डिनी पताकामस्थापयत्।

14. मूलशङ्करः कस्य संन्यासिनः सकाशात् संन्यासं गृहीतवान्?

उ०- मूलशङ्करः पूर्णानन्दसरस्वतीनाम्नः संन्यासिनः सकाशात् संन्यासं गृहीतवान्।

15. महर्षेः दयानन्दस्य पिता कस्मिन वर्षे तस्य उपनयनमकरोत्?

उ०- महर्षेः दयानन्दस्य पिता अष्टमे वर्षे तस्य उपनयनमकरोत्।

संस्कृत अनुवाद संबंधी प्रश्न-

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए-

1. मूलशंकर ने शिवरात्रि का व्रत विधि विधान से किया।

अनुवाद- मूलशङ्करः शिवरात्रेस्यव व्रतविधानमकरोत्।

2. **पाखण्ड एवं अन्धविश्वास का महर्षि दयानन्द ने विरोध किया।**
अनुवाद– पाखण्डान्धविश्वासयो: महर्षिर्दयानन्द: विरोधमकरोत्।
3. **आज समाज महर्षि दयानन्द का ऋणी है।**
अनुवाद– अद्य समाज: महर्षिर्दयानन्द: ऋणी विद्यते।
4. **उन्होंने वैदिक मत का प्रचार किया।**
अनुवाद– स: वैदिकमवस्य प्रचारमरकरोत्।
5. **गुणों के अनुसार वे मनुष्यों को श्रेष्ठ मानते थे।**
अनुवाद– स: गुणानुसारं मनुष्यं श्रेष्ठमन्यत्।
6. **महर्षि दयानन्द के गुरु विरजानन्द थे।**
अनुवाद– महर्षिर्दयानन्दस्य गुरु: विरजानन्द: आसीत्।
7. **महर्षि दयानन्द का जीवन निश्चय ही अनुकरणीय है।**
अनुवाद– महर्षे: दयानन्दस्य जीवनं निश्चितमेव अनुकरणीय: अस्ति।
8. **महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना की।**
अनुवाद– महर्षिर्दयानन्द: आर्य: समाजस्य स्थापनां अकरोत्।
9. **महर्षि दयानन्द ने आँग्लों वैदिक स्कूलों की स्थापना की।**
अनुवाद– महर्षिर्दयानन्द: आँग्लों वैदिकं विद्यालयस्य स्थापनां अकरोत्।
10. **महर्षि दयानन्द ने अपना जीवन देश के उद्धार के लिए समर्पित कर दिया।**
अनुवाद– महर्षिर्दयानन्द: स्वं जीवन: देशस्य उद्धारस्य समर्पितं अकरोत्।

संस्कृत व्याकरण संबंधी प्रश्न

1. **निम्नलिखित शब्दों में प्रत्यय स्पष्ट कीजिए–**

शब्द	**धातु**	**प्रत्यय**
चिन्तयन्	चिन्त्	शतृ
प्रणम्य	प्र + नम्	ल्यप्
विलोक्य	वि + लुक्	ल्यप्
उदर्तुम	उत्+ धृ	तुमुन्
प्रतिपाद्य	प्रति + पा	ल्यप्
दृष्ट्वा	दृश	क्त्वा
आचरितुम्	आ + चर्	तुमुन

2. **निम्नलिखित शब्दों में समास-विग्रह करते हुए समास का नाम लिखिए–**

समस्तपद	**समास-विग्रह**	**समास का नाम**
वेदाध्ययनम्	वेदस्य अध्ययनम्	तत्पुरुष समास
वैराग्यप्रदीप:	वैराग्यस्य प्रदीप:	तत्पुरुष समास
तनुप्रदीप	तनु च मन च	द्वन्द्व समास
स्त्रीशूदौ	स्त्री च शूद्र: च	द्वन्द्व समास
लोकशङ्करम	लोकस्य शङ्करम्	तत्पुरुष समास
ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राणाम्	ब्राह्मण च क्षत्रिय च वैश्य च शूद्र: च	द्वन्द्व समास
आज्ञानान्धकारे	आज्ञानेस्य अन्धकार:	तत्पुरुष समास

3. **निम्नलिखित शब्दों में सन्धि-विच्छेद कीजिए–**

सन्धि शब्द	**सन्धि-विच्छेद**	**सन्धि का नाम**
पार्वतीव	पार्वती + इव	दीर्घ सन्धि

बोधोत्सव:	बोध + उत्सव:	गुण सन्धि
यावज्जीवनम्	यावत् + जीवनम्	श्चुत्व सन्धि
जात्युद्धाराय	जाति + उद्धाराय	यण सन्धि
नगरान्नगरम्	नगरात् + नगरम्	परसवर्ण सन्धि
अस्योपनयनम्	अस्य + उपनयनम्	गुण सन्धि
प्रभृत्येव	प्रभृति + एव	यण सन्धि
पितुराज्ञानुसारम्	पितुः + आज्ञा + अनुसारम्	रुत्व, दीर्घ सन्धि
द्वयोरनयो:	द्वयो: + अनयो:	रुत्व सन्धि
मूषिकमेकमितस्तत:	मूषिकम् + एकम् + इत: + तत:	अनुस्वार, सत्व सन्धि
नाविन्दत	न + अविन्दत	दीर्घ सन्धि।

4. निम्नलिखित शब्द-रूपों में विभक्ति तथा वचन लिखिए–

शब्द-रूप	**विभक्ति**	**वचन**
सौराष्ट्रप्रान्ते	सप्तमी	एकवचन
नाम्नि	सप्तमी	एकवचन
मूलशंङ्कराय	चतुर्थी	एकवचन
पर्वतात्	पञ्चमी	एकवचन
तटे	सप्तमी	एकवचन
विषूचिकया	तृतीया	एकवचन
शिवस्य	षष्ठी	एकवचन
सर्वेषाम्	षष्ठी	बहुवचन
विद्वदभ्य:	चतुर्थी/पञ्चमी	बहुवचन
प्राप्तवते	चतुर्थी	एकवचन
ग्रामम:	द्वितीया	एकवचन
अनयो:	षष्ठी/सप्तमी	द्विवचन
श्रद्धया	तृतीया	एकवचन

5. निम्नलिखित शब्दों में से अव्यय शब्द छाँटिए–

शब्द	अव्यय
अपि	अपि
उत्सव:	—
सर्वम्	—
एव	एव
सदा	यदा
अयम्	अयम्
शस्त्राणि	—
नूनम्	नूनम्
नक्षत्रे	
अनुसार	—

पाठ्येतर सक्रियता

उ०– छात्र स्वयं करें।

दशमः पाठः सुभाषितरत्नानि

अभ्यास प्रश्न

अवतरण अनुवादात्मक प्रश्न

निम्नलिखित गद्यावतरणों का ससन्दर्भ हिन्दी में अनुवाद कीजिए–

1. **भाषासु..सुभाषितम्।**

   [दिव्या = आलौकिक, गीर्वाणभारती = देववाणी (संस्कृत); देवताओं की वाणी, तस्मादपि > तस्माद् + अपि = उससे भी अधिक, सुभाषितम् = सुन्दर उक्ति (वचन)]

   सन्दर्भ– प्रस्तुत श्लोक हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'सुभाषिरत्नानि' नामक पाठ से उद्धृत है।

   अनुवाद– भाषाओं में संस्कृत सबसे प्रधान, मधुर और अलौकिक है। उससे (अधिक) मधुर उसका काव्य है और उस (काव्य) से (अधिक) मधुर उसके सुभाषित (सुन्दर वचन या सूक्तियाँ) हैं।

2. **जल-बिन्दु..धनस्य च।**

   [जल-बिन्दु निपातेन = जल की एक-एक बूँद गिरने से, पर्यूते = भर जाता है]

   सन्दर्भ– पूर्ववत्

   अनुवाद– जल की एक-एक बूँद गिरने से क्रमश: घड़ा भर जाता है। समस्त विद्याओं, धर्म और धन (को संग्रह करने) का भी यही हेतु (कारण, रहस्य) है (अर्थात् निरन्तर उद्योग करते रहने से ही धीरे-धीरे ये तीनों वस्तुएँ संगृहीत हो पाती हैं।)।

3. **न चौरहार्य..सर्वधनप्रधानम्।**

   [चौरहार्य = चोर द्वारा चुराया जा सकता है, भातृभाज्यम् = भाइयों द्वारा बाँटा जा सकता है, वर्द्धत एवं > वर्द्धत + एव = बढ़ता है]

   सन्दर्भ– पूर्ववत्

   अनुवाद– विद्यारूपी धन समस्त धनों में प्रधान (श्रेष्ठ है; (क्योंकि) न तो चोर उसे चुरा सकता है, न राजा उसे छीन सकता है, न भाई बाँट सकता है, न यह बोझ बनता है अर्थात् भार-रूप नहीं है और खर्च करने से यह निरन्तर बढ़ता जाता है (अन्य धनों के समान घटता नहीं)।

4. **परोक्षे..पयोमुखम्।**

   [परोक्षे = पीठ-पीछे, कार्यहन्तारम् = कार्य को नष्ट करने वाला (बिगाड़ने वाला) वर्जयेत् = त्याग देना चाहिए, विषकुम्भं = विष के घड़े को, पयोमुखम् = जिसके मुख (ऊपरी भाग) में दूध हो]

   सन्दर्भ– पूर्ववत्

   अनुवाद– जो पीठ पीछे काम बिगाड़ने वाला हो, पर सामने मीठा बोलने वाला हो, ऐसे मित्र को उसी प्रकार छोड़ देना चाहिए, जिस प्रकार विष से भरे घड़े को, जिसके ऊपरी भाग में दूध हो (छोड़ दिया जाता है।)।

5. **विद्या..रक्षणाय।**

   [मदाय = घमण्ड के लिए, खलस्य = दुष्ट की, साधो: = सज्जन की]

   सन्दर्भ– पूर्ववत्

   अनुवाद– खल (दुष्ट व्यक्ति) की विद्या वाद-विवाद के लिए, धन घमण्ड के लिए और शक्ति दूसरों को सताने के लिए होती है। इसके विपरीत साधु (सज्जन) की विद्या ज्ञान-प्राप्ति के लिए, धन दान के लिए और शक्ति (दूसरों की) रक्षा के लिए होती है।

6. **वज्रादपि..विज्ञातुर्महति।**

   [वज्रादपि > वज्रात + अपि = वज्र से अधिक, मृदूनि = कोमल, लोकोत्तराणां > लोक + उत्तराणाम् = आलौकिक (असाधारण) व्यक्तियों के, चेतांसि = चित्त या मन को, विज्ञातुमर्हति > विज्ञातुम् + अर्हति = जान सकता है।]

   सन्दर्भ– पूर्ववत्

   अनुवाद– असाधारण पुरुषों (महापुरुषों) के वज्र से भी अधिक कठोर और पुष्प से भी अधिक कोमल हृदय को भला कौन समझ सकता है?

7. **प्रीणाति..लभन्ते।**

   [प्रीणाति = प्रसन्न करता है, भर्तुरेव > भर्तु + एव - पति का ही, कलत्रम् = स्त्री (पत्नी), तन्मित्रममापदि > तत् + मित्रम् + आपदि = वह मित्र आपत्ति में, समक्रियं = समान व्यवहार वाला, जगति = संसार में, पुन्यकृत: = पुण्यवान व्यक्ति]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– जो अपने अच्छे चरित्र (सुकर्मों) से पिता को प्रसन्न करे, वही पुत्र है। जो पति का हित (भलाई) चाहती हो, वही पत्नी है। जो (अपने मित्र की) आपत्ति (दु:ख) और सुख में एक-सा व्यवहार करे, वही मित्र है। इन तीन (अच्छे पुत्र, अच्छी पत्नी और सच्चे मित्र) को संसार में पुण्यात्मा-जन ही पाते हैं (अर्थात् बड़े पुण्यों के फलस्वरूप ही ये तीनों प्राप्त होते हैं।)।

8. कामान्..वाचमाहु:।

[कामान् = इच्छाओं का, दुग्धे = पूर्ण करती है, विप्रकर्षत्यलक्ष्मीम् > विप्रकर्षति + अलक्ष्मीम् = अलक्ष्मी को दूर करती है, सूते = उत्पन्न करती है, हिनास्ति = नष्ट करती है, सूनृताम = सत्य एवं प्रिय, वाचम् = वाणी को]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– जो(सुभाषित वाणी) इच्छाओं को दुहती है, दरिद्रता को दूर करती है, कीर्ति को जन्म देती है (और जो) पाप को नष्ट करती है, (जो) शुद्ध, शान्त (और) मंगलों की माता है, (उस) गाय को धैर्यवान् लोगों ने सुभाषित वाणी कहा है।

9. निन्दन्तु..न धीरा:।

[निन्दन्तु = निन्दाकरें, नीतिनिपुणा = लोकनीति या लोकव्यवहार में कुशल लोग, स्तुवन्तु = प्रशंसा करें, समाविशतु = आए, यथेष्टम् = स्वेच्छा से, युगान्तरे = युगों बाद, न्याय्यात् पथ: = न्याय के मार्ग से, प्रविचलन्ति = विचलित होते हैं, पद्म = पगभर]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– लोकनीति में कुशल लोग चाहे निन्दा करें, चाहे प्रशंसा; लक्ष्मी चाहे आये या स्वेच्छानुसार चली जाये। आज ही मरण हो जाये, चाहे युगों बाद हो, किन्तु धैर्यशाली पुरुष न्याय के मार्ग से एक पग भी विचलित नहीं होते। (अर्थात् कैसी भी अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति हो, धैर्यशाली पुरुष न्याय के मार्ग से रंचमात्र भी नहीं हटते।)

10. ऋषयो..निर्ऋषि:।

[राक्षसीमाहु: > राक्षसीम + आहु: = राक्षसी कहा है, वाचमुन्मत्तदृप्तयो: = अंहकारी और उन्मक्त व्यक्तियों की वाणी को, योनि: = जन्म देने वाली, निर्ऋति: = विपत्ति।]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– ऋषियों ने उन्मत्त और अहंकारी पुरुषों की वाणी को राक्षसी कहा है, (क्योंकि) वह समस्त वैरों को जन्म देने वाली और संसार की विपत्ति (का कारण) होती है (अर्थात् अहंकार से भरी वाणी दूसरों के मन पर चोट करके शत्रुता को जन्म देती है और संसार के सारे झगड़े उसी के कारण होते हैं।)

सूक्ति-व्याख्या संबंधी प्रश्न

निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

1. भाषासु मुख्य मधुरा दिव्या गीर्वाणभारती।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'सुभाषिरत्नानि' नामक पाठ से अवतरित है।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में संस्कृत-भाषा को सभी भाषाओं से श्रेष्ठ बताया गया है।

व्याख्या– संस्कृत देववाणी अर्थात् देवताओं के द्वारा बोली जाने वाली भाषा रही है। इस भाषा को समस्त भाषाओं में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त है। इसका साहित्य अत्यन्त विशाल है। प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति पर आधारित अधिकांश साहित्य का सृजन इसी भाषा में हुआ था। यही सभी भाषाओं की जननी है। संस्कृत भाषा पर आधारित काव्यात्मक साहित्य अत्यन्त मधुर हैं। इस भाषा में लिखे गये साहित्य के अन्तर्गत अनेक सुन्दर उक्तियाँ (वचन) पढ़ने को मिलती हैं, जो दिव्य आनन्द की अनुभूति कराती हैं।

2. सुखार्थिन: कुतो विद्या।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– विद्यार्जन और सुख-सेवन ये दोनों कार्य एक-साथ नहीं चल सकते। विद्या के लिए सुख को और सुख के लिए विद्या को त्यागना पड़ता है— इस सूक्ति का यही आशय है।

व्याख्या– सुख की इच्छा करने वाले व्यक्ति को विद्या प्राप्त नहीं हो सकती। विद्या अर्थात् ज्ञान-प्राप्ति एक कठिन तप है, जिसकी प्राप्ति अत्यधिक परिश्रम एवं एकाग्रता से ही सम्भव है। परिश्रम एवं कुशाग्रता अपनाने वाले विद्यार्थियों के पास सुख-सुविधाएँ अपनाने का समय ही कहाँ होता है? सच्चा विद्यार्थी विद्यार्जन में आने वाली कठिनाइयों को प्रसन्नता से सामना करता है। विद्या-अर्जन के समय व्यक्ति जितना दु:ख सहन करता है, उतना ही सुख वह विद्या-प्राप्ति के पश्चात् जीवनपर्यन्त प्राप्त करता है। इसके विपरीत जो विद्यार्थी विद्यार्जनकाल में सुख प्राप्त करते हैं, वे विद्या प्राप्त करने में असमर्थ रहते हैं।

3. जल-बिन्दु-निपातेन क्रमशः पूर्यते घटः।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में निरन्त संचय के महत्त्व को बताया गया है।

व्याख्या– जैसे एक-एक बूँद पानी लगातार कुछ काल तक गिरता रहे तो घड़ा भर जाता है, उसी प्रकार धर्म, धन और विद्या का संग्रह भी नियमित रूप से कुछ काल तक लगातार उद्योग करते रहने से होता है। मनुष्य न्यायपूर्वक अर्थोपार्जन से एक रात में धनाढ्य नहीं बन सकता। इसी प्रकार एक-दो दिन तक धर्माचरण करने से धर्म का संचय नहीं कर सकता और न ही एक-दो दिन तक रात-दिन पढ़ने से विद्वान् बन सकता है। आशय यह है कि ज्ञान, धर्म एवं धन का धैर्यपूर्वक सतत उद्योग करते रहने से ही संचय हो सकता है।

4. काव्यशास्त्र-विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में बुद्धिमानों तथा मूर्खों के समय बिताने के तरीकों को बताया गया है।

व्याख्या– बुद्धिमानों का समय काव्य और शास्त्रों की चर्चा में बीतता है, जबकि मूर्ख लोग बुरे व्यसनों में, सोते रहने में या लड़ाई-झगड़े में अपना समय बिताते हैं। वस्तुत: काव्य मानव के हृदय-पक्ष की और शास्त्र मानव के बुद्धि-पक्ष की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है। श्रेष्ठ, संस्कारी पुरुष इन विषयों की चर्चा से जीवन की सर्वोत्तम उपलब्धियों का रसास्वादन करते हुए अपूर्व सुख एवं तृप्ति का अनुभव करते हैं, किन्तु अशिक्षित, मूर्ख लोग उन महत्सुखों के विषय में अणुमात्र भी नहीं सोचते। समय का सदुपयोग जीवन को ऊँचाई देता है और सत्साहित्य में व्यतीत समय अत्यन्त उच्चकोटि की रसानुभूति कराता है। अत: बुद्धिमान लोग काव्य और शास्त्रों की चर्चा कर, उनके प्रतिपाद्य को हृदयंगम कर और उससे आनन्द प्राप्त कर अपना समय व्यतीत करते हैं।

5. विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में विद्या की सर्वश्रेष्ठता को प्रतिपादित किया गया है।

व्याख्या– समस्त धनों में विद्यारूपी धन प्रमुख है और यह सर्वथा सत्य है। सदैव से ही विद्या की प्रशंसा करते कवियों और विद्वानों की वाणी थकती नहीं। अन्य धनों को चोर चुरा सकता है, राजा छीन सकता है, भाई बाँट सकता है और वे भाररूप भी होते हैं। सम्पत्ति के कारण ही सगे-सम्बन्धियों तक में भयंकर विद्वेष उत्पन्न होता है। फिर धन को जितना व्यय किया जाए, वह उतना ही कम होता जाता है। विद्वानों ने धन की तीन गतियाँ बतायी है—दान, भोग और नाश। कम ही भाग्यवानों का धन दान में लगता है। अधिकाशं का धन भोग और नाश में ही जाता है। फिर धनी का सर्वत्र आदर भी नहीं होता। इसलिए कहा है— **स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान सर्वत्र पूज्यते।** दूसरी ओर विद्या धन सबसे पहले तो आपने धारणकर्त्ता विद्वान् को ही अन्दर और बाहर से आलोकित करता है। उसका चरित्र गठित करता है तथा उसे दूसरों के मार्गदर्शन की क्षमता प्रदान करता है। धनी-निर्धन सभी उसका आदर करते हैं। विद्वान् कभी स्वयं को एकाकी अनुभव नहीं करता, सदा पुस्तक या विद्यारूपी साथी उसके साथ रहता है और विश्व में सर्वत्र उसका आदर होता है। एक विद्वान् ने कहा है—

मृषा वदति लोकोऽयं ताम्बूलं मुखभूषणम्।
मुखस्य भूषणं पुंसां वाण्येका तु सरस्वती॥

अर्थात् लोक मिथ्या ही पान को मुख का भूषण बताता है। मुख का सच्चा भूषण तो वास्तव में विद्या ही है।

6. वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– सच्चे मित्र का लक्षण इस सूक्ति में बताया गया है।

व्याख्या– संसार में सच्चे मित्र दुर्लभ होता है। सच्चा मित्र दु:ख में अपने मित्र को सहयोग देता है तथा उसके दु:खों के निवारण के लिए प्रयत्नशील रहता है। उसका व्यवहार जैसा सुख में रहता है, वैसा ही दु:ख में भी। सच्चे मित्र के साथ वार्तालाप में भी अनुपम सुख मिलता है। सुख-समृद्धि के समय अनेक स्वार्थी लोग मित्र बनने का प्रयास करते हैं, किन्तु वे अपनी स्वार्थसिद्धि तक ही मित्र रहते हैं। व्यक्ति को ऐसे छद्मवेषी और विश्वासघाती मित्रों से सावधान रहना चाहिए। ये मित्र के रूप में शत्रु होते हैं। मित्र के पीछे उसको हानि पहुँचाते हैं और सामने मीठी-मीठी बातें करते हैं। ऐसे छद्मवेषी मित्र पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। ऐसा मित्र उस घड़े के समान है, जिसके ऊपरी भाग में दूध; किन्तु नीचे विष भरा हो। जैसे विषैला दूध हानिकारक होता है, उसी प्रकार सामने प्रिय बोलने वाला और पीछे कार्य बिगाड़ने वाला मित्र भी हानिकारक होता है। अत: उसका त्याग कर देना चाहिए।

तुलसीदास जी ने इस सूक्तिमूलक समस्त श्लोक का भावानुवाद इस रूप में किया है—

आगे कह मृदु बचन बनाई। पाछें अनहित मन कुटिलाई।
जाकर चित अहिगति सम भाई। अस कुमित्र परिहरहिं भलाई॥

7. सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति मे महापुरुषों का लक्षण बताया गया है।

व्याख्या– महापुरुषों का एक प्रमुख लक्षण है कि वे सम्पत्ति, सुख और दु:ख, आशा और निराशा—सभी द्वन्द्वों (परस्पर-विरोधी स्थितियों) में समरूप रहते हैं अर्थात् सुख से हर्षित और दु:ख से दु:खित नहीं होते, अपितु दोनों को समबुद्धि से ग्रहण करके सहज भाव से सहन करते हैं। जिस प्रकार दिन के बाद रात का आना स्वाभाविक है, उसी प्रकार मानव-जीवन में भी सुख के बाद दु:ख का आना अनिवार्य है। महान् पुरुष दु:ख को भी प्रसन्नता एवं साहस के साथ स्वीकार करते हैं।

महाकवि कालिदास भी लिखते हैं कि 'चक्रारपंक्तिरिवगच्छति भाग्यपंक्ति:' अर्थात् मनुष्य की भाग्यरेखा पहियें के अरों की भाँति ऊपर-नीचे होती रहती है; अत: आज जो चीज अपरिहार्य है, उसमें उद्विग्त होना अज्ञान का लक्षण है। इसीलिए बुद्धिमान् लोग सुख-दु:ख में समभाव रखते हैं।

8. खलस्य साधो: विपरीतमेतज्ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति मे बताया गया है कि दुष्ट से विपरीत सज्जन की विद्या ज्ञान के लिए, धन दान के लिए और शक्ति दूसरों की रक्षा के लिए होती है।

व्याख्या– सज्जन आजीवन ज्ञान का अर्जन करते हैं। उनके पास ज्ञान का अमिट भण्डार होता है। वे अपनी विद्या से जन-कल्याण करते हैं। उनकी यह धारणा होती है कि विद्या दान से घटती नहीं, वरन् बुद्धि को प्राप्त होती है, जब कि दुष्ट के पास यदि थोड़ा-सा ज्ञान आज भी जाए तो वह उसको दान नहीं करता; वरन् अपनी विद्या से वह विवाद उत्पन्न करता है तथा ज्ञानी होने का ढोंग रचा फिरता है।

सज्जन अपने धन का भी सदुपयोग ही करता है। वह अपने धन की अच्छे कार्यों के लिए दान में देता है, निर्धनों को सहायता करता है तथा समाज-सेवा में लगाता है। धन को एकत्र करके रखने की प्रवृत्ति उसमें नहीं होती; जबकि दुष्ट के पास यदि थोड़ा धन भी एकत्र हो जाता है तो अपने को धनी मानते हुए वह अहंकार में डूबा रहता है। सज्जनों की शक्ति निर्बलों की सहायता के लिए होती है। वह अपनी शक्ति का प्रदर्शन करके उसका दुरुपयोग नहीं करता; जब कि दुष्ट व्यक्ति अपनी शक्ति को दूसरों को सताने के काम में ही लगाता है।

9. अविवेक: परमापदां पद्म।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– बिना सोचे-समझे कार्य करने पर हानि होती है और सोच-समझकर कार्य करने से अपार लाभ है। यही बात इस सूक्ति में बतायी गयी है।

व्याख्या– किसी कार्य को बिना विचारे नहीं करना चाहिए; क्योंकि विचारहीनता भयंकर विपत्तियों की जननी है। जो व्यक्ति खूब सोच-समझकर, योजना बनाकर कार्य करता है, वह अधिकतर सफलता प्राप्त करता है, पर जो व्यक्ति बिना सोचे-समझे किसी काम को अकस्मात् कर डालता है, वह भयंकर विपत्ति में फँस सकता है। जो व्यक्ति विवेक से कार्य करता है, वह जीवन भर सुखी रहता है और सदैव सफलता प्राप्त करता है। उसके कार्यों के परिणाम उसकी इच्छानुसार होते हैं; जब कि बिना सोचे गये किये कार्यो के फलस्वरूप व्यक्ति को असफलता मिलती है। परिणामत: उसमें भविष्य में कार्य करने की शक्ति का अभाव हो जाता है। उसे निराशा घेर लेती है और सफलताएँ उससे मुँह मोड़ लेती हैं। इसीलिए मनुष्य को किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व निर्णय लेना चाहिए। प्रसिद्ध उक्ति है—

बिना बिचारे जो करे, सो पाछे पछताए।
काम बिगारे आपनो, जग में होत हँसाय॥

10. लोकोत्तराणां चेतांसि को न विज्ञातुमर्हति।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में कहा गया है कि असाधारण पुरुषों के व्यवहार को आसानी से नहीं समझा जा सकता।

व्याख्या– भाव यह है कि महापुरुष किसी समय तो बड़ी कठोरता का व्यवहार करते हैं और कभी अत्यधिक कोमलता प्रकट करते हैं। वस्तुत: उनका व्यवहार सदा किसी-न-किसी गहरे उद्देश्य से प्रेरित होता है, जिसे समझ पाना साधारण व्यक्ति की बुद्धि के परे है। फलत: उनके विषय में लोगों की भ्रान्ति उत्पन्न हो जाती है और वे उन्हें कुछ-का-कुछ समझ लेते हैं, परन्तु उनका अन्तिम लक्ष्य सदा लोक-कल्याण ही होता है, जिससे प्रेरित होकर वे सारे कार्य करते हैं। तुलसीदास जी ने भी कहा है कि—

कुलिसहु चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि।
चित खगेस रघुनाथ कर, समुझि परइ कहु काहि॥

अर्थात् श्री रघुनाथजी का चित वज्र से भी अधिक कठोर और पुष्पों से भी अधिक कोमल है। उसे भला कौन समझ सकता है?

11. एतत्त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में बताया गया है कि सच्चा मित्र, पुत्र तथा पत्नी भाग्य से ही मिलते हैं।

व्याख्या– मित्र, पुत्र और पत्नी जीवन में प्राय: सभी को प्राप्त होते हैं; किन्तु सच्चा मित्र, सुपुत्र और सुपत्नी सबको नहीं मिलते। जो व्यक्ति पुण्यवान् हैं, जिन्होंने अच्छे कार्य किये हैं, वे ही इन्हें प्राप्त करते हैं; शेष को तो कुमित्र, कुपुत्र और कुपत्नी की ही प्राप्ति होती है जो जीवन-यात्रा को सुखद एवं सरल बनाने की अपेक्षा दु:खद एवं कठिन बना देते हैं।

सुपुत्र वह है जो पिता को अच्छे कार्यों से प्रसन्न करता है। उसके सत्कार्यों से पिता का मान-सम्मान बढ़ता है। सुपत्नी वह है, जो सदा पति का हित चाहती है और जीवन-यात्रा में पूर्ण सहयोग करती है, सच्चा मित्र वह है जो सुखी और दु:ख दोनों में समान रहता है। कपटी मित्र तो केवल सुख में साथ रहता है और दु:ख में किनारा कर जाता है। इस प्रकार सुपुत्र, सुपत्नी और सुमित्र सबके भाग्य में नहीं होते, पुण्यवान् एवं सौभाग्यशाली जन ही उन्हें पाते हैं।

12. धेनुं धीरा सुनृतां वाचमाहु:।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रिय और सत्य वाणी की महत्ता को इस सूक्ति में प्रतिपादित किया गया है।

व्याख्या– विद्वानों ने प्रिय और सत्य वाणी को गाय के समान समस्त सुख-समृद्धि और कल्याणों की जननी कहा है। वस्तुत: सत्य और प्रिय वचन बोलने वाला सर्वत्र आदर ही नहीं पाता, अपितु दूसरों का प्रीतिभाजन बनकर भी अपने कार्य सुगमतापूर्वक सिद्ध कर लेता है। इसी कारण एक कवि ने कहा है—

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यमप्रियतम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयात्, एष धर्म: सनातन:॥

अर्थात् मनुष्य को सत्य और प्रिय वाणी बोलनी चाहिए, कटु सत्य नहीं कहना चाहिए। सत्य के साथ प्रिय बोलना ही सनातन धर्म है।

13. न खलु बहिरूपाधीन् प्रीतय: संश्रयन्ते।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रेम बाह्य नहीं, वरन् अन्त:कारणों से होता है, यही तथ्य इस सूक्ति में बताया गया है।

व्याख्या– प्रेम बाहरी कारणों (या विशेषताओं) पर निर्भर नहीं होता। वह तो पूर्णत: आन्तरिक और अकारण होता है। कोई हमें पहली भेंट मे क्यों अपना लगने लगता है, जब कि किसी दूसरे के साथ वर्षों रहकर भी वह अपना नहीं बन पाता, यह विवेचन या विश्लेषण का विषय नहीं; क्योंकि व्यक्ति स्वयं नही जान पाता कि ऐसा क्यों होता है। कालिदास के अनुसार ऐसा पूर्वजन्म के संस्कारों के फलस्वरूप होता है—**भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि।** कारण कुछ भी हो, पर यह सत्य है कि यह प्रेम किसी व्यक्ति की बाहरी विशेषताओं—रूप, गुण, धन, पद आदि पर निर्भर नहीं होता। हरिऔध जी की गोपियाँ भी यही कहती हैं—

न कामुका हैं हम राजवेश की, न नाम प्यारा यदुनाथ है हमें।
अनन्यता से हम हैं ब्रजेश की, वियागिनी, पागलिनी, विरागिनी॥

गोपियाँ मथुराधिप कृष्ण की प्रेमिकाएँ नहीं थी, वे तो गोकुल कृष्ण को अपना हृदय दे बैठी थीं। एक उर्दु शायर लिखते हैं—

न गरज किसी से न वास्ता मुझे, काम अपने ही काम से,
तेरे जिक्र से, तेरे फिक्र से, तेरी याद से, तेरे नाम से।

14. न्याय्यात् पथ: प्रविचलन्ति पदं न धीरा:।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में धैर्यवान् लोगों के विषय में बताया गया है कि वे न्याय के मार्ग से विचलित नहीं होते।

व्याख्या– धैर्यशील लोग न्याय के मार्ग से एक पग भी नहीं हटते। वस्तुत: न्याय ही धर्म का आधार है। दूसरे का प्राप्य उसे देना और अपना स्वयं लेना ही न्याय है। यदि न्याय का पालन सभी लोग करें तो संसार में कभी अशान्ति या उपद्रव न हो। धैर्यशाली मनुष्य को न्यायी होने पर यद्यपि सबसे सहयोग नहीं मिल पाता, किन्तु वह किसी आकांक्षा, भय, लोभ या सुविधा के लिए इस पथ को नहीं छोड़ता। न्यायशीलता के इस महत्त्व को जानने वाले धर्मनिष्ठ लोग दृढ़तापूर्वक न्याय के मार्ग पर चलते हैं, फिर चाहे लोक-व्यवहार में निपुण लोग उन्हें अच्छा कहें या बुरा, धन आये या जाए और चाहे मृत्यु का भय ही क्यों न उत्पन्न हो जाए; हर प्रकार हर ओर से बाधाओं और संकटों से घिरने पर कोई अत्यधिक धैर्यवान् पुरुष ही न्याय-पथ पर अविचल रह सकता है, कम साहसी लोग न चाहते हुए भी उससे डिग जाते हैं। इसी कारण न्याय-मार्ग पर चलने के लिए धैर्य के गुण को सर्वाधिक आवश्यक माना जाता है। रूसो ने भी कहा है कि, ''धैर्य कड़वा तो अवश्य होता है, परन्तु उसका फल सदैव मधुर होता है।''

पाठ पर आधारित प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संस्कृत में दीजिए–

1. भाषासु का भाषा मुख्या, मधुरा, दिव्या च अस्ति?

उ०– भाषासु गीर्वाणभारती (संस्कृत भाषा) मुख्या, मधुरा, दिव्या च अस्ति।

2. विद्याप्राप्त्यर्थं विद्यार्थी किं त्यजेत्?

उ०– विद्याप्राप्त्यर्थं विद्यार्थी सुखं त्यजेत्।

3. कथं विद्याधनं सर्वधनप्रधानमस्ति?

उ०– सर्वाणि धनानि सन्ति अपहर्तुं शीलानि। केवलं विद्यां धनमेव व्यये कृते वृद्धिकारकं भवति।

4. सर्वधनप्रधानं किं धनम् अस्ति?

उ०– सर्वधनप्रधानं विद्याधनम् अस्ति।

5. धीमतां कालः कथं गच्छति?

उ०– धीमतां काल: काव्यशास्त्रविनोदेन गच्छति।

6. सुपुत्रः कः?

उ०– य: सुचरितै: पितरं प्रीणाति स: सुपुत्र: भवति।

7. खलस्य विद्या किमर्था भवति?

उ०– खलस्य विद्या विवादाय, धनं मदाय, शक्ति: परेषां परपीडनाय भवति।

8. पुण्डरीकं कदा विकसति?

उ०– पुण्डरीकं पतङ्गस्य उदये विकसति।

9. महताम् एकरूपता कदा भवति?

उ०– सम्पत्तौविपत्तौ च महताम् एकरूपता भवति।

10. पुत्रं, कलत्रं, मित्रं च जगति के लभन्ते?

उ०– पुत्रं, कलत्रं, मित्रं च जगति पुण्यकृतो लभन्ते।

11. जल बिन्दुनिपातेन क्रमशः कः पर्यूते?

उ०– जल बिन्दुनिपातेन क्रमश: घट: पर्यूते।

12. धीराः कुतः पदं न प्रविचलन्ति?

उ०– धीरा: न्याय्यात् पथं पदं न प्रविचलन्ति।

13. लोकोत्तराणां चेतांसि कीदृशानि भवन्ति?

उ०– लोकोत्तराणां चेतांसि वज्रादपि कठोराणि कुसुमादपि मृदूनि च भवन्ति।

14. मूर्खाणां कालः कथं गच्छति?

उ०– मूर्खाणां काल: व्यसनेन निद्रया कलहने वा गच्छति।

15. कीदृशं मित्रं वर्जयेत्?

उ०– परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनं ईदृशं मित्रं वर्जयेत्।

संस्कृत-अनुवाद संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए–

1. **विद्यार्थी को सुख का त्याग कर देना चाहिए।**
   अनुवाद– विद्यार्थी सुखस्य त्यजेत्।
2. **जल की बूँद-बूँद से ही घड़ा भरता है।**
   अनुवाद– जलस्य बिन्दु निपातेन घट: पर्यूते।
3. **मूर्ख व्यक्ति व्यसनों में समय बिताते है।**
   अनुवाद– मूर्खा: व्यसनेषु कालं व्यतीतयन्ति।
4. **विद्या सभी धनों में श्रेष्ठ है।**
   अनुवाद– विद्या सर्वधनानां श्रेष्ठमस्ति।
5. **सज्जन सदा एक समान ही रहते हैं।**
   अनुवाद– सज्जना: सदा समानत्वेन निवसन्ति।
6. **महापुरुषों का मन कोमल होता है।**
   अनुवाद– महापुरुषस्य हृदयं कोमलं अस्ति।
7. **सूर्य उदित होने पर कमल खिलता है।**
   अनुवाद– सूर्य: उदिते कमलं विकसन्ति।
8. **माता-पिता की सेवा परम धर्म है।**
   अनुवाद– माता-पितरस्य सेवाय परमं धर्म अस्ति।
9. **विद्याधन व्यय करने से बढ़ता है।**
   अनुवाद– विद्याधनं व्यय कृते वर्द्धत।
10. **संस्कृत भाषा देवताओं की वाणी है।**
    अनुवाद– संस्कृत: भाषाय देववाणीं अस्ति।

संस्कृत व्याकरण संबंधी प्रश्न

1. **निम्नलिखित शब्द-रूपों में विभक्ति तथा वचन लिखिए–**

शब्द-रूप	**विभक्ति**	**वचन**
भाषासु	सप्तमी	बहुवचन
सुखार्थिन:	पञ्चमी/षष्ठी	एकवचन
निपातेन	तृतीया	एकवचन
धर्मस्य	षष्ठी	एकवचन
विनोदेन	तृतीया	एकवचन
धीमताम्	षष्ठी	बहुवचन
व्यसनेन	तृतीया	एकवचन
मूर्खाणां	षष्ठी	बहुवचन
विवादाय	चतुर्थी	एकवचन
सम्पत्तौ	सप्तमी	एकवचन
खलस्य	षष्ठी	एकवचन
न्याय्यात्	पञ्चमी	एकवचन
ऋषयो:	षष्ठी/सप्तमी	द्विवचन
व्रजात्	पञ्चमी	एकवचन
भर्तु:	पञ्चमी/षष्ठी	एकवचन

2. **निम्नलिखित शब्दों में से सन्धि-विच्छेद करते हुए प्रयुक्त सन्धि का नाम लिखिए–**

सन्धि शब्द	**सन्धि विच्छेद**	**सन्धि का नाम**
तस्मादपि	तस्मात् + अपि	जश्त्व सन्धि

ताम्रस्ताम्र	ताम्र: + ताम्र	सत्व सन्धि
एवास्तमेति	एव + अस्तम् + एति	दीर्घ, अनुस्वार सन्धि
यथेष्टम	यथा + इष्टम्	गुण सन्धि
लोकोत्तराणाम्	लोक + उत्तराणाम्	गुण सन्धि
पदार्थानान्तर:	पदार्थान् + आन्तर:	अनुस्वार सन्धि
अद्यैव	अद्य + एव	वृद्धि सन्धि
विपरीतमेतज्ज्ञानाय	विपरीतम् + एतत् +ज्ञानाय	अनुस्वार, जश्त्व सन्धि
स्वयमेव	स्वयम् + एव	अनुस्वार सन्धि
पतङ्गस्योदये	पतङ्गस्य + उदये	गुण सन्धि
राक्षसीमाहु:	राक्षसीम् + आहु:	दीर्घ सन्धि

3. निम्नलिखित शब्दों में से उपसर्ग छाँटिए–

शब्द	**उपसर्ग**
दुष्कृतम्	दु
सुचरितै:	सु
समक्रियम्	सम्
अविवेक:	अ
अलक्ष्मी	अ
प्रविचलन्ति	प्र

4. निम्नलिखित शब्दों के विपरीतार्थक शब्द लिखिए–

शब्द	**विपरीतार्थक**
धर्मस्व	अधर्मस्य
परोक्षे	प्रत्यक्षे
उदेति	अस्ते
मुख्या	गौण:
धीमताम्	मूर्खाणां
अविवेक:	विवेक:
मित्र:	शत्रु:
पुष्यम्	पापं
सुखार्थी	दुखार्थी
मरणम्	जन्म:

पाठ्येतर सक्रियता

उ०– छात्र स्वयं करें।

एकादश: पाठ: महामना मालवीय:

अभ्यास प्रश्न

अवतरण अनुवादात्मक प्रश्न

निम्नलिखित गद्यावतरणों का ससन्दर्भ हिन्दी में अनुवाद कीजिए–

1. महामनस्विन:..कुर्तमारभत्।

[महामनस्वी = बहुत बुद्धिमान, आरब्धवान् = प्रारम्भ किया, अमोहयत् = मोह लिया, प्राड्विवाकपदवीं = वकील की पदवी, विधे: = कानून के, प्राड्विवाककर्म = वकालत]

सन्दर्भ– प्रस्तुत श्लोक हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'महामना मालवीय:' नामक पाठ से उद्धृत है।

अनुवाद– महामना (महा बुद्धिमान्) मदनमोहन मालवीय का जन्म प्रयाग के प्रतिष्ठित (सम्मानित) परिवार में हुआ था। इनके पिता पण्डित ब्रजनाथ संस्कृत के प्रतिष्ठित विद्वान् थे। इन्होंने प्रयाग में ही संस्कृत पाठशाला, राजकीय विद्यालय एवं म्योर सेण्ट्रल महाविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करके यहाँ ही राजकीय विद्यालय में पढ़ाना आरम्भ किया। युवक मालवीय अपने प्रभावपूर्ण भाषण से मनुष्यों का मन मोह लेते थे। इसलिए इनके मित्रों ने इन्हें वकील की पदवी प्राप्त करके देश की उच्चतर सेवा करने को प्रेरित किया। उसी के अनुसार इन्होंने कानून की परीक्षा उत्तीर्ण करे प्रयोग में उच्च न्यायालय में वकालत आरम्भ कर दी।

2. **महापुरुषाः..नात्यजत्।**

[नियतलक्ष्यान्न > नियत् -लक्ष्यात + न = नियत् (निश्चित) लक्ष्य से नहीं, भ्रश्यन्ति = विचलित होते हैं, देशसेवानुरक्तोऽयं > देशसेवा + अनुरक्तः + अयम् = देशसेवा में अनुरक्त यह, परिधौ = सीमा में, भीताः जाताः = भयभीत हो गए, निक्षिप्तोऽपि > निक्षिप्तः + अपि = बन्दी बनाए जाने पर भी, नात्यजत् > न + अत्यजत् = नहीं छोड़ा]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– महापुरुष सांसारिक प्रलोभनों में फँसकर (अपने) निश्चित लक्ष्य से कभी विचलित नहीं होते। देश-सेवा में अनुरक्त यह युवक उच्च न्यायालय की सीमाओं में बँधकर) न रह सका। पण्डित मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपतराय जैसे अन्य राष्ट्रीय नेताओं के साथ वे भी देश के स्वतन्त्रता संग्राम में उतरे। दिल्ली में कांग्रेस के तेईसवें अधिवेश के अध्यक्ष पद को इन्होंने सुशोभित किया। 'रोलट ऐक्ट' के विरोध में इनके ओजस्वी भाषण को सुनकर अंग्रेज शासक भयभीत हो उठे। बहुत बार जेल में डाले जाने पर भी इस वीर ने देशसेवा का व्रत नहीं छोड़ा।

3. **हिन्दी, संस्कृत..विभाति।**

[प्रभूतं = बहुत-सा, प्रायच्छन् = दिया, प्रतिमूर्तिरिवः > प्रतिमूर्तिः + इव = प्रतिकृति-सा]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– इनका हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी भाषाओं पर समान अधिकार था। हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान की उन्नति के लिए ये निरन्तर प्रयन्त करते रहे। शिक्षा द्वारा ही देश और समाज में नवीन प्रकाश का उदय होता है, इसलिए श्री मालवीय ने वाराणसी में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की। इसके निर्माण के लिए इन्होंने लोगो से धन माँगा और लोगों ने इस महान् ज्ञानयज्ञ में इन्हें प्रचुर धन दिया। इनके द्वारा बनवाया हुआ यह विशाल विश्वविद्यालय भारतीयों की दानशीलता और श्री मालवीय के यश की प्रतिमूर्ति की भाँति सुशोभित हो रहा है।

4. **महामना विद्वान..क्वचित्।**

[पटुः = निपुण, पीड्यमानान् = पीड़ितों को, सर्वविधं = सब प्रकार की, अन्धे तमसि = गहन अन्धकार में, निमग्नान् = डूबे, जरामृत्युभयं = वृद्धावस्था और मृत्यु का भय, कीर्तितनोः = यशरूपी शरीर को।]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– महामना विद्वान् वक्ता (भाषणकर्त्ता), धार्मिक नेता एवं कुशल पत्रकार थे, किन्तु इनका सर्वोच्च गुण जनसेवा ही था। जहाँ कहीं भी ये लोगों को दुःखित और पीड़ित देखते थे, वहीं शीघ्र उपस्थित होकर सब प्रकार की सहायता करते थे। प्राणियों की सेवा इनका स्वभाव ही था।

आज हमारे बीच विद्यमान न होने पर भी महामना मालवीय अमूर्तरूप से अपने यश का प्रकाश फैलाते हुए घोर अन्धकार में डूबे मनुष्यों को सन्मार्ग दिखाते हुए स्थान-स्थान पर प्रत्येक मनुष्य के अन्दर उपस्थित हैं ही। जनसेवा में लगे महापुरुष की जय हो, जिनके यशरूपी शरीर को कहीं भी बुढ़ापे और मृत्यु का भय नहीं है।

सूक्ति-व्याख्या संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

1. **महापुरुषाः लौकिक-प्रलोभनेषु बुद्धा नियतलक्ष्ययान्नकदापि भ्रश्यन्ति।**

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'महामना मालवीयः' नामक पाठ से उद्धृत है।

प्रसंग– इस सूक्ति में यह बात कही गयी है कि महान् पुरुष अपने लक्ष्य के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं।

व्याख्या– इस सूक्ति का अर्थ यह है कि सांसारिक विषयों के प्रलोभनों में बँधकर भी महापुरुष कभी अपने निश्चित लक्ष्य से विचलित नहीं होते। संसार में जन्म लेने वाला प्रत्येक व्यक्ति सांसारिक वस्तुओं का उपभोग करता है। महापुरुष सांसारिक वस्तुओं का उपभोग केवल जीवित रहने के लिए करते हैं; वे इनसे बँधते नहीं।

रामकृष्ण परमहंस, महावीर स्वामी, गौतम बुद्ध, महात्मा गाँधी, मदनमोहन मालवीय आदि अनेक ऐसे महापुरुष इस संसार में

अवतरित हुए; जिन्होंने संसार में रहते हुए भी अनासक्त होकर मानव-मात्र की भलाई के लिए कार्य किये। ये सभी महापुरुष अपना समस्त वैभव त्यागकर जन-कल्याण के लिए साधारण व्यक्ति के रूप में जिये। इनको अपने उद्देश्य-प्राप्ति की दिशा में कोई प्रलोभन भी नहीं रोक सका। अत: यह सत्य ही है कि महापुरुष सांसारिक विषयों के प्रलोभनों के होते हुए भी अपने निश्चित लक्ष्य से कभी विचलित नहीं होते।

2. साधारणस्थितिकोऽपि जनः महतोत्साहेन मनस्वितया पौरुषेण च असाधारणमपि कार्यं कर्तुं क्षमः इत्यदर्शयत् मनीषिमूर्धन्यः मालवीयः।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति के पास यदि पुरुषार्थ, विवेकशीलता एवं एकाग्रता है तो वह निश्चित ही बड़े-से-बड़े कार्य को करने में समर्थ हो सकता है।

व्याख्या– संसार में कोई भी व्यक्ति जन्म से नहीं; वरन् कर्म से महान् होता है। सामान्य व्यक्ति भी यदि अपने कार्य के प्रति उत्साह, विचारशीलता एवं पुरुषार्थ रखता है तो निश्चित ही उसके लिए सफलता के द्वार स्वयं खुल जाते हैं। बिना उत्साह के कार्य करने से जो परिणाम निकलता है, वह चाहे गुणात्मक ही क्यों न हो, उसमें प्राय: आनन्द की प्राप्ति नहीं होती। निरुत्साहित होकर किये गये कार्यों में व्यक्ति प्राय: सफल नहीं होता। कार्य को प्रारम्भ करने से पहले उसके औचित्य एवं अनौचित्य पर विचार कर लेना आवश्यक होता है। बिना विचारे कार्य करना मूर्खता है। अच्छी तरह विचार करके जब यह निश्चित हो जाए कि अमुक कार्य करने से यह उचित लाभ होगा, तभी उसे प्रारम्भ करना चाहिए। ऐसा करने से हमारा उत्साह एवं पुरुषार्थ व्यर्थ नहीं होगा। किसी भी कार्य से पूर्व विचार करके उत्साहपूर्वक कार्य करने कार्य में एकाग्रता तो आती ही है, उद्देश्य तक पहुँचने की आकाक्षां भी तीव्र हो जाती है। किसी ने उचित ही कहा है—

उत्साहो बलवानार्य, नास्त्युसाहात्परं बलम्।
सोत्साहस्य हि लाकेषु, न किञ्चिदपि दुर्लभम्॥

अर्थात् उत्साह ही बलवान् होता है। उत्साह से बढ़कर दूसरा कोई बल नहीं। उत्साही पुरुष के लिए संसार में कुछ भी दुर्लभ नही है।

3. जयन्ति ते महाभागा जन-सेवा-परायणाः।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– इस सूक्ति में महान् व्यक्तियों के यशरूप से अमर होने की बात को समझाया गया है।

व्याख्या– संसार में अनेक व्यक्ति जन्म लेते हैं और मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं, लेकिन उनका कोई नाम भी नहीं लेता। जो महापुरुष जन-सेवा में ही जीवन बिताते हैं और जन-सेवा ही जिनके जीवन का अन्तिम लक्ष्य होता है, उन्हें समाज, जाति और देश सदैव स्मरण रखता है। ऐसे महापुरुषों पर अनेकानेक काव्यों की रचना की जाती है और विभिन्न प्रकार से देश उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता है। ऐसे ही महापुरुषों का जीवन सार्थक है। महामना मालवीय भी ऐसे ही जन-सेवा के लिए समर्पित महापुरुष थे; अत: वे यश के रूप में सदा हमारे बीच अमर रहेंगे।

4. जरामृत्युभयं नास्ति येषा कीर्तितनोः क्वाचित्।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– पूर्ववत्

व्याख्या– यह सूक्ति महामना मदनमोहन मालवीय के जन-सेवा के कार्यों के कारण चहुँ ओर फैली उनकी धवल कीर्ति का गुणगान करती है। साधारण मनुष्य अपने विषय में सोचता हुआ ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। अपनी अनन्त इच्छाओं की पूर्ति के लिए वह अधिक-से-अधिक जीना चाहते है और इसीलिए उसे बुढ़ापे और मृत्यु का भय सताता रहता है। उसकी मृत्यु के पश्चात् सभी लोग उसे भूल जाते हैं, किन्तु जो परोपकारी, जनसेवक एवं सहृदय लोग होते हैं, वे मरने के बाद भी अपनी कीर्ति से इस संसार में अमर हो जाते हैं। लोग सदैव उसके नाम का स्मरण करते हैं। भौतिक शरीर तो प्रकृति के नियमों के अनुसार वृद्धावस्था और मृत्यु की अनिर्वायता से मुक्त नहीं हो सकता। भले ही वह कितना ही बलशाली, धनवान या ऐश्वर्यावान् व्यक्ति हो, किन्तु यश रूपी शरीर तो अजर-अमर और अनन्त काल तक अपना अस्तित्व रख सकता है। मालवीय जी इस भारतमाता के ऐसे ही महान् सपूत थे। वे कीर्तिरूपी शरीर से सदैव अमर रहेंगे।

पाठ पर आधारित प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संस्कृत में दीजिए–

1. महामनामालवीयस्य जन्मस्थानं कुत्र आसीत्?

उ०– महामनामालवीयस्य जन्म प्रयागनगरेऽभवत्।

2. **महामना मालवीयः कस्य पुत्रः आसीत्?**

उ०–मदनमोहनमालवीयस्य पण्डित ब्रजनाथमालवीयः पुत्रः आसीत्।

3. **मालवीयः कुत्र प्राड्विवाककर्म कर्तुमारभत्?**

उ०– मालवीयः प्रयागस्थे उच्चन्यायालये प्राड्विवाककर्म कर्तुमारभत्।

4. **श्रीमालवीयस्य चरित्रे कः सर्वोच्चगुणः आसीत्?**

उ०– श्रीमालवीयस्य चरित्रे सर्वोच्चगुणः जनसेवैवासीत्।

5. **मालवीयः कथं सम्मानभाजनमभवत्?**

उ०– महामनामालवीयः विधेः प्रकृष्टज्ञानेन, मधुरापालेन, उदारण्यवहारेण च सर्वेषां सम्मानभाजनमभवत्।

6. **श्रीमालवीयः कस्य विश्वविद्यालयस्य संस्थापनम्करोत?**

उ०– काशीविश्वविद्यालस्य स्थापनं महामनामदनमोहनमालवीयेन वाराणस्यां कृतम्।

7. **हिन्दुविश्वविद्यालयस्य संस्थापकः कः आसीत्?**

उ०– हिन्दुविश्वविद्यालयस्य संस्थापकः महामनामदनमोहनमालवीयः आसीत्।

8. **मालवीयः कीदृशः पुरुषः आसीत्?**

उ०– मालवीयः प्रकृष्टज्ञानवान्, मधुरभाषी उदारः च पुरुषः आसीत्।

9. **मालवीय केशामुत्थानाय निरन्तरं प्रयत्नमकरोत्?**

उ०– मालवीय हिन्दी-हिन्दु हिन्दुस्थानानामुत्थानाय निरन्तरं प्रयत्नमकरोत्।

10. **काशीविश्वविद्यालयः कस्य यशसः प्रतिमूर्तिरिव विभाति?**

उ०– काशीविश्वविद्यालयः महामनामालवीयस्य यशसः प्रतिमूर्तिरिव विभाति।

11. **युवकः मालवीयः कथं जनानां मनांसि अमोहयत्?**

उ०– युवकः मालवीयः स्वकीयेन प्रभावपूर्णभाषणेन जनानां मनांसि अमोहयत्।

12. **मालवीयमहोदयः कस्मिन् वर्षे काङ्ग्रेसस्य अध्यक्षः अभवत्?**

उ०– मालवीयमहोदयस्यः त्रयोविंशतितमे वर्षे काङ्ग्रेसस्य अध्यक्षः अभवत्।

13. **कासु भाषासु मालवीय महोदयस्य समानः अधिकारः आसीत्?**

उ०– हिन्दी-संस्कृत-आङ्ग्ल-भाषासु मालवीय महोदयस्य समानः अधिकारः आसीत्।

14. **मालवीयमहोदयः अध्यापनकार्यं कुत्र आरब्धवान्?**

उ०– मालवीयमहोदयः अध्यापनकार्यं प्रयागे राजकीय विद्यालये आरब्धवान्।

15. **शिक्षायाः क्षेत्रे श्रीमालवीयः किमकरोत्?**

उ०– शिक्षायाः क्षेत्रे श्रीमालवीयः काशीहिन्दुविश्वविद्यालयस्य संस्थापनमकरोत्।

संस्कृत अनुवाद संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए–

1. **मदनमोहन मालवीय का जन्म प्रयाग में हुआ था।**

   अनुवाद– मदनमोहन मालवीयस्य जन्म प्रयागे अभवत्।

2. **महामना मालवीय एक निपुण पत्रकार थे।**

   अनुवाद– महामनामालवीयः एकः पटुः पत्रकारः आसीत्।

3. **मालवीय जी एक श्रेष्ठ वक्ता थे।**

   अनुवाद– मालवीयः एकः श्रेष्ठोः वक्तासीत्।

4. **मालवीय सदैव पीड़ितों की सहायता करते थे।**

   अनुवाद– मालवीयः सदैव पीडितानां साहाय्यमकरोत्।

5. **वे आज भी हमारे समक्ष प्रकाशस्तम्भ की भाँति हैं।**

   अनुवाद– सोऽद्यापि अस्मत्समक्षं प्रकाशस्तम्भ इव राजते।

6. **मदनमोहन मालवीय ने काशी विश्वविद्यालय की स्थापना की।**

   अनुवाद– मदनमोहनमालवीयः काशीविश्वविद्यालयस्य स्थापनामकरोत्।

7. **वे बड़े दयालु थे।**

अनुवाद– स: अतिदयालु: आसीत्।

8. **पण्डित ब्रजनाथ मालवीय इनके पिता थे।**

अनुवाद– पण्डित ब्रजनाथ मालवीय: तस्य पितु: आसीत्।

9. **जनसेवा इनका सर्वोच्च गुण था।**

अनुवाद– जनसेवा: तस्य सर्वोच्चगुण: आसीत्।

10. **मालवीय जी का हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी भाषा पर समान अधिकार था।**

अनुवाद– मालवीयस्य हिन्दी–संस्कृत–आङ्ग्ल च भाषासु समान: अधिकार: आसीत्।

संस्कृत-व्याकरण संबंधी प्रश्न

1. **निम्नलिखित धातु-रूपों में लकार, पुरुष तथा वचन लिखिए–**

धातु-रूप	**लकार**	**पुरुष**	**वचन**
अमोहयत्	लङ्	प्रथम	एकवचन
प्रायचछन्	लङ्	प्रथम	बहुवचन
अभवत्	लङ्	प्रथम	एकवचन
आरभत्	लङ्	प्रथम	एकवचन
भ्रश्यन्ति	लट्	प्रथम	बहुवचन
आसीत्	लङ्	प्रथम	एकवचन
जयन्ति	लट्	प्रथम	बहुवचन
उदेति	लट्	प्रथम	एकवचन
अत्यजत्	लङ्	प्रथम	एकवचन
अशक्नोत्	लङ्	प्रथम	एकवचन

2. **निम्नलिखित शब्द-रूपों में प्रयुक्त विभक्ति तथा वचन लिखिए–**

शब्द-रूप	**विभक्ति**	**वचन**
उपाधिने	चतुर्थी	एकवचन
भाषाणेन	तृतीया	एकवचन
राष्ट्रनायके:	तृतीया	बहुवचन
दु:खिताम्	द्वितीया	बहुवचन
विधे:	पञ्चमी/षष्ठी	एकवचन
परिवारे	सप्तमी	एकवचन
उत्साहेन	तृतीया	एकवचन
येषां	षष्ठी	बहुवचन
भाषासु	सप्तमी	बहुवचन
अस्मिन्	सप्तमी	एकवचन
उत्थानाय्	चतुर्थी	एकवचन
भारतीयनाम्	षष्ठी	बहुवचन
मित्राणां	षष्ठी	बहुवचन

3. **निम्नलिखित शब्दों में सन्धि-विच्छेद कीजिए तथा सन्धि का नाम लिखिए–**

सन्धि शब्द	**सन्धि-विच्छेद**	**सन्धि का नाम**
देशसेवानुरक्तोऽयं	देशसेवा + अनुरक्त: + अयम्	दीर्घ, पूर्णरूप सन्धि
अत्रैव	अत्र + एव	वृद्धि सन्धि
नात्यजत्	न + अत्यजत्	दीर्घ सन्धि
महतोत्साहेन	महत + उत्साहेन	गुण सन्धि

सोऽपि	सो + अपि	पूर्वरूप सन्धि
सर्वोच्च	सर्व + उच्च	गुण सन्धि
मधुरालापेन	मधुर + आलेपन	दीर्घ सन्धि
तदनुसारम्	तट् + अनुसारम्	जश्त्व सन्धि
इत्युपाधिना	इति + उपाधिना	यण सन्धि
धर्मेऽस्य	धर्मे + अस्य	पूर्वरूप सन्धि
चायम्	च + अयम्	दीर्घ सन्धि
अभिधातुमारब्धवन्त:	अभिधातुम् + आरब्धवन्त:	दीर्घ सन्धि

4. निम्नलिखित शब्दों के विपरीतार्थक शब्द लिखिए–

शब्द	**विपरीतार्थक**
विद्वान:	मूर्ख:
युवक:	वृद्ध:
उच्च:	निम्न:
लौकिक:	अलौकिक:
वीर:	कायर:
प्रकाश:	अन्धकार:
उदेति	अस्ते
मित्र:	शत्रु:
जन्म:	मृत्यु:
सम्मानम्	अनादरं

पाठ्येतर सक्रियता

उ०– छात्र स्वयं करें।

द्वादश: पाठ: पञ्चशील-सिद्धान्ता:

अभ्यास प्रश्न

अवतरण अनुवादात्मक प्रश्न

निम्नलिखित गद्यावतरणों का ससन्दर्भ हिन्दी में अनुवाद कीजिए–

1. पञ्चशीलमिति...निष्ठावन्तौ।

[शिष्टाचारविषयका: = शिष्टाचार सम्बन्धी, शास्ति स्म = उपदेश दिया था, अस्तेयम् = चोरी न करना, अप्रमाद: = असावधान न होना, अभ्युत्थानाय = उन्नति के लिए, परमद्य = परम् + अद्य = किन्तु आज, विश्वशान्ते: = विश्व शान्ति के, अधिकृत्य: = अधिकार करके या आधार पर, एवाभवत = ही हुई थी, निष्ठावन्तौ: = आस्था रखने वाले]

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'पञ्चशील-सिद्धान्ता:' नामक पाठ से उद्धृत है।

अनुवाद– पंचशील शिष्टाचार-सम्बन्धी सिद्धान्त हैं। महात्मा गौतम बुद्ध ने इन पाँच सिद्धान्तों का पंचशील के नाम से अपने शिष्यों को उपदेश दिया था। इसलिए यह शब्द अब भी वैसा ही स्वीकृत है। ये सिद्धान्त क्रमश: इस प्रकार हैं— (1) अहिंसा, (2) सत्य, (3) अस्तेय (चोरी न करना), (4) अप्रमाद (प्रमाद न करना), (5) ब्रह्मचर्य।

बौद्ध-युग में ये सिद्धान्त व्यक्तिगत जीवन की उन्नति के लिए प्रयुक्त थे, किन्तु आजकल ये सिद्धान्त राष्ट्रों की पारस्परिक मैत्री एवं सहयोग के आधार (तथा) विश्व-बन्धुत्व और विश्व-शान्ति के साधन हैं। राष्ट्रनायक श्री जवाहरलाल नेहरू के प्रधानमन्त्रित्व-काल में चीन के साथ भारत की मैत्री पंचशील सिद्धान्तों के आधार पर ही हुई थी; क्योंकि दोनों ही देश बौद्ध धर्म में आस्था रखते थे।

2. आधुनिके...दृढ़ीकुर्वन्ति।

[गृहीतवन्त: = स्वीकार किया, व्यवस्थिता: = निश्चित किए गए हैं, कस्यचनान्यस्य > कस्यचन + अन्यस्य = अन्य किसी के,

व्याघातं = बाधा, प्रादेशिकीमखण्डताञ्च > प्रादेशिकीम् + अखण्डताम् + च = और प्रादेशिक अखण्डता का, नाक्रंस्यते > न + आक्रंस्यते = आक्रमण नहीं करेगा, राष्ट्रमपरेण > राष्ट्रम + अपरेण = दूसरे राष्ट्र पर, सर्वाण्यपि > सर्वाणि + अपि = सभी, मिथ: = परस्पर, परराष्ट्रैस्सार्द्धम् > पर + राष्ट्रै: + सार्द्धम् = दूसरे राष्ट्रों के साथ।]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– आधुनिक विश्व में पंचशील सिद्धान्तों ने नया राजनीतिक स्वरूप ग्रहण किया है।

वे इस प्रकार निश्चित (किये गये) हैं—

(i) कोई राष्ट्र किसी भी अन्य राष्ट्र के आन्तरिक मामलों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगा।

(ii) प्रत्येक राष्ट्र परस्पर प्रभुसत्ता और प्रादेशिक अखण्डता का सम्मान करेगा।

(iii) प्रत्येक राष्ट्र परस्पर समानता का व्यवहार करेगा।

(iv) कोई भी राष्ट्र दूसरे (राष्ट्र) पर आक्रमण नहीं करेगा।

(v) सारे ही राष्ट्र परस्पर मिलकर अपनी-अपनी प्रभुसत्ता की शान्तिपूर्ण रक्षा करेंगे।

विश्व में जो राष्ट्र शान्ति चाहते हैं, वे इन नियमों को स्वीकार कर दूसरे राष्ट्र के साथ अपने मैत्रीभाव को दृढ़ करते हैं।

सूक्ति-व्याख्या संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

1. उभावपि देशौ बौद्धधर्मे निष्ठावन्तौ।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'पञ्चशील-सिद्धान्ता:' नामक पाठ से अवतरित है।

प्रसंग– पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने बौद्धधर्म के 'अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अप्रमाद एवं ब्रह्मचर्य' सिद्धान्तों के आधार पर राजनीति में पञ्चशील सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर उन्होंने चीन के साथ मित्रता का हाथ बढ़ाया। इसी विषय पर इस सूक्ति में प्रकाश डाला गया है।

2. किमपि राष्ट्रमपरेण नाक्रंस्यते।

सन्दर्भ– पूर्ववत्

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में पञ्चशील सिद्धान्त पर प्रकाश डाला गया है।

व्याख्या– पञ्चशील के सिद्धान्तों में एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि कोई भी देश किसी अन्य देश पर आक्रमण नहीं करेगा और न ही उसको किसी अन्य प्रकार से डराए-धमकाएगा। प्राय: बड़े और शक्तिशाली राष्ट्र अपने से कमजोर और छोटे राष्ट्रों पर आक्रमण करके उन्हें अपने अधीन कर लेते हैं, जिसके परिणामस्वरूप उस देश का सब प्रकार का विकास अवरुद्ध हो जाता है। छोटे और अल्पविकसित देशों को संरक्षण देने की दृष्टि से इस सिद्धान्त का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है।

पाठ पर आधारित प्रश्न–

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संस्कृत में दीजिए–

1. गौतमबुद्धः स्वशिष्यान् केषुसिद्धान्तेषु अशिक्षयत्?

उ०– गौतमबुद्ध: पञ्चशीलमिति नाम्नां सिद्धान्तान् स्वशिष्यानशिक्षयत्।

2. पञ्चशीलमिति कीदृशाः सिद्धान्ताः सन्ति?

उ०– पञ्चशीलमिति सिद्धान्ता: शिष्टाचारविषयका: सन्ति।

3. गौतमबुद्धस्य सिद्धान्ताः के आसन्?

उ०– गौतमबुद्धस्य सिद्धान्ता: अहिंसा, सत्यम्, अस्तेयम्, अप्रमाद:, ब्रह्मचर्यम् इति आसन्।

4. चीनदेशेन सह भारतस्य मैत्री कान् सिद्धान्तानधिकृत्य अभवत्?

उ०– चीनदेशेन सह भारतस्य मैत्री पञ्चशीलसिद्धान्तानधिकृत्य अभवत्।

5. भारत-चीन देशौ कस्मिन् धर्मे निष्ठावन्तौ?

उ०– भारत-चीन देशौ बौद्ध धर्मे निष्ठावन्तौ।

6. राजनीतिः क्षेत्रे पञ्चशीलस्य के सिद्धान्ताः सन्ति?

उ०– राजनीति: क्षेत्रे पञ्चशीलस्य सिद्धान्ता: सन्ति—

(i) किमपि राष्ट्रं कस्यचनान्यस्य राष्ट्रस्य आन्तरिकेषु विषयेषु कीदृशमपि व्याघातं न करिष्यति।

(ii) प्रत्येकराष्ट्रं परस्परं प्रभुसत्वां प्रादेशिकीमखण्डताञ्च सम्मानयिष्यति।

(iii) प्रत्येकराष्ट्रं परस्परं समानतां व्यवहरिष्यति।

(iv) किमपि राष्ट्रमपरेण नाक्रंस्यते।

(v) सर्वाव्यपि राष्ट्रामणि मिथ: स्वां प्रभुसत्तां शान्तया रक्षिष्यन्ति।

7. पञ्चशीलसिद्धान्ता: वैयक्तिक जीवनस्य अभ्युत्थानाय कस्मिन् युगे प्रयुक्ता: आसन्?

उ०– पञ्चशीलसिद्धान्ता: वैयक्तिक जीवनस्य अभ्युत्थानाय बौद्धयुगे प्रयुक्ता: आसन्।

8. कस्मिन् काले चीनदेशेन सह भारतस्य मैत्री अभवत्?

उ०– जवाहरलालमहोदस्य प्रधानमन्त्रित्वकाले चीनदेशेन सह भारतस्य मैत्री अभवत्।

9. चीनदेश: पञ्चशील सिद्धान्तेषु आस्था कथमप्रकटयत्?

उ०– बौद्धधर्मे निष्ठावन्त: चीनदेश: पञ्चशील सिद्धान्तेषु आस्था कथमप्रकटयत्।

10. अद्य इमे सिद्धान्ता: राष्ट्राणां कस्य साधनानि सन्ति?

उ०– अद्य इमे सिद्धान्ता: राष्ट्राणां परराष्ट्रैस्सार्द्धं स्वमैत्रीभावं दृढ़ी साधनानि सन्ति।

संस्कृत अनुवाद संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद कीजिए–

1. भारत और चीन दोनों की बौद्ध धर्म में निष्ठा है।
अनुवाद– भारतस्य चीनश्चय बौद्ध धर्मे निष्ठावन्तौ:।

2. प्रत्येक राष्ट्र परस्पर समानता का व्यवहार करेगा।
अनुवाद– प्रत्येकराष्ट्रं परस्परं समानतां व्यवहरिष्यति।

3. पंचशील सिद्धान्तों ने वर्तमान में राजनैतिक रूप धारण कर लिया है।
अनुवाद– पंचशीलसिद्धान्त: वर्तमाने राजनैतिकं स्वरूपं गृहीतवन्त:।

4. पंचशील सिद्धान्तों के प्रतिपादक पं० जवाहरलाल नेहरू थे।
अनुवाद– पञ्चशीलसिद्धान्तस्य प्रतिपालक: प० जवाहरलाल नेहरू आसीत्।

5. पंचशील सिद्धान्त शिष्टाचार-सम्बन्धी है।
अनुवाद– पञ्चशील: सिद्धान्त: शिष्टाचारविषयक अस्ति।

6. भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है।
अनुवाद– भारत एक: धर्मनिरपेक्ष: राज्य: अस्ति।

7. कोई राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण नहीं करेगा।
अनुवाद– किमपि राष्ट्र: अन्ये राष्ट्रे नाक्रंस्यते।

8. तुम सब जल पीते हो।
अनुवाद– यूयं जलं पिबथ।

9. पं० जवाहरलाल नेहरू भारत के सबसे पहले प्रधानमंत्री थे।
अनुवाद– प० जवाहरलाल नेहरू भारतस्य प्रथम प्रधानमंन्त्री आसीत्।

10. गौतम बुद्ध का पंचशील सिद्धान्त आज भी महत्वपूर्ण है।
अनुवाद– गौतम बुद्धस्य पंचशीलसिद्धान्त: अद्यापि महत्त्वपूर्णमस्ति।

संस्कृत व्याकरण संबंधी प्रश्न

1. निम्नलिखित शब्दों में सन्धि-विच्छेद कीजिए–

सन्धि-शब्द	सन्धि-विच्छेद	सन्धि का नाम
पञ्चापि	पञ्च + अपि	दीर्घ सन्धि
अधुनापि	अधुना + अपि	दीर्घ सन्धि
अभ्युत्थानाय	अभि + उत्थानाय	यण सन्धि
सर्वाण्यपि	सर्वाणि + अपि	यण सन्धि
एवायं	एव + अयं	दीर्घ सन्धि
उभावति	उभौ + अपि	अयादि सन्धि

नैष:	न + एष:	वृद्धि सन्धि
शब्दस्यैवस्य	शब्दस्य + एवस्य	वृद्धि सन्धि
द्वयोरपि	द्वयो: + अपि	रुत्व सन्धि
नाक्रंस्यते	न + आक्रंस्यते	दीर्घ सन्धि
राष्ट्रैस्सार्धम	राष्ट्रै: + सार्धम्	सत्व सन्धि

2. निम्नलिखित शब्दों में से प्रयुक्त प्रत्यय लिखिए–

शब्द	**धातु**	**प्रत्यय**
मन्त्रित्व	मन्त्री	त्व
अधिकृत्य	अधि + कृ	ल्यप्
गृहीतवान्	ग्रह्	क्तवतु
निष्ठावन्तौ	निष्ठा	क्तवतु
अङीकृत्य	अङ्गी + कृ	ल्यप्
रक्षितुम्	रक्ष	तुमुन्

3. निम्नलिखित शब्द–रूपों में प्रयुक्त विभक्ति तथा वचन लिखिए–

शब्द–रूप	**विभक्ति**	**वचन**
अभ्युत्थानाय	चतुर्थी	एकवचन
तस्यात्	पञ्चमी	एकवचन
तानि	प्रथमा/द्वितीया	बहुवचन
विषयेषु	सप्तमी	बहुवचन
बौद्धयुगे	सप्तमी	एकवचन
शिष्यान्	द्वितीया	बहुवचन
शान्त्या	तृतीया	एकवचन
साधनानि	प्रथमा/द्वितीया	बहुवचन
प्रादुर्भूतस्य	षष्ठी	एकवचन
कारणात्	पञ्चमी	एकवचन
एतस्य	षष्ठी	एकवचन
राष्ट्रनायकस्य	षष्ठी	एकवचन
राष्ट्राणाम्	षष्ठी	बहुवचन
देशौ	प्रथमा/द्वितीया	बहुवचन
तानि	प्रथमा/द्वितीया	बहुवचन

4. निम्नलिखित धातु–रूपों में लकार, पुरुष तथा वचन लिखिए–

धातु–रूप	**लकार**	**पुरुष**	**वचन**
सम्मानयिष्याति	लृट्	प्रथम	एकवचन
सन्ति	लट्	प्रथम	बहुवचन
आसन्	लङ्	प्रथम	बहुवचन
करिष्यति	लृट्	प्रथम	एकवचन
कुर्वन्ति	लट्	प्रथम	बहुवचन
इच्छति	लट्	प्रथम	बहुवचन
शस्ति	लट्	प्रथम	एकवचन
समतिष्ठत्	लङ्	प्रथम	एकवचन
रक्षियन्ति	लट्	प्रथम	बहुवचन

पाठ्येतर सक्रियता

उ०– छात्र स्वयं करें।

त्रयोदशः पाठः   दूतवाक्यम्

अभ्यास प्रश्न

अवतरण अनुवादात्मक प्रश्न

निम्नलिखित गद्यावतरणों का ससन्दर्भ हिन्दी में अनुवाद कीजिए–

1. **काञ्चुकीयः..प्राप्तः केशवः।**

[प्रतिहाराधिकृताः > प्रतिहार + अधिकृताः = पहरेदारों; पहरे पर नियुक्त अधिकारीगण, पार्थिवैः = राजाओ के, सह = साथ, मन्त्रयितुम् = मन्त्रणा (परामर्श) के लिए, आहूयन्तां = बुलाओ, इत एवाभिवर्तते > इतेः + एव + अभिवर्तते = इधर ही आ रहे हैं, यथानिर्दिष्टः = जैसा बताया गया, समानीतं = बुला लिया गया है, अवरोधम् = रनिवास, पाण्डवस्कन्धावारात् = पाण्डवों के शिविर से, दौत्येन = दूत रूप में, बार्हद्रथापहृतविजयकीर्तिभोगः > बार्हद्रथ + अपहृत = विजय-कीर्ति-भोगः = जरासन्ध द्वारा अपहृत विजय कीर्ति भोगवाला अर्थात् जिसके विजय-यश के भोग का जरासन्ध ने अपहरण कर लिया था, पार्थिवासन्नमाश्रितस्य > पार्थिव + आसन्नम् + आश्रितस्य = राजाओं के समीप रहने वाला, समुदाचारः = उचित व्यवहार]

सन्दर्भ– प्रस्तुत गद्यांश हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'दूतवाक्यम्' नामक पाठ से उद्धृत है।

अनुवाद– (तब काञ्चकीय प्रवेश करता है।)

काञ्चुकीय– हे द्वाररक्षकों! महाराज दुर्योधन आज्ञा देते हैं—"मैं आज समस्त राजाओं के साथ मन्त्रणा (परामर्श) करना चाहता हूँ, इसलिए सब राजाओं को बुलाओ।" (घूमकर देखकर) अरे! यह महाराज दुर्योधन तो इधर ही आ रहे हैं।

(तब पहले कहे अनुसार दुर्योधन प्रवेश करता है।)

काञ्चुकीय– महाराज की जय हो। महाराज की आज्ञानुसार सभी राजाओं को बुला लिया गया है।

दुर्योधन– ठीक किया। तुम अन्तःपुर में जाओ।

काञ्चुकीय– जो आज्ञा महाराज! (निकलकर, पुनः प्रवेश करके।)

काञ्चुकीय– महाराज की जय हो। यह निश्चित ही पाण्डव-शिविर से दूत के रूप में पुरुषोत्तम नारायण (भगवान् श्रीकृष्ण) पधारे हैं।

दुर्योधन– अरे बादरायण! ऐसा मत कहो। क्या कंस का नौकर दामोदर तेरा पुरुषोत्तम नारायण है? वह ग्वाला तेरा पुरुषोत्तम! जरासन्ध द्वारा छीनी हुई विजय-कीर्ति वाला तेरा पुरुषोत्तम! (अर्थात् जिसे जरासन्ध ने हराकर उसका विजय-यश छीन लिया, वह पुरुषोत्तम कैसे हो सकता है?) अरे! राजा के समीप (रहने वाले) अश्रित सेवक का यह व्यवहार क्या उचित है? (हाँ) कौन-सा दूत आया है?

काञ्चुकीय– महाराज, प्रसन्न हों। दूत केशव आया है।

2. **दुर्योधनः..कोऽत्र भोः।**

[एवमेष्ट्व्यम् > एवम् + एष्टव्यम = ऐसा ठीक है, युक्तम् = उचित, अर्ध्य = किसी सममान्य व्यक्ति को स्वागत के लिए दिया जाने वाला दूध, चावल आदि से मिश्रित जल, ग्रहणे = पकड़ने; कैद करने में, हृतनयनाः = नेत्ररहित, क्षितिरखिलापि > क्षितिः + अखिला + अपि = सारी पृथ्वी ही, आसपत्नाः = शत्रुरहित, योऽत्र > योः + अत्र = जो यहाँ, प्रत्युस्थास्यति = खड़ा होगा, द्वादशसुवर्णभारेण = बारह सुवर्ण-मुद्राओं से, अप्रमत्ताः = सावधान]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– दुर्योधन– केशव! हाँ, यह ठीक कहा। यही उचित व्यवहार (शिष्टाचार) है। हे राजाओं! दूत बनकर आये केशव के प्रति क्या (व्यवहार) उचित है? आप लोग क्या कह रहे हैं कि 'अर्घ्य देकर केशव का सम्मान करना चाहिए।' मुझे यह नहीं रुचता। इसे पकड़ (बन्दी बना) लेने में ही मुझे (अपना) हित दिखता है।

वासुदेव के बन्दी बना लिये जाने से पाण्डव नेत्रहीन-से ही जाएँगे। पाण्डवों के गति (कार्यक्षमता) और मति (उचित परामर्श) से रहित हो जाने पर (अर्थात् नीतिकुशल श्रीकृष्ण की अवसरोचित मन्त्रणा के अभाव से पाण्डवों की कार्यक्षमता के नष्ट हो जाने पर) मेरे लिए समस्त पृथ्वी शत्रुरहित हो जाएगी। साथ ही, यहाँ जो व्यक्ति केशव के लिए (सम्मानार्थ) खड़ा होगा, उसे मैं बारह सुवर्ण भार से दण्डित करूँगा। तो आप सब लोग सावधान रहें। अरे, कोई है?

3. **काञ्चुकीयः..पदमनाभः।**

[विहगवाहनमात्रविस्मितः = पक्षी के वाहनमात्र से गर्वीले, कृष्णमतिः = काली (कुटिल) बुद्धिवाला, सज्जय = तैयार कर लो, नारीमृदूनि = नारी के समान कोमल, चाहवदर्पम् > च + आहवदर्पम् = और युद्ध का घमण्ड रखने वाले, अनुक्तग्राहिणम् =

उचित बात (परामर्श) को ग्रहण न करने वाले (मानने वाले) को, पद्मनाभ: = नाभि में कमल है जिसके; अर्थात् विष्णु भगवान]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– काञ्चुकीय– महाराज की जय हो।

दुर्योधन– बादरायण! पक्षी (गरुड़) की सवारी-भर का घमण्ड करने वाले दूत को लिवा (आशय यह है कि श्रीकृष्ण के पास और कुछ घमण्ड करने लायक है नहीं, एक पक्षी की सवारी-भर है, जो उन्हें औरों से विशेषता प्रदान करती है)।

काञ्चुकीय– जो आज्ञा, महाराज! (चला जाता है।)

दुर्योधन– मित्र कर्ण!

वह काली (कुटिल) बुद्धि वाला कृष्ण निश्चय ही आज पाण्डवों के कहने से दूत के रूप में सेवक-सा बनकर आया है। (अत:) मित्र (कर्ण:)! तुम भी अपने कानों को युधिष्ठिर के नारी-जैसे कोमल (पुरुषहीन) वचनों को सुनने के लिए तैयार कर लो।

(इसके बाद वासुदेव श्रीकृष्ण और काञ्चुकीय प्रवेश करते हैं।)

वासुदेव– आज नि:सन्देह धर्मराज के कहने से मित्रतावश मैंने युद्धोन्मत्त और उचित बात (परामर्श) को न मानने वाले दुर्योधन के पास आने के लिए, अनुपयुक्त समय पर दूत का कार्य सँभाला है।

दुष्ट वचन बोलने वाला, गुणों से द्वेष करने वाला, नीच तथा अपने सम्बन्धियों के प्रति निर्दयी(वह) दुर्योधन मुझे देखकर कदापि (उचित) कार्य न करेगा।

अरे बादरायण! क्या प्रवेश करें?

काञ्चुकीय– क्यों नहीं, क्यों नहीं? पद्मनाभ प्रवेश करें।

4. वासुदेव:...शमायाश्रमम्।

[स्वैरम् = आराम से, आसताम् = बैठिए, पूर्वमाश्रावितो > पूर्वम् + आश्रवित: = पहले सुनाया हुआ (कहा हुआ), सुव्यक्त = सचमुच ही, समाहित: = सावधानी से, बहुमाय: = बहुत मायावी, गाङ्गेय = गंगा पुत्र भीष्म, त्रिदशेन्द्रसुनू: > त्रिदशेन्द्र + सुनू: = त्रिदशों (देवताओं) के इन्द्र का पुत्र अर्जुन, यमौ = जुडवाँ भाई, तावाश्विसुतौ > तौ + अश्विसुतौ = वे दोनों अश्विनीकुमारों के पुत्र (नकुल और सहदेव), कुशलमनामयं = कुशलता एवं स्वस्थता, समय: = शर्त, धर्म्यम् = धर्म के अनुसार, दायाद्यम् = देने योग्य(हिस्सा), नृपात्मजै: > नृप + आत्मजै: = राजकुमारों, भुज्यते = भोगा जाता है, काङ्क्षा = इच्छा हो, चेन्नृपतित्वमाप्तुमचिरात् > चेत् + नृपतित्वम् + आप्तुम + अचिरात् = यदि शीघ्र ही राजपद पाने की, साहसम् = उग्र शौर्य; प्रचण्ड पराक्रम, शान्तमतिभि: = शान्त बुद्धि(विचार) वाले तपस्वियों से, जुष्टम् = युक्त, शमाय = शान्ति के लिए, आश्रमम् = (यहाँ) वानप्रस्थाश्रम]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– वासुदेव– (प्रवेश करके मन-ही-मन) मुझे देख सारे क्षत्रिय घबरा क्यों गये? (प्रकट) परेशान न होइए, आराम से बैठिए।

दुर्योधन– केशव को देखकर सारे क्षत्रिय घबरा क्यों गये? घबराइए मत, घबराइए मत। मेरे पूर्वकथित दण्ड का स्मरण कीजिए। मैंने आज्ञा जो दी है।

वासुदेव– अरे सुयोधन (दुर्योधन)! क्या कह रहे हो?

दुर्योधन– (आसन से गिरकर मन-ही-मन) सचमुच केशव आ गया।

मैं उत्साहपूर्वक सावधानी से दृढ़ निश्चय करके (आसन पर) बैठा था, किन्तु केशव के प्रभाव से मैं आसन से विचलित हो गया हूँ (गिर पड़ा हूँ)।

अरे! यह दूत बहुत मायावी (छली) है। (प्रकट रूप से) हे दूत! इस आसन पर बैठो।

वासुदेव– आचार्य (द्रोण) बैठिए। भीष्म आदि राजागण! आप लोग भी आराम से बैठिए। हम भी बैठते हैं। (बैठते हैं।)

दुर्योधन– धर्मराज के पुत्र (युधिष्ठिर), वायु के पुत्र भीमसेन, देवराज इन्द्र का पुत्र मेरा भाई अर्जुन तथा अश्विनीकुमारों के जुड़वाँ पुत्र विनम्र स्वभाव वाले (नकुल-सहदेव (सेवकों सहित सब कुशलपूर्वक तो हैं?

वासुदेव– सब कुशल हैं तथा आपके राज्य की कुशलता और शारीरिक स्वस्थता को पूछते हुए निवेदन करते हैं— हमने बहुत दु:ख उठाये हैं और (तेरह वर्ष वनवास की) शर्त भी पूरी हो चुकी है, इसलिए (अब) धर्मानुसार हमारा जो (राज्य का) भाग है, वह बाँट दीजिए।

दुर्योधन– कैसा (राज्य का) भाग? हे दूत! आप राज-व्यवहार नहीं जानते?

राज्य तो सहृदय (विवेकशील) राजपुत्रों द्वारा शत्रुओं को जीतकर भोगा जाता है। वह संसार में न तो (किसी से) माँगा जाता है और न किसी दीन-व्यक्ति (दीनतापूर्वक याचना करने वाले) को दिया जाता है। यदि उन्हें शीघ्र राजपद पाने की इच्छा है तो प्रबल पराक्रम करें, अन्यथा चुपचाप शान्तिपूर्वक प्रसन्न मन से वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करें(अर्थात् तपस्या करने तपोवन को चले जाएँ)।

5. वासुदेवः...स्वराज्ये।

[परुषमभिधातुम् > परुषम् + अभिधातुम् = परुष (कठोर) वचन कहना, गुणेतराः > गुण + इतराः = दोष, श्रेयान् = कल्याणकारी, देवात्मजैः > देवः + आत्मजैः = देवताओं के पुत्रों के साथ अर्थात् पाण्डव जो देवताओं के पुत्र थे, पिष्टपेषणम् = बार बार (एक ही बात को) कहना, छिद्यताम् = बन्द कीजिए, निर्जिताः = पराजित किया, नीयमानः = ले जाए जाते हुए, फाल्गुनेनैव > फाल्गुनेन + एव = अर्जुन द्वारा ही, मोचितः = छुड़ाया, सागरान्ताम् > सागर + अन्ताम् = समुद्रपर्यन्त, गां = पृथ्वी को, हरिष्यन्ति = छीन लेंगे, शक्रः = इन्द्र, परुषवचनदक्ष = कठोर वचन बोलने में चतुर, वीर्यगुप्ते = पराक्रम से रक्षित]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– वासुदेव– अरे दुर्योधन! आत्मीयों(सम्बन्धियों) से (ऐसे) कठोर वचन मत कहो।

भाइयों से स्नेह करना चाहिए, उनके दोषों को भुला देना चाहिए, (क्योंकि) भाईयों से सम्बन्ध (बनाये रखना) दोनों लोकों (इहलोक और परलोक) में कल्याणकारी है।

दुर्योधन– देवपुत्रों (पाण्डवों) के साथ मनुष्यों का भाईचारा कैसे हो सकता है? बस, एक ही बात बार-बार दोहराना (पिष्टपेषण) बहुत हो चुका। अब इसे (इस बात का) बन्द कीजिए।

वासुदेव– अरे दुर्योधन! क्या अर्जुन के पराक्रम को नहीं जानते?

दुर्योधन– नहीं जानता।

वासुदेव– तो सुनो! उस समय विराट् नगर में अकेले अर्जुन ने भीष्म आदि (कुरु वीरों) को हरा दिया था और चित्रसेन द्वारा आकाश में ले जाए जाते हुए तुम्हें अर्जुन ने ही छुड़ाया था। इसलिए–

हे धृतराष्ट्र के पुत्र! मेरे कहने से आधा राज्य(पाण्डवों को) दे दो, नहीं तो पाण्डव सागरपर्यन्त(सम्पूर्ण) पृथ्वी को तुमसे छीन लेंगे।

दुर्योधन– भला पाण्डव कैसे छीन लेंगे?

यदि युद्ध में भीष्म के रूप में स्वयं वायुदेवता भी प्रहार करें और अर्जुन के रूप में साक्षात् इन्द्र प्रहार करें तो भी हे कठोर वचन बोलने में कुशल! मैं तुम्हारे कहने से (अपने) पिता द्वारा भोगी तथा पराकम्र से रचित अपने राज्य की तिनके भर भूमि भी न दूँगा।

6. वासुदेवः...पतन्ति राजानः।

[क्षिपसि = आक्षेप करते हो, अनात्मज्ञस्त्वम् > अनात्मज्ञः + त्वम् = तू अपने को नहीं जानता, भवद्विधैः सह = आप जैसों के साथ, अचिरान्नाशमेष्यति > अचिरात् + नाशम + एष्यति = शीघ्र विनाश को प्राप्त हो जाएगा, गच्छामस्तावत् > गच्छामः + तावत् = तो हम जाते हैं, बध्यताम् = बाँध लो, विश्वरूपमास्थिः > विश्वरूपम् + आस्थितः = विराट स्वरूप धारण करते हैं, दुर्निवारैः = अबाध, पतानाज्जातदर्पः > पातनात् + जातदर्पः = मारने से उत्पन्न घमण्डवाले, ह्रस्वत्वम् = सूक्ष्मता, दीर्घत्वम् = विशालता, पाशैर्बद्धाः > पाशैः + बद्धाः = जाल में बँधे।]

सन्दर्भ– पूर्ववत्

अनुवाद– वासुदेव– अरे कुरुवंश के कलंक!

दुर्योधन– अरे ग्वाले!

वासुदेव– अरे दुर्योधन! मुझ पर आक्षेप करते हो?

दुर्योधन– अरे अपनी वास्तविकता को न जानने वाले! मैं कहे देता हूँ कि आप जैसों से बात नहीं करूँगा।

वासुदेव– दुष्ट तेरे कारण यह कुरूवंश शीघ्र ही नष्ट ो जाएँगा। (तो) हे राजाओं! हम जाते हैं।

दुर्योधन– (यह)केशव भला कैसे चला जाएगा! अरे दुःशासन! दूत के शिष्टाचार का उल्लघंन करने वाले केशव को बाँध लो। मामा! इस केशव को बाँध लो। अरे, (आप) उल्टे क्यों गिर रहे हैं? अच्छा ठहरो मैं ही पाश (फन्दे) से बाँधता हूँ। (पास जाता है।)

वासुदेव– क्या, दुर्योधन मुझे बाँधना चाहता है? तो देखता हूँ (इस) दुर्योधन की सामर्थ्य (विश्वरूप धारण करते हैं।)

दुर्योधन– अरे दूत!

चाहे तुम सब अपनी देवमाया ही क्यों न उत्पन्न कर दो, चाहे मुझ पर अबाध दिव्याशास्त्रों से प्रहार ही क्यों न करो। तो भी घोड़े, हाथी और बैलों के मारने से घमण्ड में भरे तुम्हें आज मैं (इन) राजाओं के बीच अवश्य बाँधूँगा।

अरे! जरा ठहर तो! (यह क्या?) केशव दिख क्यों नहीं रहा? ओह, केशव की लघुत! जरा ठहर तो! केशव दिखता क्यों नहीं! अरे केशव की विशालता! (यह क्या?) केशव दिखता क्यों नहीं? यह रहा केशव! ओहो, सारी सभा में केशव-ही-केशव क्यों दिख रहे हैं? अब क्या करूँ? अच्छा समझ गया। अरे राजाओ (तुम लोग), एक-एक केशव को बाँध लो। अरे राजागण तो स्वयं ही फन्दों में बँधकर गिर रहे हैं। (सब निकल जाते हैं।)

सूक्ति-व्याख्या संबंधी प्रश्न–

निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए–

1. नारीमृदूनि वचनानि युधिष्ठिरस्य।

सन्दर्भ– प्रस्तुत सूक्ति हमारी पाठ्यपुस्तक 'संस्कृत दिग्दर्शिका' के 'दूतवाक्यम्' नामक पाठ से अवतरित है।

प्रसंग– श्रीकृष्ण के पाण्डवों का दूत बनकर आने पर दुर्योधन युधिष्ठिर पर व्यंग्य करता हुआ प्रस्तुत सूक्ति कहता है।

व्याख्या– कृष्ण पाण्डवों के दूत बनकर दुर्योधन के पास आये हैं कि वह उन्हें उनका राज्य वापस दे दो। इस पर दुर्योधन युधिष्ठिर पर व्यंग्य करता हुआ अपने मित्र कर्ण से कहता है कि तुम युधिष्ठिर के नारी के समान कोमल वचनों को सुनने के लिए तैयार हो जाओ। उसके कहने का आशय यह है कि राज्य जैसी वस्तु: स्त्रियों की तरह गिड़गिड़ाने से नहीं मिलती। वस्तुत: व्यक्ति जितना उदार होता है उसमें उतनी ही कोमलता आ जाती है, किन्तु दुर्योधन जैसे अल्पबुद्धि व्यक्ति इसे दुर्बलता मानकर उपहास करते हैं। दुर्योधन की ऐसी धृष्टता के कारण ही महाभारत का भीषण संग्राम हुआ और दारुण विनाश हुआ।

2. राज्यं नाम नृपात्मजैस्सहृदयैर्जित्वा रिपून् भुज्यते।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– प्रस्तुत सूक्ति में स्पष्ट किया गया है कि राज्य माँगने से नहीं मिला करता। शौर्य द्वारा शत्रु को परास्त करके ही राज्य की आकाक्षां की जा सकती है।

व्याख्या– श्रीकृष्ण द्वारा पाण्डवों को धर्मानुसार उनका भाग दिये जाने का निवेदन करने पर दुर्योधन ने कहा कि हे दूत! तुम राज-व्यवहार को नहीं जानते। राज्य तो शत्रुओं को जीतकर ही भोगा जाता है; अर्थात् राज्य माँगने से नहीं मिला करता और न ही करुणा या उदारता के वशीभूत होकर कोई अपना राज्य किसी को देता है। यदि किसी से राज्य प्राप्त करना ही है तो अपनी शूरवीरता प्रदर्शित करते हुए, उसे परास्त करना चाहिए। इस प्रकार दुर्योधन ने श्रीकृष्ण को इस राज-व्यवहार से अवगत कराया कि राज्य माँगने से नहीं मिला करता। दूसरी ओर उन्हें इस बात के लिए चुनौती भी दी कि यदि पाण्डवों में बाहुबल हो तो वे युद्ध करके इस राज्य में अपना हिस्सा ले सकते हैं। कहा भी गया है कि ''वीरभोग्या वसुन्धरा'', अर्थात् वीर ही पृथ्वी का उपभोग करते हैं।

3. कर्त्तव्यों भ्रातृषु स्नेहो विस्मर्तव्यता गुणेतरा:।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में बताया गया है कि भाइयों से मधुर सम्बन्ध रखना व्यक्ति के लिए सबसे अधिक कल्याणकारी होता है।

व्याख्या– श्रीकृष्ण दुर्योधन की सभा में दूत के रूप में जाकर उनसे पाण्डवों को आधा राज्य देने तथा स्नेह करने का परामर्श देते हुए कहते हैं कि व्यक्ति को अपने भाइयों से मधुर सम्बन्ध रखने चाहिए। भाई से बढ़कर कोई दूसरा हितैषी नहीं होता। वह सुख-दु:ख में सच्चे हृदय से साथ देता है, जबकि अन्य व्यक्ति स्वार्थवश सुख के साथी बन जाते हैं और विपत्ति के समय साथ छोड़ जाते हैं। राम-लक्ष्मण और भरत का भ्रातस्नेह अनुपम था जो एक-दूसरे के लिए स्वयं कष्ट सहने को तत्पर रहते थे। इतिहास उस उक्ति को पुष्ट करता है कि रावण अपने भाई विभीषण का अपमान कर अपने विनाश को आमन्त्रित कर बैठा था। यदि कोई वास्तव में बड़ा है, ज्ञानवान है तो उसे दूसरों के दोषों को भुलाकर उसके साथ स्नेहयुक्त व्यवहार करना चाहिए। भाइयों से स्नेह रखकर ही हम अपने इहलोक और परलोक दोनों को सफल बना सकते हैं।

4. सम्बन्धो बन्धुभि: श्रेयान् लोकयोरुभयोरपि।

सन्दर्भ– पूर्ववत्।

प्रसंग– इस सूक्ति में श्रीकृष्ण दुर्योधन को भाइयों से स्नेहपूर्ण सम्बन्ध रखने को सलाह दे रहे हैं।

व्याख्या– श्रीकृष्ण दुर्योधन को समझाते हुए कहते हैं कि मनुष्य को अपने भाईयों से स्नेह करना चाहिए। भाई के समान हितैषी कोई दूसरा नहीं होता। वह सुख-दु:ख में सच्चे हृदय से साथ देता है। वनवास राम को हुआ था, लक्ष्मण को नही; परन्तु इस विपत्तिकाल में उनका साथ देने के लिए लक्ष्मण भी राम के साथ वन को चले गये। तुम्हें यह समझना चाहिए कि भाई, भाई ही होता है। यदि उसमें कोई दोष भी है तो उसे भुला देना चाहिए। भाइयों के साथ सुसम्बन्ध न केवल इस लोक में ही हितकारी हैं, अपितु परलोक में भी हितकारी हैं। इसलिए हे दुर्योधन! तुम अपने भाइयों से स्नेह करो और उनका भाग उन्हें दे दो। कहा भी गया है कि, गुणवान् पराये जन की तुलना में निर्गुण स्वजन ही होता है, क्योंकि पराया तो पराया ही होता है।

गुणवान्वा परजनः, स्वजनः निर्गुणोऽपि वा।
निर्गुणः स्वजनः श्रेयान्, यः परः पर एव सः॥

पाठ पर आधारित प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संस्कृत में दीजिए–

1. **काञ्चुकीयः कः आसीत्?**

उ०– काञ्चुकीय: दुर्योधनस्य भृत्य: बादरायण: आसीत्।

2. **दुर्योधनः कः आसीत्?**

उ०– दुर्योधन: कुरुराज: आसीत्।

3. **कः पाण्डवः दूतः अभवत्?**

उ०– श्रीकृष्ण: पाण्डव: दूत: अभवत्।

4. **दुर्योधनः श्रीकृष्णं किम् अपृच्छत्?**

उ०– दुर्योधन: श्रीकृष्णं पाण्डवानां कुशलक्षेमम् अपृच्छत्।

5. **दुर्योधनः राज्यदानविषये किम् उदतरत्?**

उ०– दुर्योधन: उदतरत् यत् अहं पितृभुक्ते वीर्यगुप्ते स्वराज्ये तृणमपि न दास्ये।

6. **श्रीकृष्णः दुर्योधनस्य राजसभां कथम् अगच्छत्?**

उ०– श्रीकृष्ण: दुर्योधनस्य राजसभां युधिष्ठिरस्य सन्देशं आदाय अगच्छत्।

7. **दुर्योधनः कस्य पुत्रः आसीत्?**

उ०– दुर्योधन: धृतराष्ट्रस्य पुत्र: आसीत्।

8. **वासुदेव कस्य पुत्रः आसीत्?**

उ०– वासुदेव वसुदेवस्य पुत्र: आसीत्।

9. **दुर्योधनः कस्य प्रभावेण आसनात् चलितोऽभवत्?**

उ०– दुर्योधन: केशवस्य प्रभावेण आसनात् चलितोऽभवत्।

10. **दुर्योधनः कर्णं किम् अवोचत्?**

उ०– दुर्योधन: कर्णं अवोचत्– सखे कर्ण! त्वमपि युधिष्ठिर नारीमृदूनि वचनानि श्रोतुं कर्णौ सज्जय।

11. **श्रीकृष्णः दुर्योधनस्य किमपरं नाम वदति?**

उ०– श्रीकृष्ण: दुर्योधनस्य अपरं नाम 'सुयोधन:' इति वदति।

12. **दुर्योधनः राज्ञः किमदिष्टवान्?**

उ०– स: राज्ञ: 'न कश्चिदपि केशवाय प्रत्युत्तिष्ठेत्' इत्यादिष्टवान्।

13. **श्रीकृष्णं दृष्ट्वां राजसभायां नृपाणां का दशा अभवत्?**

उ०– श्रीकृष्णं दृष्ट्वां सर्वे राजान: सम्भ्रान्ता: जाता:।

14. **दुर्योधनः राज्यप्राप्ते कमुपायकथयत्?**

उ०– दुर्योधन: राज्यप्राप्ते साहसमिति उपायमकथयत्।

15. **श्रीकृष्णः दुर्योधनः पाण्डवेभ्यः राज्यदानाय किम् अकथयत्?**

उ०– श्रीकृष्ण: अकथयत्– ''पाण्डवेभ्य: राज्यार्धं देहि अन्यथा सागरान्तां गां पाण्डवा: हरिष्यन्ति।''

संस्कृत अनुवाद संबंधी प्रश्न–

1. **श्रीकृष्ण पाण्डवों के दूत थे।**
   अनुवाद– श्रीकृष्ण: पाण्डवस्य दूत: आसीत्।
2. **दुर्योधन धृतराष्ट्र का पुत्र था।**
   अनुवाद– दुर्योधन: धृतराष्ट्र पुत्र: आसीत्।
3. **कर्ण दुर्योधन का मित्र था।**
   अनुवाद– कर्ण: दुर्योधनस्य मित्रं आसीत्।
4. **मैं बिना युद्ध के कुछ भी नहीं दूँगा।**
   अनुवाद– अहं युद्धस्य बिना कोऽपि न दास्यामि।
5. **भाइयों से सदैव प्रेम करना चाहिए।**
   अनुवाद– भाषा सदैव: प्रेमं कुर्यात्।
6. **गंगा पुत्र भीष्म को मेरा नमस्कार हो।**
   अनुवाद– गंगापुत्रभीष्याम मम् नम:।
7. **दुर्योधन कुरु देश का राजा था।**
   अनुवाद– दुर्योधन: कुरुदेशस्य राज्ञ: आसीत्।
8. **कवि वेदव्यास ने महाभारत की रचना की।**
   अनुवाद– कवि: वेदव्यास: महाभारतस्य अरचयत्।
9. **लोभ पाप का कारण होता है।**
   अनुवाद– लोभ: पापस्य कारणं भवति।
10. **अर्घ्य देकर केशव का सम्मान करना चाहिए।**
    अनुवाद– अर्घ्यप्रदानेन केशवस्य सम्मानं कुर्यात्।

संस्कृत व्याकरण संबंधी प्रश्न–

1. **निम्नलिखित शब्द-रूपों में विभक्ति एवं वचन लिखिए–**

शब्द-रूप	**विभक्ति**	**वचन**
अर्जुनस्य	षष्ठी	एकवचन
बन्धुभि:	तृतीया	बहुवचन
तव	षष्ठी	एकवचन
पार्थिवै:	तृतीया	बहुवचन
राजान:	प्रथमा	बहुवचन
स्कन्धावारात्	पञ्चमी	एकवचन
पाण्डवेषु	सप्तमी	बहुवचन
चित्रसेनेन	तृतीया	एकवचन
लोकयो:	षष्ठी/सप्तमी	द्विवचन
गाम्	द्वितीया	एकवचन

2. **निम्नलिखित शब्दों में सन्धि-विच्छेद कीजिए तथा सन्धि का नाम लिखिए–**

सन्धि-शब्द	**सन्धि-विच्छेद**	**सन्धि का नाम**
पुरुषोत्तम:	पुरुष + उत्तम:	गुण सन्धि
समुदाचार:	सम् + उद् + आचार:	अनुस्वार, जश्त्व
देवात्मा	देव + आत्मा	दीर्घ सन्धि
एकेनैव	एकेन + एव	वृद्धि सन्धि
दौत्येनागत:	दौत्येन् + आगत:	अनुस्वार सन्धि
यदाज्ञापयति	यत् + आज्ञापयति	जश्त्व सन्धि

प्रतिहाराधिकृता:	प्रतिहार + अधिकृता:	यण सन्धि
नृपात्यजै:	नृप + आत्मजै:	दीर्घ सन्धि
क्षितिरखिलापि	क्षिति: + अखिला + अपि विसर्ग,	दीर्घ सन्धि

3. निम्नलिखित धातु-रूपों के लकार, पुरुष तथा वचन लिखिए–

धातु-रूप	**लकार**	**पुरुष**	**वचन**
उपविशाम:	लट्	उत्तम	बहुवचन
पश्यामि	लट्	उत्तम	एकवचन
भवेयु:	विधिलिङ्	प्रथम	बहुवचन
भवन्तु	लोट्	प्रथम	बहुवचन
प्रविशन्तु	लोट्	प्रथम	बहुवचन
उत्थास्यति	लृट्	प्रथम	एकवचन
करिष्यति	लृट्	प्रथम	एकवचन
पतन्ति	लट्	प्रथम	बहुवचन
इच्छामि	लट्	उत्तम	एकवचन
प्रविशति	लृट्	प्रथम	एकवचन

4. निम्नलिखित शब्दों में से प्रत्यय अलग कीजिए–

शब्द	**धातु**	**प्रत्यय**
पूजयितव्य:	पूज्	तव्यत्
पृष्टवा	प्रच्छ	कत्वा
स्मरणीय:	स्मर्	अनीयर्

पाठ्येतर सक्रियता

उ०– छात्र स्वयं करें।